व्यक्तित्वः- परिभाषा, प्रकृति, उत्पत्ति एवं विशेषताएँ; व्यक्तित्व के सिद्धान्त : प्रकार एवं शीलगुण (Personality:- Definition, Nature, Origin and Characteristics; Theory of Personality: Types and Trait)

इकाई संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 व्यक्तित्व का स्वरूप

1.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं

 1.4.1 सतही परिभाषाएं

 1.4.2 तात्विक परिभाषाएं

 1.4.3 समाकलित परिभाषाएं

1.5 व्यक्तित्व की विशेषताएं

1.6 व्यक्तित्व के उपागम

 1.6.1 प्रकार उपागम

 1.6.2 शीलगुण उपागम

1.7 सार संक्षेप

1.8 स्व.-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.1 प्रस्तावना -

व्यक्तित्व एक जटिल विषय है। इसके अध्ययन की महत्ता इस बात से प्रमाणित हो जाती है कि जहां सभी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं का स्वरूप व्यक्तित्व के स्वरूप से ही निर्धारित होता है, वहीं व्यक्तित्व के स्वरूप का निर्धारण भी इन सभी मनोवैज्ञानिक क्रियाओं के सम्मिलित प्रभाव से ही होता है; जहां बुद्धि से व्यक्ति की योग्यताओं के अन्तर की जानकारी मिलती है, वहीं व्यक्तित्व से व्यक्ति के लक्षणों का ज्ञान प्राप्त होता है। ये लक्षण व्यक्तित्व के विशिष्ट गुणों के रूप में उसके व्यवहार एवं अनुभूतियों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

व्यक्तित्व मनोविज्ञान का एक ऐसा क्षेत्र है जो वास्तव में जीव विज्ञान, समाज विज्ञान एवं मनोविज्ञान का संगम स्थल है। यह एक ऐसा विषय है जिसमें केवल मनुष्यों की चर्चा की जाती है, पशुओं की नहीं। अतः व्यक्तित्व का अध्ययन मनोविज्ञान के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखता है।

प्रस्तुत इकाई में मनोविज्ञान के इस अत्यन्त ही जटिल विषय ''व्यक्तित्व'' को समझने, उसे परिभाषित करने, उसकी विशेषताओं को जानने तथा उसके विभिन्न उपागमों की व्याख्या करने का प्रयास अत्यन्त ही सरल रूप में किया गया है। आशा है, पाठकों को इस गूढ़ विषय को समझने में आसानी होगी।

1.2 उद्देश्य -

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप

1. व्यक्तित्व के स्वरूप का खाका खींच सकें।
2. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं का विश्लेषण कर उत्तम परिभाषा दे सकें।
3. व्यक्तित्व की विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकें तथा
4. व्यक्तित्व के विभन्न उपागमों की व्याख्या कर सकें।

1.3 व्यक्तित्व का स्वरूप -

''व्यक्तित्व'' अंग्रेजी के पर्सनॉलिटी शब्द का हिंदी रूपंतर है। पर्सनालिटी शब्द की उत्पत्ति लैटिन के परसोना से हुई है। परसोना एक प्रकार के नकाब या मुखावरण को कहते हैं, जिसका उपयोग यूनानी नाटकों में भाग लेने वाले पात्र करते थे। इन नकाबों को चेहरे पर लगा लेने से यह स्पष्ट पता चल जाता था कि नाटक में विभन्न पात्रों के कार्य किस ढंग के होंगे। इस परसोना शब्द से पर्सनॉलिटी शब्द बना है, जिसका अर्थ बनावटी रूप होता है। इस शाब्दिक अर्थ में जिन लोगों ने व्यक्तित्व को परिभाषित करने की चेष्टा की है, उन लोगों ने मनुष्य की बाह्य रूप-रेखा, वेश-भूषा को ही व्यक्तित्व कहा है। साधारण बोलचाल की भाषा में भी व्यक्तित्व का प्रयोग इसी अर्थ में होता है। इस दृष्टिकोण को सतही दृष्टिकोण कहते हैं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति जो देखने में सुंदर है, जिसकी पोशाक आकर्षक है, जो मधुरभाषी और फुर्तीला है- साधारण बोलचाल की भाषा में उसे अच्छे व्यक्तित्व का व्यक्ति कहा जाता है। ठीक इसके विपरीत, जब किसी बेडौल नाक-नक्शेवाले व्यक्ति को मैले कपड़ों में देखते हैं तब हम उसके व्यक्तित्व को बुरा कहते हैं। इस दृष्टिकोण को माननेवाले वाटसन, शरमन आदि हैं।

व्यक्तित्व के संबंध में एक अन्य दृष्टिकोण तात्विक दृष्टिकोण कहलाता है। यह दृष्टिकोण मनुष्य के स्वाभाविक स्थायी गुणों की ही व्याख्या करता है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों में वारेन एवं कारमाइकेल के नाम प्रमुख है। वे व्यक्तित्व को मानसिक संगठन मानते हैं, जिसके अंतर्गत बुद्धि धातुस्वभाव, कौशल आदि आंतरिक स्वाभाविक गुण आते हैं।

लेकिन, उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में कोई भी एक दृष्टिकोण व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने में सफल नहीं है। मनोविज्ञान के अन्दर व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें दोनों दृष्टिकोणों को शामिल करना होगा। इसका मतलब यह हुआ कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए हमें उसके बाह्य रंग-रूप, वेश-भूषा, चाल-ढाल इत्यादि के साथ-साथ उसके अन्दर के गुण, स्वभाव, विचार, अभिरूचि, मनोवृत्ति इत्यादि पर भी ध्यान देना होगा। अस्तु, इस दृष्टिकोण के अनुसार 'व्यक्तिव को व्यक्ति के बाह्य एवं आन्तरिक स्वाभाविक स्थायी गुणों का समन्वय कहा जा सकता है।'

व्यक्तित्व के स्वरूप को और अच्छी तरह स्पष्ट करने हेतु हम एक सामान्य उदाहरण का विश्लेषण करें। मान लें, आपके किसी मित्र ने नौकरी के लिए आवेदनपत्र देते समय अपने परिचितों में आपका नाम दे दिया है। अब नियुक्ति

करनेवाला ऑफिसर आपको एक गुप्त पत्र भेजकर उस उम्मीदवार की योग्यता, चरित्र एवं व्यक्तित्व के संबंध में पूछता है। उत्तर में आप लिखते हैं- उम्मीदवार का व्यक्तित्व आकर्षक और दिलचस्प है, वह उत्साही, अध्यवसायी और ईमानदार होने के साथ-साथ प्रसन्नचित, सरल और विश्वासपात्र है। वह अपने साथियों के साथ मिल-जुलकर काम करना जानता है, वह आत्मनिर्भर तथा अच्छे चरित्रवाला है। इसी तरह हजारों ऐसे विशेषण है जिनके उपयोग किसी के व्यक्तित्व को प्रकट करने हेतु किए जा सकते हैं।

यदि आप उपर्युक्त विशेषणों पर सोचें तो विदित होगा कि ये विशेषण सही अर्थ में क्रियाविशेषण है जिनसे व्यक्ति के व्यवहार के तरीकों के बारे में जानकारी मिलती है। अर्थात् व्यक्ति के विशिष्ट गुण उसके व्यवहार के तरीके का ज्ञान कराते हैं। अस्तु, व्यक्तित्व की विशेषता बताने वाले शब्द व्यक्ति के गुणें के नाम है। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व एक छोटे-से काम को करने में भी प्रकट हो सकता है। उस कार्य को वह विशेष ढंग से करेगा और यही विशेष ढंग उसका व्यक्तित्व होगा। व्यक्तित्व के इस विश्लेषण के आलोक में ही वुडवर्थ एवं मार्क्रविस ने व्यक्तित्व की परिभाषा इस प्रकार दी है- व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की वह व्यापक विशेषता है जो उसके विचारों और उनके प्रकट करने के ढंग, उसकी मनोवृत्ति और अभिरूचि, कार्य करने के उसके ढंग और जीवन के प्रति उसके व्यक्तिगत दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रकट होती है

स्पष्ट है कि व्यक्तित्व में व्यक्ति के बाह्य रूप-रंग, वेश-भूषा आदि के साथ-साथ किसी कार्य करने के विशेष ढंग (जो उसका स्थायी गुण होता है) को प्रकट करने वाले गुणों का समन्वय होता है तथा इसी समन्वय के फलस्वरूप उसका वातावरण के साथ अभियोजन अपूर्व ढंग का होता है।

1.4 व्यक्तित्व की परिभाषाएं -

व्यक्तित्व के स्वरूप का ऊपर जो वर्णन किया गया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को थोड़े से शब्दों में (संक्षेप में) बताना आसान काम नहीं है। इसका कारण यह है कि व्यक्तित्व की विशेषताओं को प्रकट करने वाले विशेषण अमूर्त होते हैं, जिन्हें ठोस अर्थ में व्यक्त करना कठिन है। फिर भी, विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इसे अपने-अपने ढंग से परिभाषित करने की कोशिश की है। जहां कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य पक्ष के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है, वहीं कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष को महत्व देते हुए व्यक्तित्व की परिभाषा दी है। कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने इन दोनों पक्षों को ध्यान में रखकर व्यक्तित्व को परिभाषित किया है।

अतः व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उपलब्ध परिभाषाओं को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः-

(क) सतही परिभाषाएं- इस वर्ग की परिभाषाएं व्यक्ति के बाहरी पक्ष यानी शरीरिक रचना, रूप-रंग, शारीरिक प्रतीति आदि पर आधारित हैं। सुन्दर एवं संगठित शारीरिक रचना अथवा भव्य शारीरिक प्रतीति वाले व्यक्ति को देखकर हम अक्सर कह बैठते हैं कि उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। असल में व्यक्तित्व के सम्बन्ध में हमारी यह धारण व्यक्तित्व के शाब्दिक अर्थ से प्रभावित है। यूनान के लोग नाटक के बड़े शौकीन थे। नाटक के समय अभिनय के अनुसार अभिनेता अपने असली चेहरा को छिपाकर नकली चेहरा के साथ दर्शकों के सामने आने के लिए अपने चेहरे पर एक विशेष मुखावरण लगा लिया करते थे, जिसको परसौना कहा जाता था। अभिनेता के मुखावरण को देखकर ही दर्शकों को इस बात का भान हो जाता कि उसका अभिनय किस ढंग का होगा। इस प्रकार एक विशेष समय में किसी अभिनेता के अच्छे, बुरे, संवेगी, असंगी या क्रोधी होने का परिचय उसके मुखावरण से मिल जाया

करता था। इसी आधार पर बाद में शारीरिक गठन, शारीरिक प्रतीति तथा वेश-भूषा को व्यक्तित्व मान लेने की भूल की गयी।

उल्लेखनीय है कि सतही दृष्टिकोण व्यक्तित्व की व्याख्या उत्तेजना तथा प्रतिक्रिया के आधार पर करता हे। अतः सतही दृष्टिकोण को निम्नलिखित दो उप-वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः-

(1) उत्तेजना दृष्टिकोण- इस दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व एक उत्तेजना के रूप में कार्यरत होता है। प्रत्येक व्यक्तित्व का एक उत्तेजना मान होता है, जिससे उसकी (व्यक्तित्व की) प्रभावशीलता निर्धारित होती है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय इस बात से मिलता है कि वह दूसरे व्यक्तियों को किस रूप में प्रभावित करता है। उसका यह प्रभाव सकारात्मक भी होता है और नकारात्मक भी। फिर, उसके सकारात्मक या नकारात्मक प्रभाव की मात्रा अधिक भी हो सकती है और कम भी। वह दूसरों पर जितना ही अधिक सकारात्मक प्रभाव डाल पाता है, उसका व्यक्तित्व उतना ही अधिक भव्य, आकर्षक तथा प्रभावशाली समझा जाता है।

(2) प्रतिक्रिया दृष्टिकोण- इस दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व का बोध प्रतिक्रिया के रूप में होता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का बोध प्रतिक्रिया के रूप में होता है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय इस बात से मिलता है कि वह भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार या प्रतिक्रिया करता है। किसी व्यक्ति को बार-बार आक्रमणकारी व्यवहार करते देखकर हम कह उठते हैं कि वह आक्रमणकारी व्यक्तित्व का व्यक्ति है। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति को बार-बार लजाते देखकर हम उसे लजालु व्यक्तित्व का आदमी समझने लगते हैं। स्पष्ट है कि इस दृष्टिकोण के अनुसार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय उसके द्वारा किये गये व्यवहारों से मिलता है।

व्यवहारवाद के जन्मदाता वाटसन (1924) ने सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी रचना व्यवहारवाद में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा व्यक्तित्व का तात्पर्य विश्वसनीय सूचना हेतु एक लंबे समय तक निरीक्षण की जाने वाली क्रियाओं के योगफल से है। इसी प्रकार शर्मन (1925) ने व्यक्ति की शारीरिक प्रतीति (उत्तेजना मान) तथा उसके व्यवहार (प्रतिक्रिया-मान) को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व की परिभाषा दी कि व्यक्ति के विशिष्ट व्यवहार को व्यक्तित्व कहते हैं। मैक कीनन (1944) ने भी सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित किया और कहा कि आदत-प्रणाली तथा क्रियाओं का परिणाम ही व्यक्तित्व है।

लेकिन, सतही परिभाषायें अधिक दिनों तक टिक नहीं सकी। विद्वानों ने व्यक्तित्व को केवल उत्तेजना (बाह्य प्रतीति) अथवा प्रतिक्रिया (व्यवहार) के रूप में स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा कि व्यक्तित्व का समबन्ध बाहरी भेष-भूषा या व्यवहार से नहीं है, बल्कि उन आन्तरिक शीलगुणों से है, जो व्यक्ति के व्यवहारों के निर्धारक हैं। इसी दृष्टिकोण को तात्विक दृष्टिकोण कहा गया।

(ख) **तात्विक परिभाषाएं-** इस वर्ग की परिभाषाएं अधिक उपयोगी तथा संतोषजनक हैं, क्योंकि उनके आधार पर व्यक्तित्व का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो पाता है। तात्विक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति का आंतरिक स्थाई स्वभाव ही व्यक्तित्व है। बुद्धि, स्वभाव, प्रवृत्ति, नैतिकता, संवेगशीलता आदि आन्तरिक शीलगुणों से संरचित मानव-स्वभाव ही वास्तविक अर्थ में व्यक्तित्व है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहारों का असल निर्धारक यही मानव स्वभाव है।

प्रिन्स (1974) ने व्यक्त्वि के तात्विक दृष्टिकोण पर बल दिया। उन्होंने अपनी रचना अचेतन में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा कि व्यक्तित्व का तात्पर्य व्यक्ति के सभी जैविक जन्मजात प्रवृत्तियों, आवेगों, झुकावों, अभिलाषाओं, मूल-प्रवृत्तियों तथा अर्जित प्रवृत्तियों एवं झुकावों के योगफल से है। स्पष्टतः इस परिभाषा में व्यक्तित्व

के आन्तरिक पक्ष पर बल दिया गया है। यही मानसिक संगठन मानव-स्वभाव है, जो एक स्वतंत्र चर के रूप में भिन्न-भिन्न व्यवहारों (आश्रित चरों) को नियन्त्रित तथा संचालित करता है। वारेन आदि ने भी इसी अर्थ में व्यक्तित्व की परिभाषा दी है और कहा है कि मानव का सम्पूर्ण मानसिक संगठन ही व्यक्तित्व हे।

इस वर्ग की परिभाषाएं भी व्यक्तित्व की व्याख्या करने में केवल आंशिक रूप में सफल है। कारण, इन परिभाषाओं में केवल आंतरिक पक्ष पर बल दिया गया है और बाह्य पक्ष की उपेक्षा की गयी है। तात्विक परिभाषाओं में व्यक्ति की मनोवृत्ति, मनोवेग, अभिलाषा आदि गत्यात्मक प्रत्ययों पर बल दिया गया है, परन्तु उनका अध्ययन प्रत्यक्ष रूप में सम्भव नहीं है। अतः मानसिक संगठन के सही स्वरूप को समझने के लिए बाह्य प्रतीति तथा व्यवहार का अध्ययन आवश्यक है।

(ग) समाकलनात्मक परिभाषाएं- इस वर्ग की परिभाषाएं व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या करने में काफी सफल है। इन परिभाषाओं में व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष तथा आन्तरिक पक्ष दोनों पर बल दिया गया है। हम देख चुके हैं कि सतही परिभाषाओं में व्यक्तित्व के केवल बाह्य पक्ष अर्थात् शारीरिक गठन एवं व्यवहार पर बल दिया गया और तात्विक परिभाषाओं में केवल आन्तरिक पक्ष अर्थात् मानसिक गठन पर बल दिया गया। लेकिन, मनोवैज्ञानिकों की एक बड़ी संख्या ने व्यक्तित्व को दोनों पक्षों का समाकलित रूप माना है। इस दिशा में गार्डन ऑल्पोर्ट (1937) का प्रयास बहुत सराहनीय है। उन्होंने परसौना तथा पर्सनालिटी की छोटी-बड़ी 50 परिभाषाओं की एक सूची तैयार की और कहा कि व्यक्तित्व की केवल वही परिभाषा संतोषजनक हो सकती है, जो व्यक्तित्व के बाह्य तथा आंतरिक पक्षों की व्याख्या करने में सफल हो। अपने इसी विश्वास के आधार पर उन्होंने व्यक्तित्व की परिभाषा दी कि, ‘‘व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करते हैं।’’

ऊपर जिन महत्वपूर्ण परिभाषाओं का उल्लेख किया गया है, उनमें कुछ परिभाषाओं में व्यक्तित्व से व्यक्ति के व्यवहार का बोध होता है तो कुछ परिभाषाएं जैवभौतिक दृष्टिकोण के आधार पर दी गई हैं। जैवभौतिक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व जीवरसायन एवं शारीरिक रचना पर निर्भर करता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के शीलगुण पर जोर दिया है, जिनके अनुसार शीलगुण ही व्यक्तितव के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करते हैं। कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिक के अनुसार, व्यक्ति अपने समाज के दूसरे लोगों के साथ जिस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करता है, वही उसके व्यक्तित्व का सूचक होता है। इस प्रकार, हम देखते हैं कि विभन्न मनोवैज्ञानिक द्वारा दी गई परिभाषाओं में कापफी भिन्नता है। यह विभिन्नता केवल शब्दों का ही नहीं, वरन् उनके दृष्टिकोणों का भी है। अतः, उपर्युक्त विभिन्न परिभाषाओं में कौन परिभाषा सर्वोत्तम है यह निश्चित करना आसान नहीं प्रतीत होता। वास्तविकता तो यह है कि व्यक्तित्व अपने-आप में एक पूर्ण संगठित इकई है, जिसमें व्यक्ति की जैविक तंत्रों का समावेश रहता है। यह संगठन प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न प्रतिरूपें का होता है, जिससे वातावरण के साथ उसका अभियोजन-संबंधी व्यवहार अपूर्व ढंग का होता है। व्यक्तित्व के इस स्वरूप को मद्दे नजर रखते हुए ऑलपोर्ट, द्वारा दी गई परिभाषा को एक उत्तम परिभाषा माना जा सकता है। उनहोंने व्यक्तित्व को व्यक्ति के मनःशारीरिक गुणों अथवा तंत्रों का गत्यात्मक संगठन बताया है तथा इसी संगठन पर व्यक्ति का वातावरण के साथ विशिष्ट या अपूर्व अभियोजन निर्भर करता है। इस परिभाषा में अन्य सभी परिभाषाओं की बातें तो शामिल हैं ही, साथ-ही-साथ इसमें व्यक्तित्व को गत्यात्मक स्वरूप का संगठन बताया गया है। तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के विभिन्न मनःशारीरिक गुण, जैसे- धातुस्वरूप, कौशल, मनोवृत्ति, विवेक आदि का संगठन लचीले स्वरूप का होता है। यही कारण है कि

समय और परिस्थिति के अनुरूप व्यक्ति का व्यवहार भी अलग-अलग स्वरूप का होता है। साथ ही, इस परिभाषा में व्यक्तित्व की अपूर्वता पर भी जोर दिया गया है। अतः यह स्पष्ट है कि ऑलपोर्ट की परिभाषा से व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप अच्छी तरह चित्रित होता है। अतः इसे व्यक्तित्व की एक उपयुक्त परिभाषा कह सकते हैं।

1.5 व्यक्तित्व की विशेषताएं-

मनोवैज्ञानिक जब व्यक्तित्व का वैज्ञानिक विश्लेषण करता है तब उसका एकमात्र उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार द्वारा प्रदर्शित लक्षणोंद्व गुणों या विशेषताओं को पहचानना होता है। व्यक्तित्व के विशिष्ट लक्षण, विशेषता अथवा शीलगुण का तात्पर्य व्यक्ति के किसी खास गुण, विशेषता जैसे- हंसमुख होना, आत्मविश्वासी होना, उत्साही होना, जिद्दी होना आदि से है जो व्यक्ति के कार्यों में अपने-आप (स्वतः) प्रकट होता है तथा जो कुछ समय के लिए उसके स्वभाव का अंग बनकर स्थ्रि रहता है। इन्हीं शीलगुणों की जटिल संरचना से व्यक्ति का समग्र व्यक्तित्व बनता है। यही कारण है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में स्थिरता एवं क्रमबद्धता पाई जाती है।

व्यक्तित्व के शीलगुण की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है- किसी खास परिस्थिति में व्यक्ति की सामान्यीकृत एवं निर्भरतापूर्वक व्यवहार करने के ढंग को शीलगुण कहते हैं।

कुछ लोग शीलगुण या विशेषताओं के आधार पर व्यक्तित्व को अलग-अलग प्रकारों में बांटते है। जैसे हम कहते हैं- 'क' एक ईमानदार व्यक्ति है, 'ख' का व्यक्तित्व विनीत प्रकार का है, 'ग' का व्यक्तित्व सामाजिक है इत्यादि। इन कथनों में हम व्यक्ति के व्यवहार की विशिष्ट विशेषता या शीलगुण पर ही जोर देते हैं। लेकिन, किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को केवल उसके शीलगुण या विशेषता के आधार पर परखना गलत है। किसी व्यक्ति में किसी शीलगुण की प्रधानता से उसके व्यक्तित्व की पूर्णता का बोध नहीं होता, बल्कि इसका अर्थ केवल इतना है कि उस व्यक्ति में वह गुण या विशेषता दूसरों की अपेक्षा अधिक है। यानी, हम कह सकते हैं कि प्रत्येक शीलगुण की एक विमा होती है, जिसके विभिन्न बिंदुओं पर उस शीलगुण की विभिन्न मात्राएं रहती हैं और व्यक्ति के व्यवहारों का निरीक्षण कर उसे उस विमा के अलग-अलग बिंदुओं पर रख जाता है। शीलगुण विभिन्न मात्राओं में रहते हैं तथा उनका संगठन भी एक निश्चित प्रकार का होता है। यह संगठन विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग प्रतिरूपें का होता है। यही कारण है कि किसी एक ही शीलगुण की प्रधानता वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व में भी भिन्नता मिलती है।

व्यक्ति के व्यवहार की विशेषताएं अनेक हैं। ऑलपोर्ट एवं ऑडबर्ट (1936) को वेबस्टर की अंग्रेजी शब्दावली में लगभग 18,000 ऐसे विशेषण शब्द मिले, जो व्यक्ति की कार्यशैली, चिंतन, प्रत्यक्षीकरण आदि व्यवहार की विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। लेकिन, इनमें अनेक विशेषण शब्द एक-दूसरे के समानार्थक हैं और कुछ दुर्लभ। इस तरह, समानार्थक एवं दुर्लभ शब्दों को छांटने पर लगभग 170 विशेषण शब्द प्रचलित प्रतीत होते हैं। अर्थात् उन्हें हम प्रचलित नामों से व्यक्त करते हैं।

सधारणतः व्यक्तित्व के इन प्रचलित शीलगुणों में किसी शीलगुण को उसके विलोम शब्द के जोड़ा रूप में ही व्यक्त किया जाता है। जैसे-प्रसन्नचित-उदास, दयालु-क्रूर, ईमानदार-बेईमान, सच्चरित्र-दुश्चरित्र आदि। अर्थात, किसी व्यक्ति के शीलगुण को द्विध्रुवीय विमा में ही पहचानने की कोशिश की जाती है।

1.6 व्यक्तित्व के उपागम-

व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या जिन विभिन्न उपागमों या दृष्टिकोणों के परिप्रेक्ष्य में की गई है उसे ही व्यक्तित्व के उपागम की संज्ञा दी जाती है। ये उपागम व्यक्ति के सैद्धान्तिक उपागम हैं जिनके तहत विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी किया गया है। इनमें कुछ महत्वपूर्ण उपागम हैं। मनोविश्लेषणात्मक उपागम, जीवन-अवधि उपागम, प्रकार उपागम, शीलगुण उपागम, मानवतावादी उपागम, संज्ञानात्मक उपागम, अधिगम उपागम आदि।

1.6.1 प्रकार उपागम -

प्रकार उपागम व्यक्तित्व का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसर व्यक्ति को खास-खास प्रकार में बांटा जाता है और उसके आधार पर उसके शीलगुणों का वर्णन किया जाता है। मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोपलर (1986) के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार से तात्पर्य व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग से होता है जिनके गुण एक-दूसरे से मिलते जुलते हैं। जैसे- अन्तर्मुखी एक प्रकार है और जिन व्यक्तियों को इसमें रखा जाता है उनमें कुछ सामान्य गुण जैसे- संकोचशीलता, सामाजिक कार्यों में अरूचि, लोगों से कम बोलना या मिलना-जुलना आदि पाया जाता है।

यदि व्यक्तित्व के अध्ययन के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले भी इस सिद्धान्त के द्वारा व्यक्तित्व की व्याख्या की जाती थी। सबसे पहला प्रकार सिद्धान्त हिपोक्रेट्स ने 400 बीसी में प्रतिपादित किया था। इन्होंने शरीर- द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बतालाये है। इनके अनुसार हमारे शरीर में चार मुख्य द्रव पाये जाते हैं- पीला पित्त, काला पित्त, रक्त तथा कफ या श्लेष्मा । प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों द्रवों में से कोई एक द्रव अधिक प्रधान होता है और व्यक्ति का स्वभाव या चित्तप्रकृति इसी की प्रधानता से निर्धारित होता है। जिस व्यक्ति में पीले पित्त की प्रधानता होती है, उस व्यक्ति का चित्तप्रकृति या स्वभाव चिड़चिड़ा होता है और व्यक्ति प्रायः बेचैन दीख पड़ता है। ऐसे व्यक्ति तुनुकमिजाजी भी होते हैं। इस तरह के प्रकार को हिपोक्रेट्स ने गुस्सैल कहा है। जब व्यक्ति में काले पित्त की प्रधानता होती है तो वह प्रायः उदास तथा मंदित नजर आता है। इस तरह के प्रकार को विषादी या निराशवादी कहा गया है। जिस व्यक्ति में अन्य द्रवों की अपेक्षा रक्त की प्रधानता होती है, वह प्रसन्न तथा खुशमिजाज होता है। इस तरह के व्यक्तित्व के प्रकार का उत्साही या आशावादी कहा गया है। जिस व्यक्ति में कफ या श्लेष्मा जैसे द्रव की प्रधानता होती है, वह शांत स्वभाव का होता है तथा उसमें निष्क्रियता अधिक पायी जाती है। इसमें भावशून्यता के गुण भी पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्तित्व के प्रकार को विरक्त कहा गया है।

यद्यपि हिपोक्रेट्स का यह प्रकार सिद्धान्त अपने समय का एक काफी महत्वपूर्ण सिद्धान्त था, फिर भी आज के मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसे पूर्णतः अस्वीकृत कर दिया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि व्यक्ति के शीलगुणों तथा उसके चित्तप्रकृति का संबंध शरीरिक द्रवों से होने का कोई सीधा एवं वैज्ञानिक प्रमाण नहीं मिलता है। इन मनोवैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि हिपोक्रेट्स द्वारा बताये गये शारीरिक द्रव सचमुच में व्यक्ति में होते हैं या नहीं, इसका भी कोई वस्तुनिष्ठ प्रमाण नहीं मिलता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रकार सिद्धान्त को मूलतः दो भागों में बांटकर उसके द्वारा व्यक्तित्व की व्याख्या की गयी है। पहले भाग में व्यक्ति के शारीरिक गुणों एवं उसके चित्तप्रकृति या स्वभाव के संबंधों में पर बल डाला गया है तथा दूसरे भाग में व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर उसे भिन्न-भिन्न प्रकारों में बांटकर अध्ययन करने की कोशिश की गई है। आइए, प्रकार सिद्धान्त के इन दोनों ही भागों पर विस्तृत चर्चा करें।

अ. शारीरिक गुणों के आधार पर-

शारीरिक गुणों के आधार पर प्रतिपादित सिद्धान्त को शरीरगठन सिद्धान्त कहा गया है। शारीरिक गुणों के आधार पर दो वैज्ञानिकों अर्थात् क्रेश्मर तथा शेल्डन द्वारा किया गया व्यक्तित्व का वर्गीकरण काफी महत्वपूर्ण है।

क्रेश्मर जो एक जर्मन मनोचिकित्सक थे, शारीरिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बतलाये हैं। प्रत्येक प्रकार से संबंधित कुछ खास-खास शीलगुण भी हैं जिनसे संबंधित स्वभाव या चित्तप्रकृति का पता चलता है। क्रेश्मर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन दो तरह के मानसिक रोग यानी मनोविदालता एवं उत्साह-विषाद से ग्रसित व्यक्तियों के प्रेक्षण के आधार पर किया था। उनके द्वारा वर्णित व्यक्तित्व के चार प्रकार निम्नांकित हैं-

(1) स्थूलकाय प्रकार- ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है। ऐसे लोगों की गर्दन छोटी एवं मोटी होती है। इस तरह के व्यक्ति के स्वभाव की कुछ खास-खास विशेषता होती हैं। जैसे- एंेसे व्यक्ति सामाजिक होते हैं, खाने-पीने तथा सोने में काफी मजा लेते हैं तथा वे खुशमिजाज होते हैं। इस तरह के स्वभाव या चित्तप्रकृति को क्रेश्मर ने साइक्लोआड की संज्ञा दी है। ऐसे व्यक्तियों में मानसिक रोग उत्पन्न होने पर उत्साह-विषाद मनोविकृति के लक्षण विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

(2) कृशकाय प्रकार- इस तरह के व्यक्ति का कद लम्बा होता है, परन्तु वे दुबले-पतले शरीर के होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के शरीर की मांसपेशियां विकसित नहीं होती हैं और शरीर का वजन उम्र के अनुसार होने वाले समान्य वजन से कम होता है। ऐसे लोगों का स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा होता है, सामाजिक उत्तरदायित्व से इनमें दूर रहने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। ऐसे व्यक्ति में दिवास्वप्न अधिक होता है तथा काल्पनिक दुनिया में भ्रमण करने की आदत इनमें अधिक तीव्र होती है। मानसिक रोग होने पर इनमें मनोविदालता होने की संभावना तीव्र होती है। इस तरह के चित्तप्रकृति या स्वभाव को क्रेश्मर ने सिजोआड की संज्ञा दी है।

(3) पुष्टकाय प्रकार- इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की मांसपेशियां काफी विकसित एवं गठी होती हैं तथा शरीरिक कद न तो अधिक लम्बा और न ही अधिक छोटा होता है। इनका पूरा शरीर सुडौल एवं हर तरह से संतुलित दिखाई देता है। ऐसे व्यक्ति के स्वभाव में न तो अधिक चंचलता और न ही अधिक मंदता होती है। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थिति के साथ आसानी से समायोजन कर लेते हैं। अतः इन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा काफी मिलती है।

(4) विशालकाय प्रकार- इस श्रेणी में उन व्यक्तियों को रखा जाता है जिनमें ऊपर के तीन प्रकारों में से किसी भी प्रकार का स्पष्ट गुण नहीं मिलता है बल्कि इन तीनों प्रकारों का गुण मिला-जुला होता है। परन्तु बाद में क्रेश्मर के वर्गीकरण को कुछ वैज्ञानिकों ने जैसे- शेल्डन ने अपने अध्ययन के आधार पर बहुत वैज्ञानिक नहीं पाया और इसमें विधि से संबंधित कई दोष पाये। इन्होंने यह भी कहा कि क्रेश्मर का यह वर्गीकरण मानसिक रोग से ग्रसित व्यक्तियों की व्याख्या करने में भले ही समर्थ हो परन्तु सामान्य व्यक्तियों की व्याख्या करने में असमर्थ है। फलस्वरूप उन्होंने एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाईप सिद्धान्त कहा जाता है।

शेल्डन ने 1940 में शरीर गठन के ही आधार पर एक दूसरा सिद्धान्त बनाया जिसे सोमैटोटाईप सिद्धान्त कहा गया। इन्होंने शारीरिक गठन के आधार पर व्यक्तित्व का वर्गीकरण करने के लिए 4,000 कॉलेज के छात्रों की नग्न तस्वीरों का विश्लेषण कर यह बतलाया है कि व्यक्तित्व को मूलतः तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है और प्रत्येक प्रकार के कुछ खास-खास शीलगुण होते हैं जिनसे उसके स्वभाव या चित्तप्रकृति का भी पता चलता है। प्रत्येक प्रकार तथा उससे संबंधित शीलगुणों के बीच का सहसंबंध 0.78 से अधिक था जो अपने आप में इस बात का सबूत है कि प्रत्येक शारीरिक प्रकार तथा उससे संबंधित गुण आपस में काफी मजबूत हैं। शेल्डन द्वारा बताये गये वे तीन प्रकार तथा उससे संबंधित चित्तप्रकृति के संबंधित गुण निम्नांकित हैं-

(1) एण्डोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे होते हैं और इनका शरीर गोलाकार दीखता है। स्पष्ट है कि शेल्डन का यह प्रकार क्रेश्मर के स्थूलकाय प्रकार से मिलता-जुलता है। शेल्डन ने यह बतलाया है कि इस तरह के शरीरिक गठन वाले व्यक्ति आरामपसंद, खुशमिजाज, सामाजिक तथा खाने-पीने की चीजों में अधिक अभिरूचि दिखलाने वाले होत हैं। ऐसे स्वभाव को शेल्डन ने भिसरोटोनिया कहा है।

(2) मेसोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति के शरीर की हड्डियां एवं मांसपेशियां काफी विकसित होती हैं तथा शरीरिक गठन काफी सुडौल होता है ऐसे व्यक्ति के स्वभाव को सौमैटोटोनिया कहा गया है जिसमें जोखिम तथा बहादुरी का कार्य करने की तीव्र प्रवृत्ति, दृढ़ कथन, आक्रामकता आदि का गुण पाया जाता है। ऐसे लोग अन्य लोगों को आदेश देने में अधिक आनन्द उठाते हैं। ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि मेसोमार्फी बहुत कुछ क्रेशमर के पुष्टकाय प्रकार से मिलता-जुलता है।

(3) एक्टोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्ति का कद लम्बा होता है परन्तु ऐसे व्यक्ति दुबले-पतले होते हैं। इनके शरीर की मांसपेशियां अविकसित होती हैं और इनका पूरा गठन इकहरा होता है। इस प्रकार के व्यक्ति के चित्तप्रकृति को सेरीब्रोटोनिया कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति को अकेला रहना तथा लोगों से कम मिलना-जुलना अधिक पसंद आता है। ऐसे लोग संकोची और लजालु भी होते हैं। इनमें नींद-संबंधी शिकायत भी पायी जाती है।

ब. मनोवैज्ञानिक गुणों के आधर पर:

कुछ मनोवैज्ञानिकों के व्यक्तित्व का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर किया गया है। इसमें युंग, आइजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम अधिक मशहूर है। युंग ने व्यक्तित्व के निम्नांकित दो प्रकार बताये है।

1. **बहिर्मुखीः** इस तरह के व्यक्ति की अभिरुचि सामाजिक कार्यों की ओर अधिक होता है। वह अन्य लोगों से मिलना-जुलना पसंद करते हैं तथा खुशमिजाज किस्म के होते हैं।ऐसे व्यक्ति आशावादी होते हैं तथा अपना संबंध यथार्थता से अधिक और आदर्शवाद से कम रखते हैं। ऐसे लोगों को खाने पीने की तरफ अधिक अभिरुचि होती है।
2. **अन्तर्मुखी:** ऐसे व्यक्ति में बहिर्मुखी के विपरीत गुण पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्ति कम लोगों से मिलना पसंद करते है और उनकी दोस्ती कुछ ही लोगों तक सीमित होती है।इनमें आत्मकेंन्द्रिता का गुण अधिक पाया जाता है। इन व्यक्तियों को अकेलापन पसंद होता है तथा ऐसे लोग रुढिवादी प्रकृति के होते हैं तथा पुराने रीति रिवाजों एवं नियमों को आदर देने वाले होते है।

आधुनिक मनोवैज्ञानि कों द्वारा युंग के इन दो प्रकारों की आलोचना की है और इन लोगों ने कहा कि सभी लोग इन दोनों में से किसी एक श्रेणी में आए ही यह जरुरी नहीं है। अधिकतर लोगों में ये दोनों गुण पाये जाते है। फलस्वरुप एक रुप में वो बहिर्मुखी के रुप में व्यवहार करते है तथा दूसरे रुप में अन्तर्मुखी के रुप में व्यवहार करते है।

आइजेन्क (1947) ने भी मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बतलाये है। इन्होने युंग के अन्तर्मुखी बहिर्मुखी सिद्धान्त की सत्यता की जांच करने के लिए 10,000 सामान्य एवं तंत्रिका रोगियों पर अध्ययन किया और विशेष सांख्यिकीय विश्लेषण कर यह बतलाया कि व्यक्तित्व के निम्नांकित तीन प्रकार होते है जो द्विधुरवीय है।

1. अन्तर्मुखी - बहिर्मुखीः - आइजेन्क ने युंग के अन्तर्मुखता तथा बहिर्मुखता के सिद्धान्त को स्वीकार किया। परन्तु युंग के समान उन्होंने इसे व्यक्तित्व का दो अलग-अलग प्रकार नही माना। उनका कहना था कि चूँकि ये दोनो प्रकार एक-दूसरे के विपरीत हैं, अतः इन्हें एक साथ मिलाकर रखा जा सकता है तथ एक ही मापनी बनाकर

अध्ययन किया जा सकता है। चुकि ऐसा नहीं होता है कि ये दोनो तरह के गुण एक ही व्यक्ति में एक साथ अधिक या कम हो अतः इसे आइजेन्क ने व्यक्ति की एक ही विमा माना हैजो स्पष्टतः द्विध्रुवीय है। जैसे-किसी व्यक्ति में यदि सामाजिकता अधिक है तथा वह लोगों से मिलना-जुलना अधिक पसंद करता है वो यह कहा जाता है कि व्यक्ति इस विमा के बहिर्मुखता पक्ष में अधिक ऊँचा है। दूसरी तरफ यदि व्यक्ति अकेले रहना पसंद करता है, लजालु तथा संकोचशील भी है तो ऐसा कहा जाता है कि ऐसा व्यक्ति इस विमा के अन्तर्मुखता पक्ष में अधिक ऊँचा है।

2. स्नायुविकृति-स्थिरता - आइजेन्क के अनुसार व्यक्तित्व की यह दूसरी प्रमुख विमा है ।व्यक्तित्व के इस प्रकार के पहले छोर पर होने पर व्यक्ति में सांवेगिक नियंत्रण कम होता है तथा उनकी इच्छा-शक्ति कमजोर होती है इनके विचारों एवं क्रियाओं में मंदता पायी जाती है।इनमें अन्य व्यक्तियों के सुझाव को चुपचाप स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति अधिक होती हैं तथा सामाजिकता की कमी पायी जाती है।ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रायःअपनी इच्छाओं का दमन किया जाता है। इस प्रकार के दूसरे छोरे पर स्थिरता होती है जिसकी और बढने पर उक्त व्यवहारों या लक्षणों की मात्रा घटती जाती है और व्यक्ति में स्थिरता की मात्रा बढंती जाती है।

3. मनोविकृतता-पराहं की क्रियाएँ- आइजेन्क (1962) ने व्यक्तित्व की इस विमा को बाद में किये गये शोध के आधर पर जोडा है। आइजेन्क ने इस प्रकार की व्याक्ष्या करते हुए कहा कि व्यक्तित्व की विमा मानसिक रोग की एक विशेष श्रेणी, जिसे मनोविक्षिप्त कहा जाता है, के तुल्य नहीं हैं। हाँ, इतना अवश्य है कि मनोविक्षिप्ति रोग से पीडित व्यक्ति में मनोविक्षिप्ति वाले व्यक्तित्व की विमा में क्षीण एकाग्रता ,क्षीण स्मृति तथा क्रूरता का गुण अधिक होता है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति में असंवेदनशीलता ,दूसरों के प्रति सौहार्द्रपूर्ण संबंध की कमी, किसी प्रकर के खतरे के प्रति असतर्कता, सृजनात्मकता की कमी आदि गुण पाये जाते है। इस विमा के दूसरे छोर पर पराहं की क्रियाएंँ होती हैं। जैसे-जैसे इस छोर की ओर हम बढते है,उक्त लक्षणों या व्यवहारों की मात्रा घटती जाती है तथा व्यक्ति में आदर्शत्व तथा नैतिकता की मात्रा बढती जाती है।

इस तरह हम देखते है कि आइजेन्क के तीनों विमा या प्रकार द्विध्रुवीय हैं। यह कदापि नहीं है कि अधिकतर व्यक्ति को दो छोरों में से किसी एक छोर पर रखा जा सकता है। सच्चाई यह है कि प्रत्येक प्रकार या विमा के बीच में ही अधिकतर व्यक्तियों को रखा जाता है।

गिलफोर्ड (1959) ने आइजेन्क के अन्तर्मुखता - बहिर्मुखता की विमा का काफी विस्तृत रुप से विश्लेषण किया और पाया कि इसमें व्यक्तित्व के कई तरह के शीलगुण पाये जाते हैं। इस तरह से उन्होंने अपने अध्ययन के आधर पर आइजेन्क (1947) के विचारों की पुष्टि की है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के प्रकार सिद्धान्त में व्यक्तित्व के समान शीलगुण को एक साथ मिलाकर एक विशेष प्रकार का निर्माण किया जाता है और उसी विशेष प्रकार के अनुसासर व्यक्तित्व की व्याख्या की जाती है। इस सिद्धान्त की सबसे बडी़ विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तित्व को एक संगठित एवं समग्र रुप से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इस गुण के बावजूद भी इस सिद्धान्त की आलोचना की गयी है जो निम्नांकित है-

(1) प्रकार सिद्धान्त में इस बात की पूर्वकल्पना की गयी है कि सभी व्यक्ति किसी-न-किसी प्रकार या श्रेणी में निश्चित रुप से आते हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि एक ही व्यक्ति में व्यक्तित्व के कई प्रकारों का गुण मिलता है जिसके कारण उन्हें किसी एक प्रकार में रखना संभव नहीं है। उदाहरणस्वरूप अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर्मुखता एवं बहिर्मुखता दोनों शीलगुण पाये जाते हैं। अतः उन्हें दोनों प्रकारों में से किसी एक प्रकार में रखकर अध्ययन करना सर्वथा भूल होगी।

(2) प्रकार सिद्धान्त के अनुसार जब किसी व्यक्ति को एक विशेष प्रकार में रखा जाता हैतो यह पूर्व कल्पना भी साथ-साथ कर ली जाती है कि उसमें उस प्रकार से संबन्धित सभी गुण होगें। परन्तु सच्चाई इस तरह की नहीं होती है। जैसे यदि किसी व्यक्ति को अन्तर्मुखी की श्रेणी में रखा जाता हैतो यह पूर्व कल्पना की जाती है कि उसमें अन्य गुणों के अलावा, सांवेगिक संवेदनशीलता भी होगी तथा ऐसा व्यक्ति एकांत प्रिय होगा। परन्तु ये दोनों गुण एक अन्तर्मुखी व्यक्ति में भी हो सकते हैं या नहीं भी हो सकते हैं। एक सांवेगिक रुप से संवेदनशील व्यक्ति अकेले भी रहना पसंद कर सकता है तथा अन्य लोगों के समूह में भी रहना पसंद कर सकता है। अतः प्रकार सिद्धान्त की यह पूर्वकल्पना भी बहुत सही नहीं है।

(3) प्रकार सिद्धान्त द्वारा व्यक्तित्व के संरचना की व्याख्या तो होती है परन्तु व्यक्तित्व विकास की व्याख्या नहीं होती है।इस सिद्धान्त में उन कारको का उल्लेख नहीं है जिससे व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है तथा इस सिद्धान्त से व्यक्तित्व विकास की अवस्थाओं का भी पता नहीं चलता है।

(4) कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकार सिद्धान्त में विशेषकर शारीरिक गठनों के आधर पर किए गए वर्गीकरण मेंसामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक के महत्व को बिल्कुल ही गौण रखा जाता है। शेल्डन का यह दावा है कि व्यक्ति के शारीरिक संगठन तथा उसके शीलगुणों में जो निश्चित संबंध होता है, वह व्यापक होता है तथा सभी परिस्थितियों मेंसमान होता है,उचित नही है। विटेकर (1970) के अनुसार इस तरह का संबंध सचमुच में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा अधिक प्रभावित होता है।

1.6.2 शीलगुण उपागम

शीलगुण सिद्धान्त प्रकार सिद्धान्त से भिन्न एवं विरोधी स्वरुप का है। शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुणों से ठीक वैसी ही बनी होती है जैसे एक मकान की संरचना छोटी-छोटी ईटों से बनी होती है। शीलगुण का सामान्य अर्थ होता है व्यक्ति के व्यवहारों का वर्णन। जैसे-सतर्क, सक्रिय, अवसादित आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके सहारे मानव व्यवहार का वर्णन होता है। प्रश्न उठता है कि क्या सभी शब्द जिनसे मानव व्यवहार का वर्णन होता है, शीलगुण हैं? कदापि नहीं। शीलगुण कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें संगति का गुण हो। उदाहरणस्वरुप, यदि कोई व्यक्ति हर तरह की परिस्थिति में ईमानदारी का गुण दिखलाता है तो हम कह सकते हैं कि उसके व्यवहार में संगति है तथा उसमें ईमानदारी का शीलगुण है। किसी व्यवहार को शीलगुण कहलाने के लिए संगति के अलावा उसमें स्थिरता का भी गुण होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, शीलगुण कहलाने के लिए कम-से-कम थोड़े समय के लिए स्थायित्व का गुण भी होना चाहिए। अगर व्यक्ति एक महीने तक हर परिस्थिति में ईमानदारी दिखलाता है परन्तु बाद में नही तो इसे शीलगुण नहीं कहा जाएगा। अतः शीलगुण एक ऐसी विशेषता होती है जिसके कारण व्यक्ति संगत ढंग से तथा साक्षेप रूप से स्थायी तौर पर एक-दूसरे से भिन्न होता है।

एटकिंसन, एटकिंसन तथा हिलगार्ड (1983) ने भी शीलगुण को इसी तरह परिभाषित किया है। इनके अनुसार, ‘‘शीलगुण से तात्पर्य एक ऐसी विशेषता से होता है जो एक व्यक्ति से दूसरें व्यक्ति में सापेक्ष रुप से स्थायी एवं संगत ढंग से भिन्न-भिन्न होता है।’’

शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तित्व के किसी ‘प्रकार’ द्वारा नियंत्रित नहीं होता है बल्कि भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलगुणों द्वारा नियंत्रित होता है जो प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद रहता है। इस तरह शीलगुण उपागम व्यक्तित्व के मौलिक इकाई को यानी शीलगुण को अलग करके उसके आधर पर व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या करता है।

इस तरह से शीलगुण उपागम में व्यक्तित्व के उन महत्तवपूर्ण विमाओं की पहचान करने की कोशिश की जाती है जिनके आधार पर व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न समझे जाते हैं। इस उपागम की मान्यता यह है कि यदि एक बार यह जान लिया जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किस तरह से भिन्न है, फिर यह आसानी से मापा जा सकता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कितना भिन्न है। तब अध्ययनकर्ता उन अंतरों को विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्तियों के व्यवहार के अन्तरों के साथ संबद्ध कर उसकी व्याख्या करता है। शीलगुण सिद्धान्त में मूल रुप से जिन दो मनोवैज्ञानिकों के विचारों का उल्लेख किया जाता है वे हैं - आलर्पार्ट एवं कैटेल। आलपोर्ट का नाम शीलगुण सिद्धान्त के साथ गहरे रुप से जुडा है। यही कारण है कि आलपोर्ट द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त को आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त कहा जाता है। शीलगुण को दो भागों में बाटा गया है।

(1) सामान्य शीलगुणः सामान्य शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जो किसी संस्कृति के अधिकतर लोगों में पाया जाता है। फलतः सामान्य शीलगुण ऐसा शीलगुण है जिसके आधार पर किसी समाज या संस्कृति के अधिकतर लोगों की तुलना आपस में की जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रभुत्व की माप पर सोहन का शीलगुण यदि 70 शततमक पर है, तो इसका मतलब हुआ कि 70 प्रतिशत व्यक्तियों का गुण सोहन की तुलना में कम है। स्पष्टतः यहां प्रभुत्व के शीलगुणों के आधार पर सोहन की तुलना अन्य व्यक्तियों से की जा रही है। अतः शीलगुण प्रभुत्व का उदाहरण हुआ।

(2) व्यक्तिगत शीलगुणः आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत शीलगुण एक दूसरा महत्वपूर्ण शीलगुण है जिसे उन्होंने व्यक्तिगत प्रवृत्ति कहना उचित ठहराया है। उनका कहना है कि व्यक्तिगत प्रवृत्ति अधिक विवरणात्मक है तथा इससे संभ्रान्ति भी कम होती है।

व्यक्तिगत प्रवृत्ति से तात्पर्य ऐसे शीलगुणों से होता है जो किसी समाज या संस्कृति के व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होता है, अर्थात उस समाज या संस्कृति के सभी व्यक्तियों में वह नहीं पाया जाता है। यहही कारण है कि इस तरह के शीलगुण के आधार पर व्यक्तियों के बीच तुलना नहीं की जा सकती है परन्तु एक ही व्यक्ति का तुलनात्मक अध्ययन भिन्न-भिन्न पहलुओं पर हो सकता है। जैसे यदि हम यह कह सकते है कि श्याम सक्रिय कम परन्तु निष्क्रिय ज्यादा है, तो यह व्यक्तिगत प्रवृत्ति का उदाहरण होगा। आलपोर्ट ने व्यक्तिगत प्रवृत्ति तथा सामान्य शीलगुण में निम्नांकित दो अंतर बताये है

(1) सामान्य शीलगुण समाज के अधिकतर व्यक्तियों में पाया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति समाज के कुछ व्यक्ति विशेष में पायी जाती है।

(2) सामान्य शीलगुण के आधार पर कई व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति के आधार पर एक ही व्यक्ति के भिन्न भिन्न शीलगुणों का आपस में तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुण की अपेक्षा व्यक्तिगत प्रवृत्ति के अध्ययन पर बल डाला है। उन्होंने यह भी बताया है कि व्यक्तिगत प्रवृत्ति की संख्या करीब करीब 18,000 है। उनके अनुसार कुछ व्यक्तिगत प्रवृत्तियां ऐसी होती हैं जो व्यक्तित्व की परिधि पर होती हैं। उन्हें स्पष्टतः समझा जा सकता है। परन्तु कुछ प्रवृत्ति व्यक्तित्व के भीतर अपनी केन्द्र में होती है जिन्हें सीधे और स्पष्टतः तो समझना थोडा कठिन है। आलपोर्ट ने व्यक्तिगत प्रवृत्ति को तीन भागों में बाटा है -

(1) कार्डिनल प्रवृत्ति - इस तरह की व्यक्तिगत प्रवृत्ति व्यक्तित्व का इतना प्रमुख एवं प्रबल गुण होता है कि उसे छुपाया नहीं जा सकता है और व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस तरह से कार्डिनल प्रवृत्ति के रुप में आसानी

से की जा सकती है। सभी व्यक्तियों में कार्डिनल प्रवृत्ति नही होती है। परन्तु जिसमें होती है, वह व्यक्ति पूर्णरुपेण उस प्रवृत्ति या गुण से चर्चित होता है। जैसे, महात्मा गांधी के व्यक्तित्व को कर्डिनल प्रवृत्ति शांति एवं अहिंसा में अटूट विश्वास था और इस गुण से पूरे संसार में वे चर्चित है। उसी तरह से हिटलर तथा नेपोलियन की कार्डिनल प्रवृत्ति क्या थी, इसे पाठक स्वंय ही सोच सकते हैं।

(2) केन्द्रीय प्रवृत्ति - यह सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 गुण या प्रवित्तियॉ ऐसी पायी जाती हैं जिसके भीतर उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। यदि कहा जाए कि व्यक्तित्व इन 5 से 10 गुणों के भीतर जिंदा रहता है तो कोई अतिशोक्ति नहीं होगी। इस तरह के गुणों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहा जाता है। सामाजिकता, आत्मविश्वास, उदासी आदि कुछ केन्द्रीय प्रवृत्ति के उदाहरण है।

(3) गौण प्रवृत्ति- गौण प्रवृत्ति वैसे गुणों को कहा जाता है जो व्यक्तित्व के लिए कम महत्वपूर्ण, कम संगत, कम अर्थपूर्ण तथा कम स्पष्ट होते हैं, जैसे-खाने की आदत, हेयर स्टाइल, पहनावा आदि कुछ ऐसी प्रवृत्तियां है जिनके आधार पर व्यक्तित्व को समझने में कोई खास मदद नहीं मिलती और न ही इनके आधार पर व्यक्तित्व के बारे में कुछ खास अर्थ ही लगाया जा सकता हैं। आलपोर्ट ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि एक व्यक्ति के लिए एक गुण केन्द्रीय प्रवृत्ति हो सकता है परन्तु दूसरे के लिए वही गुण गौण प्रवृत्ति हो सकता है। उदाहरणार्थ वहिर्मुखी के लिए सामाजिकता एक केन्द्रीय प्रवृत्ति है परन्तु अन्तर्मुखी के लिए सामाजिकता एक गौण प्रवृत्ति है। इस तरह आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के शीलगुणों को कई भागों में बाटकर एक यथोचित व्याख्या प्रस्तुत की है।

शीलगुण सिद्धान्तों में आलपोर्ट के बाद कैटेल का नाम अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। इन्होंने शीलगुण सिद्धान्त में अपना विशेष योगदान करके इस सिद्धान्त को व्यक्तित्व की व्याख्या करने में काफी प्रबल बनाया है।

कैटल ने शीलगुणों की खोज आलपोर्ट द्वारा बताये 18,000 शीलगुणों में से 4,500 शीलगुणों को चुनकर किया। इनमें से समानार्थ शब्दों को एक साथ मिलाकर इसकी संख्या उन्होने 200 कर दी और बाद में विशेष सांख्यिकीय विधि यानी, कारक विश्लेषण के सहारे अंतर सहसंबंध द्वारा उसकी संख्या 35 कर दी।

कैटल ने शीलगुणों को कई भागों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया। सबसे मशहूर वर्गीकरण वह था जिसमें उन्होंने व्यक्तित्व के शीलगुणों को सतही शीलगुण तथा मूल या स्त्रोत शीलगुण के रुप में विभाजन किया है। वर्णन इस प्रकार है-

I. **सतही शीलगुण-** इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व के उपरी सतह या परिधि पर होता हैं यानी, इस तरह के शीलगुण ऐसे होते हैं जो व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में आसानी से अभिव्यक्त हो जाते है। इसकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होती है कि संबधित शीलगुण के बारे में व्यक्ति में कोई दो मत हो ही नही सकते है। जैसे प्रसन्नता, परोपकारिता, सत्यनिष्ठा कुछ ऐसे गुण हैं जो सतही शीलगुण के उदाहरण हैं। इनकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तः क्रिया में स्पष्ट रुप से होती है।

II. **स्त्रोत या मूल शीलगुण-** कैटल के अनुसार शीलगुण व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण संरचना है। इसकी संख्या सतही शीलगुण की अपेक्षा कम होती है। मूल शीलगुण सतही शीलगुण के समान, व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में स्पष्ट रुप से व्यक्त नहीं हो पाती है। अतः इसका प्रेक्षण सीधे नहीं किया जा सकता है। कैटल के अनुसार शीलगुण व्यक्तित्व की भीतरी संरचना होती है जिसके बारे में ज्ञान तब होता है जब उससे संबन्धित सतही शीलगुण को एक साथ मिलाने की कोशिश करते हैं। जैसे -सामुदायिकता, निःस्वार्थता, तथा हास्य-तीन ऐसे सतही शीलगुण होते है जिन्हें एक साथ मिलाने से एक नया मूल शीलगुण

बनता हैं जिसे मित्रता की संज्ञा दी जा ती हैं। यह स्पष्ट है कि मूल शीलगुण की अभिव्यक्ति सतही शील गुण के रुप में की जाती है। इसलिए कैटल ने सतही शीलगुण को शीलगुण सूचक भी कहा है। कैटल के अनुसार 23 मूल शीलगुण ऐसे हैं जो सामान्य व्यक्तियों में पाये जाते हैतथा 12 ऐसे मूल शीलगुण है जो असामान्य व्यक्तियों में पाये जाते हैं। 23 में से 16 को कैटल ने अत्यधिक महत्वपूर्ण बताया हैऔर इसे मापने के लिए एक विशेष प्रश्नावली भी तैयार की जिस सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली या 16 पी.एफ. की संज्ञा दी।

सामान्य रुप से मूल शीलगुण को कैटल ने दो भागों में बांटा है। पर्यायवरण प्रभावित शीलगुण तथा स्वाभाविक शीलगुण। कुछ मूल शीलगुण ऐसे होते है जिनके विकास में आनुवांशिता की अपेक्षा वातावरण संबंधी कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन्हें पर्यायवरण प्रभावित शीलगुण कहते हैं। कुछ ऐसे शीलगुण होते हैं जिनके विकास में वातावरण की अपेक्षा आनुवंशिकता का अधिक प्रभाव पड़ता है, इस तरह के शीलगुण को स्वाभाविक शीलगुण कहा जाता है।

कैटल ने शीलगुणों का विभाजन उस व्यवहार पर भी किया है जिससे वे संबंधित होते हैं। इस कसौटी के आधार पर शीलगुण के तीन प्रकार होते है। गत्यात्मक शीलगुण, क्षमता शीलगुण, तथा चित्तप्रकृति शीलगुण।

गत्यात्मक शीलगुण वैसे शीलगुण को कहा जाता है जिससे व्यक्ति का व्यवहार एक खास लक्ष्य की ओर अग्रसित होता है। मनोवृत्ति, मूलवृत्ति तथा मनोभाव गत्यात्मक शीलगुण के कुछ उदाहरण है। क्षमता शीलगुण से तात्पर्य उन शीलगुणों से होता है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुचाने में काफी प्रभावकारी सिद्ध होते हैं। चित्तप्रकृति शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुण से होता है जो किसी लक्ष्य पर पहुचने के प्रयास से उत्पन्न होता है तथा जिसका संबंध व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति, अनुक्रिया करने की शक्ति तथा दर आदि से संबंधित होता है। सांवेगिक स्थिरता, मस्त-मौलापन आदि चित्तप्रकृति शीलगुण के उदाहरण है।

कैटल ने बताया कि शीलगुणों का अध्ययन करने के लिए मूलतः तीन स्त्रोत हैं। जीवन अभिलेख ,आत्म रेटिंग तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षण। पहले स्त्रोत से प्राप्त आकड़ों को एल प्रदत्त, दूसरे स्त्रोत से प्राप्त आकडों को क्यू-प्रदत्त तथा तीसरे को ओट कहा जाता है।

ऊपर वर्णित आलपोर्ट तथा कैटल के शीलगुण सम्बन्धी दृष्टिकोणों पर विचार करने पर यह सवाल उठता है कि मानव व्यक्तित्व के शीलगुण या विमा कौन-कौन से है? वास्तव में शीलगुण उपागम का उद्देश्य इसी प्रश्न का उत्तर ढूढना है, परन्तु उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि यह उपागम इस प्रश्न का उत्तर संतोषजनक ढग से देनें में सफल नहीं हो पाया है। गत दो दशको में किए गये महत्वपूर्ण शोधों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों के बीच कुछ खास विमाओं के बारे में सहमति होते नजर आती है। कोस्टा एवं मैकके, नौलर, ला एवं कोमरे आदि शोधकर्ताओं के बीच लगभग इस बात पर सहमति है कि व्यक्तित्व के निम्नांकित पांच महत्वपूर्ण तथा मजबूत विमाएं हैं जो सभी द्विधुव्रीय हैं।

बहिर्मुखता-व्यक्तित्व का यह एक ऐसा विमा है जिसमें एक परिस्थिति में व्यक्ति मजाकिया, सामाजिक, स्नेहपूर्ण, वातूनी आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थितियों में वह संयमी, गंभीर, रूखापन, शांत, सचेत रहने आदि का गुण भी दिखाता है।

सहमति जन्यता- इस विमा के भी दो छोर या ध्रुव बतलाये गये है। इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी, दूसरों पर विश्वास करने वाला, उदार सीधा, सच्चा, उत्तम प्रकृति आदि से संबद्ध व्यवहार दिखाता है तो

दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु, चिड़चिड़ा, जिद्दी, बेरहम आदि बनकर भी व्यवहार करता पाया जाता है।

कर्तव्यनिष्ठा- इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित, उत्तरदायी, सावधान एवं काफी सोच विचार कर व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वही व्यक्ति बिना सोचे-समझे असावधानीपूर्वक, कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखता हैं

स्नायुकृति-इस विमा में व्यक्ति एक ओर कभी-कभी तो सांवेगिक रूप काफी शान्त, संतुलित, रोगभ्रमी विचारों से अपने को मुक्त पाता है तो दूसरी ओर वह कभी-कभी अपने आप को सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से घिरा हुआ पाता है।

अनुभूतियों का खुलापन या संस्कृति-इस विमा में कभी-कभी व्यक्ति एक तरफ काफी संवेदनाशील, काल्पनिक, बौद्धिक, भद्र आदि व्यवहार से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी ओर काफी असंवेदनशील, रुखा, संकीर्ण, असभ्य, एवं अशिष्ट, व्यवहारों से संबद्ध शीलगुण भी दिखाता है।

उपयुक्त पांचों शीलगुणों को नॉर्मन (1963) ने ''दी विग फाइव'' कहा है जो आलपोर्ट, गोल्डवर्ग तथा कैटेल द्वारा किये गये शोधों पर आधृत है। आधुनिक मनावैज्ञानिकों द्वारा इन पांचों शीलगुणों को सबसे अधिक मान्यता दी जा रही है, क्योंकि लोगों का मत है कि चाहे व्यक्ति किसी समाज या संस्कृति का हो, उसके बारे में इन पांचों शीलगुणों के बारे में जानकर उसके व्यक्तित्व के बारे में सही -सही एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर सकते है।

अभ्यास प्रश्न

1. शेल्डन का व्यक्तित्व सिद्धान्त संबद्ध है-

(अ) प्रकार उपागम से (ब) शीलगुण उपागम से

(स) मानवतावादी उपागम से (द) इन सभी से

2. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक का व्यक्तित्व सिद्धान्त शीलगुण उपागम से संबद्ध है-

(अ) क्रेश्मर (ब) ऑलपोर्ट

(स) रोजर्स (द) इनमें से कोई नहीं

3. शीलगुणों को सतही एवं स्त्रोत के रूप में किसने विभाजित किया-

(अ) ऑलपोर्ट ने (ब) युंग ने

(स) कैटेल ने (द) फ्रायड ने

1.7 सार संक्षेप

1. जहां कुछ मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को व्यक्ति के बाह्य पक्ष, जैसे रूप-रंग, वेश-भूषा, बनावट आदि के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है, वहीं दूसरी ओर कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्ति के आन्तरिक पक्ष को महत्व देते हुए मनुष्य के स्वभाविक स्थायी गुणों, जैसे- बुद्धि, धातु-स्वभाव, कौशल, नैतिकता आदि के आधार पर व्यक्तित्व की परिभाषा दी है।
2. व्यक्तित्व की परिभाषाओं को कुल तीन मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है- सतही परिभाषाएं, तात्विक परिभाषाएं तथा समाकलनात्मक परिभाषाएं।

3. हर व्यक्ति की अपनी खास विशेषता होती है जिसे व्यक्तित्व का शीलगुण कहते हैं। इन्हीं विशेष शीलगुणों के कारण किसी खास परिस्थिति में व्यक्ति सामान्यीकृत एवं निर्भरतापूर्वक व्यवहार करने के ढंग को प्रदर्शित करता है।
4. व्यक्तित्व का प्रकार उपागम जहां विभिन्न व्यक्तित्व सिद्धान्तों की व्याख्या व्यक्ति को खास-खास प्रकार में बांटकर उस प्रकार विशेष के शीलगुणों के परिपेक्ष्य में करता है वहीं शीलगुण उपागम विभिन्न व्यक्तित्व सिद्धान्तों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार के शीलनगुणों के आलोक में करता है।

1.8 पारिभाषिक शब्दावलीः-

व्यक्तित्वः व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के प्रति उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करते हैं।

शीलगुणः व्यक्तित्व की एक ऐसी विशेषता जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में सापेक्ष रूप से स्थायी एवं संगत ढंग से भिन्न-भिन्न होता है।

गत्यात्मक शीलगुणः वैसा शीलगुण जिससे व्यक्ति का व्यवहार एक खास लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

क्षमता शीलगुणः वैसा शीलगुण जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुंचाने में काफी प्रभावकारी सिद्ध होता है।

चित्तप्रकृति शीलगुणः वैसा शीलगुण जो किसी लक्ष्य तक पहुंचने के प्रयास से उत्पन्न होता है तथा जिसका संबंध व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति, अनुक्रिया करने की शक्ति तथा दर आदि से संबंधित होता है।

1.9 स्व- मूल्यांकन हेतु प्रश्नः-

1. व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाओं के आलोक में उसके स्वरूप को स्पष्ट करें।
2. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं ? इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।
3. व्यक्तित्व के प्रकार उपागम की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
4. व्यक्तित्व के शीलगुण उपागम पर प्रकाश डालें।

1.10 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना।
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अ, 2. ब, 3. स

इकाई 2 व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व विकास की अवधारणा; व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक (Concept of Personality and Personality Development; Factors affecting Personality)

इकाई संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 व्यक्तित्व का संप्रत्यय
2.4 व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय
2.4.1 व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विधियां
2.4.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया
2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक/प्रभावक
2.5.1 जैविक कारक/निर्धारक
2.5.2 सामाजिक/वातावरणीय कारक/निर्धारक
2.6 सार संक्षेप
2.7 पारिभाषिक शब्दावली
2.8 स्व मूल्यांकन हेतु प्रश्न
2.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची
2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.1 प्रस्तावना-

व्यक्तित्व जहाँ व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों, यानी बाहरी रूप-रंग, डील-डौल, आकर्षण तथा आन्तरिक शीलगुणों का गत्यात्मक संगठन है, वहीं व्यक्तित्व विकास व्यक्ति के व्यक्तित्व पैटर्न का विकास है, यानी उन सभी मनोदैहिक तंत्रों का विकास है जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है तथा जो आपस में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं।

व्यक्तित्व विकास के क्रम में मूलतः व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण में विकासात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं एवं इन्हें व्यक्ति के जैविक व सामाजिक सांस्कृतिक कारक प्रभावित करते हैं।

पिछली इकाई में आपने व्यक्तित्व की परिभाषा, उसके स्वरूप, उसकी विशेषताएं एवं व्यक्तित्व अध्ययन के विभिन्न उपागमों की जानकारी प्राप्त की। आइए, अब इस इकाई के अन्तर्गत यह जानने का प्रयास करें कि वास्तव में व्यक्तित्व का विकास कैसे होता है, इसकी प्रक्रिया क्या है तथा इसके अध्ययन की कौन-कौन सी विधियां हैं? साथ ही, हम यह देखने का भी प्रयास करेंगें कि व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में कौन-कौन से जैविक व सामाजिक-सांस्कृतिक या वातावरणीय कारकों का क्या महत्व हैं?

2.2 उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व विकास के संप्रत्यय को स्पष्ट कर सकें,
2. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन विधियों को उपयोग में ला सकें,
3. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को रेखांकित कर सकें तथा
4. व्यक्तित्व के विकास में जैविक एवं वातावरणीय कारकों के सापेक्षिक महत्व को प्रतिपादित कर सकें।

2.3 व्यक्तित्व का संप्रत्यय-

व्यक्तित्व का संप्रत्यय यूनानी नाटकों में नायकों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले नकाब से सम्बद्ध है जिसे ''परसोना'' कहा जाता था। परसोना लैटिन शब्द है। इसी का अंग्रेजी अनुवाद है-''पर्सनालिटी'' तथा इसी को हिन्दी में ''व्यक्तित्व'' की संज्ञा दी जाती है। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व अपने शाब्दिक अर्थ में बाहरी वेशभूषा तथा दिखावा है। जिस व्यक्ति का बाहरी दिखावा जितना ही भड़कीला होगा, उसका व्यक्तित्व उतना ही अच्छा व प्रभावशाली समझा जायेगा।

व्यक्तित्व का उसके शाब्दिक अर्थ से जुड़ा यह सम्प्रत्यय कालांतर में खारिज कर दिया गया और आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस काफी वैज्ञानिक रूप में परिभाषित करते हुए बताया कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्त प्रकृति, ज्ञानशक्ति तथा शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी एवं टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है (आइजेंक, 1952)''।

व्यक्तित्व की इस वैज्ञानिक परिभाषा से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतरी गुणों तथा बाहरी गुणों का समन्वय है। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ऐसा ही विचार ऑलपोर्ट (1937) ने प्रस्तुत किया था। उनका कहना था कि ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोदैहिक तंत्रों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है।

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ऑलपोर्ट और आइजेंक की राय लगभग एक समान ही है। दोनों ने ही व्यक्तित्व के निर्धारण में उसके आन्तरिक पक्षों एवं बाहय पक्षों के महत्व पर प्रकाश डाला है, परन्तु भीतरी गुणों पर तुलनात्मक रूप से अधिक बल दिया है। व्यवहार पक्ष पर उतना बल नहीं दिया है। मिशेल (1981) ने व्यक्तित्व को व्यवहारवादी दृष्टि कोण से परिभाषित करते हुए लिखा है- ''प्रायः' व्यक्तित्व से तात्पर्य व्यवहार के उस विशिष्ट पैटर्न (जिसमें चिन्तन एवं संवेग भी सम्मिलित हैं) से होता है जो प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी की परिस्थितियों के साथ होने वाले समायोजन का निर्धारण करता है।''

आधुनिक व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व में निम्नलिखित चार प्रकार की संगतता का अध्ययन किया-

1. प्रकार-'अ' संगतता
2. प्रकार- 'ब' संगतता
3. प्रकार- 'स' संगतता तथा
4. प्रकार-'द' संगतता

इन चारों को 2×2 मॉडल में निम्नवत् दर्शाया गया है-

		परिस्थिति	
		समान	भिन्न
व्यवहार	समान	प्रकार-'अ'	प्रकार-'ब
	भिन्न	प्रकार-'स'	प्रकार-'द'

1. प्रकार-'अ' संगतताः- विभिन्न अन्तराल पर समान परिस्थितियों में दिखाई गई व्यवहार की संगतता।
2. प्रकार- 'ब' संगतताः- दो विभिन्न परिस्थितियों में दिखाई गई व्यवहार की संगतता।
3. प्रकार-'स' संगतताः- एक ही परिस्थिति में विभिन्न तरह के व्यवहारों में पाई जाने वाली संगतता।
4. प्रकार 'द' संगतताः- अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग ढंग से किए गये व्यवहार की संगतता।

व्यक्ति के व्यवहार की यही संगतता उसके व्यक्तित्व के स्थायी गुणों तथा संगठनात्मकता का सूचक होती है।

2.4 व्यक्तित्व विकास का सम्प्रत्यय-

व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय एक ऐसा संप्रत्यय है जो व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिकों को सर्वाधिक उलझा कर रखा है। इस संम्प्रत्यय को समझने के लिए विकास का अर्थ समझना आवश्यक है। विकास से तात्पर्य समय बीतने के साथ परिपक्वता तथा पर्यावरण के साथ होने वाली अंतःक्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्ति की अभिवृद्धि तथा क्षमता में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता तथा अनुभूति के परिणामस्वरूप होने वाले परिवर्तनों के उत्तरोत्तर क्रम को विकास कहा जाता है। वॉन डेन डीले (1976) के अनुसार विकास से आशय गुणात्मक परिवर्तन से होता है। इसका मतलब यह हुआ कि विकास का अर्थ केवल यही नहीं होता है कि व्यक्ति की लम्बाई दो इंच बढ़ गयी है या उसका वजन पाँच किलोग्राम पहले से अधिक हो गया है या उसकी क्षमता पहले से अधिक हो गयी है। बल्कि विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया होती है जिसमें बहुत सारी संरचनाएँ तथा क्रियाएँ सम्मिलित होती हैं।

जहाँ तक व्यक्तित्व विकास का प्रश्न है, इससे तात्पर्य व्यक्तित्व पैटर्न के विकास से होता है। व्यक्तित्व पैटर्न में सभी मनोदैहिक तंत्र जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है, आपस में अंतर्सम्बंधित होते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व होते हैं-आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण। व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य इन दोनों तत्वों में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन से होता है। आइए, इन दोनों तत्वों पर स्वतंत्र रूप से विचार करें।

1. आत्म-संप्रत्यय-

आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य उस तथ्य से होता है जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा वह क्या है। सचमुच में यह एक तरह का 'दर्पण बिम्ब' होता है जो व्यक्ति द्वारा की गईए अपनी भूमिकाओं, दूसरों के साथ संबंधों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं द्वारा मूलतः निर्धारित होता है।

प्रत्येक आत्म-संप्रत्यय के दो पहलू होते हैं- दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक। दैहिक पहलू में वे सारे संप्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के अपने रूप-रंग, यौन उपयुक्तता, किये जाने वाले व्यवहार के संदर्भ में शरीर का महत्व तथा दूसरे लोगों से उनके शरीर को मिलने वाली प्रतिष्ठा आदि के सम्बन्ध में होते हैं। मनोवैज्ञानिक पहलू में वे सारे

संप्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के अपनी क्षमता तथा अक्षमता, अपनी योग्यता तथा अन्य लोगों के साथ संबंध आदि के बारे में होते हैं। प्रारंभ में ये दोनों पहलुएँ अलग-अलग होते हैं परंतु जैसे व्यक्तित्व का विकास होते जाता है, वे आपस में मिलकर एक हो जाते हैं।

चूँकि आत्म-संप्रत्यय व्यक्तित्व पैटर्न का सारभाग होता है अतः इससे शीलगुणों का विकास सीधे प्रभावित होता है। जैसे- यदि व्यक्ति का आत्म-संप्रत्यय धनात्मक होता है, तो व्यक्ति में आत्म-विश्वास, आत्म-सम्मान तथा अपने आप को यथार्थपूर्ण संदर्भ में मूल्यांकन करने की क्षमता विकसित होती है। इससे उनमें उत्तम सामाजिक समायोजन का विकास होता है। दूसरे तरफ यदि आत्म-संप्रत्यय नकारात्मक होता है, तो व्यक्ति में हीनता तथा अपर्याप्तता का भाव विकसित हो जाता है। वह हमेशा अनिश्चित होकर व्यवहार करता है तथा उनमें आत्म-विश्वास की कमी पायी जाती है। इससे उसका वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही समायोजन पर बुरा असर पड़ता है।

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि आत्म-संप्रत्यय के विकास में आनुवंशिकता तथा पर्यावरण दोनों का संयुक्त योगदान होता है तथा किशोरावस्था आते-आते आत्म-संप्रत्यय का विकास पूर्ण हो जाता है, हालांकि बाद में नये वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुभूतियों के होने से उसमें परिवर्तन भी आता है।

2. शीलगुण-

शीलगुण से तात्पर्य व्यवहार या समायोजी पैटर्न के विशिष्ट गुणों से होता है। बुद्धि, प्रभुत्व, सहनशीलता, आदि शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं। व्यक्तित्व का शीलगुण आत्म-संप्रत्यय से संघटित होता है तथा आत्म-संप्रत्यय से प्रभावित भी होता है। कुछ शीलगुण तो अलग-अलग होते हैं परंतु कुछ ऐसे होते हैं जो व्यवहार के संबंधित पैटर्न में संयोजित होते हैं जिन्हें संलक्षण कहा जाता है। शीलगुण की दो विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं- वैयक्तिकता तथा संगतता। वैयक्तिकता से तात्पर्य यह होता है कि किसी शीलगुण की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में एक समान न होकर किसी में कम तथा किसी में अधिक होती है। संगतता से तात्पर्य यह होता है कि शीलगुण के कारण ही व्यक्ति समान परिस्थिति में समान ढंग से व्यवहार करता है।

व्यक्तियों में शीलगुण का विकास अंशतः अधिगम तथा अंशतः आनुवंशिक कारकों पर निर्भर करता है। शीलगुणों में परिवर्तन घर तथा स्कूल में दिये गए बाल्यावस्था के प्रशिक्षण द्वारा तथा उस मॉडल व्यक्ति द्वारा होता है जिसका व्यक्ति अपनी जिंदगी में अनुकरण करता है। जैसे- जिस बच्चा का बाल्यावस्था में सख्त सत्तावादी प्रशिक्षण प्राप्त होता है, प्रायः आगे चलकर उसमें एक अनम्य समायोजी पैटर्न विकसित हो जाता है। अन्य बातों के अलावा वयस्कावस्था में ऐसे लोग अतिनियंत्रित, अंतर्मुखी, रूढ़िवादी, परम्परागत, अवरोधी आदि व्यवहार दिखाने वाले हो जाते हैं। इन सबों से मिलकर जिस व्यक्तित्व संलक्षण का विकास होता है, उसे सत्तवादी व्यक्तित्व संलक्षण कहा जाता है।

स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास एक ऐसा संम्प्रत्यय है जिसमें न केवल आत्म संप्रत्यय बल्कि शीलगुणों का विकास भी सम्मिलित होता है तथा इसमें आनुवंशिकता एवं पर्यावरण दोनों का संयुक्त योगदान होता है।

2.4.1 व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विधियाँ-

जिस प्रकार व्यक्तित्व विकास का संम्प्रत्यय जटिल होता है, उसी प्रकार व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करना भी सरल काम नहीं है, फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने इसके अध्ययन हेतु निम्नलिखित महत्वपूर्ण विधियों को प्रकाश में लाया है-

(क) प्रयोगात्मक विधि

(ख) सहसंबंधात्मक विधि

(ग) केस-अध्ययन विधि

(घ) अनुदैर्ध्य विधि

(ड.) अनुप्रस्थकाट विधि

आइए, अब हम लोग इन विधियों पर चर्चा करें।

(क) प्रयोगात्मक विधि-

व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की यह विधि काफी लोकप्रिय है जिसमें प्रयोगात्मक प्राक्कल्पना की जाँच एक नियंत्रित परिस्थिति में की जाती है। इसमें कुछ चर ऐसे होते हैं जिनमें प्रयोगकर्ता जोड़-तोड़ करता है। इसे स्वतंत्र चर कहा जाता है तथा कुछ चर ऐसे होते है जिसपर उस जोड़-तोड़ का प्रभाव पड़ते देखा जाता है। ऐसे चर को आश्रित चर कहा जाता है। इस विधि में सामान्यतः प्रयोज्यों को दो या दो से अधिक समूहों में बाँट दिया जाता है और प्रत्येक समूह को स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तर से अनावृत किया जाता है। सामान्यतः यादृच्छिक आवंटन की प्रक्रिया अपनाकर विभिन्न समूहों को स्वतंत्र चर में जोड़-तोड़ करने के पहले तुल्य किया जाता है। इस यादृच्छिक आवंटन के बाद स्वतंत्र चर में किये गए जोड़-तोड के कारण आश्रित चर में अंतर होते देखा जाता है तो प्रयोगकर्ता सामान्यतः इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऐसा अंतर स्वतंत्र चर में किये गये जोड़-तोड़ के कारण हुआ है तथा आश्रित चर में होने वाले परिवर्तन का कारण स्वतंत्र चर ही है।

(ख) सहसंबंधात्मक विधि-

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस विधि में दो व्यक्तित्व विकास चरों के बीच सहसंबंध ज्ञात करके उनके बारे में पूर्वानुमान लगाया जाता है। इस विधि में चरों में कोई जोड़-तोड़ नहीं किया जाता है बल्कि व्यक्तियों का प्रेक्षण स्वाभाविक परिस्थिति में किया जाता है। इस अध्ययन में मुख्य प्रश्न जिसका उत्तर शोधकर्ता जानना चाहता है, वह है- ''क्या चर '(क)' तथा '(ख)' साथ-साथ परिवर्तित होते हैं? क्या '(क)' चर में होने वाले परिवर्तन की दिशा '(ख)' चर में परिवर्तन की दिशा के अनुकूल है या प्रतिकूल है? इसके लिए दोनों चरों के बीच सहसंबंध गुणांक ज्ञात किया जाता है जिसकी अनेक विधियाँ हैं जिनमें 'पियर्सन विधि'' सबसे प्रमुख विधि है। सहसंबंध गुणांक पूर्ण धनात्मक ($1.00) से पूर्ण ऋणात्मक (-1.00) तक होता है। शून्य सहसंबंध इस बात का द्योतक होता है कि दोनों चरों के बीच कोई सहसंबंध नहीं है। धनात्मक सहसंबंध से दोनों चरों में समान परिवर्तन होने का संकेत मिलता है तथा ऋणात्मक सहसंबंध से दोनों चरों में विपरीत परिवर्तन का संकेत मिलता है।

सहसंबंधात्मक विधि से व्यक्तित्व विकास के क्षेत्र में अनेक अध्ययन किये गए हैं जिनमें शेल्डन द्वारा किया गया अध्ययन सबसे अधिक लोकप्रिय है। उस अध्ययन में उन्होंने शारीरिक प्रकार तथा चित्तप्रकृति के बीच सहसंबंध ज्ञात करके कुछ पूर्वकथन किया है जो आज भी व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों के लिए एक अनुपम धरोहर साबित हुआ है।

(ग) केस अध्ययन विधि-

इस विधि में व्यक्तित्व मनोविज्ञानी किसी व्यक्ति के व्यवहारों एवं उनके जीवन की घटनाओं का क्रमबद्ध रिकार्ड कुछ समय तक करते हैं, फिर उसका विश्लेषण करके कुछ निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। अतः यह विधि एक तरह

से अनुदैर्ध्य उपागम पर आधृत है। इस विधि का उपयोग व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में सबसे अधिक जीन पियाजे द्वारा किया गया। इन्होंने अपने तीनों बेटियों में होने वाले संज्ञानात्मक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन किया।
अभी हाल में केस अध्ययन विधि तथा प्रयोगात्मक विधि दोनों को संयोजित कर व्यक्तित्व पैटर्न के विकास के अध्ययन का प्रयास किया गया है। इस तरह के डिजाइन को मनोविज्ञान में एकल प्रयोज्य प्रयोगात्मक डिजाइन कहा जाता है जिसे ए बी ए बी क्रम से संकेतिक किया जाता है। डिजाइन के इस क्रमानुसार, एक खास अवधि तक प्रयोज्य के व्यवहार का मापन किया जाता है (क)', फिर प्रयोज को स्वतंत्र चर के जोड़-तोड़ से अनावृत किया जाता है '(ख)' फिर प्रयोगकर्ता पुनः पहली अवस्था पर वापस हो जाता है '(क)' और अन्त में पुनः प्रयोज्य को जोड़-तोड़ से अनावृत करता है। टाटे तथा वेरोफ्फ (1966) ने इस ए बी ए बी डिजाइन का उपयोग करके व्यक्ति के आत्मघाती व्यवहार के विकास पर मानव सम्पर्क में कमी के होने वाले प्रभावों का वैज्ञानिक अध्ययन किया है। सिगमंड फायड ने इस विधि का उपयोग सांवेगिक रूप से क्षुब्ध व्यक्तियों के व्यक्तित्व के अध्ययन में तथा मैसलों तथा रोजर्स ने इस विधि का अध्ययन सामान्य व्यक्तियों में व्यक्तित्व पैटर्न के अध्ययन में क्रमबद्ध रूप से किया है। इस विधि के उपयोग में सबसे बड़ी कठिनाई जो आती है, वह यह है कि इससे प्राप्त परिणाम का सामान्यीकरण व्यक्तियों के बड़े समूह के लिये संभव नहीं है, क्योंकि इसमें मात्र एक या दो व्यक्तियों का ही अध्ययन किया जाता है।

(घ) अनुदैर्ध्य विधि-

व्यक्तित्व पैटर्न के विकास के अध्ययन करने की यह सबसे उत्तम विधि है। इस विधि में एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का विभिन्न समय अंतरालों पर क्रमबद्ध रूप से प्रेक्षण किया जाता है तथा उनका रिकार्ड तैयार करके विश्लेषण किया जाता है। इस तरह से इस विधि में व्यक्तियों की जिन्दगी के विभिन्न अंतरालों में हुए विकास की आपस में तुलना की जा सकती है। व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में इस विधि को इतना महत्व दिया गया है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा इन प्रश्नों का उत्तर जानने की उसे एक मात्र विधि माना गया है- व्यक्ति के आरंभिक बाल्यावस्था में देखे गये विशेषताओं जैसे- आक्रमकता, निर्भरता तथा अविश्वास, वयस्कावस्था आने पर भी क्या बना रहता है? क्या बाल्यावस्था का आरंभिक सद्मा या मानसिक साधन से बाद का सामाजिक एवं बौद्धिक विकास प्रभावित होता है? आदि।

(ड.) अनुप्रस्थ-काट विधि-

व्यक्तित्व पैटर्न के विकास के अध्ययन में अनुप्रस्थ काट विधि भी काफी महत्वपूर्ण है। इस विधि में अध्ययनकर्ता विभिन्न उम्र के व्यक्तियों के विभिन्न समूहों की एक साथ तुलना करता है और एक निष्कर्ष पर पहुँचता है। अतः यह अनुदैर्ध्य विधि से भिन्न तथा विपरीत है जहाँ एक समूह के व्यक्तियों को विभिन्न समय अंतरालों पर अध्ययन करके शोधकर्ता एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाता है। अनुप्रस्थ काट विधि व्यक्तित्व विकास के अध्ययन का एक स्नैपशॉट उपागम है।
व्यक्तित्व विकास के अध्ययन में इस विधि का उपयोग टेम्पलिन (1957) द्वारा किया गया। इन्होंने अपने अध्ययन में विभिन्न उम्र समूहों के 60 बच्चों का चयन किया। इस अध्ययन में उन्होंने बच्चों में भाषा विकास के विभिन्न पहलुओं जैसे शब्दकोष, आवाज, विभेद, व्याकरण तथा भाषण-आवाज चिंतन आदि का तुलनात्मक अध्ययन करके कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष दिये।

इस विधि द्वारा व्यक्तित्व विकास का अध्ययन करने में समय की काफी बचत होती है और अध्ययनकर्ता को अंतिम आँकड़े प्राप्त करने के लिये बहुत लम्बे समय का इंतजार नहीं करना पड़ता है। इसके बावजूद इस विधि की परिसीमा यह है कि इसमें प्रयोज्यों के चयन की काफी वस्तुनिष्ठ एवं सख्त विधि की आवश्यकता पड़ती है ताकि उम्र समूहों का उचित प्रतिनिधित्व मिल सके।

2.4.2 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया-

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं में संपन्न होती है। इस अवस्था की अपनी कुछ खास तो कुछ सामान्य विशेषता होती है। आइये, पहले ऐसे विकास की कुछ सामान्य विशेषताओं पर नजर डालें।

1. व्यक्तित्व विकास में आरंभिक नींव महत्वपूर्ण होते हैं-

इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व विकास की आरंभिक अवस्थाओं में जो मनोवृत्ति, आदत तथा व्यवहार का पैटर्न स्थापित होता है, वह बहुत हद तक बाद के व्यक्तित्व विकास में होने वाले परिवर्तनों को निर्धारित करता है।

2. व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता तथा अधिगम दोनों की भूमिका प्रधान होती है-

व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता मौलिक संसाधनों को प्रदान करता है जिसके अनुसार व्यक्ति सीखकर व्यवहार के सामान्य क्रम एवं पैटर्न को दिखाता है।

3. विकास का एक निश्चित एवं पूर्वानुमेय पैटर्न होता है-

जब तक पर्यावरण या अन्य समान कारकों का हस्तक्षेप नहीं होता है व्यक्ति के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाला विकास एक निश्चत पैटर्न के अनुसार चलता रहता है जो पूर्वानुमेय होता है। अब तक कोई ऐसा सबूत प्राप्त नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाय कि व्यक्तित्व का अपना विकास विशेष पैटर्न होता है। हाँ, यह अवश्य होता है कि व्यक्तित्व विकास का दर अलग-अलग होता है।

4. सभी व्यक्ति एक-दूसरे से भिन्न होते हैं-

व्यक्तित्व का विकास इस ढंग से होता है कि सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं। यह विशेषता अभिन्न जुड़वों में भी पायी जाती है।

5. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषता होती है-

व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ खास ढंग का विशेष व्यवहार करता है। प्रत्येक अवस्था में कुछ अवधि संतुलन की होती है तो कुछ अवधि असंतुलन की होती है। संतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण की माँगों के साथ आसानी से समायोजन कर लेता है तथा उत्तम समायोजन करता है। असंतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण के माँगों के साथ ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है जिससे सामाजिक समायोजन में कठिनाइयाँ होती है।

6. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में कुछ जोखिम होते हैं-

विकास का प्रत्येक अवस्था में कुछ भौतिक, मनोवैज्ञानिक या पर्यावरणी जोखिम कारक होते हैं जिनसे व्यक्तित्व विकास थोड़ा अवरुद्ध होते हैं।

7. व्यक्तित्व विकास पर सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़ता है-

प्रत्येक व्यक्ति एक परिवार में जन्म लेता है और उस परिवार के सांस्कृतिक मानकों एवं मूल्यों से बँधा होता है। अतः वह स्वाभाविक है कि व्यक्तित्व विकास पर उन सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़े।

8. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की कुछ अपनी सामाजिक प्रतयाशाएँ होती हैं-

विकास की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ कौशलों को सीखता है तथा व्यवहार के विभिन्न अनुमोदित पैटर्न को सीखता है। इसे हैविंगहर्स्ट (1953) ने विकासात्मक कार्य कहा है।

स्पष्ट हुआ कि व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं की अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं। आइए, अब व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया पर चर्चा करें।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया निम्नांकित अवस्थाओं में संपन्न होती है-

1. पूर्वप्रसूत अवस्था में व्यक्तित्व विकास
2. शैश्वावस्था में व्यक्तित्व विकास
3. बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास
4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास
5. पूर्वकिशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास
6. किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास
7. प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास
8. मध्यावस्था में व्यक्त्तिव विकास
9. वृद्धावस्था में व्यक्तित्व विकास

इन सबों का वर्णन इस प्रकार हैं-

1. पूर्वप्रसूति अवस्था में व्यक्त्तिव विकास-

पूर्व प्रसूति काल गर्भधारण से लेकर जन्म तक की अवधि है जो सामान्यतः 280 दिनों तक विस्तरित रहता है। यह अवस्था तीन भागों में बँटी होती है- जायगोट की अवस्था (गर्भधारण से 14 दिनों की अवधि), भ्रूण की अवस्था (दूसरा सप्ताह से आठवें सप्ताह तक की अवधि) तथा फेटस की अवस्था (9वें सप्ताह से जन्म तक की अवधि)। अध्ययनों से पता चलता है कि इस अवधि में हुई घटनाओं का माँ के गर्भ में पल रहे बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बोवेस एवं उनके सहयोगियों (1970) ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि यदि गर्भवती माता किसी कारण से कुनैन का उपयोग करती है, तो उनके बच्चे में बहरापन रोग हो जाता है। उसी तरह एसपिरीन तथा एण्टीबायटिक्स का उपयोग करने से बच्चे में हृदय रोग की संभावना बढ़ जाती है। उसी तरह गर्भावस्था में जब माताएँ कुपोषण का शिकार हो जाती है, तो उनके बच्चों में मानसिक मंदता उत्पन्न होने की संभावना अधिक हो जाती है। इतना ही नहीं, ऐसे बच्चों का शारीरिक विकास भी काफी मंदित हो जाता है तथा कई तरह के स्नायविक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिनसे उनका व्यक्त्तिव विकास मंदित हो जाता है।

2. शैशवावस्था में व्यक्त्तिव विकास-

शैशवावस्था जन्म से लेकर दो सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है तथा यह अवस्था सभी अवस्थाओं से छोटी होती है। इसे दो भागों में बाँटा गया है- प्रसव अवधि, जो जन्म से लगभग 30 मिनट तक का होता है तथा न्योनेट की अवधि, जो नाभि (नाड़ी) को काटकर बाँधने से दूसरे सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है। शैशवावस्था की क्रियाओं एवं घटनाओं से न केवल भविष्य में विकसित होने वाले व्यक्तित्व के पैटर्न का पता चलता है बल्कि इनका ऐसे व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव भी पड़ता है। इस अवधि में बच्चों में तरह-तरह की भिन्नता पायी जाती है। कुछ बच्चे अधिक रूदन करते हैं तो कोई कम। कुछ बच्चों द्वारा पेशीय क्रियाएँ अधिक होती हैं तो कुछ बच्चों द्वारा ऐसी क्रियाएँ कम एवं अनियंत्रित होती हैं। कुछ बच्चों में अमुक तरह के प्रतिवर्त क्रियाएँ अधिक होते हैं। कुछ बच्चे बहुत सोते हैं तो इस अवधि में कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो तुलनात्मक रूप से कम सोते हैं। इन सभी तरह की क्रियाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ते देखा गया है। हरलॉक (1979) के अनुसार जो बच्चे इस अवधि में अधिक पेशीय क्रियाएँ जैसे-हाथ पैर फेंकना आदि करते हैं, उनमें आगे चलकर समायोजन संबंधी कठिनाइयाँ कम होती हैं, क्योंकि उनका व्यक्तित्व विकास सामान्य होता है।

3. बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास-

बचपनावस्था की शुरूआत जन्म के दो सप्ताह बाद से प्रारंभ होकर अगले दो साल तक बनी होती है। बचपनावस्था को व्यक्तित्व विकास का विवेचित या क्रान्तिक अवस्था कहा जाता है। इसे विवेचित अवस्था इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसी अवधि में उन सारी चीजों की नींव पड़ती है जिस पर वयस्क व्यक्तित्व संरचना का आगे चलकर निर्माण होता है। निम्नांकित पाँच ऐसे सबूत प्राप्त हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वयस्क व्यक्तित्व संरचना की नींव इस अवधि में पड़ती है-

क. कोट्स एवं उनके सहयोगियों (1972) तथा रटर (1972) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि इस अवधि में बच्चों में सांवेगिक वंचन होने पर (जैसा कि घर में माँ द्वारा बच्चे के साथ अंतक्रिया करने के लिए समयाभाव के होने से या बच्चा को किसी संस्थान में रख देने से प्रायः होता है) आगे उनके व्यक्तित्व विकास में बहुत सारी कमियाँ उत्पन्न होते पायी गयी है। प्रायः ऐसे वयस्क सांवेगिक रूप से अस्थिर प्रकृति के होते देखे गए हैं।

ख. चूँकि इस अवधि में बच्चे की अन्तःक्रिया माँ के साथ सबसे ज्यादा होती हैं, अतः माँ के अपने व्यक्तित्व तथा बच्चे के साथ उसके संबंध का प्रत्यक्ष प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। यदि यह संबंध अनुकूल तथा स्नेहमयी होता है, तो बच्चों में धनात्मक आत्म-संप्रत्यय का विकास होता है।

ग. इस अवधि में जब कोई अप्रत्याशित तथा प्रतिकूल घटना घटती है, तो उस समय बच्चों में विकसित हो रहे शीलगुण पर बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे- स्टोन एवं चर्च (1973) ने अपने अध्ययन में पाया कि इस अवधि में जब बच्चों में स्वतंत्रता का शीलगुण का निर्माण हो रहा होता है और यदि उस समय माता-पिता से उसे अतिसंरक्षण मिलता है, तो यह बच्चे के लिए हानिकारक सिद्ध होता है और उस शीलगुण का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

घ. जराई एवं स्कीनफिल्ड (1968) के अध्ययन के अनुसार इसी अवस्था में बच्चों में यौन अंतर की नींव भी पड़ जाती है जो बाद में पुरूष बच्चा को एक ढंग से तथा स्त्री बच्चा को दूसरे ढंग से व्यवहार करने एवं सोचने के लिए बाध्य करता है।

ड. इस अवस्था में व्यक्तित्व पैटर्न का सार अर्थात् आत्म-संप्रत्यय का जो जन्म होता है, वह बाद में करीब-करीब वैसा ही रह जाता है। विशेष पर्यावरणी परिस्थिति के होने पर उसमें हल्का-सा परिवर्तन होता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, व्यक्तित्व का यह सार कम-से-कम लचीला होता चला जाता है। वैसी परिस्थिति में व्यक्तित्व शीलगुणों में किसी तरह के परिवर्तन से व्यक्तित्व संतुलन बिगड़ जाता है।

बचपनावस्था के कुछ व्यक्तित्व शीलगुणों में परिवर्तन होता है। इस परिवर्तन का स्वरूप मात्रात्मक या गुणात्मक कुछ भी हो सकता है। मात्रात्मक परिवर्तन होने पर पहले से उपस्थित शीलगुण या तो और मजबूत हो जाते हैं या कमजोर हो जाते हैं। गुणात्मक परिवर्तन होने पर एक शीलगुण दूसरे शीलगुण द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है।

4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास-

बाल्यावस्था 2 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक की होती है। इसमें 2 वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक को आरंभिक बाल्यावस्था तथा 6 से 12 वर्ष की आयु तक को उत्तर बाल्यावस्था कहा जाता है। बाल्यावस्था को प्राक्स्कूल अवस्था या प्राक् टोली अवस्था तथा उत्तर बाल्यावस्था को टोली अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में बच्चों का शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है। इस अवस्था में शरीर की मांशपेशियाँ अधिक गठीली और मजबूत हो जाती है जिससे बचपन वाली आकृति धीरे-धीरे खत्म होने लगती है। यह अवस्था समाप्त होते-होते बालकों में 32 स्थायी दाँतों में से 28 स्थायी दाँत निकल आते हैं और बाकी चार स्थायी दाँत किशोरावस्था में निकलते हैं। इस अवस्था में बालकों में शब्दावली निर्माण में वृद्धि, उच्चारण में स्पष्टता तथा जटिल वाक्यों का प्रयोग आदि अधिक पाया जाता है। इनके संभाषण अब अधिक नियंत्रित एवं तथ्य पूर्ण दिखाई पड़ने लगते हैं। इनका सांवेगिक पैटर्न भी अब पहले की तुलना में अधिक परिपक्व हो जाता है। बाल्यावस्था समाप्त होते-होते, सांवेगिक अभिव्यक्ति का ढंग अधिक परिपक्व हो जाता है। वे सामाजिक रूप से बहिष्कृत संवेगों की अभिव्यक्ति नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा करने से उसे उन्हें दूसरों का सामाजिक अनुमोदन प्राप्त नहीं हो सकेगा। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह संयुक्त रूप से स्पष्ट हुआ है कि बाल्यावस्था समाप्त होते ही बच्चों के व्यक्तित्व में कुछ खास प्रकार के सामाजिक व्यवहार विकसित होते हैं जिनमें प्रमुख हैं- सामाजिक अनुमोदन की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रतियोगिता करना, उत्तरदायित्व लेना, सामाजिक सूझ, सामाजिक विभेद, पूर्वाग्रह तथा यौन प्रतिरोध आदि दिखाना। इस अवस्था तक व्यक्ति में 90 प्रतिशत मानसिक विकास पूरा हो जाता है तथा वह तरह-तरह के परिपक्व संज्ञानात्मक व्यवहार करने लगता है।

5. पूर्व किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था सामान्यतः 11-12 वर्ष से 13-14 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में व्यक्तित्व विकास संबंधी परिवर्तन काफी स्पष्ट होते हैं और लड़कों की तुलना लड़कियों का व्यक्तित्व विकास अधिक प्रभावित होता है क्योंकि यह वह अवस्था होती है जहाँ लड़कियों पर सामाजिक प्रतिबंध लगना प्रारंभ हो जाते हैं। मोरे (1989) द्वारा किये गये अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि इस अवस्था में व्यक्ति में चिंता, चिड़चिड़ापन तथा उदासी आदि अधिक बढ़ जाता है। इस अवधि में असहयोगिता, किसी बात को प्रायः नहीं मानना, विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ झगड़ना आदि मुख्य रूप से पाये जाते हैं। लड़कों तथा लड़कियों दोनों में इस अवस्था में प्रायः सरदर्द, पीठ दर्द, तथा पूरे शरीर में सामान्य दर्द की शिकायत भी होती है जो स्पष्टतः उनके ग्रन्थीय विकास के कारण होते हैं।

6. किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था 14-15 साल की आयु से लगभग 19-20 साल की आयु तक होती है। व्यक्तित्व विकास की यह अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इसमें बहुत तरह के दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं, जिसका असर व्यक्तित्व विकास पर सीधा पड़ता है इसे 'तनाव एवं तूफान की अवस्था' भी कहा गया है क्योंकि इसमें बहुत तरह की समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनसे व्यक्तित्व पैटर्न का विकास प्रभावित होता है। लड़के एवं लड़कियों दोनों के शारीरिक ऊँचाई, भार, शरीर के अंगों का अनुपात, यौन अंगों एवं गौण यौन विशेषताओं में पर्याप्त परिवर्तन आते हैं जिनका असर व्यक्तित्व विकास पर सीधा पड़ता है। गैसेल तथा मोरे (1965) ने अपने अध्ययन में पाया कि 16-17 साल के बालक-बालिकाओं दोनों में ही क्रोध के संवेग की तीव्रता अधिक होती है और फिर धीरे-धीरे इसकी तीव्रता कम हो जाती है। इनमें विषमलैंगिकता का शीलगुण भी विकसित होने लगता है क्योंकि लड़के एवं लड़कियाँ अपने विपरीत यौन के व्यक्तियों के साथ मिलने-जुलने में काफी आनन्द उठाते हैं। पियाजे (1965)के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति का संज्ञानात्मक विकास एक नया रूख अपनाता है और इनके द्वारा क्रमबद्ध निगमनात्मक चिंतन का उपयोग किसी समस्या के समाधान में अधिक होने लगता है। इस अवस्था में लड़के एवं लड़कियों में आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है। इस अवस्था में जो व्यक्ति लक्ष्य निर्धारण करने में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाते हैं तथा जो अपनी क्षमताओं एवं कमजोरियों का सही मूल्'यांकन करते हैं, उनका व्यक्तित्व पैटर्न का विकास अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त एवं समुचित होता है।

7. प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास-

यह अवस्था 21 वर्ष से लगभग 40 वर्ष की होती है। इस अवस्था में सामान्यतः व्यक्ति शादी करके अपना घर-परिवार बसाता है और किसी नौकरी या व्यवसाय में लग जाता है तथा अपने आत्म विकास को मजबूत कर आगे बढ़ाता है। इन्हीं कारणों से इसे व्यवस्था या बसाने की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में व्यक्ति की अभिरूचियाँ थोड़ी सीमित हो जाती है। इनकी व्यक्तिगत अभिरूचियाँ, सामाजिक अभिरूचियाँ तथा मनोरंजन से संबद्ध अभिरूचियाँ किशोरावस्था के समान बहुत अधिक न होकर सीमित हो जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनमें कुछ नये-नये शीलगुणों का विकास होने लगता है। इस अवस्था में नयी-नयी जवाबदेहियाँ व्यक्ति के कंधे पर आ जाती है। व्यक्ति पर एक तरफ अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियाँ होती हैं तो दूसरी तरफ अपने व्यवसाय या नौकरी से संबद्ध जिम्मेवारियाँ। इससे व्यक्ति की जिंदगी थोड़ा तनावयुक्त हो जाती है। प्रायः वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वतंत्र रूप से करना चाहता है। इस अभ्यास से उसमें सर्जनात्मकता का गुण भी विकसित होता है। चाहे इस अवस्था में वयस्क विवाहित या अविवाहित हो, अगर उनका सामाजिक-आर्थिक स्तर अनुकूल होता है, तो उनकी सामाजिक क्रियाएँ अधिक बढ़ जाती है। परंतु यदि उनका सामाजिक आर्थिक स्तर प्रतिकूल होता है, तो ऐसी सामाजिक क्रियाएँ काफी कम एवं सीमित ही हो पाती हैं। इस उम्र में अविवाहित व्यक्ति विवाहित व्यक्ति की तुलना में सामान्यतः अधिक सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हैं। अतः इनमें सामाजिकता का शीलगुण तुलनात्मक रूप से अधिक तेजी से विकसित होता है।

8. मध्यावस्था में व्यक्तित्व विकास-

मध्यावस्था या मध्यवयस्कावस्था की अवधि 40 से 60 वर्ष की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति में कई कारणों से तनाव अधिक होता पाया गया है। मारमोर (1967) के अनुसार इस अवस्था में चार तरह के तनाव मुख्य रूप से होते हैं जिनका व्यक्तित्व पैटर्न के विकास पर सीधा असर पड़ता है।

क. दैहिक तनाव- उम्र के परिणामस्वरूप गिरते स्वास्थ्य के कारण इस तरह का तनाव उत्पन्न होता है।

ख. सांस्कृतिक तनाव- इस तरह के तनाव का मुख्य कारण सामाजिक परिवेश में यौवन-शक्ति को उनके तुलना में अधिक महत्व दिया गया होता है।

ग. आर्थिक तनाव- इसका कारण सेवामुक्त होने पर आय में कमी तथा इस सीमित आय से परिवार के सदस्यों को शिक्षित करके स्तर संकेत प्रदान करने के प्रयास से होता है।

घ. मनोवैज्ञानिक तनाव- इस तरह के तनाव के कई कारण होते हैं जिनमें पति या पत्नी का देहांत, घर से बच्चों का व्यवसाय या नौकरी पर चला जाना, वैवाहिक जीवन का ऊब, मृत्यु के करीब होने का अनुमान आदि प्रमुख है।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि इस अवस्था में दैहिक क्षमता में गिरावट आने के साथ-ही-साथ मानसिक क्षमता में भी गिरावट आती है। परंतु प्रयोगात्मक सबूत इसके विपरीत हैं। टरमेन एवं ओडेन (1959)ने पुरूषों तथा महिलाओं के समूह पर एक अनुदैर्ध्य अध्ययन किया और पाया कि उच्च बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों में इस मध्यावस्था में भी बौद्धिक तथा मानसिक ह्रास के कोई सबूत नहीं मिलते हैं। केसलर (1976) ने भी अपने अध्ययन में इस तथ्य की संपुष्टि करते हुए कहा है कि ऐसे व्यक्तियों में तो इस अवस्था में समस्या-समाधान तथा शाब्दिक क्षमताएँ और विकसित हो जाती हैं। मध्यावस्था में कुछ व्यक्तियों में सामाजिक समायोजन पहले से परिपक्व हो जाता है क्योंकि उनके पास अब सामाजिक क्रियाओं के लिये पर्याप्त समय मिलता है।

9. वृद्धावस्था में व्यक्ति विकास-

जीवन अवधि की अंतिम अवस्था वृद्धावस्था होती है जो सामान्यतः 60 वर्ष से प्रारंभ होकर मृत्यु तक विस्तरित होती है। 60 से 70 साल की अवधि को आरंभिक वृद्धावस्था तथा 70 से मृत्यु तक की अवधि को प्रगत वृद्धावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में कुछ विशेष दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं जिनसे वृद्धों के समायोजन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उनके खुशियों को कुप्रभावित करता है। हरलाँक (1989) के अध्ययनानुसार इस अवस्था में व्यक्ति के सामान्य रूप रंग एवं डील-डौल में स्पष्ट परिवर्तन आते हैं। इतना ही नहीं, उनमें आंतरिक परिवर्तन भी होते हैं जिनसे उनकी संवेदी एवं पेशीय क्षमताएँ काफी प्रभावित हो जाती हैं और व्यक्तित्व की सामान्य समयोजन क्षमता कम हो जाती है। इन परिवर्तनों का कारण दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही होते हैं। दैहिक कारणों में शक्ति की कमी, जोड़-संधियों में कड़ापन, हाथ, सिर एवं निम्न जबड़े में कमी मुख्य है। मनोवैज्ञानिक कारणों में उस हीनता का भाव है जो उनमें तब पनपता है जब वह अपनी तुलना अन्य कम उम्र के व्यक्तियों के कौशल, शक्ति एवं क्षमताओं से करता है। ऐसे भाव से उनमें सांवेगिक तनाव उत्पन्न होता है जो उनके व्यक्तित्व के सांवेगिक विकास और फिर सामाजिक विकास को कुप्रभावित करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकास जीवन अवधि के विभिन्न अवस्थाओं में चलने वाली एक निरंतर प्रक्रिया है जिसका इन सभी अवस्थाओं में व्यक्तित्व पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है।

2.5 व्यक्तित्व के निर्धारक/प्रभावक-

जैसा कि हमने देखा- व्यक्तित्व के विकास में निरन्तरता पाई जाती है जिसका प्रारंभ गर्भाधान के समय से ही हो जाता है और मृत्यु पर्यन्त विकास की यह प्रक्रिया चलती रहती है। यह कभी रूकती नहीं। हाँ, जीवन के प्रारंभिक वर्षों में विकास की गति कुछ तेज जरूर होती है। इन बातों की पुष्टि व्यक्तित्व-विकास की प्रत्येक अवस्था का क्रमशः अध्ययन से प्राप्त आलेखों या विवरणों से होती है। परंतु, यदि व्यक्ति के विकासक्रम का ऐतिहासिक आलेख उपलब्ध न हो और हम विकास के किसी एक या दो अवस्थाओं का ही अध्ययन करें, तो निरंतरता का यह क्रम

टूटता हुआ भी दृष्टिगोचर हो सकता है; क्योंकि व्यक्तित्व के कुछ शीलगुणों को तेजी से उत्पन्न होते हुए भी देखा जा सकता है। जैसे- एक सामान्य व्यक्ति अपने विकास की किसी खास अवस्था में कुछ असामान्य लक्षणों को प्रदर्शित करता है। यहाँ शीलगुण के विकासक्रम की निरंतरता टूट जाती है और एक नया मोड़ ले लेती है। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास में उछालद्व टूट या क्रम की रूकावट आदि के लक्षण भी देखे जाते हैं।

कुल मिलाकर व्यक्तित्व का विशिष्ट संगठन और पुनः संगठन निरंतर विकासात्मक तंत्र का ही प्रतिफल है तथा व्यक्तित्व के विकास के क्रम में अनेक जैविक एवं वातावरण से संबद्ध तत्वों का प्रभाव पड़ता है। तात्पर्य यह है कि अन्य सभी घटनाओं की ही तरह व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया भी कारण एवं फल के नियम द्वारा शासित होती है तथा इसमें 'अपूर्वता या विशिष्टता' आती है। इन दोनों प्रकार के विभिन्न कारक तत्वों को व्यक्तित्व का निर्धारक या प्रभावक भी कहते हैं।

2.5.1 व्यक्तित्व के जैविक निर्धारक-

व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों से तात्पर्य उन कारकों से है जो आनुवंशिक होते है। इनका निर्धारण वातावरण से नहीं, बल्कि माँ-बाप एवं पुरखों से प्राप्त वंशानुक्रम से होता है। व्यक्तित्व के विकास या गठन पर वंशानुक्रम का व्यापक प्रभाव पड़ता है। हालाँकि, व्यक्तित्व प्रत्यक्षतः वंशगत नहीं होता। पर, किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास किस ढंग का होगा, यह वंशानुक्रम द्वारा पूर्व-उद्यत होता है और व्यक्तित्व का विकास पूर्व-उद्यत रूप में होता है या नहीं और यदि होता है तो किस हद तक पूर्व-उद्यत अथवा वंशानुक्रम द्वारा पूर्वनिर्धारित ढंग के अनुरूप होता है- यह वातावरण के कुछ तत्वों पर निर्भर करता है।

व्यक्तित्व विकास में वंशानुक्रम के पूर्व-उद्यत प्रभाव को हम छोटे-छोटे शिशुओं के व्यवहारों का निरीक्षण कर समझ सकते हैं। छोटे शिशुओं में अर्जित आदतों या शिक्षण का प्रभाव नहीं रहता। फिर भी, शिशुओं की विशेषताओं में महत्वपूर्ण भिन्नता पाई जाती है। उदाहरणार्थ-एक शिशु अत्यंत सक्रिय रहता है तो दूसरा आलसी, एक जोर-जोर से रोता और चिल्लाता है तो दूसरा शांत रहता है। कभी-कभी हमें शिशुरोग विशेषज्ञों की सलाह भी लेने की आवश्यकता पड़ जाती है। शिशुओं की प्रवृत्तियों में ये विभिन्नताएँ जन्मजात यानी वंशगत होती हैं, जिनके अनुरूप ही उनके व्यक्तित्व का विकास होता है।

मनुष्यों के व्यक्तित्व पर वंशानुक्रम के प्रभावों का अध्ययन करने हेतु विद्वानों ने परिवार जीवनियों का सहारा लिया है। उनका विश्वास था कि कोई लक्षण यदि परिवार की पीढ़ी-दर-पीढ़ी में व्याप्त हो, तो उस लक्षण को वंशानुक्रम से प्राप्त माना जा सकता है। इस विश्वास की पुष्टि के लिए अनेक अध्ययन हुए हैं। गाल्टन ने 1869 ई0 में प्रकाशित अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ''हेरिडिटरी जीनियस'' एवं 1873 ई0 में प्रकाशित ''इंग्लिश मेन ऑफ साइंस'' में अपने इस विश्वास पर जोर देते हुए बताया है कि 'प्रतिष्ठा' और 'श्रेष्ठता' कुछ ही परिवारों में सीमित रहती है। गोडार्ड ने ज्यूक परिवारों का अध्ययन कई पीढ़ियों तक किया और पाया कि जिन परिवारों की माताएँ मंदबुद्धि की थीं, उनके बच्चे भी बुद्धिहीन थे। इसी प्रकार की बात रोगी और अपराधी प्रवृत्ति वाले व्यक्तित्यों के साथ भी पाई गई। गोडार्ड ने कालिकाक परिवार का अध्ययन कर भी वंशानुक्रम के महत्व को प्रमाणित किया है। कालिकाक मार्टिन नाम के एक सैनिक के परिवार को काल्पनिक नाम दिया है जिसने अमेरिका की क्रांति के जमाने में एक मानसिक रूप से दुर्बल लड़की और फिर बाद में मानसिक रूप से स्वस्थ महिला के साथ शादी कर ली थी। इन दोनों महिलाओं से उत्पन्न संतानों से परिवार का एक सिलसिला चला। देखा गया कि मानसिक रूप से दुर्बल महिला की संतानों से

बने परिवारों के प्रायः सभी बच्चे भी मानसिक दुर्बलता से ग्रस्त थे और मानसिक रूप से स्वस्थ महिला की संतानों से बने परिवारों के प्रायः सभी बच्चे भी स्वस्थ एवं औसत या उससे अधिक बुद्धि के थे।

किंतु, यहाँ स्मरणीय होना चाहिए, कि परिवार जीवनियों पर आधारित ये साक्ष्य बहुत अधिक विश्वसनीय नहीं है; क्योंकि इन अध्ययनों में वंशानुक्रम से प्राप्त गुणों की जानकारी पर्याप्त नहीं थी और साथ ही वातावरण पर नियंत्रण का भी अभाव था।

व्यक्तित्व पर वंशानुक्रम के प्रभाव संबंध में सबसे अच्छे प्रमाण जुड़वे बच्चों एवं पशुओं पर किए गए अध्ययनों से प्राप्त हुए हैं।

जुड़वें बच्चे दो प्रकार के होते हैं-अभिन्न यमज एवं भिन्न यमज। जब पुरूष के शुक्रकीट से स्त्री का एक रजकीट निषेचित होता है और विकास के क्रम में निषेचित अंडाणु के दो भागों में विभक्त होने से दो स्वतंत्र बच्चे विकसित होने लगते हैं, जिनकी वंशगत विशेषताएँ एक समान यानी अभिन्न होती हैं, तब ऐसे बच्चों को 'एकांडाण्विक' या 'अभिन्न यमज' कहते हैं। इसके विपरीत, कभी-कभी स्त्री के दो अंडणु या रजकीट एक ही समय में पुरूषों के दो शुक्रकीटों द्वारा निषेचित हो जाते हैं, जिससे गर्भाशय में प्रारंभ से ही दो स्वतंत्र बच्चे विकसित होने लगते हैं। इन दोनों बच्चों की वंशगत विशेषताएँ एक-दूसरे से भिन्न होती हैं। ऐसे जुड़वों को 'द्विअंडाण्विक' या 'भिन्न यमज' कहते हैं। अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि अभिन्न यमजों की व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताएँ भिन्न यमजों के व्यक्तित्व की विशेषताओं की तुलना में बहुत अधिक समान होती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के निर्धारण में वंशानुक्रम का बहुत बड़ा हाथ रहता है।

गोटेस्मैन (1963) ने मिन्नेसोटा मल्टीफेजिक परसनॉलटी इन्वेण्टरी और कैटेल की उच्च विद्यालय व्यक्तित्व-प्रश्नावली का प्रयोग 34 जोड़े अभिन्न एवं भिन्न यमजों यानी जुड़वें बच्चों पर किया और पाया कि 'अभिन्न जुड़वों' में 'भिन्न जुड़वों' की अपेक्षा बहुत अधिक समानता थी। व्यक्तित्व के गुणों के विकास में वुशानुक्रम के महत्व को कालमैन (1953), डफ्फी (1957), मैलमो (1956), कैटेल (1956), आदि ने भी अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध किया है।

उपर्युक्त साक्ष्यों के बावजूद इस बात के भी स्पष्ट प्रमाण मिले हैं कि व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम का महत्व आंशिक है। वंशानुक्रम व्यक्तित्व-विकास की प्रक्रिया का पूर्व-उद्यत अथवा निर्धारक तत्व हैः अतः, स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के निर्धारण में वंशानुक्रम के अतिरिक्त अन्य जैविक एवं सामाजिक तत्वों का भी योगदान रहता है जिनकी चर्चा आगे की जा रही है।

क. शारीरिक बनावट या गठन एवं धातुस्वभाव-

प्रायः साधारण से साधारण व्यक्ति भी शारीरिक बनावट को देखकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को परखने की कोशिश करता है। शारीरिक बनावट के अंतर्गत व्यक्ति का रूप-रंग, उसकी लम्बाई, स्वास्थ्य, वजन, विभिन्न अंगों का संतुलित अनुपात आदि विशेषताएँ शामिल हैं। इन विशेषताओं के विशेष प्रकार के संयोग से ही किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व सुंदर और आकर्षक अथवा कुरूप और अनाकर्षक प्रतीत होता है। यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि शारीरिक बनावट-संबंधी भिन्नता के कारण उसके प्रति लोगों द्वारा की जाने वाली प्रतिक्रियाओं की विभिन्नता पर ही व्यक्तित्व का निर्धारण निर्भर करता है। शारीरिक बनावट स्वयं में कोई महत्व नहीं रखता। उदाहरणार्थ-यदि कोई नाटा और काले रंग का हो अथवा किसी की एक आँख खराब हो तो बनावट-संबंधी इन विशेषताओं का उसके व्यक्तित्व पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ेगा, यदि समाज के दूसरे लोग उसे बुरी दृष्टि से नहीं देखे। प्रायः ऐसे

लोगों को देखकर दूसरे लोग उन्हें अपाहिज या विकृत कहकर उनका अपमान करते हैं अथवा चिढ़ाते हैं। इससे उनमें हीनता की भावना विकसित होती है, जिससे उनका व्यक्तित्व कुत्सित या कुंठित होता है। इस संबंध में एडलर का विचार है कि हीनता के भाव का अनुभव होने पर व्यक्ति में इस कमी की पूर्ति के लिए क्षतिपूर्त्यात्मक व्यवहार उत्पन्न होता है जो भला या बुरा दोनों हो सकता है। समाजविरोधी व्यक्तित्व अथवा मनोविकारी व्यक्तित्व के विकास में हीन भाव का महत्व विशेष रूप से देखा गया है। किसी-किसी में हीन भाव समाजोपयोगी व्यवहारों को भी उत्पन्न करते हैं; जैसे-किसी शारीरिक रूप से अपाहिज का एक बड़ा वैज्ञानिक साहित्यकार या चित्रकार बनना। अतः, स्पष्ट है कि शारीरिक बनावट-संबंधी विकृति के कारण व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है।

शारीरिक बनावट-संबंधी विभिन्नता के कारण व्यक्तित्व की विभिन्नता प्रयोगों द्वारा भी प्रमाणित हुई है। एक प्रयोग पंगु एवं सामान्य लड़कियों पर किया गया। इन दोनों समूह की लड़कियों की संवेगात्मक स्थिरता की जाँच की गई और देखा गया कि पंगु लड़कियों में सामान्य लड़कियों की अपेक्षा संवेगात्मक स्थिरता कम थीं स्पष्ट है कि शारीरिक बनावट का व्यक्तित्व निर्माण अथवा विकास पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है।

शारीरिक बनावट और धातु-स्वभाव में घनिष्ठ संबंध है। इसी संबंध के आधार पर विद्वानों ने व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की है। इन आधारों पर क्रेश्मर एवं शेल्डन के व्यक्तित्व प्रकारों की चर्चा पहले भी की जा चुकी है। मोटे तौर पर हम यह निश्चित रूप से स्वीकार करते हैं कि व्यक्तित्व गठन में व्यक्ति के शरीर का आकार-प्रकार एक महत्वपूर्ण तत्व है। व्यक्तियों के शरीर रचना-संबंधी विभिन्नताएँ बहुधा व्यक्तित्व के शीलगुणों से संबंध रखती है। प्रायः, यह देखा जाता है कि गोल-मटोल आदमी विनोदी स्वभाव का, आरामपसंद और सामाजिक होता है। दुबले-पतले आदमी संयमी, तनाव की हालत में रहने वाले और अंतर्मुखी होते हैं। इस तरह के अंतरों को शेक्सपियर के नाटकों में भी प्रदर्शित किया गया है। व्यक्तित्व और शरीररचना तथा उससे संबद्ध धातु-स्वभाव के संबंधों के विषय में आजकल भी अनेक खोज किए जा रहे हैं।

ख. शरीर रसायन-

व्यक्तित्व के जैविक तत्वों में शरीर रसायन का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन लोग चार द्रवों के प्रभाव से चार अलग-अलग स्वभावों की चर्चा करते थे। उनके विचारानुसार आदतन आशावादी व्यक्तियों में अत्यधिक रक्त रहता है, चिड़चिड़े व्यक्ति में पित्त की, शांत व्यक्ति में कफ की और उदास रहने वाले व्यक्ति में प्लीहा की अधिकता रहती है। कभी-कभी एक पाँचवाँ स्वभाव धैर्यहीन या चेतनामय भी माना जाता था जिसका संबंध स्नायुद्रव की अधिकता से बताया जाता था।

उपर्युक्त दृष्टिकोण आजकल पुराना पड़ गया है, अतः बहुत उपयोगी प्रतीत नहीं होता। फिर भी, रासायनिक द्रव और व्यक्ति के व्यवहार के बीच संबंध होने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप कुछ शरीर रसायन-संबंधी तत्व महत्वपूर्ण पाए गए हैं, जो निम्नवत है-

1. रक्त संचरण-

व्यक्ति के रासायनिक तत्व रक्तसंचार पर निर्भर करते हैं। स्नायुमंडल की तरह रक्तसंचार का भी शरीर के संयोजन में महत्वपूर्ण स्थान है, हालाँकि दोनों के ढंग अलग-अलग हैं। रासायनिक द्रव्यों को शरीर के विभिन्न अंगों तक ले जाने में रक्तसंचार रेलगाड़ी की तरह कार्य करता है और संदेशों को ढोने में स्नायुमंडल टेलिफोन के तार की तरह। रासायनिक द्रव्यों का संवहन कुछ इस प्रकार होता है-शरीर का प्रत्येक अंग अपने उत्पादित द्रवों को रक्त में छोड़ देता है और वे रक्त के साथ हृदय के एक कोष्ठ में पहुँचते हैं, जहाँ से रक्त शुद्ध होकर शरीर के सभी अंगों में भ्रमण

करता है। उस समय शरीर के सभी अंग रक्त में बहने वाले द्रवों को अपनी आवश्यकता के अनुसार ग्रहण करते हैं रक्त संचरण-क्रिया अनवरत एक नित्य गति से हुआ करती है। लेकिन, जब इसकी गति किसी कारणवश कम या तेज होती है, तब रक्तचाप में परिवर्तन होता है जिसका प्रभाव व्यक्ति के स्वभाव पर भी पड़ता है। जैसे-उच्च रक्तचाप के रोगी में घबड़ाहट एवं अत्यधित क्रोध, आवेगात्मक व्यवहार आदि लक्षण उनके व्यक्तित्व के अंग बन जाते हैं।

2. रक्त में चीनी की मात्रा-

रक्म में चीनी की मात्रा का भी प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। मस्तिष्क और शरीर के अन्य अंगों को सुचारू रूप से कार्य करने के लिए लहू में चीनी की मात्रा उपयुक्त स्तर में रहना आवश्यक है। लेकिन, जब चीनी की मात्रा में कमी या बेशी होती है, तब व्यक्तित्व में कुछ खास परिवर्तन होते है; जैसे-व्यक्ति की मनोदशा या चित्त में परिवर्तन, चिड़चिड़ाहट में वृद्धि, भयभीत बना रहना, चेतना का लुप्त होना, वाक्-असंतुलन, स्मृति में ह्रास का होना, संवेगात्मक अस्थिरता आदि।

3. अंतःस्रावी ग्रंथियाँ-

अंतःस्रावी ग्रंथियाँनलिकाविहीन होती हैं तथा इनसे उत्पन्न होने वाले द्रव्य या स्राव सीधे रक्त में मिल जाते है। इन ग्रंथियों द्वारा कुछ हार्मोन्स उत्पन्न होते हैं, जो शरीर या उसके किसी अंग की क्रियाओं को बढ़ाने या घटाने की शक्ति रखते हैं। देखा गया है कि जिन व्यक्तियों की इन ग्रंथियों में कोई दोष रहता है, उनके व्यक्तित्व में कुछ दोषपूर्ण लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। प्रमाणों के आधार पर कुछ विद्वानों ने व्यक्तित्व में अंतःस्रावी गंथियों के महत्व को बहुत अधिक बढ़ा-चढ़ाकर बताया है। लुइस बर्मन (1928) ने तो यहाँ तक दावा किया है कि स्नायुमुडल-संबंधी रोग, पालगपन, चारित्रिक विकृति, अपराधी प्रवृत्ति आदि इन्हीं के कारण होते हैं तथा इन ग्रंथियों के दोषों को चिकित्सा द्वारा दूर कर देने पर संबद्ध विकृति के लक्षण भी दूर हो जाते हैं। इसके विपरीत हॉकिन्स का मत है कि व्यक्तित्व विकास में अंतःस्रावी ग्रंथियों का महत्व अभी तक बहुत स्पष्ट नहीं हो सका है। उपर्युक्त विरोधी विचारों के बावजूद हाल में किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट पता चलता है कि व्यक्तित्व पर अंतःस्रावी ग्रंथियों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यहाँ कुछ महत्वपूर्ण ग्रंथियों के उत्पादकों के प्रभावों का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है।

1. गलग्रंथि-

यह ग्रंथि गर्दन की जड़ में श्वासनलिका के सामने रहती है। साधारणतः इसका वजन एक औंस होता है कभी-कभी इसका आकार असामान्य रूप से बढ़ जाता है, लेकिन इससे इसके कार्य में कोई खास चिंताजनक गड़बड़ी नहीं होती। जब किसी तरह से यह ग्रंथि रूग्ण होकर विनष्ट हो जाती है, तब इस अवस्था को माइक्सोडेमा कहते हैं और इससे स्रावित होने वाले हार्मोन, जिन्हें थाइरॉक्सिन कहते है मंद पड़ जाते है। इससे चमड़े अकड़ जाते है। फलतः मस्तिष्क और पे शियों की क्रियाएँ मंद पड़ जाती हैं। व्यक्ति में शिथिलता, मूर्खता, भुलड़पन आ जाते हैं। वह एकाग्रचित होकर न तो किसी वस्तु पर ध्यान केंद्रित कर सकता है और न सोच-विचार कर सकता है। बच्चों में तो थाइरॉक्सिन के अभाव के कारण बुद्धि का ह्रास भी हो जाता है। थाइरॉक्सिन के अभाव के कारण व्यक्ति में सुस्ती और निष्क्रियता की स्थिति के अलावा उसका स्वभाव झगड़ालू हो जाता है। कुछ मनःचिकित्सकों की राय में इस हार्मोन के अभाव के कारण व्यक्ति में मनोविदाली लक्षण भी उत्पन्न होते है, अर्थात व्यक्ति असंतुष्ट, निराश और अविश्वासी हो जाता है, जो मनोविदलिता का प्रधान लक्षण है। थाइरॉक्सिन का स्राव अधिक होने पर व्यक्ति में स्नायुमंडलीय तनाव बढ़ जाता है और व्यक्ति उत्तेजित, चिंतित और अशांत हो जाता है। स्वतःसंचालित स्नायुमंडल

की कार्यशीलता भी बढ़ जाती है। विद्वानों का ऐसा विश्वास है कि थाइरॉक्सिन की अधिकता का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर सीधे पड़ता है, जबकि इसके अभाव का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है।

2. एड्रिनल ग्रंथि-

यह ग्रंथि दाहिने और बाँए दोनों गुर्दा के निकट स्थित है। गुर्दो के निकट रहने के कारण ही इन्हें उपवृक्क ग्रंथियाँ भी कहते हैं, हालाँकि गुर्दो के कार्य से इनका कार्य बिल्कुल भिन्न है। प्रत्येक एड्रिनल ग्रंथि के दो भाग होते हैं-बाह्य एवं भीतरी। बाह्य भाग को कॉर्टेक्स तथा भीतरी भाग को मेडुला कहते हैं। इन दोनों भागों में बनावट और काय्र की दृष्टि से अंतर होता है। बाह्य भाग यानी कॉर्टेक्स से उत्पन्न हार्मोन को कॉर्टिन और भीतरी भाग मेडुला से उत्पन्न हार्मोन को एड्रेनलिन कहते हैं।

एड्रेनलिन अत्यंत शक्तिशाली हार्मोन है। इसमें दो प्रकार के रासायनिक तत्व रहते हैं, जिन्हें एपिनेफ्रीन एवं नॉर-एपिनेफ्रीन कहते हैं। रक्त में एड्रेनिन की थोड़ी-सी मात्रा भी अग्रलिखित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त होती है-(1) तेज और जोरदार हृदय की धड़कन; (2) ऊँचा रक्तचाप जो रक्त को चर्म या शरीर के भीतरी अंग के रास्ते न धकेलकर मांसपेशियों और मस्तिष्क के रास्ते धकेलता है; (3) उदर और आँत की क्रियाओं का स्थगित होना; (4) फेफड़ों के वायुमार्गो का चौड़ा पड़ जाना; (5) लीवन से एकत्र चीनी का निकास; (6) मांसपेशियों में देर तक थकान का न आना; (7) बहुत अधिक पसीना आना; (8) आँख की पुतली का फैल जाना।

इन प्रभावों को उत्पन्न करने में स्वतःसंचालित स्नायुमंडल के सहानुभूतिक विभाग का हाथ रहता है। सहानुभूतिक मंडल द्वारा उपर्युक्त प्रभाव शीघ्रता से और थोड़े समय के लिए उत्पन्न होते है, जबकि रक्त में मिले हुए एड्रेनिन के कारण ये प्रभाव धीरे-धीरे एवं लंबे समय के लिए उत्पन्न होते है। इस प्रकार, एड्रिनल मेडुला सहानुभूतिक मंडल से जुड़ा हुआ है।

शरीर द्वारा सोडियम पोटाशियम और चीनी का उपयोग करने में कॉर्टिन से काम लिया जाता है और मांसपेशियों तथा यौन क्रियाओं पर इनका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यह शरीर को उपयुक्त स्थिति में रखता है। यह जीवन के लिए आवश्यक भी है। साधारणतः, यक्ष्मा की बीमारी के कारण पुरूषों में एड्रिनल कॉर्टेक्स का पूर्ण विनाश हो जाता है, जिसे 'एडीसन' की बीमारी कहते हैं। इस बीमारी का नामकरण एडीसन नाम के अनुसंधानकर्ता के नाम पर हुआ है। इस घातक रोग के उत्पन्न होने पर निर्बलता और शिथिलता में तेजी से वृद्धि, यौन क्रियाओं में अरूचि, मेटाबॉलिक क्रियाओं का मंद पड़ना, किसी संक्रामक रोग के प्रतिरोधक शक्ति का कम हो जाना, चर्म का काला पड़ जाना, गर्मी का ठंडक के प्रति असहनशीलता, नींद की कमी, चिड़चिड़ाहट आदि लक्षण उत्पन्न होते है। रोगी को बाहर से कार्टिन देने पर ये लक्षण दूर हो जाते है।

एड्रिनल कॉर्टेक्स की अत्यधिक कार्यशीलता के कारण पुरूषों और स्त्रियों में पुरूषोचित्त लक्षणों की अधिकता पाई जाती है। स्त्रियों के अंगों की गोलाई नष्ट हो जाती है, आवाज भारी हो जाती है और दाढ़ी उगने लगती है।

3. यौन ग्रंथि-

पुरूषों की यौनग्रंथि को अंडकोष और स्त्रियों की यौनग्रंथि को डिंब कहते हैं। इन ग्रंथियों से क्रमशः शुक्रकीट और रजकीट नाम के क्रोमोजोम प्राप्त होते हैं जिनके संयोग से संतान की उत्पत्ति होती है। साथ ही, इन ग्रंथियों से कुछ हॉर्मोन्स का भी स्राव होता है, जिनका व्यक्ति के विकास और उसके व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

यह हॉर्मोन्स काफी संख्या में होते हैं और इनमें कुछ पुरूष और स्त्री दोनों में उपस्थित रहते हैं। पुरूष के हॉर्मोन्स का संतुलन पुरूष में पुरूषत्व तथा स्त्री के हॉर्मोन्स का संतुलन स्त्री में स्त्रीत्व का विकास करता है। वयःसंधि के समय ये

हॉर्मोन्स जननेंद्रियों, यौन लक्षणों, जैसे स्त्रियों में दुग्ध ग्रंथि तथा पुरूषों में भारी आवाज और दाढ़ी का विकास करते हैं।

यौनग्रंथि द्वारा उत्पादित हॉर्मोन्स काफी हद तक स्त्रियों में संतानोत्पत्ति-संबंधी प्रक्रियाओं-जिसके अंतर्गत मासिक धर्म गर्भाधान, शिशु को दूध पिलाना आदि क्रियाएँ शामिल हैं-को नियंत्रित करती हैं। शिशु के पालन-पोषण की प्रेरणा में भी इन हॉर्मोन्स का महत्वपूर्ण हाथ रहता है।

कुछ व्यक्तियों में कामवासना अधिक होती है तो कुछ में कम। इस विभिन्नता का कारण यौनग्रंथि के हॉर्मोन्स को ही माना जाता है। पर, इस बात के यथेष्ट प्रमाण अभी नहीं मिले हैं। कुछ लोग रतिक्रिया में कम अभिरूचि रखते है; जिससे वे अपने मित्रों की आलोचना का विषय बने रहते है। इन आलोचनाओं की प्रतिक्रिया के रूप में ऐसे लोग कुछ विभिन्न प्रकार की यौन क्रियाओं में संलग्न हो जाते हैं। इस तरह, स्पष्ट है कि यौनग्रंथि का भी व्यक्तित्व के निर्माण में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

4. पियूष ग्रंथि-

इसे ग्रंथिपति की संज्ञा दी जाती है; क्योंकि इस ग्रंथि के हॉर्मोन्स अन्य अंतःस्रावी ग्रंथियों पर नियंत्रण रखते है। यह मस्तिष्क की निचली सतह में स्थित एक छोटी-सी ग्रंथि है। इस ग्रंथि के दो भाग है-पीछे का भाग एवं आगे का भाग। पियूष ग्रंथि के पिछले भाग से उत्पादित होने वाले हॉर्मोन्स शारीरिक क्रियाओं, जैसे रक्तचाप और जल के मेटाबोलिक कार्यो को नियमित करते हैं तथा आगे के भाग से उत्पादित हॉर्मोन्स अन्य अंतःस्रावी ग्रंथियों, जैसे गलग्रंथि, यौनग्रंथि, एड्रिनल ग्रंथि आदि को उत्तेजित करते हैं। पियूष ग्रंथि के निष्क्रिय रहने पर ये ग्रंथियाँ या तो विकसित नहीं हो पाती अथवा सामान्य रूप से कार्य नहीं कर पातीं।

पियूष ग्रंथि के अगले भाग का शारीरिक विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बाल्यावस्था में इस ग्रंथि की अतिकार्यशीलता के कारण हड्डियाँ एवं मांसपेशियाँ बड़ी तेजी से बढ़ती हैं और व्यक्ति की लंबाई असामान्य रूप से दैत्य की तरह 7 से 9 फुट तक हो जा सकती है। बाद में चलकर यह ग्रंथि शक्तिहीन हो जा सकती है जिससे कम उम्र में ही उसकी मृत्यु हो जा सकती है। यदि प्रौढ़ जीवन में यह ग्रंथि अधिक कार्यशील होती है तो व्यक्ति का कद लंबा होने के बजाए हाथ, पैर, नाक, जबड़े इत्यादि की लंबाई में वृद्धि होने की संभावना रहती है। इस स्थिति को मिडगेट्स कहते हैं। शरीर के विकास की अवधि में इस ग्रंथि के कम क्रियाशील रहने पर व्यक्ति बौने कद का हो जाता है जिन्हें 'क्रेटिन्स' कहते हैं। पियूष ग्रंथि के पिछले भाग का व्यक्तित्व के साथ क्या संबंध है इसके बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं है।

5. पीनेल ग्रंथि-

इसके हॉर्मोन का प्रभाव बाल्यकाल में अधिक देखा जाता है। मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि यह ग्रंथि अपने स्राव के द्वारा बच्चों में यौन भाव के विकास के न होने में सहायक है।

6. पैक्रियाज-

इसका बहाव या स्राव मांसपेशियों की चीनी की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। कभी-कभी देखा जाता है कि पैक्रियाज के अत्यधिक क्रियाशील होने के फलस्वरूप व्यक्ति और चिंतित रहने लगता है।

व्यक्ति के व्यवहार और किसी ग्रंथिविशेष का क्या संबंध है-यह बताना कठिन है। इसका कारण यह है कि व्यवहार और ग्रंथि दोनों एक-दूसरे को प्रभावित करते है। फिर भी उपर्युक्त वर्णन से इतना तो स्पष्ट है कि विभिन्न ग्रंथियों के अत्यधिक या कम कार्यशील होने का प्रभाव शारीरिक बनावट एवं कार्य पर पड़ता है जिससे व्यक्ति के व्यवहार में

भी कुछ विशिष्ट प्रकार के परिवर्तन होते हैं। परंतु, ग्रंथियाँ यदि सामान्य रूप से कार्य करती हों, तो व्यक्तित्व में अंतर का कारण निश्चित रूप से अन्यान्य जैविक एवं सामाजिक तत्व हो सकते हैं। शायद यही कारण है कि व्यक्तित्व और अंतःस्रावी ग्रंथियों के पारस्परिक संबंधों के बारे में इंगल (1935) ने यह निष्कर्ष निकाला है-''निष्कर्ष रूप में हम इतना ही कह सकते हैं कि व्यक्तित्व के आधारभूत जैविक तत्वों में अंतःस्रावी ग्रंथियाँ भी है''

ग. स्नायुमण्डल-

व्यक्तित्व का सम्बन्ध व्यक्ति के समायोजन सम्बन्धी व्यवहारों से है तथा इन व्यवहारों पर व्यक्ति के शीलगुणों एवं वातावरणीय कारकों के बीच उत्पन्न संघर्षो का सार्थक प्रभाव पड़ता है। स्नायुमण्डल की इस समायोजित व्यवहार की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्नायुमण्डल के केन्द्रीय एवं स्वतःचालित-दोनों ही तंत्रों का व्यक्ति के समायोजन सम्बन्धी व्यवहारों के नियमन एवं नियंत्रण पर सार्थक प्रभाव देखा गया है।

2.5.2 व्यक्तित्व के सामाजिक/वातावरणीय निर्धारक-

व्यक्तित्व विकास पर जैविक कारकों के साथ-साथ वैसे कारकों का भी प्रभाव पड़ता है जिनका सम्बन्ध उसके वातावरण सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थिति आदि से होता है। इसे ही व्यक्तित्व का सामाजिक या सामाजिक-सांस्कृतिक या वातावरणीय निर्धारक कहते है। सामाजिक निर्धारकों को निम्नलिखित मुख्य वर्गो में बांटा जा सकता है -

(क) जीवन के प्रारंभिक वर्षो का प्रभाव-

मनुष्य एक अनुभवशील प्राणी है। वह जन्म से ही अनुभव प्राप्त करता है और इसी अनुभव पर उसके व्यक्तित्व का निर्माण निर्भर करता है। इस संबंध में फ्रायड ने जोरदार शब्दों में कहा है कि मनुष्य के प्रत्येक व्यवहार का बीजारोपण बचपन के प्रारंभिक 5 वर्षो में हो जाता है और उसी नींव पर संपूर्ण व्यक्तित्व-रूपी भवन खड़ा रहता है। चरित्रनिर्माण की व्याख्या करते हुए फ्रायड ने स्पष्ट किया है कि बाल्यावस्था में किसी बच्चे को दूध पिलाना शीघ्र बंद कर दिया जाता है तो किसी को देर से। इन घटनाओं के फलस्वरूप बालकों को कुछ अनुभव प्राप्त होते हैं जिनकी अभिव्यक्ति बाद में चलकर संरक्षित या असंरक्षित होने की भावना के रूप में होती है। इसी तरह, बालक जब विकास के गुदावस्था में पहुँचता है, तब उस समय भी उसे कुछ नई अनुभूतियाँ प्राप्त होती है जिनका प्रभाव भी उसके भावी, व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है। उक्त अवस्था में बालकों में मल-मूत्र को रोके रहने अथवा जल्दी-जल्दी निष्काषित करने की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसकी छाप उसके व्यक्तित्व पर पड़ती है। गुदा धारण की अवस्था में बालकों में मल-मूत्र को रोके रखने की प्रवृत्ति बहुत अधिक रहती है। कभी-कभी मल-मूत्र परित्याग-संबंधी प्रशिक्षण के अभाव में बालक इसी अवस्था में लंबे समय तक रहते हैं। इसी प्रकार बाल्यावस्था की शिक्षावस्था अथवा किशोरावस्था के अनुभवों की भी अमिट छाप वयस्क व्यक्तित्व पर पड़ती है।

(ख) परिवार का प्रभाव-

बालकों के व्यक्तित्व के विकास पर उसके परिवार तथा घरेलू वातावरण का प्रभाव अत्यंत व्यापक रूप से पड़ता है। घरेलू वातावरण में पालन-पोषण की प्रणाली, माता और पिता के आपसी संबंध, माता-पिता का बच्चों के साथ संबंध, परिवार के दूसरे बच्चों के साथ संबंध आदि तत्वों के प्रभाव प्रमुख हैं।

1. पालन-पोषण की प्रणाली-

प्रत्येक परिवार में बालकों के पालन-पोषण की रीति भिन्न-भिन्न ढंग की होती है। कुछ माँ-बाप बच्चों को अति सुरक्षा प्रदान करते हैं तो कुछ उनके प्रति लापरवाह रहते हैं। किसी बच्चे को स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र प्रशिक्षण

का पर्याप्त अवसर मिलता है तो किसी को ऐसा अवसर बिल्कुल नहीं मिलता। इन विभिन्नताओं का प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व के विकास और निर्माण पर पड़ता है। ब्रॉडी (1956) ने 32 माताओं के बच्चा पोसने के ढंग का अध्ययन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचीं कि जो माताएँ अपनी संतानों की आवश्यकताओं के प्रति बहुत अधिक सजग रहती हैं उनका बच्चों के प्रति व्यवहार निश्चित और स्थिर ढंग का होता है तथा वे बच्चों पर पूरा ध्यान रखती है। लेकिन, जो माताएँ बच्चों की आवश्यकताओं के प्रति सजग नहीं रहतीं उनके व्यवहार अनिश्चित ढंग के होते हैं। सीयर्स, मैक्रॉबी एवं लेविन (1957) ने भी 300 माताओं का अध्ययन कर उन्हें निम्न प्रकारों में बाँटा है-अनुमोदन-कठोरता, सामान्य पारिवारिक अभियोजनशील एवं शिशु के साथ उत्साही संबंध रखने वाली माताएँ। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि इन तीनों प्रकार की माताओं द्वारा पाले-पोसे गए शिशुओं के व्यक्तित्व में अंतर होता है।

इस संबंध में किए गए अन्यान्य अध्ययनों से भी यह स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के विकास में माता-पिता की मनोवृत्ति और पालन-पोषण के तरीकों का महत्वपूर्ण स्थान है।

2. माता और पिता के आपसी संबंध-

माता और पिता के पारस्परिक संबंधों का बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस संबंध में सिरिल बर्ट का कहना है कि जिन बच्चों के माता-पिता के पारस्परिक संबंध अच्छे नहीं रहते, उनके बच्चों में संतुलित व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता। ऐसे परिवारों में उचित अनुशासन का अभाव रहता है जिसके परिणामस्वरूप वे बाल-अपराधी हो जाते हैं। ऐसे घरों को सिरिल बर्ट ने बिगड़े या टूटे हुए घर की संज्ञा दी है। बॉलकाइण्ड एवं रटर (1973) ने बिगड़े या टूटे हुए घरों के संबंध में यह निष्कर्ष निकाला है कि विकासशील बालकों के लिए माता-पिता के पारस्परिक झगड़े, संघर्ष और उनके बीच की तनावपूर्ण स्थितियाँ घातक होती हैं, फलतः उन घरों में विकसित होने वाले बच्चे असुरक्षा की भावना से ग्रस्त रहने लगते हैं, तथा उनका व्यक्तित्व भी कुंठित हो जाता है। ऐसे घरों में बच्चों में बेईमानी की प्रवृत्तियाँ विकसित होती हैं, बच्चे विश्वासघाती हो जाते हैं अथवा इस प्रकार के अन्यान्य अवांछित* गुण विकसित होते है। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसे बच्चे घरों में अपने माता-पिता का उपयुक्त स्नेह और प्यार नहीं प्राप्त कर पाते और वे शीघ्र ही समाज के अवांछित तत्वों के संपर्क में आ जाते हैं अथवा अपने माता-पिता के अनाभियोजित व्यवहारों को ग्रहण करते हैं।

3. माता-पिता का बच्चों के साथ संबंध-

माता-पिता के पारस्परिक संबंध के अतिरिक्त बच्चों के साथ उनके संबंध भी व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इस संबंध में किए गए लगभग सभी अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि कठोर अनुशासन, दंड या अति-सुरक्षा अस्वीकार करने आदि के फलस्वरूप व्यक्तित्व अस्त-व्यस्त हो जाता है। कभी माता-पिता बच्चे के जन्म का स्वागत करते हैं तो कभी बच्चे अनावश्यक समझे जाते हैं। अनावश्यक समझे जाने वाले बच्चे हीनता ही भावना से ग्रस्त रहने लगते हैं, जिसका प्रतिकूल प्रभाव उनके व्यक्तित्व के निर्माण पर पड़ता है।

माता-पिता हैं अथवा नहीं, इस दृष्टि से बच्चों को अग्रलिखित वर्गो में बाँटा जा सकता है-(क) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनों जीवित हैं, (ख) ऐसे बच्चे जिनके पिता हैं, माता नहीं, (ग) ऐसे बच्चे जिनकी माँ है; किंतु पिता नहीं, (घ) ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनों नहीं है; (च) ऐसे बच्चे जिन्हें सौतेली माँ या सौतेला बाप अथवा नर्स

पालती-पोसती है। इन सभी अवस्थाओं में बच्चों की मनोवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न ढंग से उत्पन्न होती हैं जिनका महत्वपूर्ण प्रभाव उनके व्यक्तित्व एवं व्यवहार पर पड़ता है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि माता-पिता का बच्चों के साथ कैसा संबंध है, इसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व निर्माण पर पड़ता है।

4. परिवार के बच्चों का एक-दूसरे से संबंध-

परिवार में बच्चों को अपने भाई-बहनों या दूसरे बच्चों के साथ भी अंतःक्रिया करनी पड़ती है। इस अंतःक्रिया का भी प्रभाव उनके व्यक्तित्व-विकास पर महत्वपूर्ण ढंग से पड़ता है। इस संबंध में एकलौता बच्चा, जन्मक्रम, बच्चों का यौन-वितरण, बच्चों का यौन संयोग, परिवार का आकार आदि परिवार-संरचना के महत्वपूर्ण तत्व है तथा इन संरचनात्मक तत्वों में भिन्नता का प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व-संबंधी गुणों के विकास पर अलग-अलग ढंग से पड़ता है। इन तत्वों द्वारा सामाजिक अभियोजन की प्रक्रिया निर्धारित होती है। एक घर में अगर एक से अधिक बच्चे होते है तो वह एक-दूसरे के विचारों, मनोवृत्तियों आदि से प्रभावित होते हैं तथा परस्पर अभियोजन का प्रयास करते हैं। इसी प्रयास का फल है कि व्यक्ति बड़ा होने पर पहले से सीखी हुई अभियोजन-विधि का उपयोग सामाजिक परिस्थितियों में अभियोजन करने हेतु करता है एकलौते बच्चों को ऐसा अवसर नहीं मिलता, फलतः उन्हें सामाजिक अभियोजन में कठिनाई होती है।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों में जन्मक्रम का भी महत्वपूर्ण प्रभाव देखा गया है। इस संबंध में मैक्लीलैण्ड, विंटरबॉटम, सैम्पसन आदि ने विभिन्न संस्कृतियों का अध्ययन किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जन्मक्रम में भिन्नता होने के फलस्वरूप एक ही परिवार के विभिन्न बच्चों के व्यक्तित्व-गुण भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। इस संदर्भ में एडलर का विचार है कि एकलौते बच्चों के आराम, अधिकार एवं माता-पिता के स्नेह का भागीदार दूसरा कोई नहीं होता, जिससे ऐसे बच्चों में एकाधिपत्य की भावना विकसित होती है और उनका व्यक्तित्व अधिकारप्रिय प्रकार का हो जाता है। मंझले बच्चों में स्पर्द्धायुक्त व्यक्तित्व और छोटे बच्चे में लाइम लाइट व्यक्तित्व पाया जाता है। इसका कारण यह है कि मंझले बच्चों की अपने से बड़े एवं छोटे दोनों छोरों पर के भाई तथा बहनों के साथ प्रतिस्पर्घा रहती है। सबसे छोटे बच्चों को परिवार का अंतिम बच्चा होने के कारण परिवार में सभी का भरपूर लाड़-प्यार मिलता है। इसी से ऐसे बच्चे अपने को सबसे प्रधान समझने लगते हैं। फलतः उनमें संरक्षित होने का भाव सर्वाधिक मात्रा में रहता है जिससे उनका व्यक्तित्व लाइम लाइट प्रकार का हो जाता है।

सहोदरों के यौन-संयोग एवं यौन-वितरण का भी अध्ययन किया गया है और देखा गया है कि यौन-संयोग एवं वितरण की भिन्नता का प्रभाव व्यक्तित्व के निर्माण में अप्रत्यक्ष रूप से पड़ता है। इस संदर्भ में यौन-प्रतिस्पर्धा की भावना का प्रमुख हाथ रहता है।

(ग) पड़ोस का प्रभाव-

व्यक्तित्व-निर्माण में पड़ोस का भी कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं है। बच्चे जब कुछ बड़े होते हैं तब वे पड़ोस के बच्चों के साथ मिलते-जुलते हैं, पड़ोसियों के घरों में आने-जाने लगते हैं तथा पड़ोस के बच्चों के साथ खेलते हैं इस तरह, आस-पास के पड़ोसियों से वे सामाजिक रहन-सहन, तौर-तरीकों और अभियोजन-संबंधी गुणों को ग्रहण करते हैं। साथ ही, बच्चे अपने व्यवहार एवं मनोवृत्तियों से दूसरों को और दूसरों के व्यवहार एवं मनोवृत्तियों से स्वयं अपने को भी प्रभावित करते हैं। इन प्रभावों के फलस्वरूप उनके व्यक्तित्व में सामाजिक अभियोजन संबंधी गुणों का विकास होता है।

पड़ोस दो तरह के हो सकते हैं- (क) तुरंत-तुरंत बदलने वाला पड़ोस और (ख) स्थिर एवं निश्चित पड़ोस। प्रायः यह देखा गया है कि जिनका पड़ोस तुरंत-तुरंत बदलता रहता है, उनके व्यक्तित्व में हिल-मिलकर रहने तथा सहयोग की भावना का विकास अपेक्षाकृत कम होता है बनिस्पत वैसे बालक के, जिनका पड़ोस स्थायी और निश्चित होता है। उदाहरणार्थ-बंजारों या नोमैडिक ट्राइब्स के पड़ोस तुरंत बदलते रहते हैं; क्योंकि वे सदा गतिशील रहते हैं। फलतः, उनमें मिलकर रहने तथा पड़ोसियों के साथ सहयोग की भावना का विकास नहीं हो पाता।

(घ) स्कूल का प्रभाव-

लगभग 5 से 6 वर्ष की आयु में बच्चे स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रवेश लेते हैं और पूर्ण वयस्क होने के समय तक शैक्षणिक वातावरण द्वारा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है। हालाँकि स्कूलों में प्रवेश लेने के पूर्व ही घरेलू वातावरण में बच्चों के व्यक्तित्व की रूप-रेखा तैयार हो जाती है और स्कूल में वे अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन भी उसी रूपरेखा के आलोक में करते हैं, फिर भी स्कूल का वातावरण बच्चों में नया अनुभव उत्पन्न करता है जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व-निर्माण पर महत्वपूर्ण रूप से पड़ता है। स्कूल में पहली बार बच्चों को संस्थानिक कायदे-कानून का अनुभव प्राप्त होता है, हम उम्र के विभिन्न विद्यार्थियों के साथ रहना पड़ता है, विद्यालय प्रशासन का अनुभव होता है तथा शिक्षकों की मनोवृत्तियों, वर्ग के सहपाठियों के विचारों, उनके रहन-सहन, मनोवृत्ति इत्यादि का एक नया अनुभव प्राप्त होता है तथा उसके अनुसार ही अभियोजन का नया ढंग सीखना होता है। इन सब बातों से उनका व्यक्तित्व सिंचित और पल्लवित होता है।

स्कूल में बालकों को तीन प्रकार के लोगों के साथ संबंध स्थापित करना पड़ता है- (क) शिक्षक जो उसके लिए पितातुल्य होते हैं, (ख) वर्ग के सहपाठियों के साथ और (ग) अपने से ऊँचे और नीचे के वर्गों के विद्यार्थियों के साथ।

कभी-कभी पिता और शिक्षक के विचार, विश्वास एवं व्यवहार में विरोधाभास होता है; जैसे-पिता आध्यात्मिक दृष्टिकोण का है तो शिक्षक का अध्यात्म में विश्वास नहीं है। इस तरह के विरोधाभास की स्थिति में बालक के व्यक्तित्व का विकास संतुलित रूप से नहीं हो पाता। ऐसा इसलिए होता है कि शिक्षक बालकों के लिए उनके पिता के समान होते हैं, अतः बालक अपने शिक्षक के व्यक्तित्व एवं व्यवहार का अनुकरण करने लगते हैं। परंतु, जब उनके व्यवहार पिता के व्यवहार से भिन्न प्रतीत होते हैं तब बालक असमंजस में पड़ जाता है जिससे उसके व्यक्तित्व का संतुलित विकास अवरूद्ध हो जाता है।

शिक्षकों के व्यक्तित्व का बालकों के व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन बोआयण्टेन तथा अन्य (1934) लोगों ने किया है तथा उन्होंने देखा कि जो शिक्षक 'बर्नरायटर-व्यक्तित्व आविष्कारिका' पर स्नायुमंडल-संबंधी रोगों के लक्षण प्रदर्शित करते थे, उनके विद्यार्थियों में भी इस रोग के लक्षण मौजूद थे।

स्कूल की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का भी प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। स्कूल की प्रशासनिक व्यवस्था स्कूल प्रशासक के व्यक्तित्व, उसकी मनोवृत्ति, विश्वास, कार्यशैली इत्यादि द्वारा निर्धारित होती है। अतः, विद्यार्थियों के व्यक्तित्व पर स्कूल के प्रशासक एवं प्रशासनिक व्यवस्था दोनों का प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि मिशन द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ रहे विद्यार्थियों और राज्य सरकार द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ रहे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है। इस संबंध में लेमैन (1949) ने एक अध्ययन में पाया कि आस-पास के दो विद्यालयों में से एक के विद्यार्थियों ने उनके परीक्षण कार्यक्रम में काफी सहयोग दिया, जबकि

दूसरे विद्यालय के विद्यार्थियों ने स्पष्ट असहयोग किया। जाँच करने पर पता चला कि पहले स्कूल के प्राचार्य का प्रशासन लोकतंत्री व्यवस्था पर आधृत था, जबकि दूसरे स्कूल के प्राचार्य सत्तवादी प्रशासक थे।

स्पष्ट है कि स्कूल के शिक्षकों एवं प्रशासनिक अधिकारियों के व्यक्तित्व, दृष्टिकोंण आदि का भी प्रभाव बालकों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। उनके दृष्टिकोणों से ही विद्यार्थियों की संवेगात्मक स्थिति निर्धारित होती है। इसी प्रकार, स्कूल के साथियों, वर्ग के साथियों, अनुशासन आदि का भी प्रभाव बच्चों में पारस्परिक सहयोग की भावना, टीम की भावना एवं संवेगात्मक संतुलन के विकास पर पड़ता है।

(ड़) समुदाय का प्रभाव-

समुदाय के अंतर्गत समूह, गैंग, क्लब आदि सामाजिक परिस्थितियाँ आती हैं। इन सामाजिक परिस्थितियों का भी प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व-विकास पर कुछ कम नहीं पड़ता, खासकर सामाजिकता से संबद्ध गुणों के विकास पर इनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

व्यक्ति के व्यक्तित्व पर समुदाय अथवा सामाजिक वातावरण के प्रभावों का संकेत हमें समुदाय की नियमावली और कार्यभाग अथवा भूमिका से प्राप्त होता है। व्यक्ति आचरण की एक नियमावली सीखता है। वह अपने समूह या समुदाय की नियमावली को अपना लेता है अथवा उस समूह में रहते हुए अपनी व्यक्तिगत नियमावली बना लेता है। इस तरह, समुदाय में या तो उसके लिए कोई कार्य रहता है अथवा वह अपने लिए कार्यभाग का चुनाव खुद कर लेता है।

सामुदायिक जीवन में ही वह अपने समाज के रीतिरिवाजों, परंपराओं, नैतिक आदर्शो इत्यादि को ग्रहण कर लेता है तथा उसी के अनुरूप आचरण करता है। इसी क्रम में परस्पर सहयोग, मिल-जुलकर रहने, प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्द्धा आदि व्यक्तित्व-गुणों को भी अर्जित करता है। साथ ही, समुदाय द्वारा दिए गए कार्यो अथवा समुदाय में अपने योग्य कार्यो का चुनाव कर वह अपने व्यवहारों से दूसरों को भी प्रभावित करता है। व्यक्ति द्वारा किए गए कार्यो के मूल्यांकन से उसे संतुष्टि, प्रतिष्ठा, सामाजिक स्तर आदि प्राप्त होते हैं, जिससे उसके व्यक्तित्व में निखार आता है। इस प्रकार, व्यक्ति के व्यक्तित्व पर सामाजिक समूह का पर्याप्त असर होता है।

(च) सांस्कृतिक निर्धारक-

व्यक्तित्व के निर्धारण में संस्कृति का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। संस्कृति के अंतर्गत रहन-सहन, वेश-भूषा, विचार, व्यवहारशैली, आदि शामिल हैं जिनका व्यक्तित्व पर दो तरह से प्रभाव पड़ता है-

1. विशिष्ट प्रकार की संस्कृति में जन्म लेने के कारण व्यक्ति उसी संस्कृति को अपना लेता है। अतः, व्यक्ति को सांस्कृतिक वातावरण से पृथक नहीं किया जा सकता।
2. संस्कृति की कुछ ऐसी भी बातें होती हैं जिन्हें व्यक्ति अपनाना नहीं चाहता, परंतु संस्कृति में अपनी पहचान बनाए रखने की इच्छा से अथवा सामाजिक दबाव के कारण वह उसे अपना लेता है।

उपर्युक्त दोनों तरह के प्रभावों के फलस्वरूप ही व्यक्ति पर उसकी संस्कृति की छाप रहती है और व्यक्तित्व का संगठन तथा निर्माण उस संस्कृति की विशेषताओं के अनुरूप होता है। लिंटन (1936) एवं कार्डिनर (1945) ने कुछ प्रजातियों का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के लोगों के व्यक्तित्व में अंतर होता है।

मीड (1901, 1952, 1972) ने न्यूगिनी और उसके आसपास रहने वाली तीन संस्कृतियों का अध्ययन किया और बताया कि तीनों संस्कृतियों की मूल व्यक्तित्व-रचना एक दूसरे से भिन्न है। अरापेश संस्कृति जनाना स्वरूप की हैं

अतः, इस संस्कृति के रहने वाले लोगों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने तथा अगुआ बनने की भावना का अभाव रहता है। इस संस्कृति के स्त्री-पुरूष अत्यधिक सहयोगपूर्ण, दयालु, विश्वासी, सुशील और नेक होते हैं। इसके विपरीत, मुंडुगुमोर संस्कृति मर्दाना स्वरूप की है। इस संस्कृति के लोग अक्खड़, उग्र, ईर्ष्यालु, अविश्वासी, आक्रमणशील और व्यक्तिवादी होते हैं। इन दोनों से भिन्न शांबुली की संस्कृति है, जहाँ स्त्रियाँ घरों के बाहर जीविकोपार्जन के धंधों में लगती हैं तथा पुरूष बच्चों की देख-रेख, लालन-पालन करते हैं। वे अपने को सुंदर और आकर्षक बनाने के लिए श्रृंगार करते हैं, कलाप्रेमी होते हैं तथा आपस में मिलकर गप्पें मारते हैं। स्त्रियाँ पुरूषों की सजावट देखकर प्रसन्न और मुग्ध होती हैं तथा उनसे विवाह की याचना करती हैं। इन्हीं तथ्यों के आधार पर कुईनर (1951)ने लिखा है कि यदि समाज में स्त्रियों और पुरूषों के लिए अलग-अलग नियम निर्धारित न हों, तो उनकी भूमिकाओं में भी कोई अंतर नहीं होगा।

रूथ बंनेडिक्ट ने भी जुनी इंडियन संस्कृति के लोगों में स्पर्द्धा नामक गुण का अभाव पाया, जिसका कारण उन्होंने उनकी संस्कृति की विशेषता बताया है।

उपर्युक्त साक्ष्यों से स्पष्ट है कि सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में पलने वाले व्यक्तियों में अंतर पाया जाता है।

व्यक्तित्व के निर्धारकों के संबंध में निष्कर्ष-

व्यक्तित्व के जिन निर्धारकों का वर्णन ऊपर किया गया है, उनसे स्पष्ट होता है कि किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व-विकास को समझने के लिए हमें उसके वंशानुक्रम और वातावरण की पारस्परिक अंतःक्रियाओं का अध्ययन करना आवश्यक होगा। किसी व्यक्ति में वंशपरंपरा (पीढ़ी-दर-पीढ़ी) द्वारा जैविक रूप से संचारित गुणों की संपूर्णता को वंशानुक्रम की संज्ञा दी जाती है, जिसका प्रभाव शारीरिक रचना पर पड़ता है वातावरण का तात्पर्य उन अवस्थाओं की संपूर्णता से है, जो व्यक्ति को व्यवहार करने हेतु उत्तेजित या उद्यत करता है अथवा जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति का व्यवहार परिमार्जित या संशोधित होता है। व्यक्ति के जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विकास में उपर्युक्त तत्वों के कार्यो को निम्नलिखित सूत्र द्वारा भी प्रकट किया जा सकता है-

वंशानुक्रम×वातावरण×समय = विकासात्मक स्तर

उपर्युक्त सूत्र से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम या जैविक तत्व तथा वातावरण के तत्व दोनों का प्रभाव साथ-साथ पड़ता है। अतः, संक्षेप में कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसकी वंशपरंपरा, जैविक एवं वातावरण के विभिन्न तत्वों की संयुक्त उपज है। इनमें किसी एक के महत्व को अधिक या कम बताना उचित नहीं है।

व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में जैविक एवं सामाजिक तत्वों का सापेक्षिक महत्व-

व्यक्तित्व के जैविक एवं सामाजिक तत्वों या निर्धारकों के वर्णन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के निर्माण और विकास की प्रक्रिया इन दोनों कारकों से निर्धारित होती है। अब प्रश्न यह है कि इनमें किसका महत्व कम या अधिक है, अर्थात कौन तत्व किस अनुपात में व्यक्तित्व को प्रभावित करता है? यह विषय अभी तक विवादास्पद है। कुछ लोग वंशानुक्रम या जैविक संरचना की दुहाई देते हैं तो कुछ लोग सामाजिक वातावरण की। इस विवाद का संतोषप्रद हल दुष्कर है। वंशानुक्रम या जैविक संरचना में विकसित होने की विशिष्ट प्रवृत्ति या संभावना रहती है, लेकिन इस प्रवृत्ति या संभावना के पोषण और विकास में वातावरण से प्राप्त उत्तेजना एवं अवसर का महत्वपूर्ण हाथ रहता है। उदाहरणार्थ, वंशानुक्रम से किसी की शारीरिक रचना सुदृढ़ और मांसपेशियाँ गठी हुई होती है किंतु, यदि उपयुक्त

आहार और व्यायाम का अवसर न मिले तो शारीरिक रचना का सुदृढ़ होना और मांसपेशियों का गठा होना संभव नहीं होगा। स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास एवं निर्माण में उपर्युक्त दोनों तत्वों का महत्वपूर्ण स्थान है-किसी एक का कम या अधिक नहीं।

व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास की प्रक्रिया को निर्धारित करने वाले जैविक एवं सामाजिक अथवा वातावरण से संबद्ध तत्वों का सापेक्षिक महत्व बताने हेतु विचारणीय यह नहीं है कि इनमें से किसका महत्व कम या अधिक है, बल्कि विचारणीय प्रश्न यह है कि इन दोनों प्रकार के तत्व किस प्रकार अंतःक्रिया करते हैं। उदाहरण के लिए, वंशानुक्रम से खास तरह का शारीरिक गठन, रंग या आकृतिक विशेषताएँ निर्धारित होती हैं किंतु, प्रत्येक समाज में खास तरह का शारीरिक गठन प्रशंसनीय और दूसरी तरह का गठन निंदनीय माना जाता है तथा उसी के अनुरूप व्यक्ति अपने समाज के साथ प्रतिक्रिया भी करता है। इस प्रकार, व्यक्ति के वंशगत गुणों और वातावरण दोनों की पारस्परिक अंतःक्रियाओं के अनुसार ही व्यक्ति के व्यवहार का एक प्रतिरूप बनता है, जिससे व्यक्तित्व की विशेषताएँ प्रकट होती हैं। अतः, व्यक्तित्व को जैविक या सामाजिक तत्वों का योग नहीं कहा जाता, बल्कि इन दोनों प्रकार के तत्वों की पारस्परिक क्रिया की उपज माना जाता है। इसे और अच्छी तरह स्पष्ट करने हेतु व्यक्ति को हम एक आयत मान लें। अब यदि आयत के आधार को वंशानुक्रम और लंब को वातावरण मानें तो व्यक्तित्व इस आयत (व्यक्ति) का क्षेत्रफल होगी, अर्थात, व्यक्तित्व = आधार × लंब। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व वंशानुक्रम और वातावरण का गुणनफल होता है। स्पष्ट है कि जिस प्रकार किसी आयत के क्षेत्रफल के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि इसका क्षेत्रफल आधार पर निर्भर करता है या लंब पर, उसी प्रकार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में यह भी कहना असंभव है कि वह वंशानुक्रम अथवा वातावरण में से किसी एक पर अधिक निर्भर है। यदि आधार या लंब दोनों में से कोई एक न रहे तो क्षेत्रफल होगा किसका? इसलिए, दोनों नितांत आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न-

1. इनमें से किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व की सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा दी हैं?

क. शेल्डन ख. कैटेल

ग. क्रेश्मर घ. ऑलपोर्ट

2. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की वह विधि जिसमें व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह का विभिन्न समय अन्तरालों पर क्रमबद्ध निरीक्षण कर उनका रेकार्ड तैयार किया जाता है, कहते हैं-

क. अनुप्रस्थ काट विधि ख. आनुवंशिकता

ग. स्नायुमंडल घ. अन्तःस्रावी ग्रन्थियां

2.6 सार संक्षेप-

1. व्यक्तित्व व्यक्ति के बाहरी गुणों तथा भीतरी गुणों का एक समन्वय है। यह अपेक्षाकृत टिकाऊ प्रकृति का होता है तथा वातावरण में व्यक्ति के अपूर्व समायोजन का निर्धारक भी।
2. व्यक्तित्व में चार प्रकार की संगतता पाई जाती है- प्रकार 'अ' संगतता, प्रकार 'ब' संगतता, प्रकार 'स' संगतता तथा प्रकार 'द' संगतता।
3. व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य व्यक्तित्व पैटर्न के विकास से है। इसके मुख्य दो तत्व होते हैं- आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण

4. व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की निम्नलिखित विधियां हैं- प्रयोगात्मक विधि, सहसम्बन्धात्मक विधि, केस-अध्ययन विधि, अनुदैर्ध्य विधि तथा अनुप्रस्थ काट विधि।
5. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं में सम्पन्न होती है तथा प्रत्येक अवस्था की अपने कुछ खास तो कुछ सामान्य विशेषता होती है।
6. व्यक्तित्व विकास की निम्नलिखित अवस्थाएं हैं- पूर्व प्रसूत अवस्था, शौशवावस्था, बचपनावस्था, बाल्यावस्था, पूर्व किशोरावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था तथा वृद्धावस्था।
7. व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों को मूलतः दो भागों में बाँटा गया है- जैविक एवं सामाजिक या वातावरण। इन्हें व्यक्त्वि का निर्धारक भी कहते हैं।
8. जैविक कारक के अन्तर्गत आने वाले कारक हैं- आनुवंशिकता, शारीरिक गठन व धातु स्वभाग, अन्तःस्रावी ग्रंथिया, स्नायुमण्डल आदि।
9. सामाजिक कारक के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन के प्रारंभिक वर्षो का वातावरण, पारिवारिक वातारण, स्कूल, पड़ोस, खेल के साथी, समुदाय, संस्कृति आदि आते हैं।

2.7 पारिभाषिक शब्दावली-

आत्म-संप्रत्यय: व्यक्ति के स्वयं से सम्बद्ध एक ऐसा तथ्य जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा क्या है? यह एक दर्पण-बिम्ब होता है जो व्यक्ति द्वारा सम्पन्न भूमिकाओं, दूसरों के साथ उसके सम्बन्धों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा की गई प्रतिक्रियाओं द्वारा निर्धारित होता है।

हार्मोन्स: शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाला स्राव जो शरीर या उसके किसी अंग की क्रियाओं को बढ़ाने या घटाने की शक्ति रखता है।

2.8 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न-

1. व्यक्तित्व से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व विकास के अध्ययन की विभिन्न विधियों का वर्णन करें।
2. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया किन-किन अवस्थाओं में सम्पन्न होती हैं? व्याख्या करें।
3. व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों की विवेचना करें।
4. व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करने वाले सामाजिक-आर्थिक कारकों पर प्रकाश डालें।

2.9 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.

5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.

6 Eysenck – The scientific study of personality

2.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. घ 2. ख 3. क

इकाई 3: व्यक्तित्व का मूल्यांकन; व्यक्तित्व परीक्षण और इसके महत्वपूर्ण मुद्दे (Assessment of Personality; Personality Test and Its Key Issues)

इकाई संरचना-

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 व्यक्तित्व मापन का अर्थ
3.4 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी दृष्टिकोण
3.4.1 समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण
3.4.2 शीलगुण दृष्टिकोण
3.4.3 प्रक्षेपी जाँच दृष्टिकोण
3.5 व्यक्तित्व परीक्षण की प्रमुख विधियां
3.5.1 व्यवहार अध्ययन विधियां
स्वाभाविक परिस्थिति में अध्ययन
जाँच परिस्थिति में अध्ययन
3.5.2 नैदानिक विधियां
साक्षात्कार विधि
व्यक्ति-इतिहास विधि
प्रक्षेपण विधियां
3.5.3 मनोमितिक विधियां
प्रश्नावली
आविष्कारिका
श्रेणीगत मापनियां
3.6 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय
3.7 सार-संक्षेप
3.8 पारिभाषिक शब्दावली
3.9 निबन्धात्मक प्रश्न
3.10 संदर्भ-ग्रन्थ
3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.1 प्रस्तावना-

पिछली इकाई में आपने व्यक्तित्व विकास के सम्प्रत्यय एवं उसे प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया। आपने देखा कि किस प्रकार व्यक्ति से सम्बद्ध जैविक एवं वातावरणीय कारक उसके व्यक्तित्व को संरचित करने एवं गति प्रदान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

आइए, अब इस इकाई में हम यह जानने का प्रयास करें कि इन जैविक एवं सामाजिक कारकों की अन्तःक्रिया से जिस व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास होता है उसे मापते कैसे हैं? व्यक्तित्व मापन की उपयोगिता इस बात को लेकर है कि इससे जहाँ एक ओर व्यक्तित्व के स्वरूप और उसके विकास से सम्बन्धित नये-नये ज्ञान प्राप्त होते हैं, वही दूसरी ओर व्यावहारिक जीवन में व्यक्ति की समस्याओं का समाधान करने एवं उसे सही मार्ग दर्शन देने में मद्द मिलती है। आज व्यापारिक प्रतिष्ठानों में सफल सेल्समैन की नियुक्ति हो, औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कुशल कर्मचारी व अधिकारी का चयन हो, सेना में अफसरों की नियुक्ति हो, अथवा सरकारी/गैरसरकारी इकाइयों में विभिन्न पदों पर योग्य कर्मचारियों/अधिकारियों के चयन का मामला हो-व्यक्तित्व के विभिन्न परीक्षणों का इस्तेमाल कर इस समस्या का समाधान पूरी दुनिया में बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। इतना ही नहीं, आज व्यक्तित्व की माप कर शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन एवं परामर्श देने का कार्य भी जोरों पर है। इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व का मापन एवं मूल्याकन अत्यावश्यक है।

प्रस्तुत इकाई में आप व्यक्तित्व मापन से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों, मापन पद्धतियों एवं मापन के क्षेत्र में व्याप्त मूल विवाद विषयों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 उद्देश्य-

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. आप व्यक्तित्व मापन की आवश्यकता एवं सार्थकता पर प्रकाश डाल सकें।
2. व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों की तुलना कर सकें।
3. विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व परीक्षणों की व्याख्या कर सकें तथा
4. व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय पर अपना सुझाव दे सकें।

3.3 व्यक्तित्व मापन का अर्थ-

व्यक्तित्व मापन का अर्थ व्यक्तित्व के शीलगुणों का पता लगाकर यह निर्धारित करना होता है कि किस सीमा तक ये शीलगुण संगठित अथवा असंगठित या विसंगठित हैं। किसी भी व्यक्ति के विभिन्न शीलगुण जब आपस में संगठित होते हैं तो इससे व्यक्ति का व्यवहार सामान्यता की ओर अग्रसर होता है तथा ठीक विपरीत, व्यक्तित्व के शीलगुणों के विसंगठित होने पर व्यक्ति का व्यवहार असामान्य होने लगता है।

मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि व्यक्तित्व मापन से व्यक्तित्व के विकास तथा उसके स्वरूप से सम्बन्धित बहुत से ज्ञान प्राप्त होते हैं, साथ-ही इस क्षेत्र में शोध करने तथा नये-नये सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने में मद्द मिलती है। यह व्यक्तित्व मापन का सैद्धान्तिक पहलू है।

मनोवैज्ञानिक मापन का व्यावहारिक पहलू असंगठित शीलगुणों से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की असामान्यताओं को दूर करने में व्यक्ति की सहायता करना है। व्यक्तित्व मापन से यह पता चलता है कि व्यक्तित्व के किस-किस शीलगुण की शक्ति कितनी है और किस शीलगुण की कमी से व्यक्ति को समायोजन करने में दिक्कत होती है। अतः व्यक्तित्व मापन करके वैसे व्यक्तियों को मद्द दी जाती है जिन्हें समायोजन में व्यक्तिगत कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न क्षेत्रों में नेतृत्व चयन एवं उत्तरदायी पदों पर सही व्यक्ति की नियुक्ति भी व्यक्तित्व मापन का व्यावहारिक उद्देश्य है।

व्यक्तित्व मापन मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए भी उपयोगी है। मनोवैज्ञानिक अपने शोधों द्वारा यह जानने की रूचि रखते हैं कि क्या उम्र के साथ-साथ व्यक्तित्व में परिवर्तन होता हैं, क्या बालकों में कुछ ऐसे व्यक्तित्व विशेषक या शीलगुण होते हैं जिनके कारण वे एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न होते हैं, क्या अभिन्न समयज (जुड़वों) के व्यक्तित्व में स्पष्ट अन्तर पाया जाता है, व्यक्तित्व शीलगुण और सामाजिक-आर्थिक स्तर में क्या सम्बन्ध होता है; माता-पिता के बीच के तनावपूर्ण सम्बन्घ का बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर कैसा प्रभाव पड़ता है-आदि-आदि।

इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने हेतु मनोवैज्ञानिकों के लिए व्यक्तित्व की माप या परीक्षण आवश्यक है।

3.4 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी दृष्टिकोण-

व्यक्तित्व की माप हेतु मनोवैज्ञानिकों ने अनेक मापक बनाये है; जो उनके विभिन्न दृष्टिकोणों के अनुरूप हैं। अतः व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों का वर्णन करने से पहले उन दृष्टिकोणों का वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता है जिनके आधार पर व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियां विकसित हुई हैं।

सामान्यतः व्यक्तित्व मापन के विभिन्न दृष्टिकोणों को निम्नलिखित तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है- (1) समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण, (2) शीलगुण दृष्टिकोण तथा (3) प्रक्षेपी जाँच का दृष्टिकोण।

3.4.1 समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण-

इस दृष्टिकोण से संपूर्ण व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है। अर्थात, इस दृष्टिकोण से जो मनोवैज्ञानिक किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की परख करने में अभिरूचि रखते हैं, वे व्यक्तित्व के किसी खास पक्ष पर जोर न देकर व्यक्ति का समग्र रूप से मूल्यांकन करने पर जोर देते हैं। इस दृष्टिकोण से व्यक्तित्व-मूल्यांकन का सर्वप्रथम प्रयास जर्मन सैनिक मनोवैज्ञानिकों ने किया और तब ब्रिटिश सेना के मनोवैज्ञानिकों ने इसे बाद में चलकर उसी देश की एक सैनिक संस्था ऑफिस ऑफ द स्ट्रेटेजिक सर्विसेज ने पिछले विश्वयुद्ध के जमाने में दुश्मनों की सैन्य-शक्ति को दुर्बल करने और अपनी सेना के नैतिक बल को बढ़ाने, दुश्मनों को परास्त करने के लिए महत्वपूर्ण रचनाएँ एकत्र करने आदि कार्यो के लिए सफल व्यक्तियों को चुनकर सेना में भरती करने के हेतु किया था।

3.4.2 शीलगुण दृष्टिकोण-

कुछ मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार व्यक्तित्व शीलगुणों का समूह या संगठन है अतः, उनके अनुसार विभिन्न शीलगुणों को अलग-अलग मापकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पता लगाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण को मानने वालों में कैटेल, ऑलपोर्ट, लेविन, आइजेंक आदि के नाम प्रमुख है।

3.4.3 प्रक्षेपी जाँच का दृष्टिकोण-

कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि शीलगुण-दृष्टिकोण व्यक्तित्व का सतही दृष्टिकोण है, अतः केवल शीलगुणों को मापकर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहराई का पता नहीं लगाया जा सकता। व्यक्तित्व की गहराई में व्यक्ति की मनोवृत्ति, प्रेरणा, रूचियाँ आदि रहती हैं तथा इनके संगठन से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व के इन पक्षों का पता किसी प्रत्यक्ष विधि द्वारा लगाना मुश्किल होता है। अतः, आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति को एक ऐसी जाँच परिस्थिति में रखा जाए, जिसमें वह अपनी मनोवृत्ति, प्रेरणा, रूचि आदि को व्यक्त कर सके। (प्रक्षेपण प्रविधियों) इसके लिए प्रक्षेपण प्रविधियों का विकास किया गया, जिन्हें व्यक्तित्व की प्रक्षेपी माप कहते हैं। मानसिक रोगियों के व्यक्तित्व का अध्ययन करने हेतु इन प्रविधियों का उपयोग सर्वाधिक लाभप्रद

होता है, क्योंकि मानसिक रूप से अस्वस्थ व्यक्ति इन परिस्थितियों में आसानी से अपने अंतःमन की बातों को प्रकट कर सकते हैं। इन प्रविधियों का उपयोग मनोविश्लेषकों के लिए भी लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

3.5 व्यक्तित्व परीक्षण की प्रमुख विधियां-

व्यक्तित्व मापन के विभिन्न दृष्टिकोणों पर आधारित व्यक्तित्व परीक्षण की अनेकों विधियां विकसित की गई हैं जिन्हें हम मूलतः तीन प्रमुख वर्गो में बाँट सकते हैं-

(क) व्यवहार-अध्ययन की विधियाँ

(ख) नैदानिक विधियाँ

(ग) मनोमितिक विधियाँ

3.5.1 व्यवहार-अध्ययन की विधियाँ-

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति के व्यवहार निर्माण की प्रक्रिया में आदत-प्रतिरूपों का योगदान रहता है। ये आदत-प्रतिरूप अपूर्व ढंग से सामान्यीकृत हो जाते हैं और इन्हीं सामान्यीकृत आदत-प्रतिरूपों के संगठन से व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

आदत-प्रतिरूप व्यक्ति के व्यवहार में प्रकअ होते हैं। अतः, इस दृष्टिकोण के अनुसार, व्यक्तित्व उत्तेजना-प्रतिक्रिया-व्यापार है। उत्तेजना-प्रतिक्रिया की प्रत्येक इकाई एक आदत बनती है। इस तरह की अनेक आदतें एक साथ संगठित होकर आदत-तंत्र की रचना करती हैं। इन्हीं आदत तंत्रों के योग को व्यक्तित्व कहते है। अर्थात, व्यक्तित्व उत्तेजना प्रतिक्रिया की इकाइयों अथवा आदत एवं आदत-तंत्र का योग होता है। इन आदत या आदत-तंत्रों की अभिव्यक्ति मनुष्य के व्यवहार में परिलक्षित होती है। अतः, किसी व्यक्ति के व्यवहार का बाह्य निरीक्षण या अवलोकन कर उसके व्यक्तित्व के बारे में आसानी से जाना जा सकता है। अस्तु, व्यक्तित्व की परख के लिए व्यवहार-अध्ययन की विधियों के विकास में व्यवहारवादियों का ही योगदान रहा है।

व्यवहार-अध्ययन में व्यक्ति को विभिन्न परिस्थितियों में रखकर उसके व्यवहार का अवलोकन किया जाता है। परिस्थितियाँ दो तरह की हो सकती हैं- (1) स्वाभाविक परिस्थिति एवं (2) जाँच-परिस्थितियाँ।

स्वाभाविक परिस्थिति में जब किसी के व्यवहार का निरीक्षण या अवलोकन किया जाता है, तब उसे स्वाभाविक या वास्तविक परिस्थिति में किया गया निरीक्षण कहते हैं।

जाँच-परिस्थिति में परिस्थिति अस्वाभाविक रहती है। यह परिस्थिति जाँचक द्वारा बनाई या निर्मित की जाती है। वह जान-बूझकर एक ऐसी परिस्थिति उपस्थित करता है जिससे व्यक्ति (प्रयोज्य) खास तरह का आचरण (व्यवहार या प्रतिक्रिया) करे। इसीलिए, इसे अस्वाभाविक निरीक्षण कहते हैं।

3.5.1.1 स्वाभाविक परिस्थिति में अध्ययन-

स्वाभाविक परिस्थिति में व्यक्ति का व्यवहार भी स्वाभाविक होता है। लेकिन, इस तरह की परिस्थिति में कुछ कठिनाइयाँ भी हैं; जैसे-स्वाभाविक परिस्थिति पर पूर्ण नियंत्रण का अभाव। नियंत्रण के अभाव में व्यक्ति के व्यवहार के संबंध में प्राप्त सूचनाएँ अविश्वसनीय हो सकती हैं, अतः इस आधार पर प्राप्त निष्कर्ष वैज्ञानिक दृष्टिकोण से त्रुटिपूर्ण होगा। एक अन्य कठिनाई यह है कि स्वाभाविक परिस्थिति में किसी व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण कर प्राप्त निष्कर्ष की सत्यता को हम पुनः समान परिस्थिति में दुबारा जाँच करके सत्यापित करना चाहें तो पुनः पहले वाली स्वाभाविक परिस्थिति के उत्पन्न होने के लिए लंबे समय तक हमें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी और साथ-ही-साथ

यह भी संभव है कि दूसरी बार में व्यक्ति के व्यवहार में कुछ भिन्नता या परिवर्तन आ जाए। अतः, स्वाभाविक परिस्थितियाँ किसी निष्कर्ष की सत्यता की जाँच करने में सहायक नहीं होती।

स्वाभाविक परिस्थिति में निरीक्षण करने में एक और कठिनाई यह है कि व्यक्ति को जब यह पता चल जाएगा कि कोई अन्य व्यक्ति उसके द्वारा प्रदर्शित व्यवहारों का अवलोकन या निरीक्षण कर रहा है, तब वह अपने स्वाभाविक व्यवहार को छिपा लेने अथवा उस पर पर्दा डालने की कोशिश कर सकता है। फलस्वरूप, सही एवं स्वाभाविक व्यवहार का निरीक्षण करना मुश्किल हो जाएगा।

3.5.1.2 जाँच परिस्थिति में अध्ययन-

जाँच-परिस्थितियाँ अध्ययकर्ता द्वारा निर्मित परिस्थितियाँ होती हैं और उन निर्मित परिस्थितियों में व्यक्ति द्वारा प्रदर्शित व्यवहारों का निरीक्षण किया जाता है। इस तरह के निरीक्षण में स्वाभाविक परिस्थिति की कठिनाइयाँ दूर हो जाती है। निरीक्षणकर्ता को जब किसी के व्यवहार का निरीक्षण करना होता है तब वह विशिष्ट प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न करता है तथा उक्त परिस्थिति में व्यक्ति द्वारा प्रकट किए गए व्यवहारों का वस्तुगत ढंग से निरीक्षण कर उसके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करता है। इस तरह की परिस्थितियों में व्यक्ति को यह जानकारी नहीं दी जाती कि कोई उसका निरीक्षण कर रहा है, फलतः वह सामान्य रूप से उस तरह की परिस्थिति में जैसा व्यवहार करता है, उसी तरह के व्यवहार को प्रदर्शित करने की संभावना जाँच परिस्थिति में भी रहती है। उदाहरणार्थ, मान लें कोई शिक्षक अपने वर्ग के विद्यार्थियों की ईमानदारी के गुण की जाँच करना चाहता है। इसके लिए शिक्षक वर्ग के छात्रों को कोई कार्य करने हेतु यह निर्देश देता है कि छात्र स्वयं ईमानदारी के साथ बिना किसी प्रकार की नकल किए हुए इस कार्य को पूरा करें। इसके बाद शिक्षक वर्ग से बाहर चला जाता है, अर्थात छात्रों पर कोइ्र निगरानी नहीं रखता और निर्धारित समय के बाद वह छात्रों के कार्य-उत्पादन का विवरण एकत्र कर लेता है। कुछ समय बाद समान परिस्थिति में समान तरह के कार्य देकर छात्रों को पुनः ईमानदारी के साथ उस कार्य को करने का निर्देश देता है। पर, इस बार शिक्षक स्वयं वर्ग में उपस्थित रहकर छात्रों पर कड़ी निगरानी रखता है। इन दोनों परिस्थितियों में छात्रों द्वारा संपादित कार्य का मूल्यांकन करने पर यदि कोई छात्र पहले वाली अवस्था (बिना निगरानी की अवस्था) की अपेक्षा दूसरी अवस्था (निगरानी की अवस्था) में अच्छा अंक नहीं प्राप्त कर पाएगा तो इससे यह स्पष्ट होगा कि उस छात्र ने पहली अवस्था में नकल की थी। इस तरह से प्राप्त तथ्य को विश्वसनीय बनाने हेतु अध्ययनकर्ता विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार के कार्यो का उपयोग करेगा। विभिन्न अवसरों पर छात्र की नकल करने की बारंबारता के आधार पर ईमानदारी के गुण का विश्वसनीय परीक्षण किया जा सकता है।

नेतृत्व की योग्यता की परख के लिए इस तरह की विधि का उपयोग अधिक प्रचलन में है। नेतृत्वविहिन समूह-बहस की परिस्थितियों में बहस का कोई विषय रखा जाता है और उस समूह में भाग लेने वाले प्रयोज्यों का निरीक्षण किया जाता है। इस समूह में सभी प्रयोज्य एक-दूसरे के लिए अपरिचित रहते हैं, अतः किसी का किसी के प्रति पहले से कोई संबंध नहीं रहता तथा परिस्थिति को यथासंभव अनिर्मित रखा जाता है। बहस का विषय अच्छी तरह परिभाषित भी नहीं रहता। इसे परिभाषित करने का कार्य समूह पर ही छोड़ दिया जाता है; साथ ही बहस के लिए कोई औपचारिक नियम, कायदे-कानून इत्यादि नहीं रहते। निरीक्षक मौजूद रहता है, किंतु वह निष्क्रिय रहता है। प्रायः इन परिस्थितियों में एक से अधिक निरीक्षण रहते हैं तथा वे बहस में भाग लेने वाले प्रयोज्यों के सफल नेतृत्व की मात्रा के अनुसार उन्हें विभिन्न श्रेणियों में श्रेणीगत करते हैं। इस तरह की प्रविधि का उपयोग बास (1954) ने

सफलतापूर्वक किया है। इस प्रविधि का उपयोग 1946 ई0 में ऑफिस ऑफ स्ट्रेटेजिक सर्विस द्वारा भी किया गया है।

3.5.2 नैदानिक विधियाँ-

नैदानिक विधियों का विकास नैदानिक क्षेत्रों के मनोवैज्ञानिकों के प्रयासों की देन है। इनमें से कुछ प्रचलित प्रविधियों का वर्णन आगे किया जा रहा है-

3.5.2.1 साक्षात्कार-विधि-

यह विधि मनचिकित्सकों एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की एक प्रमुख प्रविधि है। इन क्षेत्रों में व्यक्तित्व-संबंधी विकृतियों के अध्ययन एवं उन्हें दूर करने के प्रयासों के सिलसिले में इसका सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है।

साक्षात्कार आमने-सामने परस्पर वार्तालाप या समालाप करने की विधि है। इस विधि में जिसके व्यक्तित्व की जाँच करनी होती है उसे साक्षात्कार का उम्मीदवार और जो व्यक्तित्व की जाँच करता है उसे साक्षात्कारकर्ता कहते हैं। ये दोनों एक दूसरे के आमने-सामने साधारण वार्तालाप करते है तथा इसी वार्तालाप द्वारा व्यक्ति की व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है।

साक्षात्कार निर्मित और अनिर्मित दो तरह का होता है। निर्मित यानी 'रचित साक्षात्कार' की विधि में व्यक्तित्व के जिस पक्ष या विशेषता को मापना होता है, उससे संबद्ध निश्चित प्रश्न पहले से ही निर्धारित कर लिए जाते हैं तथा उन प्रश्नों के उत्तरों के विकल्प भी पूर्वनिर्धारित रहते हैं। साक्षात्कारकर्ता उम्मीदवार से क्रमशः उन प्रश्नों को पूछता जाता है जिसे वह पूर्वनिर्धारित वैकल्पिक उत्तरों में से किसी एक को जो उसकी विशेषता के अनुरूप होता है, चुनकर बताता है। साक्षात्कार की इस परिस्थिति में साक्षात्कारकर्ता और उम्मीदवार दोनों के कार्य अत्यंत सरल होते हैं। साक्षात्कारकर्ता केवल पूर्वनिर्धारित प्रश्नों को पूछता जाता है तथा उम्मीदवार उनके पूर्व निर्धारित वैकल्पिक उत्तरों में से किसी एक को चुनकर बताता है जिसे समालापक नोट कर लेता है।

अनिर्मित अथवा अरचित साक्षात्कार में उम्मीदवार की भूमिका ही प्रधान रहती है। वह अपनी बातों (भावनाओं, विचारों आदि) को स्वयं प्रकट करता है। साक्षात्कार की प्रक्रिया का प्रारंभ, गतिविधि का संचालन एवं साक्षात्कार का अंत आदि सब उसकी इच्छा एवं योग्यता पर निर्भर है। पूछे जाने वाले प्रश्न और उनके उत्तर भी पूर्वनिर्धारित नहीं होते। साक्षात्कारकर्ता एक निष्क्रिय व्यक्ति की तरह केवल अवलोकन एवं नोट करने का कार्य करता है। इससे उम्मीदवार को इस बात की पूरी छूट रहती है कि वह किसी बात को जिस ढंग से चाहे व्यक्त कर सकता है। साक्षात्कारकर्ता बीच-बीच में उम्मीदवार को अपनी बातों को अच्छी तरह प्रकट करने हेतु उत्साहित करता है तथा उसके द्वारा कही गई बातों की गहराई को कुरेदने के उद्देश्य से कुछ आगे भी प्रश्न करता है। इस प्रकार, वह साक्षात्कार की गतिविधि को आगे बढ़ाने में सहयोग देता है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के साक्षात्कार को क्रमशः दृढ़ एवं खुला हुआ अथवा क्लाईंट सेंटर्ड इंटरव्यू भी कहते हैं। नैदानिक दृष्टिकोण से चूँकि अरचित साक्षात्कार में व्यक्ति के व्यक्तित्व की गहराई में पहुँचने का प्रयास किया जाता है अतः साक्षात्कार की इस विधि का ही उपयोग बहुधा किया जाता है। लेकिन, व्यक्तित्व की किसी वांछित विशेषता के आधार पर व्यक्तियों के चयन हेतु रचित साक्षात्कार-विधि का उपयोग सरल और सुविधाजनक है। अतः, व्यक्तियों के चयन हेतु इसी प्रविधि का उपयोग अधिकतर किया जाता है।

3.5.2.2 व्यक्ति-इतिहास विधि-

नैदानिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व की परख के लिए व्यक्ति-इतिहास विधि का उपयोग आवश्यक मानते हैं। इस विधि में व्यक्ति के संपूर्ण विगत जीवन (तात्कालिक अवस्था तक का) इस एक ऐतिहासिक ब्योरा या विवरण तैयार करते हैं तथा उसके विगत जीवन की विभिन्न घटनाओं का विश्लेषण कर व्यक्तित्व का अध्ययन करते हैं।

व्यक्ति के गत जीवन के संबंध में सूचनाओं को एकत्र करने हेतु व्यक्ति की जीवनी एवं आत्मजीवनी का भी उपयोग सूचनादायक यंत्र के रूप में किया जाता है। इसमें मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के निकट संबंधियों, जैसे-माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन तथा अन्य संबंधियों इत्यादि से भी संपर्क कर उनके साथ समालाप यानी साक्षात्कार-प्रविधि की सहायता से कुछ सूचनाएँ एकत्र करता है। इस प्रकार, व्यक्ति-इतिहास विधि अपने-आपमें अकेली विधि नहीं है, अपितु इसमें कई प्रविधियों जैसे-जीवनकथा, आत्मजीवनी, साक्षात्कार, व्यक्ति का अंतर्निरीक्षण या आत्मवृतांत आदि का सहयोग लिया जाता है। इन सभी प्रविधियों के सहयोग से व्यक्तित्व का पारखी व्यक्ति के संबंध में सूचनाएँ एकत्र करता है तथा उन्हीं सूचनाओं को व्यवस्थित और विश्लेषित कर व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में अध्ययन करता है।

3.5.3.3 प्रक्षेपण विधियाँ-

नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व की माप के लिए अत्यधिक प्रामाणिक विधि की खोज की दिशा में अनुसंधान करने की आवश्यकता महसूस की जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रक्षेपण प्रविधियों का विकास हुआ। इन प्रविधियों की एक विशेषता यह है कि इनके द्वारा किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का गहराई से अध्ययन वस्तुगत एवं मनोमितिक प्रणालियों द्वारा किया जा सकता है।

'प्रक्षेपण' का अर्थ 'आरोपण' से है। अर्थात, व्यक्ति अपने मनोभावों एवं विचारों को दूसरों पर आरोपित करता है। व्यक्ति के सम्मुख जब कोई तटस्थ या अर्थहीन वस्तु या परिस्थिति उपस्थित होती है, तब वह उन वस्तुओं में किसी अर्थपूर्ण वस्तु को देखता है। ऐसा देखने में व्यक्तिगत विभिन्नता पाई जाती है, अर्थात एक ही तटस्थ परिस्थिति में विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न वस्तुएँ देखते हैं। उदाहरण के लिए, कभी-कभी हम आकाश में छाए हुए बादलों में मानव-आकृति का अनुभव करते है। लेकिन, जब कोई दूसरा व्यक्ति उसे देखता है तब उसे पेड़ नजर आता है, तीसरे को कोई पशु, चौथे को महल इत्यादि। इसी तरह के अनुभवों के आधार पर मनोवैज्ञानिकों ने तटस्थ अथवा अपरिचित अथवा अस्पष्ट परिस्थितियों या तस्वीरों के प्रामाणिक सेट बनाकर प्रयोज्यों के समक्ष उपस्थित किया है तथा उनके द्वरा प्रक्षेपित या आरोपित विचारों का विश्लेषण कर उनके व्यक्तित्व का मूल्यांकन करने की विधि विकसित की है। इन परिस्थितियों में व्यक्ति जिन सार्थक वस्तुओं को देखता है अथवा जिन विचारों को व्यक्त करता है, उनका संबंध व्यक्ति के अंतःमन की प्रकृति या उसके व्यक्तित्व की विशेषताओं से रहता है।

व्यक्तित्व की प्रक्षेपण-मापों की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इस विधि द्वारा व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के प्रेरक तत्वों का भी पता आसानी से चल जाता है।

व्यक्तित्व की प्रक्षेपण-मापों को गहरी जाँच की संज्ञा दी जाती है, क्योंकि इस विधि द्वारा अचेतन प्रवृत्तियों का भी पता चल जाता है।

व्यक्तित्व की प्रक्षेपण प्रविधियों में मर्रे का थीमेटिक-एपरसेप्सन टेस्ट या टी0ए0टी0, रोर्शा का इंक ब्लॉट टेस्ट या आर0टी0, काहन का टेस्ट ऑफ सिम्बॉल अरेंजमेंट, युंग का शब्द-साहचर्य विधि, वाक्यपूर्ति जाँच आदि प्रविधियाँ मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं।

अब इन प्रविधियों का संक्षेप में एक-एक कर वर्णन किया जा रहा है-

(क) थीमेटिक-एपरसेप्सन टेस्ट-

मर्रे एवं उनके सहयोगी मॉर्गन ने व्यक्तित्व की जाँच के लिए टी.ए.टी. का निर्माण किया है। इस जाँच में विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में अपरिचित मानव-चेहरों के 30 कार्ड हैं जिनमें एक कार्ड सादा भी है।

प्रत्येक कार्ड की पीठ पर यह अंकित रहता है कि किस कार्ड का उपयोग पुरूषों, स्त्रियों अथवा दोनों, वयस्कों एवं बच्चों पर होगा। इस प्रकार व्यक्ति की उम्र एवं लिंग के अनुसार 20-20 कार्ड चुन लिए जाते हैं तथा 10-10 कार्डो के द्वारा दो सत्रों में उनके व्यक्तित्व की जाँच की जाती है। केवल एक सत्र में 10 कार्डो की सहायता से भी काम चलाया जाता है।

व्यक्तित्व का पारखी व्यक्ति को निर्देश देता है कि उसके सामने कुछ दृश्यों के चित्र क्रमशः एक-एक कर एक निश्चित समय (2 मिनट) के लिए दिखाए जाएँगे। प्रत्येक चित्र को उक्त अवधि तक अवलोकन करने के बाद उसे उस चित्र के आधार पर एक छोटी काल्पनिक कहानी लिखनी होगी जिसमें अग्रलिखित तीन बातों पर प्रकाश पड़े- (1) वर्तमान में चित्र के पात्र क्या कर रहे हैं (2) चित्र के पात्र या पात्रों के साथ यह स्थिति क्यों उत्पन्न हुई तथा (3) अंतिम परिणाम क्या होने जा रहा है

इस निर्देशन के बाद बारी-बारी से चुने गए कार्ड दिखाए जाते हैं। तथा प्रत्येक कार्ड के संबंध में व्यक्ति द्वारा लिखी गई लघुकथाओं का विश्लेषण कर उनके व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है।

मर्रे के विचारानुसार टी.ए.टी परीक्षणों में व्यक्ति जो कहानी प्रस्तुत करता है, उसमें वह तस्वीर के पात्रों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है, अर्थात चित्र के पात्र और अपने में कोइ्र अंतर नहीं समझता (सारूप्य समझता है)। अतः, उसकी कहानी में उसके व्यक्तिगत जीवन की अप्रकट या गुप्त घटनाओं की झलक मिलती है। कहानी के माध्यम से व्यक्ति अपने उन संवेगों या भावों, इच्छाओं, विचारों आदि को प्रकट करता है, जिन्हें वह अपने सामान्य जीवन में खुलकर व्यक्त करने में हिचकिचाता है अथवा उन्हें अपने से संबद्ध होने से इनकार करता है। इस प्रकार, मर्रे के अनुसार व्यक्ति की इन कहानियों द्वारा उसके प्रभावी प्रेरकों, संवेग, भावुकता एवं मानसिक संघर्ष की स्थिति आदि का पता चलता है।

मनोमितिक सिद्धांत के आधार पर इस परीक्षण की विश्वसनीयता एवं सार्थकता की जाँच हेतु कई मनोवैज्ञानिकों ने अनेक विधियों द्वारा अध्ययन किया है। इन अध्ययनों से प्राप्त परिणामों में एकरूपता नहीं मिलने के कारण इसकी विश्वसनीयता एवं सार्थकता के बारे में संदेह उत्पन्न होता है।

फिर भी सामान्य एव असामान्य मनोदशा के व्यक्तियों में अंतर करने, मानसिक रोगियों के निदान एवं चिकित्सा के लाभों का मूल्यांकन करने के क्षेत्रों में इस परीक्षण को अत्यंत ही उपयोगी पाया गया है। स्कूल एवं कॉलेज के छात्रों के व्यक्तित्व एवं शैक्षणिक योग्यता-संबंधी भविष्यवाणी करने में भी यह एक उपयोगी परीक्षण प्रमाणित हुआ है।

निष्कर्ष रूप में हम यही कह सकते हैं कि मनोमितिक आधार पर यह परीक्षण दूसरे वस्तुनिष्ठ परीक्षणों की तुलना में उतना अच्छा नहीं होते हुए भी नैदानिक उपयोग की दृष्टि से एक उपयोगी परीक्षण है।

(ख) रोर्शा परीक्षण-

स्विस मनचिकित्सक हर्मन रोर्शा ने 1921 ई0 में स्याही के धब्बों की तरह के अनिर्मित चित्रों का एक परीक्षण बनाया। इसीलिए, इस ‘स्याही धब्बा परीक्षण’ के नाम से भी जाना जाता है। इस परीक्षण में 10 कार्ड होते हैं और प्रत्येक कार्ड में स्याही के धब्बों की तरह के विभिन्न रूपों के चित्र बने होते हैं। इनमें 5 कार्डो के चित्र काले और

उजले धब्बों के हैं तथा शेष 5 कार्डो के चित्र रंगीन धब्बों के। रोर्शा ने सैकड़ों ऐसे धब्बों वाले चित्रों पर प्रयोग कर 10 चित्रों का चयन किया है।

इस परीक्षण द्वारा वस्तुतः व्यक्तित्व की रचना का पता चलता है, जिसे साक्षात्कार या दूसरी किसी प्रत्यक्ष विधि से ज्ञात करना सामान्यतः संभव नहीं होता। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति इस परीक्षण के रंगों के प्रति किस प्रकार की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करता है, इससे उसकी संवेगात्मक प्रतिक्रिया का पता लगाया जा सकता है।

इस परीक्षण में व्यक्ति को विभिन्न कार्डो की धब्बा-आकृतियों को देखकर निम्नलिखित बातें बतानी होती हैं-

चित्र में उसे किन-किन वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण होता है, अर्थात वह क्या-क्या देखता है। उन वस्तुओं को चित्र के किन-किन भागों में देखता है तथा चित्र की कौन-सी ऐसी विशेषता है जिसके कारण उसे खास तरह की चीजें दिखाई पड़ती है।

रोर्शा परीक्षण द्वारा व्यक्ति की प्रतिक्रियाओें के लिए चार प्रकार के अंक दिए जाते हैं-स्थान, निर्धारक, तथ्य-विषय एवं प्रतिक्रियाओं की लोकप्रियता अथवा मौलिकता।

उपर्युक्त ढंग से व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का अंकन करने के बाद उनका विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व के संबंध में समुचित ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

रोर्शा परीक्षण का संचालन एवं अंकन-प्रणाली अत्यंत ही जटिल है। अतः, इसका उपयोग विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते हैं।

रोर्शा परीक्षण द्वारा प्राप्त प्रतिक्रियाओं का अंकन वस्तुगत एवं आत्मगत दोनों तरह से किया जाता है। उदाहरण के लिए, धब्बों के किसी भाग पर वह कितने प्रकार की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करता है, कि तुलना धब्बों के संपूर्ण भाग पर व्यक्त की गई प्रतिक्रियाओं की संख्या से हो सकती है। इसी प्रकार, रंगों के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं एवं गतिसूचक प्रतिक्रियाओं की भी गणना ही नहीं करते, अपितु वे विभिन्न प्रतिक्रियाओं के प्रतिरूपों एवं कुछ अन्यान्य संकेतों का भी उपयोग आत्मगत ढंग से व्याख्या एवं विश्लेषण हेतु करते हैं। स्पष्ट है कि इस प्रविधि द्वारा व्यक्तित्व की परख हेतु वस्तुगत एवं आत्मगत दोनों तरह का विश्लेषण किया जाता है।

यद्यपि इस परीक्षण का निर्माण मानसिक रोगियों के व्यक्तित्व की जाँच के उद्देश्य से ही हुआ है, तथापि कुछ लोग इसका उपयोग विभिन्न पेशों के लिए व्यक्तियों के चयन के उद्देश्य से भी करने का दावा करते हैं। लेकिन, कुर्ज (1948) को जीवन बीमा कंपनियों के प्रबंधकों एवं अन्यान्य औद्योगिक एवं सैन्य संगठनों में व्यक्तियों के चयन में इस परीक्षण से पर्याप्त सफलता नहीं मिल सकी। अतः, अन्यान्य परिस्थितियों में इसके उपयोग किए जाने के यथेष्ट प्रमाण नहीं हैं।

(ग) काहन का सिम्बॉल अरेंजमेंट जाँच-

उपर्युक्त दोनों परीक्षणों से भिन्न, काहन(1955) ने भी एक प्रक्षेपण-परीक्षण का निर्माण किया है, जिसे काहन टेस्ट ऑफ सिम्बाल अरेंजमेंट कहते हैं। इस परीक्षण में कुछ प्रतीक, जैसे-हृदय, तितलियाँ, कुत्ते, तारे आदि उपयोग में लाए जाते हैं। व्यक्ति से उसके लिए ये प्रतीक क्या अर्थ रखते हैं-पूछा जाता है तथा व्यक्ति के द्वारा इन प्रतीकों को व्यक्तित्व पारखी के विभिन्न निर्देशों के अनुसार बारी-बारी से कई बार व्यवस्थित कराया जाता है।

इस परीक्षण में व्यक्ति विभिन्न प्रतीकों का अपने अनुसार जो अर्थ लगाता है, उसके लिए अंक प्रदान किया जाता है। इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति के रचनात्मक गुणों की परख की जाती है तथा इस कार्य में शारीरिक अथवा संवेगात्मक तत्वों के कारण जो कमी दृष्टिगोचर होती है, उसके संबंध में अनुमान लगाया जाता है।

दूसरे प्रक्षेपण-परीक्षणों के विपरीत, इस परीक्षण के संचालन एवं अंकन में बहुत ही कम समय लगता है। इसके संचालन में लगभग 15 मिनट का समय लगता है तथा अंकन का काम मात्र 3 मिनट में पूरा किया जा सकता है। साथ ही, इस परीक्षण के संचालन के लिए गहन प्रशिक्षण की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

नैदानिक दृष्टिकोण से भी यह एक उपयोगी परीक्षण माना जाता है। मर्फी, बोलिंगर एवं फेरिमैन ने इस परीक्षण को मानसिक रोगियों के वर्गीकरण में अत्यंत ही कुशल परीक्षण पाया है। काहन एवं जिफेन (1960) के अनुसार मनोविदालिता के लक्षणों की पहचान करने में यह परीक्षण पूर्णतः सफल प्रमाणित हुआ है। अतः, स्पष्ट है कि यह परीक्षण नैदानिक कार्यो के लिए एक उपयोगी परीक्षण है।

(घ) शब्द साहचर्य जाँच-

इस जाँच में संवेगात्मक शब्दों और असंवेगात्मक अथवा तटस्थ शब्दों की मिली-जुली एक सूची तैयार की जाती है। दोनों प्रकार के शब्दों की संख्या बराबर-बराबर रखी जाती है। व्यक्ति के सम्मुख प्रत्येक शब्द को एक-एक कर बारी-बारी से उपस्थित किया जाता है तथा व्यक्ति प्रत्येक शब्द को सुनने के तुरंत बाद ही प्रतयुत्तर में उस शब्द को बोलता है, जो सबसे पहले उसकी चेतना में आते हैं। प्रत्येक शब्द को सुनने के बाद व्यक्ति कितनी देर में अपना प्रत्युत्तर देता है तथा प्रत्युत्तर के रूप में जो शबद बोलता है, उसे नोट कर लिया जाता है। सूची के प्रत्येक शब्द को एक बार प्रस्तुत कर लेने के बाद दुबारा उन शब्दों को पहले की ही तरह प्रस्तुत किया जाता है। दुबारा शब्दों को प्रस्तुत करने का उद्देश्य यह होता है कि व्यक्ति पहले दिए गए शब्दों को ठीक-ठीक बोल पाया है या नहीं-इसकी जाँच हो सके।

व्यक्ति कुछ संवेगात्मक शब्दों को सुनने के तुरंत बाद अपना प्रत्युत्तर देता है, तो कुछ शब्दों को सुनने के बाद प्रत्युत्तर देने में विलंब करता है। सूची में से सुनाए जाने वाले शब्दों को उत्तेजना शब्द कहते हैं तथा उनके प्रति व्यक्ति का जो प्रत्युत्तर होता है, उसे प्रतिक्रिया शब्द कहते है। इस प्रकार, विभिन्न उत्तेजना शब्दों के प्रति व्यक्ति द्वारा दिए गए प्रतिक्रिया शब्दों के बीच, जो समय व्यवधान होता है, उसकी गणना करके व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है, जिसके आधार पर संतुलन-विसंतुलन, संवेगात्मकता, प्रतिक्रिया आदि गुणों की परख की जाती है।

इस परीक्षण के उपयोग का श्रेय युंग (1918) महोदय को है, जिन्होंने 100 शब्दों की एक सूची बनाकर व्यक्ति की संवेगात्मक समस्याओं को समझने हेतु प्रयोग किया है। युंग के अतिरिक्त फ्रायड ने भी व्यक्तित्व की परख के लिए इस विधि को महत्वपूर्ण बताया है।

युंग के समय ही केंट तथा रोजेनौफ (1910) ने भी इस तरह का एक परीक्षण बनाया, जिसका उपयोग सामान्य एवं मनोस्नायु विकृति के रोगियों के व्यक्तित्वों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए किया जाता है। परंतु, युंग के परीक्षण की तुलना में यह परीक्षण उतना लोकप्रिय नहीं है। नैदानिक क्षेत्रों में यह एक अत्यंत ही उपयोगी परीक्षण सिद्ध हुआ है। इसका उपयोग मनचिकित्सा से मानसिक रोगियों के स्वास्थ्य-सुधार का मूल्यांकन करने, उनकी संवेगात्मक समस्याओं को समझने तथा विभिन्न मनःस्नायुरोगों के लक्षणों के अध्ययन के लिए विशेष महत्व रखता है।

व्यक्तित्व माप की यह विधि सरल भी है जिसका उपयोग साधारण प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति भी सफलतापूर्वक कर सकता है।

(ड.) वाक्य पूर्ति जांच -

व्यक्तित्व मापन की प्रक्षेपी विधियों में वाक्य-पूर्ति जांच भी एक महत्वपूर्ण विधि है जिसमें कुछ अधूरे वाक्य होते हैं जिन्हें पूरा करने के क्रम में व्यक्ति अपने मनोभावों, मनोवृत्तियों, आवश्यकताओं, प्रवृत्तियों एवं प्रेरणाओं आदि को

प्रक्षेपित या आरोपित करता है। सैक्स, टेंडलर, लिंडजे, फोरर आदि ने इस परीक्षण का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है।

(च) भारतीय प्रक्षेपण परीक्षण-

बहुत से भारतीय मनोवैज्ञानिकों का भी ध्यान प्रक्षेपण-प्रविधि के क्षेत्र की ओर गया है, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय अवस्था में भी कुछ प्रविधियों को प्रमाणित किया जा सका है।

भारतीय स्वरूप के कुछ चित्र बनाकर व्यक्तित्व के कुछ पक्षों का अध्ययन करने के उद्देश्य से उपयोग किया गया है। इस दिशा में मद्रास, मैसूर, अलीगढ़ एवं इलाहाबाद में सराहनीय कार्य हुए हैं। उदाहरण के लिए धपोला (1971) ने आक्रमण शीलता के गुण की पहचान हेतु टी.ए.टी. की कुशलता की जाँच की है। सिन्हा, ए0के0 एवं शर्मा, एम0बी0 ने भी भारतीय समूह पर एक अध्ययन कर टी0ए0टी0 एवं रोशार्क के परीक्षणों में अनाभियोजन के कुछ अतिरिक्त विषय सूचकों का पता लगाया है। प्रक्षेपण प्रविधियों का मार्ग दर्शन एवं निर्देशन में महत्व-का अध्ययन दोसाझ, एन0एल0 ने किया है। हाल ही में एन0सी0ई0आर0टी0 के उदय पारीक ने भी टी0ए0टी0 के अनुरूप उपलब्धि प्रेरणा को मापने के लिए एक परीक्षण बनाया है।

इसी तरह के और भी अनेक मनोवैज्ञानिकों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किए है। इन सभी कार्यो का वर्णन करना यहाँ अभीष्ट नहीं है।

3.5.3 मनोमितिक विधियाँ-

आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के नैदानिक दृष्टिकोण पर आश्रित रहना उपयुक्त नहीं समझते, क्योंकि उनकी दृष्टि में यह दृष्टिकोण और इस पर आधारित माप की विधियों में दो महत्वपूर्ण त्रुटियाँ है- (क) व्यक्तित्व का नैदानिक दृष्टिकोण मूल रूप से मानसिक रोगियों से प्राप्त प्रदत्तों पर आधारित है। अतः, इस दृष्टिकोण से सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व की व्याख्या उपयुक्त नहीं है। (ख) दूसरी कठिनाई यह है कि प्रारंभिक नैदानिक मनोविज्ञानी व्यक्तित्व की परिगणात्मक माप में अभिरूचि नहीं रखते थे। यद्यपि, आधुनिक नैदानिक मनोविज्ञानी इन दिनों व्यक्तित्व के परिणामस्वरूप मापकों का ही उपयोग करने लगे हैं, तथापि व्यक्तित्व संबंधी उनके सिद्धांत रोगियों के वैयक्तिक वाचिक वृत्तांतों पर ही आघृत है। अतः, इस दृष्टिकोण पर विभिन्न विद्वानों के विचारों में बहुत अधिक भिन्नता पाई जाती है। फलतः, उनके विचारों में वस्तुनिष्ठता का अभाव है।

उपर्युक्त कठिनाईयों के आलोक में ही आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने परिमाणात्मक एवं वस्तुनिष्ठ विधियाँ विकसित की है। व्यक्तित्व परख की इन्हीं वस्तुनिष्ठ एवं परिमाणात्मक विधियों के उपयोग के संबंध में मनोवैज्ञानिकों का विचार यह है कि व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों एवं उनके अंतःसंबंधों का वस्तुगत अध्ययन करके किसी व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व को ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है।

विभिन्न मनोमितिक विधियों का वर्णन करने से पहले इन विधियों की कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करना उपयुक्त प्रतीत होता है, जो निम्नलिखित हैं-

व्यक्तित्व की किसी भी माप का विकास करने से पहले कुछ विशेष बातों पर ध्यान दिया जाना उचित है। इस संबंध में सबसे पहली और महत्वपूर्ण बात यह है कि माप ऐसी हो जो मापी जाने वाली विशेषता को मापने में समर्थ हो, अर्थात वह एक सार्थक माप हो।

दूसरी बात यह है कि मापक यंत्र ऐसा हो जो समान अवस्था में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की बार-बार जाँच करने पर सदा समान बातें या परिणाम प्राप्त कर सके। समान अवस्था में बार-बार एक जैसा परिणाम मिलने पर मापक को विश्वसनीय माना जाता है। अतः, मनोमितिक मापकों में विश्वसनीयता का गुण आवश्यक है।

कोई भी जाँच या माप सार्थक या विश्वसनीय तभी हो सकती है, जब वह वस्तुगत स्वरूप की हो। अतः, मनोमितिक मापकों में वस्तुनिष्ठता का गुण होना भी जरूरी है।

किसी भी वैज्ञानिक अथवा वस्तुनिष्ठ माप की एक अंतिम प्रमुख विशेषता यह होती है कि उस माप द्वारा किसी व्यक्ति के संबंध में प्राप्त अंकों की व्याख्या उस समूह के दूसरे व्यक्तियों के संदर्भ में की जा सके। यह तभी संभव होगा, जबकि माप प्रामाणिक हो।

व्यक्तित्व की मनोमितिक विधियों में उपर्युक्त सभी विशेषताएँ पाई जाती है। व्यक्ति की मनोमितिक मापों में विशेष रूप से प्रश्नावलियों, आविष्कारिकाएं तथा श्रेणीगत मापनी उपयोग में लायी जाती है। इनमें से प्रश्नावली एवं आविष्कारिका को पेपर-पेंन्सिल जाँच भी कहा जाता है क्योंकि-मनोवैज्ञानिक उद्देश्य के लिए सबसे सुविधाजनक माप कागज-पेन्सिल माप या जाँच होती है। इस तरह की जाँच का उपयोग एक ही साथ कई व्यक्तियों पर आसानी से हो सकता है। इसमें समय और खर्च दोनों की बचत होती है। अतः, व्यक्तित्व की परख के लिए कागज-पेन्सिल जाँच ही सर्वाधिक प्रचलन में है। जेम्स एवं अन्य लोगों (1969) के अनुसार पिछले छः दशकों में इस तरह के अनेक मापक विकसित हुए हैं तथा आज भी अनेक मनोवैज्ञानिक इस कार्य में रत है।

3.5.3.1 प्रश्नावली-

प्रश्नावली में व्यक्ति के व्यवहार, स्वभाव अथवा व्यक्तित्व की विशेषताओं से संबंधित प्रश्नों की सूची होती है जिनका उत्तर लिखित रूप में या मौखिक रूप से 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जाता है। कुछ प्रश्नावलियों में उत्तर देने का एक और विकल्प अनिश्चित या संदिग्ध भी दिया रहता है। व्यक्ति प्रश्नावली में पूछे गए वैकल्पिक उत्तरों में से जो उसे सही मालूम पड़ता है, उसे बताता है। दिए गए उत्तरों के अनुसार अंक प्रदान किए जाते हैं, जिससे व्यक्तित्व का परिमाणात्मक परिचय या ज्ञान प्राप्त होता है। प्रश्नावली का एक नमूना नीचे दिया जा रहा है-

(क) संसार में मैं कभी-कभी स्वयं को अकेला महसूसता हूँ।

(ख) साधारणतया मैं सिनेमा देखने अकेले जाता हूँ।

(ग) अपने परिचितों से भेंट न हो, इस उद्देश्य से उनके घरों की गलियों में जाने से मैं प्रायः कतराता हूँ।

(घ) जोड़े अंकों वाली तारीखों को मैं यात्रा नहीं करता।

(ड.) क्या आप मित्र बनाना पसन्द करते हैं? इत्यादि

प्रश्नावली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि इसमें व्यक्तित्व के किसी लक्षणविशेष से संबद्ध पूछे गए प्रश्न उस लक्षण के दो चरम बिंदुओं में विस्तृत या फैले हुए होते हैं और व्यक्ति उनका उत्तर देते समय इन दोनों चरम बिंदुओं के बीच किसी बिंदु पर अपना स्थान स्पष्ट करता है। जैसे मान लें, जीवन में सभी जगह कठिनाइयाँ अनुभव करना और जीवन में कहीं भी कोई कठिनाई न देखना-ये दो चरम बिंदु हैं। अब जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में अनुभव होने वाली कठिनाइयों से संबद्ध अनेक प्रश्नों की एक सूची बनाई जाएगी और व्यक्ति से यह पूछा जाएगा कि वह इनमें से कितनी कठिनाईयों को अपने जीवन में महसूस करता है। प्रश्नावली में जिन कठिनाइयों का उल्लेख किया जाएगा वह व्यक्ति पर ही मुख्य रूप से निर्भर करेगा-परिस्थितियों की आकस्मिकताओं पर कम। व्यक्ति द्वारा

दिए गए उत्तरों से यदि यह पता चलता है कि वह बहुत अधिक कठिनाइयाँ अनुभव करता है तो इसका अर्थ यह होगा कि वातावरण की विभिन्न परिस्थितियों के साथ उसका अभियोजन ठीक नहीं है।

प्रश्नावली को उपयोग में लाने से पूर्व उसकी विश्वसनीयता, सार्थकता, वस्तुनिष्ठता एवं प्रामाणिकता की जाँच कर ली जाती है और इन कसौटियों पर प्रश्नावली जब खरी उतरती है तब उसका उपयोग व्यक्तित्व की परख के लिए किया जाता है।

व्यक्तित्व के इस मापक द्वारा सामान्य रूप से सभी व्यक्तियों के व्यक्तित्व के संबंध में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यहाँ साक्षात्कार विधि की तरह हैलो-एफेक्ट, अर्थात साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति के पूर्वाग्रह या रूढ़ियुक्त विचारों का प्रभाव नहीं पड़ता। अतः, इसकी सत्यता की जाँच अन्य लोग भी जब चाहें कर सकते है। इस मापक का उपयोग सर्वप्रथम प्रथम-विश्वयुद्ध के जमाने में सैनिकों के संवेगात्मक असंतुलन की जाँच के लिए किया गया था और आज भी बड़ी सफलता के साथ किया जा रहा है।

किंतु, प्रश्नावली तैयार करना एक कठिन कार्य है। इसमें काफी सावधानी एवं कुशलता की जरूरत पड़ती है। अतः, यह आवश्यक है कि प्रश्नावली तैयार करने वाला व्यक्ति, इस कार्य में पूर्ण कुशल हो तथा इसकी विश्वसनीयता और सार्थकता की जाँच अच्छी तरह कर ली जाए।

3.5.3.2 आविष्कारिका-

व्यक्तित्व की परख के लिए मनोवैज्ञानिकों ने प्रमाणीकृत आविष्कारिकाओं का भी निर्माण किया है। आविष्कारिकाएँ भी प्रश्नावली की ही तरह होती हैं।

19वीं शताब्दी के अंतिम वर्षो में गाल्टन ने एक आविष्कारिका बनाई थी, किंतु इसके आधुनिक रूप का प्रारंभ सबसे पहले वुडवर्थ (1918) ने किया था। इनके द्वारा निर्मित आविष्कारिका पर्सनल डाटा शीट के नाम से जाना जाता है। इनके बाद तो एक बाढ़ जैसी आ गई और सैकड़ों आविष्कारिकाओं का निर्माण होने लगा। ऐसी प्रामाणिक आविष्कारिकाओं में कुछ प्रमुख आविष्कारिकाएँ निम्नलिखित हैं-

(क) मिन्नेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनाल्टी इन्वेंट्री या एम0एम0पी0आई0 (1943)

(ख) एडवर्ड्स पर्सनल प्रेफरेन्स शिड्यूल या ई0पी0पी0एस0 (1954)

(ग) 16 पर्सनाल्टी फैक्टर टेस्ट या 16 पी0एफ0 (1950)

(घ) ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंडजे स्टडी ऑफ वैल्यूज (1951)

(ड.) बेल्स एडजस्टमेंट इन्वेट्री (1934)

(च) आइजेक एक्स्ट्रावर्जन-न्यूरोटिसिज्म स्केल (1956) इत्यादि।

आइए, अब इन आविष्कारिकाओं के बारे में जानें-

1. मिन्नेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनाल्टी इन्वेंट्री-

यह एक महत्वपूर्ण आविष्कारिका है जिसे एस.एम.पी.आई. के नाम से भी जाना जाता है। इसका उपयोग नैदानिक उद्देश्यों में बहुत बड़े पैमाने पर किया जाता है।

इस आविष्कारिका का निर्माण हैथावे एवं मैक किन्ले ने 1943 ई0 में किया। इसके दो रूप हैं- (क) वैयक्तिक अथवा कार्ड रूप, एवं (ख) गूरप फॉर्म।

इस आविष्कारिका में कुल 550 पद हैं। वैयक्तिक फॉर्म के प्रत्येक पद अलग-अलग कार्डो पर लिखे हुए हैं और व्यक्ति को प्रत्येक कथन-पद का उत्तर तीन विकल्पों- 'सही' 'गलत' और 'कह नहीं सकता' में से किसी एक उत्तर

को चुनकर देना होता है। ग्रूप फॉर्म के सभी पद एक पुस्तिका में छपे होते हैं तथा उनके उत्तर एक अलग उत्तर पत्र में देना होता है। इस आविष्कारिका के पदों में कुछ कथन सामान्य स्वरूप के हैं और कुछ का संबंध ऐसे विषयों से है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत स्वभाव से संबंध रखते हैं, जैसे-मैं पूर्णरूपेण आत्मनिर्भर हूँ, प्रातःकाल में टहलने निकलने में कठिनाई का अनुभव करता हूँ; लोग हमारे बारे में बातें करते हैं; में बच्चों के बीच रहना पसंद करता हूँ, इत्यादि। इनमें कुछ कथनों को बार-बार दुहराया गया है, जिससे यह पता चल सके कि व्यक्ति ध्यानपूर्वक उत्तर दे रहा है या नहीं। कुछ लोग जान-बूझकर अपने बारे में अच्छा उत्तर देना चाहते हैं। इसे पकड़ने की भी व्यवस्था इस आविष्कारिका में है।

इस आविष्कारिका का निर्माण नैदानिक कसौटियों पर हुआ है, जिसके द्वारा व्यक्तित्व की 10 विमाओं को जाँचने की व्यवस्था है। इस प्रकार, इसकी 10 मापनियाँ हैं। प्रत्येक मापनी पर एक अंक होता है, जिसे टी स्कोर में बदल देते हैं। किसी भी मापनी पर 70 से अधिक अंक पाने वाले को व्यक्तित्व के उस गुण के संदर्भ में असामान्य माना जाता है। इसके 10 खंड निम्नलिखित हैं-

1. रोगभ्रम
2. विषाद
3. उन्माद
4. मनोविकारी विचलन
5. पौरूष-नारीत्व
6. व्यामोह
7. मनोदौर्बल्य
8. मनोविदलिता
9. अल्पोन्माद
10. सामाजिक अंतःमुखता

उपर्युक्त व्यक्तित्व-संबंधी विशेषताओं के लक्षण-

1. रोगभ्रम - स्वास्थ्य के संबंध में अतिरंजित चिंता एवं साधारण शारीरिक व्याधियों के संबंध में बढ़ा-चढ़ाकर निराशा के भाव व्यक्त करना।
2. विषाद- अपने को अनुपयोगी समझना, नैराश्यभाव, किसी प्रकार की आशा न रखना।
3. उन्माद- बिना किसी शारीरिक आधार के लकवा, सिरदर्द आदि रोगों के विभिन्न लक्षण।
4. मनोविकारी विचलन- असामाजिक एवं अनैतिक आचरण।
5. पौरूष-नारीत्व- पुरूष एवं नारीसुलभ अभिरूचियों की माप, खासकर पुरूषों में नारी मूल्यों एवं संवेगात्मक अभिव्यक्तियों की माप।
6. व्यामोह- दूसरों के उद्देश्यों को अति संदेह की दृष्टि से देखना, खासकर यह विश्वास रखना कि दूसरे लोग सदा उसके खिलाफ कोई-न-कोई साजिश करते रहते हैं।
7. मनोदौर्बल्य-अविवेकपूर्ण विचारों का बार-बार आना अथवा किसी निरर्थक क्रिया को बार-बार करना।
8. मनोविदलिता- अपनी ही दुनिया में रहना, विभ्रम एवं उटपटांग व्यवहारों की प्रचुरता।
9. अल्पोन्माद- बिना किसी स्पष्ट कारण के उत्तेजित या उत्साहित होना।

10. सामाजिक अंतर्मुखता- दूसरे व्यक्तियों से मिलने-जुलने में संकोचशील रहना तथा सामाजिक संपर्क से दूर रहना।

प्रामाणिक आधारों पर यह एक अत्यंत ही सार्थक एवं विश्वसनीय यंत्र प्रमाणित हुआ है। डैल्सट्रौम (1969) के अनुसार चिंता, शत्रुता, विभ्रम, अकारण भय, आत्महत्या की प्रवृत्ति आदि के मूल्यांकन के लिए एम. एम. पी. आई. एक कुशल जाँच की विधि है तथा इसके द्वारा मनोस्नायु विकृति एवं मनोविकृति रोगों से पीड़ित रोगियों की पहचान बड़ी कुशलतापूर्वक होती है।

2. एडवर्डस् पर्सनल प्रेफरेस शिड्यूल-

व्यक्तिव की माप के लिए एडवर्ड (1954) ने भी एक आविष्कारिका का निर्माण किया है जो कुछ महत्वपूर्ण प्रेरणाओं, जैसे-उपलब्धि, विनय या सम्मान, प्रदर्शन, क्रम-व्यवस्था, पालन-पोषण, धैर्य आक्रमणशीलता आदि की जांच हेतु महत्वपूर्ण है।

दूसरी आविष्कारिकाओं के विपरीत एडवर्ड ने ई.पी.पी.एस. में पक्षपात-प्रवृत्ति की संभावना को दूर करने का प्रयास किया। अर्थात, इन्होंने इस आविष्कारिका के निर्माण में विशेष ध्यान यह रखा कि व्यक्ति जांच के क्रम में जानबूझकर ऐसी प्रतिक्रिया या उत्तर व्यक्त न करे, जिसे वह सामाजिक रूप से वांछित समझता हो। इसीलिए, इन्होनें आविष्कारिका के विभिन्न पदों को जोड़ा रूप में रखा। प्रत्येक जोड़ा के दोनों पद समान रूप से वांछित माने गए हैं तथा व्यक्ति को उनमें से किसी एक का चयन करने के लिए बाध्य किया जाता है। आविष्कारिका में इस तरह के 225 जोड़े पद रखे गए हैं।

हालांकि सार्थकता की दृष्टि से यह आविष्कारिका पूर्ण सार्थक जांच प्रमाणित नहीं हो सकी है, फिर भी परामर्शदायी, परिस्थितियों में यह सर्वाधिक उपयोगी जांच सिद्ध हुई है। अतएव, जिस प्रकार एम.एम.जी.आई. मानसिक चिकित्सालयों के लिए एक अत्यनत उपयोगी जांच है, उसी प्रकार ई.पी.पी.एस. परामर्शदायी परिस्थितियों में व्यक्तियों के बारे में भविष्यवाणी एवं मार्गदर्शन की दृष्टि से एक उपयोगी व्यक्तित्व परख की विधि है।

3. सोलह पर्सनॉल्टी फैक्टर टेस्ट -

केटल (1950) ने व्यक्तित्व की माप के लिए कथनों के रूप में 187 पदों से युक्त एक आविष्कारिका का निर्माण किया है जिसे 16 पी.एफ. भी कहते हैं। इनका उत्तर हां, कभी-कभी और नहीं में से जो व्यक्ति के साथ लागू होता है, उसका निर्णय की उत्तर देना होता है। अत्यन्त जटिल कारण-विश्लेषण के आधार पर इन्होंने व्यक्तिव शीलगुणों के 16 घटक माना है और प्रत्येक घटक के लिए 10 स 13 पद रखे गए हें। प्रत्येक घटक को द्विधुवीय विमा के रूप में माना गया है। ये शील गुण निम्नलिखित हैं -

संयमी-निर्गमी

कम बुद्धि -अधिक बुद्धि

स्थिर अवेगी-अस्थिर आवेगी

विनीत-आग्रही

संयत-प्रसन्नचित्त

कार्यसाधक-अच्छे विचार का/कर्तव्यनिष्ठ

संकोची-साहसी

कोमल-कठोर

विश्वासी-संदेही
व्यावहारिक-कल्पनाशील
स्पष्टवादी-चतुर
आत्मशाश्वत-आशंकित
रूढ़िवादी-प्रयोगवादी
परावलंबी-स्वावलंबी
अनुशासनहीन-निंयत्रित
शांत-क्षुब्द

प्रत्येक शीलगुण के लिए अंक प्रदान किए जाते हैं, और फिर इन अंकों को दस (10) मानक अंकों, जिसे स्टेन भी कहते हैं, के विभिन्न बिन्दुओं पर रखकर व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जाता है। उपुर्यक्त 16 शीलगुणों को एक निरन्तर रेखा पर क्रमशः सजाकर इसके दाहिने और बांएं छोरों के बीच स्टेन के 10 बिन्दुओं को रखा जाता है तथा प्रत्येक शीलगुण पर व्यक्ति के अंकों के आधार पर उसका स्थान दिखाया जाता है। इससे व्यक्ति के सम्बन्ध में एक रूपरेखा-चित्र मिलता है, जिससे विभिन्न शीलगुणों पर व्यक्ति कितना ऊँचा या नीचा है, इसकी झलक प्राप्त होती है।

मनोमितिकी सिद्धान्तों के अनुसार, यह एक अत्यन्त विश्वसनीय एवं वैज्ञानिक आविष्कारिका है, जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व गुणों को अच्छी तरह मापा जाता है।

लेकिन, इस आविष्कारिका से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करने हेतु जटिल सांख्यिकी विधियों का उपयोग करना होता है, जो एक कठिन कार्य है। अतः, इस कार्य के लिए अत्यन्त ही कुशल एवं प्रशिक्षित व्यक्ति का होना अनिवार्य है।

4. ऑलपोर्ट-वर्नन-लिंडजे मापनी -

कागज-पेन्सिल जांच में यह भी एक ख्याति प्राप्त मापनी है, जिसके द्वारा व्यक्ति के मुख्य मूल्यों एवं अभिरूचियों, जैसे-सैद्धान्तिक मूल्य, आर्थिक मूल्य, सौंदर्य मूल्य, सामाजिक मूल्य, राजनीतिक मूल्य एवं धार्मिक मूल्य की जांच की जाती है।

इस जांच के दो भाग हैं। पहले भाग में विभिन्न मूल्यों से सम्बद्ध कुछ कथनों की एक श्रृंखला है, जिनका उत्तर हां या नहीं में देना होता है। उदाहरण के लिए सैद्धान्तिक मूल्य से सम्बद्ध एक कथन निम्नाकिंत रूप में हो सकता है - वैज्ञानिक अनुसंधानों का मूल उद्देश्य विशुद्ध सत्य की खोज होनी चाहिए न कि उसका व्यावहारिक उपयोग।

यदि व्यक्ति इस कथन से सहमत है तो उसका उत्तर हां होगा और यदि असहमत है तो नहीं। सहमति व्यक्त करने पर व्यक्ति के सैद्धान्तिक मूल्य एवं अभिरूचि के लिए ऊँचे अंक दिए जाऐंगे।

जांच के दूसरे भाग में विभिन्न कथनों के चार-चार वैकल्पिक सहमतिसूचक वर्णनात्मक कथन है, जिन्हें व्यक्ति अपनी सहमति के क्रमानुसार उनके सामने क्रमशः 1, 2, 3, 4 व्यक्त करता है।

उदाहरण के लिए, नीचे दिए गए नमूना को देखें -

क्या आप सोचते हैं कि एक अच्छी सरकार का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए-

क. गरीबों, रोगियों और बूढ़ों को अधिक सहायता देना?

ख. निर्माणकार्य एवं व्यापार?

ग. अपनी नीतियों एवं कूटनीतियों में अधिक नैतिक आदर्शों को उपस्थित करना?

घ. राष्ट्रों के बीच प्रतिष्ठा एवं आदर का स्थान कायम करना?

यह परीक्षण अत्यन्त ही उपयोगी है और मनोमितिक दृष्टिकोण से एक सफल एवं सार्थक परीक्षण माना जाता हैं परन्तु, इस परीक्षण के उपेयाग में बहुत अधिक सावधानी बरतने की जरूरत पड़ती है।

इस परीक्षण का उपयोग व्यक्ति के व्यक्तित्व-सम्बन्धी अनुसंधान-कार्य, परामर्श, चयन आदि क्षेत्रों में अत्यन्त ही लाभप्रद प्रमाणित हुआ है।

5. बेल एडजस्टमेंट इन्वेन्ट्री-

बेल (1934) ने इस परीक्षण को बनाया है। इस आविष्कारिका से व्यक्ति के अभियोजन-सम्बन्ध व्यक्तित्व-विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। इसमें पारिवारिक अभियोजन, स्वास्थ्य अभियोजन, सामाजिक अभियोजन, संवेगात्मक अभियोजन और व्यावसायिक अभियोजन से सम्बद्ध पद है, जिनका उत्तर व्यक्ति हाँ या 'नहीं' श्रेणियों में देता है।

इस जांच द्वारा प्रत्येक क्षेत्र के साथ अभियोजन का अलग-अलग अध्ययन संभव नहीं हैं इस जांच की वस्तुनिष्ठता भी कम है। फिर भी, चूंकि इसका उपयोग सरल है, इसलिए व्यावसायिक मार्गदर्शन केन्द्रों में इस आविष्कारिका का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। डा. मोहसिन एवं डा. हुसैन ने इस आविष्कारिका का हिन्दी रूपान्तर कर प्रमाणित किया है, जिसका उपयोग भारतवर्ष के हिन्दी भाषी व्यक्तियों के अभियोजन-सम्बन्धी गुणों की जांच के लिए बड़े पैमाने पर किया जाता है।

6**. आइजेंक व्यक्तित्व आविष्कारिका -**

आइजेंक (1956) ने मॉडस्ले हॉस्पीटल में मनोस्नायु विकृति और अन्तःमुखता-बहिर्मुखता के द्विधुरवीय शीलगुण को मापने हेतु एक आविष्कारिका बनाई। इस आविष्कारिका का निर्माण अस्पताल में भरती होने वाले रोगियों की जांच-पड़ताल के लिए किया गया था। बाद में मनोवैज्ञानिकों ने देखा कि इस आविष्कारिका का उपयोग सामान्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण करने हेतु भी सरलतापूर्वक और आसानी से किया जा सकता है। इस आविष्कारिका में कुल 48 पद हैं, जिसमें 24 अन्तःमुखी व्यक्तित्व से सम्बद्ध है और शेष 24 पद बहिर्मुखी व्यक्तित्व से सम्बद्ध है।

यह आविष्कारिका मॉड्स्ले पर्सनॉल्टी इन्वेंट्री या एम.पी.आई. के नाम से प्रचलित है।

आइजेक एवं आइजेक (1963) ने एम.पी.आई. को संशोधित कर एक नई आविष्कारिका का निर्माण किया, जिसे आइजेंक पर्सनॉल्टी इन्वेंट्री या ई.पी.आई कहते हैं। इस परीक्षण द्वारा व्यक्तित्व के दो विमाओं अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता तथा मनोस्नायुविकृति या संवेगात्मक स्थिरता की जांच की जाती है।

ई.पी.आई. के दो सामान्तर रूप हैं। इस प्रकार, क्रमशः दोनों रूपों का उपयोग कर पुनः जांच विधि द्वारा सार्थकता की जांच आसानी से सम्भव है।

इस परीक्षण में कुल 57 प्रश्न हैं जिनमें 24 से मनोस्नायुविकृति की जांच होती है, तथा 24 से अन्तःमुखता-बहिर्मुखता की जांच होती है। इनके अतिरिक्त 9 प्रश्न लाई स्केल के हैं। लाई स्केल क अंकों द्वारा व्यक्ति के झूठ बोलने की विशेषता की परख करने के साथ-ही-साथ उपर्युक्त दोनों स्केल पर व्यक्ति के उत्तरों की भी जांच हो जाती है।

यह आविष्कारिका अत्यन्त सरल है तथा व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण विमाओं-अन्तःमुखता-बहिर्मुखता एवं मनोस्नायुविकृति के लक्षणों की जांच के लिए उपर्युक्त परीक्षण है। इसका उपयोग सामूहिक परिस्थिति में आसानी

से किया जा सकता है। विभिन्न अध्ययनों से इस परीक्षण की विश्वसनीयता एवं सार्थकता अच्छी तरह प्रमाणित हुई है।

भारत में बने व्यक्तित्व-परीक्षण

भारतवर्ष के विभिन्न भागों के मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी व्यक्तित्व की माप के लिए अनेक परीक्षण बनाए गए हैं। भारतीय मनोवैज्ञानिकों द्वारा निर्मित परीक्षणों में अधिकांश या तो अंग्रेजी भाषा में बने परीक्षणों के हिन्दी रूपान्तर हैं या फिर उन्हीं के अनुरूप हिन्दी भाषा में व्यक्तित्व-परीक्षण प्रमाणीकृत किए गए हैं।

भारतवर्ष में अभियोजन क्षमता को मापने वाली अनेक आविष्कारिकाओं का निर्माण हिन्दी एवं अन्य प्रादेशिक भाषाओं में हुआ हैं इस सम्बन्ध में प्राथमिक कार्य कलकत्ता, लखनऊ और बनारस विश्वविद्यालयों में कार्यरत मनोविज्ञान विभाग के प्राध्यापकों द्वारा हुए। उदाहरण के लिए, कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रो.एस.के. बोस ने मनोविज्ञान विभाग के तत्वाधान में एक परीक्षण बनाया है। डा.एच.एस. अस्थाना ने लखनऊ विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के तत्वाधान में अभियोजन-आविष्कारिका (1959) का एक संशोधित रूप बनाया। बनारस विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के तत्वावधान में भी एम.एस.एल. सक्सेना (1955) ने 'व्यक्तित्व-परख प्रश्नावली' (1955) का निर्माण किया। विहार में पटना विश्वविद्यालय, मनोविज्ञान विभाग के तत्कालीन प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डा. एस.एम. मोहसिन एवं डा. समसाद हुसैन ने बेल एडजस्टमेंट इन्वेंट्री का हिन्दी रूपान्तर प्रकाशित किया। इनके अतिरिक्त डॉ. ए.के.पी. सिन्हा एवं उनके सहयोगी ने मिलकर एक एडजस्टमेंट इन्वेंट्री बनाया है।

उपर्युक्त आविष्कारिकाओं के अलावा एस. जलोटा (1965) का मॉड्स्ले पर्सनॉल्टी इन्वेन्ट्री का हिन्दी अभ्यानुकूलित रूप भी एक सर्वाधिक प्रचलित भारतीय व्यक्तित्व परीक्षण है। मित्रेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनॉल्टी इन्वेन्ट्री का भी हिन्दी रूपान्तर हुआ है, जिसका श्रेय बीर सिंह को जाता है। इन्हें इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए बनारस विश्वविद्यालय द्वारा डॉक्टरेट की उपाधि भी प्रदान की गई है। इसी तरह ए.के. ज्ञान एवं आर.पी. साहा ने 16 नर्सनॉल्टी फैक्टर का हिन्दी रूपान्तर किया है। के. कपूर ने भी न्यूरोटिसिज्म प्रश्नावली के हिन्दी रूपान्तर का उपयोग कर व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है।

उपर्युक्त परीक्षणों के अतिरिक्त भारत में अभिरूचि, अभिवृत्ति, मनोवृत्ति एवं व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों आदि की परख के लिए और भी अनेक परीक्षण बने हैं तथा आज भी भारतीय वैज्ञानिक इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

व्यक्तित्व की परख के लिए आजकल कागज-पेन्सिल जांच के रूप में आविष्कारिकाओं का उपयोग सबसे अधिक किया जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि आविष्कारिकाएं व्यक्तित्व के गुणों की माप परिमाणात्मक ढंग से करती हैं तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण सें ये प्रमाणीकृत होती हैं। सामान्यतः, सभी आविष्कारिकाएं मनोमितिक दृष्टिकोण से सार्थक, विश्वसनीय, वस्तुनिष्ठ एवं मितव्ययी होती हैं तथा इनके द्वारा वैयक्तिक एवं सामूहिक दोनों परिस्थितियों में व्यक्तित्व की जांच सुविधापूर्वक की जा सकती है।

उपर्युक्त गुणों के बावजूद आज भी इस विधि की कुछ कठिनाइयां विद्यमान हैं, जो निम्नलिखित हैं।

क. आविष्कारिकाओं की मुख्य त्रुटि इनकी सार्थकता के सम्बन्ध में है। आज भी यह संदेह बना हुआ है कि क्या आविष्कारिकाएं वास्तव में व्यक्तित्व की उन्हीं विशेषताओं को मापती है जिनके लिए वे बनाई गई हैं। इस संदेह का प्रधान कारण यह है कि किसी भी जांच को पूर्णरूपेण सार्थक बनाना एक अत्यन्त दुरूह कार्य है।

पर, यह इस विधि की एक कठिनाई है-दोष नहीं। यदि आविष्कारिका तैयार करने वाला व्यक्ति दक्ष हो तो वह इस कठिनाई को दूर कर सार्थक आविष्कारिका तैयार कर सकता है।

ख. इस विधि के सम्बन्ध में दूसरी त्रुटि यह बताई जाती है कि आविष्कारिकाओं द्वारा व्यक्ति के सोचने-विचारने और व्यवहार की प्रवृत्ति का तो पता चलता है, किन्तु इन प्रवृत्तियों को उत्पन्न करने वाले प्रेरणात्मक तत्वों का पता नहीं चलता। उदाहरण के लिए, मान लें दो व्यक्ति हैं जो आत्महत्या की प्रवृत्ति रखते हैं। पर, इनमें एक व्यक्ति आर्थिक मजबूरियों के कारण इस प्रवृत्ति का शिकार है तो दूसरा अपनी पत्नी के साथ सामंजस्य में विकास होने के कारण। अतः, आविष्कारिका द्वारा जांच करने पर दोनों का व्यक्तित्व एक जैसा ही मालूम होगा, पर इनके प्रेरकों में भिन्नता के आधार पर इनके व्यक्तित्वों को एक जैसा मानना गलता होगा।

ग. इसका तीसरा दोष यह है कि आविष्कारिकाओं का उपयोग केवल साक्षर व्यक्तियों पर ही संभव है, निरक्षरों पर इसका उपयोग उचित रूप से नहीं किया जा सकता है। कभी-कभी तो साक्षरों पर भी इसका उपयोग कठिनाई उत्पन्न करता है। साक्षरों के संदर्भ में इस बात की संभावना रहती है कि व्यक्ति आविष्कारिका के किसी प्रश्न विशेष का वह अर्थ नहीं समझे जो अर्थ उन प्रश्नों में निहित रहता है।

आविष्कारिकाओं के उपयोग के सम्बन्ध में ऊपर जिन दोषों की चर्चा की गयी है, वे वस्तुतः उनकी कठिनाइयां हैं, जिन्हें दूर कर यदि आविष्कारिकाओं को बनाया जाए तो आविष्कारिकाआं द्वारा व्यक्तित्व की परख अच्छी तरह की जा सकती है।

3.5.3.3 श्रेणीगत मापनियां -

दूसरों को देखकर अथवा उनके व्यवहारों का अवलोकन कर उनके बारे में अपना एक व्यक्तिगत दृष्टिकोण या विचार बना लेना स्वाभाविक बात है। इस स्वाभाविक गुण के कारण ही हम अपने दैनिक जीवन में अपने परिचितों के बारे में एक निजी दृष्टिकोण रखते हैं तथा उसी दृष्टिकोण के आधार पर हम उनके व्यक्तित्व-सम्बन्धी कुछ लक्षणों को विभिन्न मात्राओं में स्थित कर प्रकट करते हैं। जैसे-हम कहते हैं अमुक व्यक्ति बहुत अधिक संकोची स्वभाव का है, अमुक व्यक्ति डरपोक नहीं है, अमुक लड़का बहुत साहसी है इत्यादि। स्पष्ट है कि यहां संकोचशील होना, डरपोक होना, साहसी होना आदि व्यक्तित्व-सम्बन्धी गुण हैं तथा हम निजी दृष्टिकोण, आधार पर उनमें इन गुणों की प्रचुरता के अनुसार बहुत अधिक या बिल्कुल नहीं श्रेणियों में उन्हें स्थित सझमते हैं। व्यक्तित्व की परख हेतु श्रेणीगत मापनियों या रेटिंग स्केल्स का विकास भी कुछ इसी तरह से श्रेणीगत मूल्यांकन के आधार पर हुआ है।

यह तो स्पष्ट ही है कि व्यक्तित्व की विशेषताएं निरन्तर चर हुआ करती हैं, जिसके एक छोर पर उस विशेषता का पूर्ण अभाव और दूसरे छोर पर विशेषता की अधिकतम मात्रा होती है, तथा प्रत्येक व्यक्ति में ये विशेषताएं इन्हीं दो श्रेणियों के बीच किसी बिन्दु या चरण पर स्थित रहती है। अतः, किसी व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण कर उसके व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं को वैज्ञानिक तरीकों से निरन्तर मापनी के न्यूनतम से अधिकतम के बीच के किसी बिन्दु या चरण पर श्रेणीगत निर्धारण किया जाता है।

व्यक्तित्व गुणों के श्रेणीगत निर्धारण के उद्देश्य से ही मनोवैज्ञानिकों ने मनोमितिक विधियों का उपयोग कर श्रेणीगत मापनी का विकास किया है।

श्रेणीगत मापनी बनाने के लिए किसी व्यक्ति के व्यवहार का एक या अधिक निरीक्षक स्वाभाविक या जांच परिस्थिति में निरीक्षण करते हैं (साधारणतः, एक से अधिक निरीक्षक एक साथ काम करते हैं) तथा उनके व्यवहार का अवलोकन कर उनके व्यक्तित्व सम्बन्धी लक्षण को उनकी मात्रा के अनुसार श्रेणीगत मापनी के विभिन्न बिन्दुओं या चरणों पर श्रेणीगत करते हैं। जब एक से अधिक व्यक्तित्व पारखी एक ही व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन कर अपने-अपने ढंग से किसी विशेषता का श्रेणीगत निर्धारण करते हैं, तब उनका औसत निकाल लिया जाता है और

वही औसत मूल्य उनके व्यक्तित्व विशेषता की मात्रा का सूचक होता है। श्रेणीगत निर्धारण प्रायः 5 बिन्दु की श्रेणियों में किया जाता है।

श्रेणीगत मापनी के प्रकार -

क. सापेक्षित श्रेणीगत मापनी-

जब किसी एक विशेषता के आधार पर कई व्यक्तियों का मूल्यांकन करना होता है तब सापेक्षिक श्रेणीगत मापनी का उपयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ, योग्यता क्रमानुसार विधि इस तरह की मापनी का एक विशिष्ट उदाहरण है। इस विधि में निर्णायक व्यक्तियों को उनमें किसी विशेषता की मात्रा के अनुसार क्रमशः प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि विभिन्न श्रेणियों में स्थित करता है। इस तरह से श्रेणीगत करने से दूसरे व्यक्तियों की तुलना में किसी व्यक्ति का क्रम में कौन-सा स्थान है इसका पता चलता है।

श्रेणीगत निर्धारण की इस प्रणाली में एक व्यावहारिक कठिनाई यह हे कि श्रेणी निर्धारण की पूरी अवधि में निर्णायक के लिए व्यक्तियों की संपूर्ण सूची को याद रखना आवश्यक हो जाता ह। इस कठिनाई को कुछ हद तक तक दूर किया जा सकता है, यदि विभिन्न व्यक्तियों के नामों को कार्डो पर लिखकर उन्हें क्रमशः अलग-अलग वर्गों, जैसे- उत्तम, मध्यम एवं खराब वर्गो में वर्गीकरण कर अलग-अलग खानों में रख दिया जाए। इसके बाद प्रत्येक उपवर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को अंकों के क्रम के अनुसार सजा दिया जाए। इस तरह से क्रम-व्यवस्था करने पर उत्तम समूह के सबसे कम अंक प्राप्त करने वाले का स्थान, मध्यम समूह के सर्वाधिक अंक प्राप्त करने वाले के ठीक ऊपर होगा, और मध्यम वर्ग समूह के सबसे कम अंक वाले का स्थान खराब समूह के सर्वाधिक अंक पाने के ठीक ऊपर होगा तथा खराब समूह के सबसे कम प्राप्तांक वाले का स्थान सूची के सबसे नीचे के स्थान पर होगा। इस प्रकार, विभिन्न वर्ग श्रेणी के व्यक्तियों को पुनर्व्यवस्थित क्रम में सजाने पर क्रम-व्यवस्था अथवा श्रेणीगत निर्धारण का काम पूरा हो जायेगा।

ख. निरपेक्ष श्रेणीगत मापनी-

निरपेक्ष श्रेणीगत मापनी में निर्णायक प्रत्येक व्यक्ति के हर एक गुण या विशेषता के लिए अंक प्रदान करता है और उस समूह विशेष के लिए अलग से 'स्थापित प्रतिमान' के साथ तुलना करता है। उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति को 7 या 5 श्रेणियों के बिन्दुओं पर उसकी स्वच्छता या ऐसी ही किसी अन्य विशेषता या गुण का श्रेणीगत निर्धारण कर किसी स्थानीय प्रमाण या आदर्श के साथ तुलना कर उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता है। परन्तु, इस तरह के श्रेणी निर्धारण-प्रक्रिया में दो तरह की त्रुटियों की संभावना रहती है।

पहली त्रुटि यह हो सकती ठै कि कोई निर्णायक किसी व्यक्ति के गुण विशेष के लिए बहुत अधिक अंक प्रदान कर सकता है, तो कोई बहुत कम या औसत।

दूसरी त्रुटि की संभावना निर्णायक के निर्णय में हेर-फेर यानी अस्थिरता के कारण हो सकती है। एक ही निर्णायक एक समय में किसी व्यक्ति को बहुत ईमानदार की श्रेणी में रखता है, तो दूसरे क्षण उसे साधारण ईमानदार की श्रेणी में रख सकता है, तो दूसरे क्षण उसे साधारण ईमानदार की श्रेणी में रख सकता है।

निरपेक्ष श्रेणीगत मापनी भी तीन अलग-अलग रूपों के हाते हैं-

वर्णनात्मक विशेषण मापनी

रेखीय मापनी

बाध्य चयन मापनी

वर्णनात्मक विशेष मापनी -

व्यक्तित्व पारखी व्यक्तित्व के गुणों के वर्णन करने वाले विशेषणों अथवा मुहावरों या कथनों की एक सूची बनाता है, जिसकी बाएं हाशिए में रिक्त स्थान अथवा बॉक्स बना रहता है। निर्णायक के अनुसार किसी व्यक्ति में जो विशेषण जितनी मात्रा में जिस श्रेणी के अनुरूप प्रतीत होता है, उपयुक्त बॉक्स में एक टिक का निशान लगाकर प्रकट करता है। निर्णायक के अनुसार किसी व्यक्ति में जिस विशेषण का अभाव मालूम पड़ता है उसके सामने वह कोई निशान नहीं लगाता। इस तरह की मापनी को स्पष्ट करने हेतु एक नमूना आगे दिया जा रहा है।

चेक कॉलम			विशेषण
I	II	Ill	सक्रिय एवं निष्क्रिय
?	?	?	सक्रिय पर दुर्बल
?	?	?	मधुरभाषी एवं हंसमुख
?	?	?	अध्यवसायी एवं कुशल
?	?	?	साहसी एवं मिलनसार

उपर्युक्त ढंग की मापनी की कुछ सीमाएं भी हैं - एक कठिनाई तो विशेषणों के चुनाव करने से सम्बन्धित है। किस विशेषण को रखा जाए तथा किसे नहीं-इसका निर्णय करना प्रायः मुश्किल होता है। साथ ही, मापनी द्वारा कुल अंक प्राप्त करने हेतु विभिन्न पदों का वेटेड स्कोर यानी महत्ता अंक कैसे निर्धारित किया जाए, जिसमें किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सही-सही जानकारी प्राप्त हो सके, यह भी एक कठिन कार्य है। इसके लिए मापनी बनाने वाले व्यक्ति का कुशल एवं दक्ष होना जरूरी है। तीसरी कठिनाई सार्थकता से सम्बद्ध है। संभवतः, इन्हीं त्रुटियों के कारण इस तरह की मापनी का उपयोग हित अधिक प्रचलन में नहीं है।

रेखीय मापनी-श्रेणीगत मूल्यांकन का सबसे प्रचलित रूप रेखीय मापनी है। इसमें गुण विशेष का नाम एक पेज पर लिखा रहता है और उसके ठीक नीचे एक रेखा पृष्ठ की बाईं ओर से दाईं ओर तक खिंची रहती है और उस रेखा के नीचे कुछ मुहावरे या ऐसे वाक्य लिखे होते हैं जो व्यक्ति के उस गुण को प्रकट करते हैं अथवा उसका वर्णन करते हैं। इस तरह रेखा के बांए छोर के नीचे उक्त गुण के अति प्रशंसनीय, दाएं छोर के नीचे निंदनीय एवं बीच में औसत परिमाणसूचक कथन या मुहावरे लिखे जा सकते हैं। निर्णायक किसी व्यक्ति में उस गुण को जिस कथन के अनुरूप समझता है, रेखा के उसी स्थान पर एक निशान लगाकर उसका मूल्यांकन करता है, अर्थात उसे उस श्रेणी में स्थित करता है। इस तरह की मापनी में प्रायः 10 से 30 गुण रखे जाते हैं। मापनी के इस रूप को अच्छी तरह समझने के लिए नीचे दिए गए नमूने को देखें।

विद्यार्थी वर्ग-कार्य कितनी अच्छी तरह करता है, यह सुनिश्चित करें।				
सर्वोत्तम कार्य करता है	मामूली गलतियां होती है	साधारण	कार्य में अच्छा नहीं है	बहुत खराब

उपयुक्त नमूने में जिस विद्यार्थी का मूल्यांकन किया जाता है, उसके नाम, वर्ग, पता आदि परिचयात्मक विवरणों के लिए भी स्थान निर्दिष्ट रहते हैं तथा इसी तरह से अन्य विशेषताओं, जैसे-उपस्थिति, अनुशासन, आज्ञाकारिता आदि गुणों का भी मूल्यांकन किया जा सकता है।

रेखीय मापनी का एक दूसरा प्रारूप भी निम्नलिखित प्रकार से बनाया जा सकता है।

गुण	रक्त रेखाऐं	वर्णनात्मक कथन
शिक्षण योग्यता	-	असाधारण रूप से तेज
	-	औसत से ऊपर
	-	सामान्य
	-	सीखने का यत्न करता है
	-	प्रायः समझने में भूलें करता है
	-	खराब
	-	बहुत खराब
	-	

रेखीय मापनी की एक विशेषता यह है कि निर्णायक के लिए व्यक्ति के किसी गुण विशेष के तीक्ष्ण भेदों का भी मूल्यांकन करना संभव होता है तथा कुल अंक प्राप्त करना भी आसान होता है। किन्तु, वर्णनात्मक विशेषण की ही त्रुटियों की तरह इस विधि से तैयार की जाने वाली मापनियों में भी वे सभी त्रुटियां या कठिनाईयां पाई जाती हैं। इसलिए, इस तरह की मापनियों का उपयोग भी बहुत अधिक प्रचलन में नहीं है।

बाध्य-चयन मापनी-श्रेणीगत मापनी का एक आधुनिक रूप बाध्य-चयन है। इसके उपयोग से यह लाभ है कि अन्य दोनों रूपों वाली मापनियों में निर्णायक से लिनिएंसी भूल होने की संभावना अत्यधिक रहती है। अर्थात, निर्णायक व्यक्ति के विभिन्न व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों का मूल्यांकन करते समय उसके व्यक्तित्व के किसी गुण-विशेष के सम्बन्ध में जान-बूझकर अति या न्यून मात्रा मं होने का निर्णय देने की गलती कर देता हैं पर, बाध्य-चयन मापनी में इसकी संभावना कम हो जाती है। इस मापनी में व्यक्तित्व-सम्बन्धी प्रत्येक गुण के दो या चार (उससे अधिक भी) वर्णानात्मक कथन होते हैं, जिनमें आधे व्यक्ति पक्ष के और शेष आधे विपक्ष के होते हैं। निर्णायक उनमें से एक, जो उस व्यक्ति के साथ लागू होता है और एक, जो उसके साथ लागू नहीं होता है - दोनों का निर्णय करता है। इसे स्पष्ट करने के लिए आगे के उदाहरण को देखें -

नीचे भ्रातृभाव के गुण के सम्बन्ध में कुछ कथन है –

पूर्णरूपेण लागू होता है	बिल्कुल लागू नहीं होता	
		(क) भाइयों के साथ अच्छी तरह मेल-जोल रखता है।

		(ख) किसी भी कार्य करने की चेष्टा में अपनी योग्यता पर ही भरोसा करता है। (ग) भाईयों के साथ रहने में केवल आनन्द का अनुभव करता है (घ) भाईयों के साथ किसी विषय पर बातचीत में उसका प्रभाव दुर्बल है।

ऊपर के उदाहरण में निर्णायक को उस एक वर्णनात्मक कथन का चुनाव करना पड़ता है जो किसी व्यक्ति में भ्रातृभाव के गुण का सही-सही वर्णन करता है। साथ ही, उसे एक ऐसे कथन का भी चुनाव करना होता हे जो उस व्यक्ति में भ्रातृभाव के अभाव का सही-सही वर्णन करता है।

रेटिंग स्केल में रेटर के खोखले प्रभाव या हैलो इफेक्ट से रेटिंग प्रभावित होते देखा गया हैं फिर भी यदि रेटर (निर्णायक) कुशल एवं दक्ष हो और वस्तुपरक ढंग से व्यक्तित्व का मूल्यांकन करे तो इस विधि से भी व्यक्तित्व की जांच हो सकती हैं।

3.6 व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय-

व्यक्तित्व का मापन कैसे किया जाय, यह प्रारंभ से ही मनोवैज्ञानिकों के बीच विवाद का विषय रहा है। इस विवाद के पीछे व्यक्तित्व के सम्प्रत्यय एवं परिभाषा के बीच मनोवैज्ञानिकों का उससे रहना है। व्यक्तित्व जैसे गूढ़ विषय को स्पष्ट करने में जहाँ ‘प्रकार’ एवं ‘शीलगुण’ दृष्टिकोण ने विवाद पैदा किया, वहीं सम्मिलित परिभाषाओं से भी बात नहीं बनी और आज भी स्पष्ट रूप से कहना मुश्किल है कि; वास्तव में व्यक्तित्व क्या हैं?

ब्लौक (1993) ने व्यक्तित्व के अध्ययन हेतु आंकड़ों के चार स्रोतों की चर्चा की है-जीवन अभिलेख आंकड़ा, प्रेक्षक आंकड़ा, परीक्षण आंकड़ा तथा आत्म-रिपोर्ट आंकड़ा। इन्हें क्रमशः एल-आंकड़ा, ओ-आंकड़ा,, एस-आंकड़ा तथा टी-आंकड़ा के रूप में भी जाना जाता है। आंकड़ों के स्वरूप से मापन के तरीके जुड़े होते है, अतः आंकड़ों के स्वरूप को लेकर उत्पन्न विवाद मापन पद्धतियों के विवाद बन गयी है।

कुछ मनोवैज्ञानिक एस-आंकड़ों को इसलिए अस्वीकृत कर देते हैं क्योंकि अपने बारे में स्वयं बतलाने में व्यक्ति न केवल झूठ बोलता है बल्कि कुछ अचेतन कारकों के चलते उसे विकृत भी कर देता है। दूसरी ओर, ऑलपोर्ट, केली सरीखे मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि अगर किसी व्यक्ति के बारे में सही एवं यथार्थ ढंग से जानना है तो सबसे उत्तम तरीका यही है कि उसके बारे में दूसरों से पूछकर ज्ञान हासिल किया जाय (ओ-आंकड़ा) यानी, प्रेक्षक द्वारा रेटिंग कराया जाय। जॉन एवं रॉबिन्स (1994) तथा केन्नी (1994) ने भी प्रेक्षक के रेटिंग में प्रेक्षकों के आत्मगत कारकों का प्रभाव देखा और खारिज करने की बात की। ऐसे मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व मापन में किसी परिभाषित प्रयोगात्मक अवस्था में व्यवहार के वस्तुनिष्ठ मापन पर बल देते हैं (टी-आंकड़ा)। हालांकि इस तरह के आंकड़े के विरूद्ध कृत्रिम परिस्थितियों के कुप्रभाव की बात कही गई है जो स्वाभाविक परिस्थितियों के व्यवहार से भिन्न होते हैं।

व्यक्तित्व मापन के क्षेत्र में मूल विवाद नियमान्वेषी मापन तंत्र एवं भावमूलक मापन तंत्र की महत्ता को लेकर भी रहा है क्योंकि नियमान्वेषी मापन तंत्र मूलतः व्यक्तित्व के विभिन्न शीलगुणों एवं उनके अन्तःसम्बन्धों के वस्तुगत अध्ययन पर बल देता है तथा व्यक्तित्व की व्याख्या व्यक्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में करना है। दूसरी ओर, भावमूलक मापन तंत्र व्यक्ति के भावों, विचारों, प्रेरणाओं, आवश्यकताओं एवं अचेतन की गहराइयों में दबे प्रेरक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व का मापन एवं उसकी व्याख्या पर बल देता है। इस मापन तंत्र के केन्द्र पर 'व्यक्ति' होता है, न कि उसका सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश। यानी, नियमान्वेषी मापन तंत्र जहाँ सामान्य व्यक्ति से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है वहीं भावमूलक मापन तंत्र असामान्य व्यक्तियों से प्राप्त नैदानिक आंकड़ों पर।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन एक प्रक्षेपी मापनी नहीं है -
   (अ) टी.ए.टी. (ब) रोर्शा टेस्ट
   (स) श्रेणीगत मापनी (द) शब्द साहचर्य
2. व्यक्ति के जीवन की बीती घटनाओं पर आधारित सूचनाओं को कहते हैं -
   (अ) एल. आंकड़ा (ब) ओ-आंकड़ा
   (स) टी-आंकड़ा (द) एस-आंकड़ा

3.7 सार-संक्षेप-

1. व्यक्तित्व मापन से तात्पर्य व्यक्तित्व के शीलगुणों का पता लगाकर यह निर्धारित करना है कि किसी सीमा तक ये शीलगुण संगठित या असंगठित हैं।
2. व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी निम्नलिखित महत्वपूर्ण दृष्टिकोण हैं-समग्र मूल्यांकन का दृष्टिकोण, शीलगुण दृष्टिकोण तथा प्रक्षेपी जाँच का दृष्टिकोण।
3. व्यक्तित्व परीक्षण की विधियों को मूलतः तीन वर्गों में बांटा गया है-व्यवहार अध्ययन की विधियां, नैदानिक विधियां तथा मनोभितिक विधियां।

व्यवहार का अध्ययन मूलतः दो परिस्थितियों में किया जाता है-स्वाभाविक परिस्थिति एवं जांच परिस्थिति।
नैदानिक विधियों के अन्तर्गत निम्नलिखित विधियों का उपयोग किया जाता है-साक्षात्कार विधि, व्यक्ति-इतिहास विधि तथा प्रक्षेपण विधियां। प्रक्षेपण विधियों में टी.ए.टी., रोर्शा टेस्ट, सिम्बल एरेंजमेंट टेस्ट, शब्द साहचर्य, वाक्य-पूर्ति परीक्षण आदि का इस्तेमाल किया जाता है।
मनोभितिक विधियों में महत्वपूर्ण हैं-प्रश्नावली, आविष्कारिका तथा श्रेणीगत मापनियां

3.8 पारिभाषिक शब्दावली-

साक्षात्कार: आमने-सामने का परस्पर वार्तालाप।

प्रक्षेपण: अपने मनोभावों एवं विचारों को दूसरों पर आरोपित करना।

एल-आंकड़ा: व्यक्तित्व अध्ययन हेतु प्राप्त वैसा आंकड़ा या सूचना जो व्यक्ति के जीवन की बीती घटनाओं या उसके जीवन इतिहास से प्राप्त होता है।

ओ-आंकड़ा: व्यक्तित्व अध्ययन हेतु प्राप्त वैसा आंकड़ा जो का सूचनाओं से प्राप्त होता है जिन्हें व्यक्ति के व्यवहारों का प्रेक्षण कुछ विशेष व्यक्तियों द्वारा करके प्राप्त किया जाता है।

एस-आंकड़ा: वैसा आंकड़ा या सूचना जिसे व्यक्ति स्वयं अपने बारे में बताता है।

टी-आंकड़ा: वैसा आंकड़ा जो व्यक्ति के बारे में प्रयोगात्मक विधियों या मानकीकृत परीक्षण से प्राप्त होता है।

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न:

1. व्यक्तित्व मापन से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोणों का वर्णन करें।
2. व्यक्तित्व मापन की नैदानिक विधियां कौन-कौन सी हैं? साक्षात्कार विधि के गुण-दोषों पर प्रकाश डालें।
3. प्रक्षेपण विधि से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व मापन में एर्शा परीक्षण के महत्व पर प्रकाश डालें।
4. टिप्पणी लिखें-

(क) व्यक्तित्व मापन सम्बन्धी मूल विवाद-विषय

(ख) व्यक्तित्व आविष्कारिका

(ग) प्रश्नावली

(घ) श्रेणीगत मापनियां

3.10 संदर्भ-ग्रन्थ सूची:

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.

5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.

6 Eysenck – The scientific study of personality

3.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:

1. स 2. अ

इकाई – 4 व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त:- फ्रायड, एरिकसन, होरने, सुलिवन
(Psychodynamic Theory of Personality:- Freud, Erikson, Horney and Sullyvan)

इकाई संरचना-

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त का परिचय

4.4 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त

4.5 इरिक्सन का व्यक्तित्व सिद्धान्त

4.6 हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त

4.7 सुलीवान का व्यक्तित्व सिद्धान्त

4.8 सार-संक्षेप

4.9 पारिभाषिक शब्दावली

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.11 संदर्भ-ग्रन्थ

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.1 प्रस्तावना-

पूर्व की इकाइयों में आपने व्यक्तित्व की परिभाषा, उसके विभिन्न उपागम, व्यक्तित्व विकास के निर्धारक, व्यक्तित्व मापन की विधियां आदि का गहनतापूर्वक अध्ययन किया।

आइए, अब प्रस्तुत इकाई में यह जानने का प्रयास करें कि व्यक्तित्व की व्याख्या हेतु जिन विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है उनमें से वैसे सिद्धान्त जो व्यक्तित्व की व्याख्या मनोगत्यात्मक दृष्टिकोण से करते है-क्या हैं तथा कौन-कौन से हैं ?

इस परिप्रेक्ष्य में आप फ्रायड, इरिक्सन, हार्नी तथा सुलीवान के व्यक्तित्व सिद्धान्त का विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे एवं व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मनोगत्यात्मक दृष्टिकोण को भली-भाँति समझ सकेंगे।

4.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व के गत्यात्मक सिद्धान्त पर चर्चा कर सकें।
2. फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकें।
3. इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त की तुलना फ्रायड एवं फ्रायडवादी सिद्धान्तों से कर सकें तथा
4. हार्नी एवं सुलीवान के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें।

4.3 व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त का परिचय-

मनोगत्यात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्तित्व के उन सिद्धान्तों को रखा गया है जो मानव व्यवहार की व्याख्या अचेतन प्रेरकों के संदर्भ में करते हैं तथा जिनका आधार मूलतः व्यक्ति के जैविक प्रणोद होते हैं। मनोगत्यात्मक सिद्धान्त मानव व्यवहार के घटित होने में बाल्यावस्था के अनुभवों की महत्वपूर्ण भूमिका का पक्षधर है और व्यवहार के पूर्व-निर्धार्यता में विश्वास रखता है। जहाँ एक ओर मनोगत्यात्मक उपागम के समर्थक व्यवहार की व्याख्या जन्मजात एवं जैविक मूल प्रवृत्ति के आधार पर करते हैं। वहीं बाल्यावस्था में पालन-पोषण की प्रणाली पर बल देकर अन्तःक्रियात्मक दृष्टिकोण के पक्षधर भी हैं।

मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की व्याख्या हेतु मनोगत्यात्मक उपागम ने एक नया द्वार खोला, जो न केवल विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगों को समझने में वैज्ञानिक अवधारणा को जन्म दिया बल्कि कला, साहित्य, विज्ञापन आदि के क्षेत्रों में भी नये-नये आयाम दिये।

4.4 फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त का आधार मानसिक रोगियों से प्राप्त नैदानिक प्रदत्त है जिसे उन्होंने मूलतः उन्मादग्रस्त रोगियों के इलाज के क्रम में प्राप्त किया था और इसी के आधार पर मनोविज्ञान का एक स्वतंत्र स्कूल मनोविश्लेषणवाद सन् 1912 ई0 में स्थापित किया।

इसके दो रूपों का उल्लेख किया गया- एक सैद्धान्तिक पक्ष तथा दूसरा व्यावहारिक पक्ष। सैद्धान्तिक पक्ष के रूप में मनोविश्लेषण को व्यक्तित्व-सिद्धान्त माना गया और व्यावहारिक पक्ष के रूप में इसे मनोचिकित्सा-विधि माना गया। यहाँ मनोविश्लेषण का मूल्यांकन व्यक्तित्व-सिद्धांत के अर्थ में किया जायेगा। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं-

1. व्यक्तित्व-गतिकी -

फ्रायड ने व्यक्ति के व्यवहारों की व्याख्या कार्य-कारण सिद्धान्त के आलोक में करने का सफल प्रयास किया। उन्होंने सामान्य तथा असामान्य व्यवहारों की एक मानसिक शक्ति की कल्पना की, जिसे जीवन-इच्छा या कामवृत्ति की संज्ञा दी गयी। इस शक्ति या इच्छा को प्रधानतः लैंगिक माना गया। लैंगिकता से उनका तात्पर्य शरीर के दो अंगों के सम्पर्क से उत्पन्न आनन्द से था। उनका विश्वास था कि यह लैंगिकता बच्चों में भी जन्म के समय उपस्थित होती है। आरम्भ में बच्चों के होंठ तथा दाँत में रहती है और आयु-वृद्धि के साथ इसका स्थान बदलता रहता है।

मानव व्यवहारों के निर्धारक के रूप में फ्रायड ने कामवृत्ति को ही मौलिक स्रोत माना। लेकिन, बाद में उन्होंने आक्रमणशील मूलप्रवृत्ति को स्वीकार किया और कामवृत्ति के अन्तर्गत जीवन-मूलप्रवृत्ति तथा मृत्यु-मूलप्रवृत्ति की कल्पना की। उन्होंने सभी प्रकार के रचनात्मक व्यवहारों का आधार जीवन-मूलप्रवृत्ति को और सभी प्रकार के ध्वंसात्मक व्यवहारों का आधार मृत्यु मूल प्रवृत्ति को माना। इन दोनों प्रकार की मूलप्रवृत्तियों का बहाव अन्दर की ओर भी होता है और बाहर की ओर भी। जब जीवन प्रवृत्ति का बहाव अन्दर की ओर होता है तो व्यक्ति अपने लिए

रचनात्मक कार्य करता है और अपने आप से प्रेम करता है। अतः आत्म प्रेम का आधार जीवन-प्रवृत्ति का अन्तर्मुखी बहाव है। जब इस प्रवृत्ति का बहाव बाहर की ओर होता है तो व्यक्ति दूसरों के लिए रचनात्मक एवं लाभकारी कार्य करता है। इसी तरह, मृत्यु-प्रवृत्ति के अन्तर्मुखी होने पर व्यक्ति अपने आप से घृणा करने लगता है तथा अपने आपको पीड़ा पहुँचाने लगता है और जब यह प्रवृत्ति बहिर्मुखी होती है तो व्यक्ति दूसरों से घृणा करने लगता है तथा ध्वंसात्मक कार्य द्वारा दूसरों को नुकसान पहुँचाता है। इन दोनों मूलप्रवृत्तियों का अन्र्मुखी तथा बहिर्मुखी बहाव जिस सीमा तक संतुलित होता है, व्यक्ति का व्यक्तित्व उसी सीमा तक संगठित एवं संतुलित होता है।

2. व्यक्तित्व-संरचना-

फ्रायड ने व्यक्तित्व रचना के दो पक्षों की चर्चा की, जिन्हें आकारात्मक पक्ष तथा गत्यात्मक पक्ष कहते हैं। आकारात्मक पक्ष के अन्तर्गत मन के तीन स्तरों की चर्चा की गयी-चेतन मन, अर्धचेतन मन तथा अचेतन मन। चेतन मन का तात्पर्य मन के उस भाग से है जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें रहती हैं, जिनका तात्कालिक ज्ञान व्यक्ति को रहता है। अर्धचेतन मन का तात्पर्य मन के उस भाग से है जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें होती हैं, जिनका तात्कालिक ज्ञान तो व्यक्ति को नहीं रहता है, परन्तु साधारण प्रयास से उनका ज्ञान हो जाता है। अचेतन मन का तात्पर्य मन के उस भाग से है, जिसमें ऐसे विचार या इच्छायें रहती हैं, जिनका न तो तात्कालिक ज्ञान होता है और न मामूली कोशिश से उनका ज्ञान हो पाता है, बल्कि इसके लिए सम्मोहन आदि मनोवैज्ञानिक प्रविधियों की आवश्यकता होती है। फ्रायड के अनुसार अचेतन मन व्यक्तिगत होता है और इसमें बचपन से लेकर वर्तमान तक की ऐसी इच्छायें दमित होती हैं, जिनकी संतुष्टि चेतन स्तर पर नहीं हो सकी हो। अचेतन इच्छायें एवं प्रेरणायें प्रधानतः लैंगिक होती है। फ्रायड का विचार है कि व्यक्ति के व्यवहारों के निर्धारण में अचेतन प्रेरणाओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। उनके इसी विचार को मानसिक निर्धारण कहते हैं। अपनी इसी अभिधारणा के आधार पर उन्होंने दैनिक जीवन की भूल, स्वप्न आदि की व्याख्या प्रस्तुत की।

गत्यात्मक पक्ष के अन्तर्गत तीन गत्यात्मक शक्तियों अर्थात् ईड, ईगो तथा सुपर ईगो की चर्चा की गयी। व्यक्तित्व के उस गत्यात्मक भाग को ईड कहा गया जो जन्मजात, अचेतन, अतार्किक तथा अनैतिक होता है और सुख के नियम पर कार्यरत होता है। ईगो उस गत्यात्मक भाग को कहा गया जो अर्जित, तार्किक, विवेकशील तथा अवसरवादी होता है और यथार्थता के नियम पर कार्यरत होता है। सुपर ईगो व्यक्तित्व के उस गत्यात्मक भाग को कहा गया जो अर्जित, नैतिक तथा अलैंगिक होता है और नैतिक नियम पर कार्यरत होता है। ईड तथा सुपर ईगो के विरोधी स्वरूप के कारण चेतन तथा अचेतन स्तरों पर मानसिक संघर्ष उत्पन्न होते हैं और ईगो के कारण उनका समाधान होता है। सबल ईगो के कारण सामान्य व्यवहार तथा दुर्बल ईगो के कारण असामान्य व्यवहार या मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। मानसिक संघर्षो के समाधान में कई प्रकार की मनोरचनाओं का हाथ है, जिनमें दमन, उदात्तीकरण, रूपान्तर, युक्ताभ्यास, प्रतिक्रिया-निर्माण, प्रक्षेपण आदि मुख्य हैं। इन मनोरचनाओं के सहारे ईगो मानसिक संघर्षो का समाधान करके व्यक्ति के मानसिक संतुलन को कायम रखता है। इसलिए, इन्हें रक्षात्मक मनोरचना भी कहते हैं।

3. व्यक्तित्व-विकास-

फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास में कामवृत्ति के विकास पर बल दिया और इसकी पाँच अवस्थाओं का वर्णन किया जो निम्नलिखित हैं-

1. मौखिक अवस्था-

व्यक्तित्व विकास की इस पहली अवस्था में कामवृत्ति बच्चे के होंठ तथा दाँत में रहती है। दूध पीने की अवस्था में यह होंठ में रहती है और दूध पीते समय माता के स्तन से स्पर्श होने पर लैंगिक आनन्द मिलता है। दाँत काटने की अवस्था में कामवृत्ति दाँत में चली जाती है और दूध पीते समय स्तन को दाँत काटने पर इनमें स्पर्श होने के कारण कामानन्द मिलता है। मौखिक अवस्था लगभग 18 महीने तक रहती है। इस अवस्था में केवल ईड होता है और वह अचेतन होता है। दूध पीने की अवधि लम्बी होने पर बच्चा आगे चलकर आशावादी बन जाता है। इस अवस्था में कामवृत्ति सामान्य रूप से निकलकर दूसरी अवस्था में पहुँच जाती है तो सामान्य व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस अवस्था में कामवृत्ति के स्थिरीकरण के कारण असामान्य व्यक्तित्व के निर्माण की संभावना बन जाती है। युवा अवस्था में लैंगिक विकृतियों के साथ-साथ मनोविदलता आदि मानसिक विकृतियों के विकसित होने की पूरी संभावना बन जाती है।

2. गुदा अवस्था-

इस अवस्था में कामवृत्ति गुदा में चली जाती है। बच्चे जब मलमूत्र अधिक करने लगते हैं या मलमूत्र को रोके रखने लगते हैं तो इससे कामवृत्ति में स्पर्श होने पर उन्हें लैंगिक आनन्द मिलता है। मौखिक अवस्था में बच्चे को पहली निराशा तब होती है जब उन्हें दूध छुड़ा दिया जाता है। इस निराशा के कारण ईगो तथा चेतन मन का उद्धव आरंभ होता है। गुदा अवस्था में बच्चों को साफ-सुथरा रहने तथा समय पर मलमूत्र करने के लिए बाध्य किया जाता है, जिससे वे निराशा महसूस करते हैं और इसी के साथ ईगो तथा चेतन मन का विकास होने लगता है। वह अवस्था लगभग 12 महीने से आरम्भ होकर 2 वर्ष तक जारी रहती है। यदि इस अवस्था से कामवृत्ति का गुजर सामान्य रूप से हो जाता है तो सामान्य व्यक्तित्व के विकास की संभावना बन जाती है। इस अवस्था में कामवृत्ति के स्थिरीकरण होने पर लैंगिक विकृतियों के साथ-साथ स्थिर-व्यामोह आदि मानसिक विकृतियों के युवा अवस्था में विकसित होने की सम्भावना बन जाती है।

3. यौनप्रधान अवस्था-

इस अवस्था में कामवृत्ति लड़के के शिश्न तथा लड़की के गुप्तांग के ऊपर के भाग में रहती है। अतः इन अंगों को रगड़ने में हस्तमैथुन, लैंगिग प्रदर्शन आदि देखे जाते हैं। अब उनमें यौन-भिन्नता की चेतना होने लगती है। लैंगिग क्रियाओं में अधिक रूचि लेने पर माता-पिता उन्हें बधियाकरण से डराते हैं। इस अवस्था में मातृप्रेमग्रंथी तथा पितृप्रेमग्रंथी अर्थात् लड़के की लैंगिग प्रवृत्ति माता की ओर तथा लड़की की लैंगिग प्रवृत्ति पिता की ओर देखी जाती है। जब इन प्रवृत्तियों का समाधान सामान्य रूप से संभव होता है तो सामान्य व्यक्तित्व तथा इसके अभाव से असामान्य व्यक्तित्व के निर्माण की सम्भावना बन जाती है। इस अवस्था में कामवृत्ति के स्थिरीकरण के कारण आगे चलकर लैंगिक विकृतियों के साथ-साथ उन्माद आदि मानसिक रोग के विकास की सम्भावना बन जाती है। यह अवस्था 2-3 साल से प्रारंभ होकर 5-6 साल तक रहती है।

4. अव्यक्त अवस्था-

यह अवस्था लगभग 6-7 वर्ष की आयु से आरम्भ होती है और लगभग 12 वर्ष की आयु तक बनी रहती है इसमें कामवृत्ति अव्यक्त रहती है। इसी अवस्था से बच्चों की शिक्षा आरम्भ होती है। अब वे लैंगिक क्रियाओं में रूचि नहीं लेते हैं बल्कि शिक्षा के प्रति जागरूक हो जाते हैं। नैतिक नियमों को सीखने के कारण इसी अवस्था में सुपर

ईगो का विकास होता है। जिस सीमा तक उन्हें नैतिक शिक्षा दी जाती है, उसी सीमा तक उनके व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष सबल हो पाता है।

5. जननेन्द्रिय अवस्था-

इस अवस्था में कामवृत्ति पुनः सक्रिय हो जाती है और शिश्न तथा गुप्तांग के अन्तः भाग में अवस्थित हो जाती है। इसलिए, उन्हें विषमजाति लैंगिकता द्वारा कामानन्द प्राप्त होता है। यह अवस्था लगभग 12-13 वर्ष की आयु से प्रारम्भ होती है अतः इस अवस्था का कोई सार्थक प्रभाव व्यक्तित्व-विकास पर नहीं पड़ता है। इस अवस्था के आते-आते सामान्य या असामान्य व्यक्तित्व का निर्माण हो चुका होता है। असल में यह अवस्था स्वयं पहली चार अवस्थाओं का परिणाम है।

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत व्यक्तित्व के भिन्न-भिन्न पक्षों की व्याख्या की गयी है, जिससे इस सिद्धान्त के कई गुणों की जानकारी होती है-

1. इस सिद्धान्त की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि अचेतन प्रेरणाओं का मानव व्यवहारों की उत्पत्ति पर चेतन प्रेरणाओं एवं संघर्षो के साथ-साथ अचेतन प्रेरणाओं एवं संघर्षो का भी गहरा प्रभाव पड़ता है। उनकी यह उपलब्धि वस्तुतः एक बहुत बड़ी उपलब्धि है, जिसके बिना मानव व्यवहार का सही एवं पूर्ण मूल्यांकन सम्भव नहीं है।
2. बचपन के अनुभव का प्रभाव व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है, इसे आज सभी मनोवैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। फ्रायड का यह विचार आज मान्य है कि व्यक्तित्व के निर्माण की आधारशिला प्राक्जननेन्द्रिय अवस्थायें हैं।
3. मानसिक संघर्षो के समाधान से सम्बन्धित मनोरचनाओं की खोज भी इस सिद्धान्त की एक बड़ी उपलब्धि है। आज सभी मनोवैज्ञानिक इस विचार से सहमत है कि संघर्षो के समाधान में दमन प्रतिगमन, प्रक्षेपण आदि मनोरचनायें सहायक होती हैं।
4. इस सिद्धान्त का एक योगदान यह भी है कि इसके आलोक में व्यक्तित्व के क्षेत्र में व्यापक रूप से अनुसंधान होने लगे, जिससे व्यक्तित्व की जटिल रचना तथा इसके निर्माण को समझने में सुविधा हुई। मानव व्यवहार को समझने में मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त से जितनी सहायता मिली है, उतनी सहायता शायद किसी दूसरे सिद्धान्त से नहीं मिली है। युंग, ऐडलर, एरिक्सन आदि ने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त से ही प्रभावित होकर व्यक्तित्व के सम्बन्ध में नई-नई बातों की खोज की, भले ही उनकी खोज इस सिद्धान्त के विपक्ष में हो। शोध-मूल्य के मापदण्ड पर जेली एवं जिगलर (1981, 1983) ने इस सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है।
5. कार्यात्मक सार्थकता मापदण्ड पर यह सिद्धान्त काफी सफल प्रमाणित होता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से इस सिद्धान्त ने मानव जीवन को काफी लाभान्वित किया है। जेली तथा जिगलर (1981, 1983) ने इस मापदण्ड पर भी फ्रायड के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा और कहा कि, ''फ्रायड के सिद्धान्त को कई विभिन्न विद्या क्षेत्रों (जैसे-मानव शास्त्र, इतिहास, साहित्य) में मानव-व्यवहार की व्याख्या हेतु उपयोग किया गया है, और मनोविश्लेषण ने बीसवीं शताब्दी में मानव-स्वभाव से सम्बन्धित हमारी धारणा को बदल दिया है।''

   फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की आलोचना कई आधारों पर की गयी है तथा इसके दोषों को स्पष्ट किया गया है।

1. इस सिद्धान्त के खिलाफ एक आलोचना यह है कि यह सिद्धान्त मानसिक रोगियों के निरीक्षण पर आधारित है। अतः इसके सभी प्रत्ययों का व्यवहार उसी रूप में सामान्य व्यक्ति पर नहीं किया जा सकता है।

2. इस सिद्धान्त में वैज्ञानिकता की कमी पाई जाती है। फ्रायड ने अनियंत्रित अवस्थाओं में मनोविश्लेषण तथा जीवन इतिहास-विधि का उपयोग कर अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त उनके अध्ययन में परिमाणन का भी अभाव रहा है।
3. फ्रायड का अध्ययन केवल एक संस्कृति तक सीमित था। व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कृति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अतः सभी संस्कृतियों के लोगों के व्यक्तित्व का समुचित अध्ययन करने में यह सिद्धान्त असफल है।
4. फ्रायड ने व्यक्तित्व-निर्माण में लैंगिक शक्ति या कामवृत्ति को एक मात्र प्रेरणात्मक शक्ति माना, जिसकी कड़ी आलोचना की गयी और युंग तथा ऐडलर ने व्यक्तित्व की व्याख्या में क्रमशः जातीय अचेतन तथा सामाजिक शक्ति के महत्व पर बल दिया।
5. फ्रायड ने व्यक्तित्व-विकास में केवल जैविक आवश्यकताओं तथा मूल-प्रवृत्तियों के महत्व पर बल दिया और वातावरण तथा सांस्कृतिक कारकों के महत्व को गौण कर दिया। नव-फ्रायड-वादियों ने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त की इस कमी को पूरा करने का प्रयास किया। ऐडलर, हार्नी, फ्रौम, एरिक्सन आदि ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्तित्व के निर्माण में सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। एरिक्सन ने मनोवैज्ञानिक विकास की 5 अवस्थाओं के बदले 8 अवस्थाओं का उल्लेख किया और ईगो को ईड से स्वतन्त्र माना।

4.5 एरिक्सन का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

एरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त को मनोसामाजिक सिद्धान्त भी कहते है। इन्होंने व्यक्तित्व के सिद्धान्त के प्रतिपादन में फ्रायड द्वारा प्रस्तावित विकासात्मक अवस्थाओं को स्वीकार करते हुए उसे व्यक्ति के पूरे जीवनकाल तक विस्तृत किया तथा व्यक्तित्व निर्माण पर जैविक कारकों के साथ-साथ सामाजिक एवं ऐतिहासिक कारकों के प्रभाव पर भी बल दिया। उन्होंने फ्रायड के विभिन्न प्रत्ययों ईड, ईगो, सुपर ईगो तथा मनोलैंगिक-विकास की अवस्थाओं को मानते हुए बच्चों के व्यक्तित्व विकास पर सामाजिक कारकों के प्रभावों पर बल दिया।

एरिक्सन ने व्यक्तित्व के विकास में ईड से अधिक ईगो पर बल दिया। इसलिए, उनके सिद्धान्त को ईगो-मनोविज्ञान भी कहा जाता है। जहाँ फ्रायड ने व्यक्तित्व-विकास की पाँच अवस्थाओं का उल्लेख किया, वहाँ एरिक्सन ने अहम् व्यक्तित्व की आठ अवस्थाओं का वर्णन किया और कहा कि आठवीं अवस्था में व्यक्तित्व का विकास पूरा हो जाता है। ये अवस्थायें निम्नलिखित हैं-

1. विश्वास-अविश्वास अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की मौलिक अवस्था के समान है। इस अवस्था में माता के अनुकूल या प्रतिकूल व्यवहार के कारण बच्चे में क्रमशः विश्वास या अविश्वास विकसित होता है। माता के अनुकूल व्यवहार के कारण बच्चे में विश्वास विकसित होता है और बच्चे की यही प्रथम सामाजिक उपलब्धि होती है।

2. स्वतन्त्रता-लज्जा एवं संदेह अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की गुदा अवस्था के समान है। इस अवस्था में भी लैंगिक इच्छा से अधिक प्रबल सामाजिक प्रेरक होता है। इस अवस्था में धारण करने अथवा बहिष्कार करने की प्रवृत्ति का नियंत्रण माता-पिता द्वारा उचित

ढंग से होता है तो बच्चे में स्वतन्त्रता की चेतना विकसित होती है, जिससे उनमें आत्म नियंत्रण तथा आत्म-विश्वास विकसित होता है। ऐसा नहीं होने से उनमें लज्जा तथा संदेह विकसित होते हैं।

3. अगुआई-दोष अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की यौन प्रधान-अवस्था के समान है। इस अवस्था में बच्चे मातृप्रेम संघर्ष का समाधान करते हैं। एरिक्सन के अनुसार लड़के में माता के प्रति लैंगिक प्रवृति नहीं होती है, बल्कि वह पिता से बिना मुकाबला किए ही माता के साथ अधिक-से-अधिक रहना चाहता है। अपने इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए वह पिता की आज्ञा मानने लगता है, जिससे सुपर ईगो का विकास होता है। इसमें पहल करने की चेतना पाई जाती है। यदि वह भय के कारण अपने इस लक्ष्य को छोड़ देता है तो दोषभाव विकसित हो जाता है। इस अवस्था में क्रूर तथा कठोर सुपर ईगो के विकसित होने पर इसका पूरा प्रभाव उसके समस्त जीवन पर पड़ता है।

4. व्यवसाय-हीनता अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की अव्यक्त अवस्था के समान है। इस अवस्था में बालक अपने घर से बाहर निकल जाता है, शिक्षालय जाता है तथा खेलकूद में भाग लेता है। अब वह किसी निश्चित उद्देश्य के साथ विशेष क्रियाओं को करके अपने व्यक्तित्व के समरूपण का प्रयास करता है। इसमें असफल होने पर वह हीनता महसूस करता है तथा असमर्थ होने का स्थाई विश्वास विकसित हो जाता है।

5. तादात्म्य प्रसारण अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की प्रारंभिक जननेन्द्रिय अवस्था के समान है। इस अवस्था में व्यक्ति यह महसूस करता है कि उसका अपना अलग व्यक्तित्व है और उसे सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है अथवा यह महसूस करता है कि उसे समाज में कोई स्थान प्राप्त नहीं है। पहली स्थिति होने पर आत्म-विश्वास विकसित होता है और दूसरी स्थिति होने पर भय, अतिआत्मीकरण आदि विकसित होते हैं। किशोर-अवस्था के इस प्रथम चरण में भूमिका प्रसारण का आधार व्यावसायिक तथा लैंगिक तादात्म्य है।

6. आत्मीयता-पृथकीकरण अवस्था-

यह अवस्था फ्रायड की विलंबित जननेन्द्रिय अवस्था के समान है। इस अवस्था में आत्मीयता की इच्छा प्रबल होती है। प्रेम-सम्बन्ध की आवश्यकता सबल होती है। विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण होता है। इस आत्मीयता की प्राप्ति नहीं होने पर पृथकीकरण देखा जाता है।

7. उत्पादकता-निश्चलता अवस्था-

फ्रायड के मनोलैंगिक विकास में इस अवस्था का उल्लेख नहीं मिलता है। एरिक्सन के अनुसार इस प्रौढ़ा-अवस्था में व्यक्ति अपने भावी जीवन के कई विकल्पों में से किसी विशेष विकल्प को चुनता है और निर्णय लेता है कि उसे केवल बच्चा पैदा करना है अथवा कोई रचनात्मक कार्य (उत्पादकता) करना है।

8. अहम् सम्पूर्णता-निराशा अवस्था-

इस अंतिम अवस्था में व्यक्ति की मनोवृत्ति अपने जीवन के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक होती है। सकारात्मक मनोवृत्ति होने पर अपने द्वारा किए गये अच्छे बुरे कार्यो को स्वीकार करता है तथा सम्मान के साथ मरने के लिए तैयार होता है। नकारात्मक मनोवृत्ति होने पर वह निराशा से पीड़ित रहा करता है और चैन से मरता भी नहीं है।

स्पष्ट है कि फ्रायड के मनोविश्लेषण का समर्थन करते हुए भी एरिक्सन ने फ्रायड के कई प्रत्ययों में परिमार्जन लाया तथा व्यक्तित्व-निर्माण में सामाजिक कारकों के महत्व पर बल देते हुए मनोविश्लेषण के क्षेत्र को व्यापक बनाने का

सफल प्रयास किया। उन्होंने स्वयं कहा कि उनका एक प्रधान योगदान तादात्म्य संकट का प्रत्यय है। उन्होंने ईगो सम्बन्धी फ्रायड के विचार में परिमार्जन लाया और कहा कि ईगो वास्तव में ईड पर आश्रित नहीं है, बल्कि वह ईड के प्रभाव से मुक्त एवं स्वतन्त्र है। इस प्रकार, एरिक्सन ने हार्टमैन की तरह अहम् मनोवैज्ञानिकों की पहली पंक्ति में अपना स्थान सुरक्षित कर लिया।

जेली तथा जिगलर (1983) के अनुसार इस सिद्धान्त में ऐसे प्रत्ययों का उल्लेख किया गया है, जिनके बीच पर्याप्त संगति है। इसी प्रकार इस सिद्धान्त में मिव्ययिता का गुण उपलब्ध है। इन दोनों कसौटियों पर यह सिद्धान्त काफी संतोषजनक है।

फिर भी, एरिक्सन के सिद्धान्त में कुछ दोष भी हैं। इस सिद्धान्त में प्रमाणीयता की बड़ी कमी है। इसके प्रत्ययों को आनुभविक आधार पर प्रमाणित करना कठिन है। इस सिद्धान्त का शोध-मूल्य भी काफी सीमित है। लेकिन, डीकैप्रियो (1983) ने इस आरोप को खंडित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार एरिक्सन ने विकासात्मक मनोविज्ञान, अहम् मनोविज्ञान, व्यक्तित्व तथा सांस्कृतिक, मनोऐतिहासिक विश्लेषण आदि क्षेत्रों में शोधकार्य का मार्गदर्शन किया है।

4.6 कारेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त

कारेन हार्नी एक महिला मनोवैज्ञानिक थी जिन्हें फ्रायड का न तो सहकर्मी और न ही षिष्य ही कहा जा सकता है, परंतु इतना जरूर कहा जा सकता है कि उनके प्रषिक्षण पर फ्रायडियन मनोविष्लेषण का प्रभाव काफी पड़ा। हार्नी कई बिन्दुओं पर फ्रायड से अलग विचार व्यक्त की; परंतु उसने उनके विचारों को ऐडलर एवं युंग के समान तिरस्कृत नहीं किया बल्कि उनमें संषोधन कर उन्हें उन्नत बनाने की कोषिष की। उन्होंने स्वयं ही कहा है ‘‘मैं कोई नये स्कूल की स्थापना नहीं करना चाहती, परंतु फ्रायड द्वारा डाले गये नींव पर ही कुछ बनाना चाहती हूँ’’। उनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त पर उनके अपने यौन अर्थात् स्त्रैण दृष्टिकोण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का पर्याप्त प्रभाव झलकता है। उनके इस सिद्धान्त को निम्नांकित प्रमुख शीर्षकों में बाँटकर वर्णन किया जा सकता है-

1. बाल्यावस्था की आवश्यकता
2. मूल चिन्ता
3. स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति
4. चिन्ता दूर करने के उपाय

बाल्यावस्था की आवश्यकताएँ

हार्नी, फ्रायड के इस मत से सहमत थी कि वयस्क व्यक्तित्व के निर्धारण में बाल्यावस्था के आरंभिक वर्षो का महत्व काफी होता है। परंतु हार्नी इस बिन्दु पर फ्रायड से अलग विचार रखती है कि व्यक्तित्व का निर्माण किस तरह से होता है। हार्नी का मत है कि बाल्यावस्था के सामाजिक बल न कि जैविक बलों द्वारा व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है। बच्चों तथा माता-पिता के साथ सामाजिक संबंध से व्यक्तित्व विकास प्रभावि होता है।

हार्नी का यह मत था कि बाल्यावस्था की दो आवश्यकताएँ प्रमुख होती हैं जिनका व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्षः प्रभाव पड़ता है। ये दो आवश्यकताएँ हैं-संतुष्टि आवश्यकता तथा सुरक्षा आवश्यकता। संतुष्टि आवश्यकता में मौलिक दैहिक आवश्यकताएँ जैसे-भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया, नींद आदि की आवश्यकता को सम्मिलित किया

गया है। सुरक्षा आवश्यकता में डर से स्वतंत्रता तथा सुरक्षा की आवश्यकता सम्मिलित होती है। इन दोनों आवश्यकताओं का स्वरूप सार्वभौमिक होता है। इन दोनों में हार्नी ने सुरक्षा आवश्यकता को व्यक्तित्व विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि इस बात पर निर्भर करती है कि बच्चा को माता-पिता से कितना स्नेह मिलता है और माता-पिता द्वारा किस हद तक वह एक वांछित बच्चा समझा जाता है। हार्नी का मत है कि जब सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि नहीं होती है तो बच्चों में विद्वेष उत्पन्न हो जाता है। बच्चे कुछ कारणों से जैसे-निःसहायता का भाव, माता-पिता के डर आदि से अपने विद्वेष भाव का दमन कर देते हैं। जब विद्वेष भाव का दमन हो जाता है, तो उससे बच्चों में चिन्ता की उत्पत्ति होती है जिसे मूल चिन्ता कहा जाता है।

मूल चिन्ता-

हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में मूल चिन्ता एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। मूल चिन्ता से हार्नी का तात्पर्य बच्चों में अकेलापन तथा निःसहायता का भाव से होता है, जो विद्वेष के भाव के दमन से जुड़ा होता है। हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता एक ऐसी चिन्ता है जिसके कारण बाद में व्यक्ति में तंत्रिकातापी रोग विकसित होता है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता के तीन तत्व होते हैं-असमर्थता या निःसहायता का भाव, विद्वेष तथा अलगाव। जब बच्चों को घर में वास्तविक प्यार एवं स्नेह नहीं मिलता है, तो इनमें इन तत्वों का विकास हो जाता है। जब माता-पिता से बच्चों को तिरस्कार मिलता है, तो उनमें असमर्थता तथा अलगाव का भाव विकसित हो जाता है तथा वे इन भावों को दूर करने का असफल प्रयत्न भी करते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि उनमें विद्वेष विकसित हो जाता है जिसके कारण वे दूसरों के प्रति आषंकित रहते हैं जो धीरे-धीरे उन्हें दूसरों के प्रति आक्रमक बना देता है। उनमें दोष-भाव विकसित हो जाते हैं जिसका पहले तो वे दमन कर देते हैं परंतु बाद में इससे उनमें चिन्ता विकसित हो जाती है। इस तरह से हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता विकसित होने का कारण एक ऐसा घरेलू वातावरण बतलाया गया है जिसमें माता-पिता एवं बच्चों के संबंध में सच्चा प्यार एवं स्नेह की कमी होती है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता से बच्चा अपने आप को बचाने के लिए कुछ तरीका अपनाता है जिसमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. स्नेह प्राप्त करना-

इसमें बच्चे दूसरों से स्नेह एवं प्यार पाने की भरपूर कोषिष करते हैं। दूसरों द्वारा किये गये आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहते हैं।

2. विन्रमता दिखाना-

विनम्रता आत्म-रक्षा का एक दूसरा प्रमुख उपाय है। इसमें व्यक्ति किसी एक व्यक्ति या प्रत्येक व्यक्ति के विचारों को काफी विनम्रता से स्वीकार करता है। वह कभी भी ऐसा कुछ नहीं करता है जिससे दूसरे व्यक्ति को क्रोध उत्पन्न हो जाए। परिस्थिति यदि ऐसी होती भी है, तो वह अपनी इच्छा एवं आवश्यकता का दमन कर देता है। व्यक्ति में यह विष्वास होता है कि यदि हम विनम्रता दिखायेंगे तो मुझे लोग चोट नहीं पहुँचायेंगे।

3. दूसरों पर नियंत्रण पाना-

दूसरों पर नियंत्रण पाना या अपने बल का उपयोग करने में सफल होना आत्म-रक्षा का तीसरा महत्वपूर्ण प्रक्रम है। जब व्यक्ति अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ या उत्तम समझता है या अपने को अधिक सबल या अपनी उपलब्धियों

को अधिक महत्वपूर्ण समझता है, तो वह एक तरह से निःसहायता की क्षतिपूर्ति करता है तथा सुरक्षा के भाव को मजबूत करता है।

4. प्रत्याहार या निवर्तन-

मूल चिन्ता से आत्म-रक्षा का एक चौथा तरीका वह है जिसमें व्यक्ति मनोवैज्ञानिक अर्थ में दूसरों से एक तरह से अपने आपको पीछे खींच लेता है। यहाँ व्यक्ति एक तरह से दूसरों से पूर्णतः स्वतंत्र हो जाता है तथा वह बाह्य एवं भीतरी आवश्यकताओं की तुष्टि के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता है।

आत्म-रक्षा के इन चारों प्रक्रमों का एक सामान्य लक्ष्य है- व्यक्ति को चिन्ता से बचना। ये सभी प्रक्रम व्यक्ति में सुरक्षा तथा पुनर्विष्वास उत्पन्न करते हैं।

स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति-

जब व्यक्ति अपनी जिन्दगी की बहुत सारी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है जिसके कारण उसे बार-बार असफलता ही हाथ लगती है, तो उसमें कुछ विषेष आवश्यकताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके व्यक्तित्व का एक स्थायी अंग बन जाती है। इसे हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता कहा है। इसे स्नायुविकृत आवश्यकता इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे व्यक्ति समस्या का कोई संगत समाधान नहीं कर पाता है। ऐसी आवश्यकताएँ सामान्य तथा मनःस्नायुविकृत दोनों ही व्यक्तियों में पाये जाते हैं, परंतु मनःस्नायुविकृत व्यक्तियों में इसकी प्रबलता अधिक होती है। हार्नी के अनुरूप ऐसे स्नायुविकृत आवश्यकताएँ निम्नांकित दस हैं-स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता, प्रबल जीवन साथी की आवश्यकता, जिन्दगी का संकुचित एवं सख्त घेरे में रखने की आवश्यकता, सत्ता की आवश्यकता, शोषण की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता, व्यक्तिगत प्रशंसा की आवश्यकता, व्यक्तिगत उपलब्धि तथा आकांक्षा की आवश्यकता, आत्म-पर्याप्तता तथा स्वतंत्रता की आवश्यकता, पूर्णता तथा अनाक्रमण की आवश्यकता।

स्पष्टतः उपर्युक्त आवश्यकताएँ हम सभी व्यक्तियों में होती है। परंतु जब कोई व्यक्ति उनमें से किसी आवश्यकता की गहन तुष्टि को ही मूल चिन्ता को दूर करने के उपाय के रूप में स्वीकार कर लेता है, तो उसका स्वरूप स्नायुविकृत या तंत्रिका रोगी हो जाता है। बाद में हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता के इस सिद्धान्त में परिवर्तन किया क्योंकि ये इनसे संतुष्ट नहीं थी। उन्होंने बाद में कहा कि इन सभी दसों आवश्यकता ओं की अभिव्यक्ति मात्र तीन तरह की मनोवृत्ति द्वारा की जा सकती है जिसे उन्होंने स्नायुविकृत प्रवृत्ति कहा है। स्नायुविकृत प्रवृत्ति एक ऐसा व्यवहार एवं मनोवृत्ति है जिसे व्यक्ति अपनी ओर तथा अन्य दूसरे व्यक्ति की ओर विकसित करता है तथा इन मनोवृत्तियों द्वारा वह अपनी स्नायुविकृति आवश्यकता ओं की अभिव्यक्ति करता है। इस तरह की व्यवहारात्मक तथा मनोवृत्ति प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नांकित है-

व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में अति अनुपालनशीलता का गुण पाया जाता है। व्यक्ति दूसरों का स्नेह, स्वीकृति एवं अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उनकी प्रत्येक इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए तत्पर रहता है। इसमें स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता तथा प्रबल जीवन साथ प्राप्त करने की आवश्यकता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में दूसरों के प्रति आक्रामकता तथा विद्वेष अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसमें सत्ता की आवश्यकता, शोषण की आवश्यकता,प्रशंसा एवं आकांक्षा आदि की आवश्यकता को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति दूसरों का सामना नहीं करना चाहता है और उनसे दूर हटने की कोशिश करता है। उसे लोगों से मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता है तथा वह एकान्तप्रिय हो जाता है।

इन तीनों तरह के स्नायुविकृत प्रवृत्तियों के पीछे एक उभयनिष्ठ कारक होता है जिसे उन्होंने सामाजिक कुसमायोजन कहा है। ये तीनों तरह की प्रवृत्तियों का स्वरूप बाध्यकर होता है जिसका मतलब यह हुआ कि स्नायुविकृत व्यक्ति उनमें से किसी एक ढंग की मनोवृत्ति दिखलाते हुए व्यवहार करने के लिए बाध्य होता है। इन तीनों तरह की प्रवृत्तियों से तीन अलग-अलग व्यक्तित्व प्रकारों का जन्म होता है जिनका वर्णन निम्नांकित है-

फरियादी व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व, व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति जरूरत से ज्यादा दूसरों पर निर्भर करते हैं एवं दूसरों के स्नेह एवं अनुमोदन को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं। दूसरे लोगों के साथ व्यवहार करते समय ऐसे लोगों का दृष्टिकोण मैत्रीपूर्ण होता है तथा दूसरों की भलाई करने के ख्याल से अपनी इच्छा एवं आकांक्षा की कुर्बानी भी देते हैं। अक्सर वे एक निःसहायता एवं कमजोरी की मनोवृत्ति इस ख्याल से दिखलाते हैं कि दूसरे लोग उन्हें ऐसा समझकर स्नेह एवं सुरक्षा प्रदान कर सके।

विद्वेषी या आक्रामक व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्ति आक्रामक, शक्की, समाज विरोधी तथा विद्वेषी प्रकृति के होते हैं। ऐसे लोगों को अपनी क्षमता पर जरूरत से ज्यादा भरोसा रहता है तथा दूसरों पर नियंत्रण एवं अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने के ख्याल से वे हमेशा आधिपत्य दिखाने की कोशिाशा करते हैं। ऐसे लोग दूसरों के साथ व्यवहार करने में या किसी तरह का संबंध स्थापित करने में इस बात का ख्याल अधिक करते हैं कि उन्हें उस संबंध से क्या लाभ होगा। वे यह नहीं सोचते हैं कि उससे दूसरों को क्या लाभ होगा।

असम्बद्ध व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्तियों में आत्म केन्द्रिता, एकान्तप्रियता तथा असामाजिकता अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे लोग अन्य सभी लोगों से एक सांवेगिक दूरी बनाकर रखते हैं। ऐसे लोग दूसरों को न तो प्यार करते हैं, न घृणा करते हैं और न ही उनके साथ किसी तरह का सहयोग करते हैं। ऐसे लोग अधिक से अधिक समय अकेले होकर व्यतीत करना चाहते हैं।

हार्नी ने अपने सिद्धान्त में ये भी स्पष्ट किया है कि एक तंत्रिका रोगी व्यक्ति में उपर्युक्त तीन तरह की प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति अधिक प्रबल होता है। जबकि अन्य दो कुछ ही मात्रा में उपस्थित होते हैं। परंतु वे दमित होते हैं। जब कोई दमित प्रवृत्ति अपनी अभिव्यक्ति के लिए सक्रिय प्रयास जारी करता है, तो इससे व्यक्ति में मानसिक संघर्ष होता है।

मूल चिन्ता को कम करने के प्रयास-

हार्नी ने अपने व्यक्तितव सिद्धान्त में कुछ वैसे उपायों का भी वर्णन किया है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने में उत्पन्न मूल चिन्ता को कम करता है। ऐसे उपायों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा जा सकता है।

आदर्शवादी आत्म-छवि-

हार्नी का मत है कि मूल चिन्ता को दूर करने के ख्याल से अपने आप के बारे में व्यक्ति एक आदर्शवादी छवि विकसित कर लेता है जिसमें वह अपने आप को सभी तरह के गुणों से युक्त पाता है। यह आदर्शवादी छवि प्रायः अवास्तविक एवं अतिरंजित होता है। ऐसी परिस्थिति में वास्तविक आत्मन् तथा आदर्शवादी आत्मन् में काफी अन्तर होता है। आदर्शवादी आत्मन् के माँगों को पूरा करने के लिए सामान्यतः एक स्नायुविकृत प्रयास होता है। ऐसा प्रयास बाध्यकर, अविभेदी तथा अतुष्टनीय होता है। अपने आदर्शवादी आत्मन् को समर्थन प्रदान करने के लिए व्यक्ति एक विशेष तंत्र विकसित कर लेता है जिसे घमंड तंत्र कहा जाता है जिसमें व्यक्ति घमंड से व्यवहार करता है तथा अपने आप में वह विशेष शक्ति, बुद्धि, धन प्राप्त कर लेने की बात सोच रखता है जो अन्य किसी में नहीं होता है। इतना ही नहीं, वह अपने आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को समर्थन देने के लिए व्यवहारों का कुछ महत्वपूर्ण मानकों को मन में बैठा लेता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है।

रक्षा प्रक्रम-

हार्नी का मत है कि व्यक्ति मूल चिन्ता को दूर करने के लिए कुछ रक्षा प्रक्रम का भी सहारा लेता है। उनके अनुसार ऐसे रक्षा प्रक्रम दो प्रकार के होते हैं-यौक्तिकीकरण तथा बाह्याता। यौक्तिकीकरण एक ऐसा रक्षा प्रक्रम है जिसमें अयुक्तिसंगत अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं से उत्पन्न मानसिक संघर्ष या तनाव का समाधान उन अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं को युक्तिसंगत बनाकर अर्थात तर्कपूर्ण एवं विवेकपूर्ण व्याख्या कर किया जाता है और मानसिक संघर्ष को दूर करने की कोशिश की जाती है। इस तरह से हार्नी ने युक्तिकीकरण का उपयोग फ्रायड के ही अर्थ में किया। बाह्याता को हार्नी ने प्रक्षेपण के तुल्य माना है जिसमें व्यक्ति अपनी क्रिया की व्याख्या, कुछ बाह्य कारकों में दोषारोपण करके करता है। प्रायः दोषारोपण में वह अपने से कमजोर तत्वों को ही निशाना बनाता है।

स्पष्ट हुआ कि हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त का समग्र बल जैविक कारक न होकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक है।

हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जिन तथ्यों पर प्रकाश डाला है उसके आलोक में इस सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ कही जा सकती है।

1. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी द्वारा जैविक कारक को गौण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को प्रधान माना जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि बतलाया है और कहा है कि सचमुच में व्यक्तित्व के निर्धारण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की श्रेष्ठता पर बल डालकर अन्य कई मनोवैज्ञानिकों को इस क्षेत्र में शोध एवं मंत्रणा करने का उत्तम प्रोत्साहन दिया गया है।
2. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी के कुछ संप्रत्ययों जैसे-मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता एवं स्नायुविकृत प्रवृत्ति को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। कई मनोवैज्ञानिकों ने उनके द्वारा प्रतिपादित स्नायुविकृत प्रवृत्ति को विचलित व्यवहार के बारे में जानने का एक उत्तम तरीका बतलाया है।
3. कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा आत्म-सम्मान, सुरक्षा की आवश्यकता तथा आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त का मुख्य पहलू माना गया है क्योंकि इसके द्वारा दो बातों अर्थात् व्यक्तित्व का विकास तथा स्नायुविकृत प्रवृत्तियों से व्यक्तित्व किस तरह से प्रभावित होता है, की सफल

व्याख्या होती है। सामाजिक अन्तःक्रियाओं के आलोक में ऐसी व्याख्या व्यक्तित्व के अन्य सिद्धान्त में नहीं मिलता है।

इन गुणों के बावजूद निम्नांकित बिन्दुओं पर हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की आलोचना की गयी है-

1. हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त का शोधपरक मूल्य कम बतलाया गया है। इनके संप्रत्ययों पर अधिक शोध नहीं किये गये हैं तथा इनकी लोकप्रियता इतनी नहीं है जितना कि फ्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धान्तों की थी। इसका एक मुख्य कारण यह था कि हार्नी के शिष्य भी कम थे जो उनके विचारों एवं सिद्धान्तों पर गहन अध्ययन करते।
2. फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जैविक मूलप्रवृत्तियों की उपेक्षा करके तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर जरूरत से ज्यादा बल डालकर व्यक्तित्व के सिद्धान्त की एक अधूरी व्याख्या प्रस्तुत की है।
3. कुछ आलोचकों ने यह भी कहा है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में लैंगिकता, बाल्यावस्था विकास, आक्रमकता तथा अचेतन की उपेक्षा करके हार्नी ने बहुत बड़ी भूल की है।
4. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में यद्यपि हार्नी ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों को महत्वपूर्ण माना है, फिर भी उन्होंने समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र में उपलब्ध आँकड़ों जिनसे उनके सिद्धान्त में मजबूती आती, का उपयोग नहीं किया है। उन्होंने यह भी विस्तृत रूप से नहीं बतलाया है कि किस तरह से सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा व्यक्तित्व का विकास हो पाता है।
5. यह भी कहा गया है कि हार्नी के सिद्धान्त में उतनी संगति नहीं है जितना कि फ्रायड के सिद्धान्त में है तथा इनका सिद्धान्त मध्यवर्गीय अमेरिकन संस्कृति से जरूरत से ज्यादा प्रभावित होता पाया गया है मानों यह सिद्धान्त सिर्फ इस वर्ग के व्यक्तियों के व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए बना हो।

इन आलोचनाओं के बावजूद हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त के महत्व का अंदाज हम इस बात से भी लगा सकते हैं कि न्यूयार्क शहर में हार्नी के नाम पर दो संस्थान खोले गये हैं जो मानसिक समस्याओं के उपचार से संबंद्ध प्रशिक्षण प्रदान करता है। ये संस्थान हैं-कारेन हार्नी क्लिनिक, तथा कारेन हार्नी साइकोएनालिटिक एन्स्टीट्यूट।

4.7 सुलीवान का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

सुलीवान को भी एक नव-फ्रायड वादी मनोवैज्ञानिक माना जाता है जिन्होंने फ्रायडवादी मनोविश्लेषण के बहुत सारे सम्प्रत्ययों को अनुचित समझकर हटा दिया और एक ऐसे संप्रत्यात्मक सिद्धान्त का वर्णन किया जिसका आधार मनोविश्लेषणात्मक स्रोतों से परे और बिल्कुल भिन्न था। हालांकि उन्होंने फ्रायड के गत्यात्मक मनोविज्ञान के बहुत सारे सम्प्रत्ययों को अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में शामिल किया, परन्तु फ्रायड के लिविडो, पराहं, अहं उपाहं, यौन सिद्धान्त आदि को सिरे से खारिज कर दिया।

फ्रायड के समान सुलीवान ने भी व्यक्तित्व विकास में बहुत सारी विशिष्ट अवस्थाओं को स्वीकार किया। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इन्हें एक वास्तविक विकासात्मक सिद्धान्तवादी माना जाता है और इनके मनोविज्ञान को मनश्चिकित्सा का अन्त वैयक्तिक सिद्धान्त कहा जाता है।

सुलीवान के अनुसार व्यक्ति जन्म से ही वातावरण के विभिन्न वस्तुओं एवं व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया करता है तथा उस अन्तःक्रिया से ही उसके व्यवहार का निर्धारण होता है। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व इन्हीं अन्त वैयक्तिक व्यवस्था के संदर्भ में विकसित होता है।

सुलीवान के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अंतर्गत समझा जा सकता है-

1.व्यक्तित्व की गतिकी

2.व्यक्तित्व के टिकाऊ पहलू

3.विकासात्मक अवस्थाएं

व्यक्तित्व की गतिकी:

सुलीवान ने मनुष्य के अन्दर एक ऐसे ऊर्जा तन्त्र की कल्पना की जो आवश्यकताओं से उत्पन्न तनावों को हमेशा कम करने की कोशिश करता है। उन्होंने तनाव को दो भागों में बाँटा-आवश्यकताओं से उत्पन्न तनाव तथा चिन्ता से उत्पन्न तनाव। आवश्यकताओं द्वारा उत्पन्न तनाव से व्यक्ति समकलनात्मक व्यवहार करता है तथा चिन्ता से उत्पन्न तनाव द्वारा व्यक्ति असमाकलानात्मक व्यवहार करता है। जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को तुष्ट नहीं कर पाता है, तो उससे एक विशेष अवस्था उत्पन्न होती है जिससे भावशून्यता विकसित होती है। सुल्लीभान का मत है कि यदि माँ चिन्तित रहती है तो उनके बच्चों में भी अपने आप चिन्ता विकसित हो जाती है। माँ को चिन्तित होने से उनकी आवाज, व्यवहार, चेहरा तनावपूर्ण लगता है जिसे देखकर बच्चे भी वैसा ही भावभंगिमा बनाना प्रारंभ कर देते हैं और वे चिन्ता के शिकार हो जाते हैं।

सुलीवान ने संज्ञान के तीन स्तर की पहचान की है, जो इस प्रकार है-

प्रोटोटैक्सिक, पाराटैक्सिक तथा सिनटैक्सिक। प्रोटोटैक्सिक अनुभूतियों में शिशुओं के प्रारंभिक अनुभूतियाँ सम्मिलित होती है। ऐसी अनुभूतियाँ अस्पष्ट, क्षणिक तथा धारण योग्य नहीं होने के कारण संचारनीय नहीं होती हैं। अतः प्रोटोटैक्सिक अनुभूतियाँ शिशुओं के संज्ञान की आरम्भिक अनुभूतियां होती है। पाराटैक्सिक अनुभूतियां प्राक्तार्किक, व्यक्तिगत तथा दूसरों को विकृत ढंग से संचारनीय होती है। ऐसी अनुभूतियाँ निश्चित रूप से प्रोटोटैक्सिक अनुभूतियों से अधिक स्पष्ट होती है। ऐसी अनुभूतियों का जन्म तो बाल्यावस्था में होता है, परन्तु इनसे बाद की जिन्दगी की अनुभूतियाँ भी प्रभावित होती है। सिनटैक्सिक अनुभूतियाँ अधिक सार्थक होती है और ऐसी अनुभूतियों को व्यक्ति हाव-भाव एवं भाषा आदि द्वारा उत्तम ढंग से दूसरों को संचारित करता है।

यद्यपि उपर्युक्त तीनों तरह की अनुभूतियाँ व्यक्ति की सम्पूर्ण जीवन काल में होते पायी जाती हैं परन्तु एक सामान्य व्यक्ति की जिन्दगी में सिनटैक्सिक अनुभूतियों की प्रबलता अधिक होती है।

व्यक्तित्व का टिकाऊ पहलू-

सुलीवान ने अपने मनोविज्ञान में व्यक्तित्व के कई ऐसे पहलुओं पर बल डाला है जो टिकाऊ प्रकृति के होते हैं। ऐसे पहलुओं में निम्नांकित तीन प्रमुख हैं-

1.गत्यात्मकता

2.मानवीकरण तथा

3.आत्म-तंत्र

1. गत्यात्मकता-

सुलीवान के मनोविज्ञान में गत्यात्मकता एक ऐसा पद है जिसे शीलगुण के तुल्य माना गया है। सुलीवान के अनुसार गत्यात्मकता से तात्पर्य एक ऐसे संगत पैटर्न से होता है जो व्यक्ति की पूरी जिन्दगी में दिखाई देता है। उन्होंने गत्यात्मकता को दो भागों में बाँटा है- शरीर के विशेष क्षेत्र से सम्बन्धित गत्यात्मकता तथा तनाव से संबंधित गत्यात्मकता। पहले तरह की गत्यात्मकता से व्यक्ति की विशेष शारीरिक आवश्यकताओं जैसे-भूख तथा प्यास की आवश्यकता की तुष्टि होती है। दूसरे तरह की गत्यात्मकता के तीन उप प्रकार बतलाये गए हैं-वियोजक गम्यात्मकता, अलगावी गत्यात्मकता तथा संयोजक गत्यात्मकता।

वियोजक गत्यात्मक में व्यवहार के ध्वंसात्मक पैटर्न को रखा जाता है। उसमें व्यक्ति के उन प्रवृत्तियों को रखा जाता है जो उन्हें यह सोचने के लिए बाध्य करता है कि लोग प्रायः बुरे प्रकृति के होते हैं और यह संसार रहने लायक स्थान नहीं है। अलगावी गत्यात्मकता में कामुकता का गुण होता है जो एक जैविक घटना है और यौनांगों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न तनाव से विकसित होता है। इसमें समलैंगिक तथा विषमलैंगिक व्यवहारात्मक पैटर्न सम्मिलित होते हैं। संयोजक गत्यात्मकता से तात्पर्य वैसे लाभदायक व्यवहार से होता है जैसा कि हम घनिष्ठता तथा आत्म-तंत्र में पाते हैं। इसमें से आत्म-तंत्र को सुलीवान ने सबसे महत्वपूर्ण माना है।

2. मानवीकरण-

व्यक्तित्व का दूसरा टिकाऊ पहलू मानवीकरण है जिससे तात्पर्य अपने या दूसरे के बारे में मन में बने एक प्रतिमा या छवि से होता है। मानवीकरण की प्रतिमा आवश्यकता तुष्टि या दुष्चिन्ता की अनुभूतियों से बनी होती है। जब व्यक्ति में संतोषजनक अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध विकसित होता है, तो इससे उसके मन में धनात्मक प्रतिमा विकसित होती है तथा असंतोषजनक अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध व्यक्ति में होने से दुष्चिन्ता तथा ऋणात्मक प्रतिमा विकसित होती है। सुलीवान का मत है कि प्रारंभिक बाल्यावस्था में पाँच सरल मानवीकरण के विकास के स्रोत हैं-उत्तम माँ, बुरी माँ, बुरा-स्वयं, उत्तम-स्वयं तथा स्वयं नहीं। जब बच्चे को माँ के साथ किये गये अन्तःक्रियाओं से उसमें चिन्ता उत्पन्न होती है, तो इससे उसमें 'बुरी माँ' का मानवीकरण विकसित होता है। उत्तम-माँ मानवीकरण उस समय विकसित होता है जब शिशु को माँ के साथ अन्तःक्रिया करने पर तुष्टि होती है। जब बच्चों में अपनी अन्तःक्रियाओं से संतोषजनक एवं पुरस्कृत होने की भावना होती है, तो उसमें 'उत्तम-स्वयं' का मानवीकरण और जब उसे अपनी ही अन्तःक्रियाओं से असंतुष्टि, दंडित एवं अपमानित होने की भावना उत्पन्न होती है, तो इससे उसमें बुरा-स्वयं का मानवीकरण विकसित होता है। जब बच्चों में काफी तीव्र चिन्ता एवं दर्दपूर्ण अनुभूतियाँ होती हैं, तो इससे उसमें स्वयं नहीं का संप्रत्यय विकसित होता है। दर्दपूर्ण अनुभूतियों के कारण आत्मन् की वैसी चीजें जो इन अनुभूतियों से संबंधित होती है, व्यक्तित्व से अलग हो जाती है। इस तरह से कहा जा सकता है कि स्वयं-नहीं के मानवीकरण द्वारा आत्मन् के विच्छेदित पहलू का प्रतिनिधित्व होता है और इसमें खतरनाक संवेग जिसे सुलीवान ने 'अनकैनी' कहा है, सम्मिलित होता है।

3. आत्म-तंत्र-

आत्म-तंत्र ऐसा जटिल तंत्र है जो अन्तर्वैयक्तिक सुरक्षा को बरकरार रखते हुए व्यक्ति को दुष्चिन्ता से बचाता है। इस तरह से सुलीवान के अनुसार आत्म-तंत्र एक तरह का चिन्ताविरोधी तंत्र है क्योंकि इसमें वैसी गत्यात्मकता

सम्मिलित होती हैं जिनसे दुष्चिन्ता में कमी आती है। इस तरह के आत्म-तंत्र का विकास बच्चों में डेढ़ से दो साल की उम्र में प्रारंभ हो जाता है। हालाँकि आत्म-तंत्र से दुष्चिन्ता कम हो जाती है, यह व्यक्ति को संरचनात्मक ढंग से रहने की क्षमता में बाधक भी होता है। कैसे ? जब किसी बच्चे के आत्म-तंत्र में अधिक दुष्चिन्ता अनुभूति होती है, उसका आत्म-तंत्र अतिरंजित हो जाता है और वह व्यक्तित्व से अलग-से हो जाता है। इस तरह का आत्म-तंत्र सचमुच में उसे किसी परिस्थिति के बारे में एक वास्तविक एवं वस्तुनिष्ठ निर्णय लेने से रोकता है। इससे सार्थक एवं सर्जनात्मक ढंग से रहने में एक तरह से बाधा पहुँचती है।

विकासात्मक अवस्थाएँ-

सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास के सात अवस्थाओं का वर्णन किया है। इनका मत है कि व्यक्तित्व में परिवर्तन विकास की किसी भी अवस्था में हो सकता है परंन्तु ऐसे परिवर्तन एक अवस्था से दूसरी अवस्था के अंतरण में सर्वाधिक होता है। एक बच्चा दूसरों का किस तरह से प्रत्यक्षण करता है और वह दूसरों के प्रति किस तरह की प्रतिक्रिया करता है, पर व्यक्तित्व का विकास निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, सुलीवान के अनुसार अन्वैंयक्तिक सम्बन्ध की धारा ही महत्वपूर्ण होती है जो व्यक्तित्व विकास के विभिन्न अवस्थाओं को एक सूत्र में बाँधती है। उनके द्वारा बतलाये गए व्यक्तित्व विकास की सात अवस्थाएँ निम्नांकित हैं-

1. **शैशवावस्था-**

यह अवस्था जन्म से लेकर लगभग 24 महीने तक का अर्थात् जब वे सुस्पष्ट भाषा का उपयोग प्रारंभ कर देता है, तक का होता है। जन्म के समय शिशु एक पशु के समान होता है तथा माँ से जैसे-जैसे उसे प्यार एवं स्नेह मिलता है उसमें मानवीय गुणों का विकास होता जाता है। इस अवस्था में शिशु माँ के बारे में दोहरे मानवीकरण विकसित कर लेता है। माँ को वह एक ‘उत्तम माँ’ तथा ‘बुरी माँ’ के रूप में प्रत्यक्षण करता है। जब शिशु अपनी आवश्यकताओं को माँ से तुष्ट होते पाता है तो वह माँ को एक ‘उत्तम माँ’ के रूप में और जब माँ के साथ अन्तःक्रिया से उसमें चिन्ता उत्पन्न होती है, तो उसे एक बुरी माँ के रूप में प्रत्यक्षण करता है। इसी अवस्था के दौरान शिशु संज्ञान के प्रोटोटैक्सिक विधि से पाराटैक्सिक विधि की ओर अंतरण करता है।

2. **बाल्यावस्था-**

यह अवस्था सुस्पष्ट भाषा बोलने से लेकर साथ-संगी की आवश्यकता (अर्थात् लगभग पाँच वर्ष की उम्र) उत्पन्न होने तक की होती है। इस अवस्था में भाषा का विकास हो जाने से शैशवावस्था में विकसित विभिन्न तरह के मानवीकरण या प्रतिमाओं का आपस में विलयन होता है। जैसे-‘उत्तम माँ’ तथा ‘बुरी माँ’ का मानवीकरण एक साथ मिलकर ‘माँ’ की प्रतिमा या मानवीकरण की उत्पत्ति करते हैं। इस अवस्था में बच्चे कुछ सांस्कृतिक पैटर्न जैसे-खाने की आदत, पेशाब-पैखाना की आदत, यौन-भूमिका की प्रत्याशाएँ आदि को भी सीखता है। सुलीवान के अनुसार इस अवस्था में दो अन्य तरह के सीखना जिसे नाटकीकरण तथा तल्लीनता कहा जाता है, भी सम्मिलित होता है। नाटकीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें बच्चे माँ या पिता या परिवार के अन्य महत्वपूर्ण सदस्यों की भूमिका का नकल उतारते हैं। तल्लीनता से तात्पर्य एक ऐसे उपाय से होता है जिसके सहारे बच्चे अपने आप को ऐसे कार्यो मंे जिनके करने से उन्हें पुरस्कार मिलता है, फँसा कर रखते हैं ताकि उनमें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं विकसित हो सके।

3. **तरूणावस्था-**

यह अवस्था 5-6 साल की अवस्था से प्रारंभ होकर 8-9 साल की अवस्था जब बच्चे में घनिष्ठ दोस्ती की आवश्यकता उत्पन्न होती है, तक का होता है। इस अवस्था में बच्चे में प्रतिस्पर्द्धा, समझौता तथा सहयोग की भावना विकसित होती है। इस अवस्था में तीन ऋणात्मक विकास भी होते हैं। दूसरे शब्दों में, इस अवस्था में बच्चों में रूढ़िकृति, बहिष्कार तथा अवज्ञा का शीलगुण भी विकसित हो जाता है। रूढ़िकृति से तात्पर्य एक ऐसे मानवीकरण से होता है जो माता-पिता द्वारा बच्चों के मन में बैठा दिये जाते हैं-भगवान के सामने जाने पर हाथ जोड़ना एक ऐसी ही रूढ़िकृति का उदाहरण है। बहिष्कार से तात्पर्य एक ऐसा अलगाव से होता है जो बच्चों को तब अनुभव होता है जब वह कोई बाह्य समूह का सदस्य होता है। अवज्ञा में बच्चे दूसरे लोगों से विशेषकर उन व्यक्तियों से जिन्हें माता-पिता निन्दा करते हैं या नापसंद करते हैं, घृणा करना सीख जाता है।

4. प्राक् किशोरावस्था-

इस अवस्था की शुरूआत घनिष्ठता की आवश्यकता से प्रारंम्भ होकर यौवनारंभ तक की होती है। इस अवस्था में बच्चे अपने ही यौन के किसी एक व्यक्ति से अधिक घनिष्ठ दोस्ती कर लेते हैं। इसमें दोस्ती का आधार स्नेह एवं घनिष्ठता होती है। इस अवस्था में अपने ही यौन के व्यक्ति के साथ इस तरह के घनिष्ठ सम्बन्ध को सुलीवान ने ‘सखा’ की संज्ञा दी है। सुलीवान का मत है कि बिना ‘सखा’ के इस अवस्था में बच्चों में एक तीव्र अलगाव एवं एकान्तवासी होने का भाव विकसित होता है जिससे अन्ततोगत्वा उसमें दुष्चिन्ता विकसित होती है जो उनके आगे के विकास के लिए हानिकारक होते हैं।

5. आरंभिक किशोरावस्था-

यह अवस्था यौवनारंभ से प्रारंभ होकर उस समय तक की होती है जब उसमें विपरीत लिंग के व्यक्ति के साथ स्नेह या प्यार करने की आवश्यकता उत्पन्न नहीं हो जाती है। इस अवस्था में किशोरों में जननांगी अभिरूचि विकसित हो जाती है और वह कामुक सम्बन्ध कायम करने के लिए तत्पर हो जाता है। इस अवस्था में तीन तरह की मौलिक आवश्यकताओं से संबंधित समस्याएँ प्रधान होती हैं-सुरक्षा, विपरीत लिंग के व्यक्तियों के साथ घनिष्ठता तथा लैंगिक तुष्टि। सुलीवान का यह मत है कि किशोरों में ये तीनों तरह की आवश्यकताएँ आपस में टकराती हैं जिससे विभिन्न तरह का तनाव उनमें उत्पन्न हो जाता है। सुलीवान ने इस अवस्था को जिन्दगी का एक महत्वपूर्ण मोड़ माना है क्योंकि यदि इस तनाव से उत्पन्न समस्या को वे ठीक ढंग से समाधान कर लेते हैं, तो इससे उनमें स्थिरता आती है और यदि वे उनका सफल ढंग से समाधान नहीं करते है, तो इससे उनमें अन्तर्वैयक्तिक कठिनाईयाँ उत्पन्न हो जाती हैं और भविष्य की जिन्दगी दुःखमय हो जाती है।

6. उत्तर किशोरावस्था-

इस अवस्था की शुरूआत जननांगी क्रियाओं के स्थिरीकरण से प्रारंभ होकर वयस्कावस्था में स्थायी प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने तक की होती है। इस अवस्था में संज्ञान के सिनटैक्सिक तरीका प्रबल होता है। इस अवस्था का सबसे प्रमुख गुण कामुकता तथा घनिष्ठता का विलयन है। इस अवस्था का अन्तिम परिणाम आत्म सम्मान है जिसके आधार पर व्यक्ति फिर दूसरों को स्नेह एवं प्यार देना सीख लेता है।

7. परिपक्वता-

सुलीवान ने इस अवस्था के बारे में कुछ खास नहीं कहा है क्योंकि उनकी नजर में सच्चे अर्थ में परिपक्वता विकसित होने की कोई स्पष्ट अवस्था या उम्र नहीं होती है। उनका मत था कि प्रत्येक गत अवस्था के महत्वपूर्ण उपलब्धि की अंतिम अभिव्यक्ति एक परिपक्व व्यक्तित्व के रूप में होती है। सुलीवान ने एक परिपक्व व्यक्तित्व की कई

विशेषताओं का वर्णन किया है। जैसे-एक परिपक्व व्यक्ति अपनी सीमाओं की स्पष्ट पहचान करता है, अपनी अभिरूचि समझता है, अपनी चिन्ताओं की पहचान करता है तथा वह समझ-बुझकर लोगों से संबंध स्थापित करता है।

सुलीवान द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण तथा अवगुण है। इस सिद्धान्त के प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. सुलीवान पहले ऐसे नव-फ्रायडवादी हैं जिन्होंने व्यक्तित्व के विकास की व्याख्या में जन्म से लेकर परिपक्वता तक की अवधि का एक चरणबद्ध वर्णन किया है।
2. अन्य नवफ्रायडवादी के समान सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर बल डाल कर यह स्पष्ट कर दिया है कि ये कारक व्यक्तित्व के एक प्रमुख निर्धारक हैं। सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास में जो अन्तर्वैयक्तिक संबंध पर अधिक बल डाला है वह अपने आप में अद्वितीय है तथा लोगों के ध्यान का प्रमुख केन्द्र बिन्दु रहा है।
3. सुलीवान के सिद्धान्त को मनोवैज्ञानिकों ने अन्य नवमनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण इसलिए माना है क्योंकि इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व का एक काफी समन्वित तस्वीर उपस्थित किया गया है। तनाव, गत्यात्मकता आदि जैसे महत्वपूर्ण संप्रत्ययों का उपयोग करके सुलीवान ने व्यक्तित्व के गम्यात्मक पहलुओं का एक अनोखा वर्णन उपस्थित किया है जिसे इस समूह के अन्य सिद्धान्तों में देखने को नहीं मिलता है।

इन गुणों के बावजूद सुलीवान के सिद्धान्त के कुछ अवगुण या परिसीमाएँ हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. कुछ आलोचकों का मत है कि सुलीवान ने अपने तंत्र में कुछ काल्पनिक संरचनाओं को जरूरत से ज्यादा महत्व दिया हैं इसमें मानवीकरण, आत्म-तंत्र आदि प्रमुख हैं। इस काल्पनिक संरचनाओं का चूँकि प्रयोगात्मक सत्यापन कठिन है, अतः इस सिद्धान्त पर लोगों की निर्भरता काफी कम है।
2. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सुलीवान ने व्यक्तित्व के बारे में जो विचार व्यक्त किये हैं, वे पूर्णतः उनके नैदानिक प्रेक्षणों पर आधारित हैं। चूँकि इन प्रेक्षणों में सामान्य व्यक्तियों को नहीं के बराबर सम्मिलित किया गया है, अतः उनके व्यक्तित्व विकास के सिद्धान्त को सामान्य व्यक्तियों पर लागू करना संभव नहीं है।

इन आलोचनाओं के बावजूद सुलीवान द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्तों का महत्व काफी है। चूँकि उनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्तों का आधार अन्तर्वैयक्तिक संबंध है, इसलिए उनके मनोविज्ञान की एक अलग अपनी पहचान एवं विशिष्टता बनी हुई है तथा ऐसे स्वप्नों का वर्णन करते समय रोगी को उसके मन में आने वाले साहचर्य को भी बतलाना पड़ता है। इन साहचर्यो के माध्यम से स्वप्न का विश्लेषण किया जाता है। इसके अलावा स्वप्न विश्लेषण में प्रतीकीकरण का भी सहारा लिया जाता है। प्रतीकों के माध्यम से चिकित्सक उनके अचेतन की इच्छाओं का अर्थ उन्हें समझाता है जिसे रोगी स्वीकार कर अपने तंत्रिकातापी व्यवहार के अर्थ को समझता है और सूझ विकसित कर लेता है।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तित्व के मनोलैंगिक विकास पर किसने बल दिया -

(अ) फ्रायड (ब) युंग

(स) एंडलर (द) इरिक्सन

2. व्यक्तित्व की विकासात्मक अवस्थाओं में अहं-तादात्म्य को केन्द्रीय महत्व किसने दिया -

(अ) हार्नी (ब) फ्रॉम

(स) इरिक्सन (द) फ्रायड

3. सुलीवान ने व्यक्तित्व विकास की कितनी अवस्थाएं बतायी हैं -

(अ) पाँच (ब) छः

(स) सात (द) आठ

4.8 सार-संक्षेप-

व्यक्तित्व के मनोगत्यात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत उन सिद्धान्तों को रखा गया है जो मानव व्यवहार की व्याख्या अचेतन प्रेरकों के संदर्भ में करते हैं।

फ्रायड का व्यक्तित्व सिद्धान्त मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के रूप में भी जाना जाता है। इसके अन्तर्गत फ्रायड ने व्यक्तित्व गतिकी, व्यक्तित्व संरचना, व्यक्तित्व विकास आदि के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की व्याख्या की है।

इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त को मनोसामाजिक सिद्धान्त भी कहते हैं। इरिक्सन ने व्यक्तित्व की व्याख्या इसे निम्नलिखित आठ अवस्थाओं में बांटकर की है- विश्वास-अविश्वास अवस्था, स्वतंत्रता-लज्जा एवं संदेह अवस्था, अगुआई-दोष अवस्था, व्यवसाय-हीनता अवस्था, तादात्म्य-प्रसारण अवस्था, आत्मीयता-पृथकीकरण अवस्था, उत्पादकता-निश्चलता अवस्था, अहम्-सम्पूर्णता-निराशा अवस्था।

हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त को नव फ्रायडवादी सिद्धान्त के अन्तर्गत रखा जाता है। फ्रायड से कई बिन्दुओं पर सहमति तो कई पर विरोध रखते हुए इन्होंने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में बाल्यावस्था की आवश्यकता, मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता आदि पर काफी बल दिया।

सुलीवान को भी एक नव-फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक माना जाता है। इन्होंने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में व्यक्तित्व की गतिकी, व्यक्तित्व के टिकाऊ पहलू तथा विकासात्मक अवस्थाओं की चर्चा की।

4.9 पारिभाषिक शब्दावली-

मातृ-प्रेमगन्थी: लड़के की लैंगिक प्रवृत्ति माता की ओर।

पितृ-प्रेमग्रन्थी: लड़की की लैंगिक प्रवृत्ति पिता की ओर।

आत्म-तंत्र: एक ऐसा जटिल तंत्र जो अन्तःवैयक्तिक सुरक्षा को बरकरार रखते हुए व्यक्ति को दुष्चिन्ता से बचाता है।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. व्यक्तित्व के फ्रायडवादी सिद्धान्त की समीक्षा करें।
2. इरिक्सन के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर प्रकाश डालें।
3. हार्नी एंव फ्रायड के व्यक्तित्व सिद्धान्त की तुलना करें।
4. सुलीवान के व्यक्तित्व विकास की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन करें।
5. टिप्पणी लिखें- क. अचेतन ख. अहं-तादात्म्य ग. आत्म-तंत्र

4.11 संदर्भ - ग्रन्थ

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।

3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality.

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. अ 2. स 3. स

इकाई 5 व्यक्तित्व के सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (अल्फ्रेड एडलर, एरिक फ्रोम, करेन हॉर्नी), बैंडुरा का व्यक्तित्व का सामाजिक संज्ञानात्मक सिद्धान्त (Social Psychological Theory of Personality (Alfred Adler, Eric Fromm, Karen Horney), Bandura Social Cognitive Theory of Personality)

इकाई संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का अर्थ
5.4 अल्फ्रेड ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त
5.5 कारेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त
5.6 इरिक फ्रॉम का व्यक्तित्व सिद्धान्त
5.7 बान्दुरा का व्यक्तित्व सिद्धान्त
5.8 सार संक्षेप
5.9 पारिभाषिक शब्दावली
5.10 निबन्धात्मक प्रष्न
5.11 संदर्भ ग्रन्थ
5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

5.1 प्रस्तावना-

पूर्व की इकाई में आपने पढ़ा कि व्यक्तित्व की व्याख्या अनेक सिद्धान्तों द्वारा की गई है जिसमें मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण योगदान है। इसके अन्तर्गत आपने फ्रायड एवं नव-फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों का अध्ययन किया।

व्यक्तित्व के कुछ ऐसे भी सिद्धान्त हैं जिनके प्रतिपादकों ने सामाजिक-मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की व्याख्या करने का प्रयास किया है।

इन मनोवैज्ञानिकों में भी कुछ फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक हैं तो कुछ नव-फ्रायडवादी। कुछ ऐसे भी मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार की व्याख्या सामाजिक एवं संज्ञानात्मक परिप्रेक्ष्य में की है।

प्रस्तुत इकाई में हम लोग सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मानव व्यक्तित्व की व्याख्या करने वाले फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक अल्फ्रेड ऐडलर तथा नव-फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिक इरिक फ्रॉम एवं कारेन हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त का अध्ययन करेंगे साथ ही बान्दुरा के सामाजिक सिद्धान्त के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व को समझने का प्रयास करेंगे।

5.2 उद्देश्य -

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पष्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अन्य सिद्धान्तों से तुलना कर सकें।
2. ऐडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर प्रकाष डाल सकें,

3. इरिक फ्रॉम एवं कारेन हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या एवं इनकी तुलना कर सकें तथा
4. बान्दुरा के व्यक्तित्व सिद्धान्त के मूल तत्वों की विवेचना कर सकें।

5.3 व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का अर्थ-

व्यक्तित्व को समझने एवं उसकी व्याख्या हेतु मनोवैज्ञानिकों द्वारा जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है उसमें कुछ तो पूर्णतः मनोवैज्ञानिक स्वरूप के सिद्धान्त हैं, जैसे-फ्रायड एवं युंग का सिद्धान्त; कुछ पूर्णतः अधिगम आधारित सिद्धान्त है, जैसे-स्कीनर, पैवलव, बान्दुरा का सिद्धान्त तथा कुछ ऐसे भी सिद्धान्त हैं जो सामाजिक-मनोवैज्ञानिक पहलुओं के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व की व्याख्या करते हैं-जैसे-ऐडलर, फ्रॉम, हार्नी आदि का सिद्धान्त। दरअसल, सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के पक्षधर व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों ने जहाँ मानव स्वभाव की व्याख्या में कुछ मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों जैसे-इच्छा शक्ति, मूल चिन्ता, स्नायनिक आवश्यकता आदि का सहारा लिया है वहीं जीवन शैली, जन्मक्रम, दूसरों पर नियंत्रण पाना, सत्तावादिता, सम्बद्धता आवश्यकता आदि जैसे सामाजिक संप्रत्ययों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व एवं मानव व्यवहार की व्याख्या करने का प्रयास किया है। अतः व्यक्तित्व के उन सिद्वान्तों को जो व्यक्तित्व की व्याख्या उसके सामाजिक मनोवैज्ञानिक संप्रत्ययों के परिप्रेक्ष्य में करता है, व्यक्तित्व का सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्वान्त कहते हैं। यहाँ कतिपय ऐसे सि,द्धान्तों पर विस्तार से प्रकाष डाला गया है।

5.4 अल्फ्रेड ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

फ्रायड ने लैंगिकता को मानव व्यवहार का एक मात्र प्रेरणात्मक आधार माना, जिसे ऐडलर ने स्वीकार नहीं किया और फ्रायड से अलग होकर वैयक्तिक मनोविज्ञान की स्थापना की। इसे ही ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त कहते हैं। व्यक्तित्व रचना एवं व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में ऐडलर के विचारों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता हैं-

1. व्यक्तित्व गतिकी-

ऐडलर ने फ्रायड के लिबिडो के स्थान पर इच्छा-षक्ति को व्यक्ति के व्यवहारों का मौलिक प्रेरणात्मक निर्धारक माना। परन्तु, बाद में उन्होंने श्रेष्ठता प्रवृत्ति को व्यक्तित्व निर्माण का मौलिक प्रेरक माना। आरंम्भ में बच्चे अपने आपको असहाय एवं निर्बल पाते हैं। फलतः उनमें हीनता भाव विकसित हो जाता है। इस भाव की क्षति-पूर्ति के लिए वह ऐसे कार्यो को करने हेतु प्रेरित होता है, जिससे उसे श्रेष्ठता प्राप्त हो सके। जब वह उपलब्धि-स्तर प्राप्त हो जाता है तो वह पुनः हीन भाव महसूस करने लगता है और पुनः ऊँची उपलब्धि प्राप्त करने के लिए प्रेरित हो जाता है तो असमान्यता के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं।

2. सामाजिक रूचि-

ऐडलर (1939) ने सामाजिक रूचि या सामाजिक प्रेरक को मानव व्यवहारों का एक मौलिक निर्धारक माना और कहा कि सामाजिक रूचि जन्मजात होती है। इस प्रकार, उन्होंने प्रभुत्व आकांक्षा के साथ-साथ सामाजिक प्रेरक को भी व्यक्तित्व का आवश्य क अंग माना। सामाजिक रूचि की अभिव्यक्ति सहकारिता, आत्मीकरण, परस्पर सामाजिक सम्बन्ध आदि रूपों में देखी जाती है। ऐडलर के अनुसार व्यक्ति स्वभावतः सामाजिक है।

जीवन शैली-

ऐडलर के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में व्यवहार करने की अपनी विशेष शैली होती है, जिससे उसका व्यक्तित्व अपूर्व बन जाता है। सभी व्यक्तियों का लक्ष्य होता है-श्रेष्ठता प्राप्त करना। परन्तु उसको प्राप्त करने के ढंग अलग-अलग

होते हैं, जिसे जीवन-षैली कहा जाता है। इस शैली का निर्माण 4.5 वर्ष की आयु तक हो जाता है और इसके बाद अनुभवों का समावेष तथा उपयोग इसी शैली के अनुकूल होता है।

सर्जनात्मक व्यक्तित्व-

व्यक्तित्व-संरचना की व्याख्या करते हुए ऐडलर ने सर्जनात्मक आत्मा या व्यक्तित्व के प्रत्यय की कल्पना की तथा इसे वंषपरम्परा तथा अनुभव का परिणाम माना। उनके अनुसार सर्जनात्मक आत्मा ही मानव जीवन का आधार तथा वास्तविक संचालक है। ऐडलर का यह प्रत्यय वास्तव में बहुत कीमती है और आत्मा के पुराने प्रत्यय से भिन्न है।

जन्मक्रम-

व्यक्तित्व विकास के सम्बन्ध में जन्मक्रम के महत्व की चर्चा करते हुए ऐडलर ने कहा कि अन्य परिस्थितियाँ समान होने पर भी जन्मक्रम के कारण बच्चों का व्यक्तित्व भिन्न हो जाता है। पहला बच्चा को माता-पिता की ओर से अधिक स्नेह मिलता है और दूसरे बच्चे के जन्म लेने पर यह स्नेह बांट जाता है या इसमें कमी आ जाती है। इस अनुभव की अभिव्यक्ति पहला बच्चा कई रूपों में करता है। स्नायुविकृत, अपराधी, शराबी तथा भ्रष्ट प्रायः प्रथम जन्मक्रम के होते हैं। यदि माता-पिता पहले बच्चे को प्रतिस्पर्धा से बचा लेते हैं तो ऐसे बच्चे विवकेषील तथा उच्च उपलब्धि आवश्यकता वाले होते हैं। जो बच्चा दूसरे जन्मक्रम में होता है, वह अभिलाषी होता है। सबसे छोटा बच्चा दुर्बलित होता है। जोन्स के अनुसार सभी परिस्थितियों में ऐडलर का यह विचार सही सिद्ध नहीं होता है।

ऐडलर के सिद्धान्त पर आलोचनात्मक दृष्टि डालने पर इसके कई गुणों तथा अवगुणों का पता चलता है। इस सिद्धान्त के निम्नलिखित गुण हैं-

1. व्यक्तित्व विकास में ऐडलर ने सामाजिक कारकों के महत्व पर बल देकर एक सराहनीय काम किया। उनका यह विश्वास आज भी मान्य है कि व्यक्तित्व विकास पर जैविक कारकों की अपेक्षा सामाजिक कारकों का भाव अधिक पड़ता है। ऐडलर ने मानव को जैविक प्राणी नहीं माना, बल्कि सामाजिक प्राणी माना।
2. समग्रता-मापदण्ड पर जेली एवं जिगलर ने ऐडलर के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है। इस आधार पर यह सिद्धान्त फ्रायड के सिद्धान्त के बराबर है।
3. मितव्ययिता मापदण्ड पर भी ऐडलर का सिद्धान्त काफी संतोषप्रद है। ऐडलर ने बहुत थोड़े प्रत्ययों के आधार पर व्यक्तित्व संरचना की व्याख्या प्रस्तुत की है। जेली एवं जिगलर के शब्दों में ‘‘ऐडलर का सिद्धान्त इस अर्थ में अत्यधिक किफायती है कि इसमें सीमित मौखिक प्रत्ययों की सहायता से सम्पूर्ण सैद्धान्तिक प्रणाली की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।’’
4. आंतरिक संगति मापदण्ड के आधार पर भी ऐडलर का सिद्धान्त सफल प्रतीत होता है। ऐडलर ने अपने सिद्धान्त में जिन बातों का उल्लेख किया है, उनके बीच कोई विरोध या असंगति नहीं है, बल्कि काफी संगति है।

इस दृष्टिकोण से ऐडलर का सिद्धान्त फ्रायड या युंग के सिद्धान्त से श्रेष्ठकर है। इस कसौटी पर जेली तथा जिगलर ने ऐडलर को प्रथम श्रेणी में तथा फ्रायड को द्वितीय श्रेणी में रखा है। डीकैप्रियो के अनुसार मनोचिकित्या के क्षेत्र में ऐडलर का महत्वपूर्ण योगदान है। आज भी पाष्चात्य देषों में सलाहकार तथा चिकित्सक ऐडलर के प्रत्ययों तथा उनकी विधियों का अनुसरण कर रहे हैं।

उपर्युक्त गुणों/विशेषताओं के रहते हुए भी ऐडलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त आलोचना से परे नहीं है।

1. जेली तथा जिगलर के अनुसार इस सिद्धान्त में प्रमाणनीयता का बहुत अभाव है। ऐडलर ने अपने सिद्धान्त में ऐसे प्रत्ययों का उल्लेख किया है, जिन्हें न तो आनुभविक आधार पर परिभाषित किया जा सकता है और न प्रमाणित किया जा सकता है। इस कसौटी पर उन्होंने इस सिद्धान्त की गणना तीसरी श्रेणी में की है। उनके अनुसार आल्पोर्ट की समकलनात्मक एकता की तरह ऐडलर ने सर्जनात्मक व्यक्तित्व का अनुभविक परीक्षण यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।
2. एडलर के सिद्धान्त में शोध-मूल्य भी सीमित है। इस सिद्धान्त से शोधकार्य में बहुत कम सहायता मिली है। ऐडलर के जन्मक्रम के प्रत्यय को छोड़कर उनके दूसरे प्रत्ययों के सम्बन्ध में बहुत कम शोध हुए है। इसी कारण जेली तथा जिगलर ने इस कसौटी पर इस सिद्धान्त को दूसरी श्रेणी में रखा है जबकि फ्रायड के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है।
3. व्यावहारिक महत्व के दृष्टिकोण से ऐडलर का सिद्धान्त फ्रायड के सिद्धान्त से बहुत पीछे है। इस सिद्धान्त का प्रभाव मनोचिकित्सा तथा माता-पिता एवं बच्चों के बीच सम्बन्ध के अतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों पर बहुत कम पड़ा है, जबकि फ्रायड के सिद्धान्त का प्रभाव जीवन के अनेक क्षेत्रों पर पड़ा है। इसी कारण जेली तथा जिगलर ने इस कसौटी पर जहाँ फ्रायड के सिद्धान्त को प्रथम श्रेणी में रखा है, वहाँ ऐडलर के सिद्धान्त को दूसरी श्रेणी में।
4. मानव-व्यवहार के मूल स्रोत के सम्बन्ध में ऐडलर का विचार स्पष्ट नहीं है। उन्होंने कभी सामाजिक रूचि को, कभी प्रभुत्व-शक्ति को और कभी जीवन शैली को प्रेरणात्मक स्रोत माना। सर्जनात्मक व्यक्तित्व तथा जीवन-षैली के निर्माण में इसकी भूमिका से संबंधित ऐडलर का विचार अस्पष्ट है।
5. डी कैप्रिया के अनुसार ऐडलर के सिद्धान्त के विरूद्ध एक गम्भीर आरोप यह है कि व्यक्तित्व-निर्माण में प्रारंभिक बचपन पर अनावष्यक बल दिया गया है। उनका यह विश्वास कि व्यक्तित्व का निर्माण प्रारंभिक वर्षो में ही पूरा हो जाता है, युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता है। आल्पोर्ट का कहना है कि व्यक्तित्व की दिषायें किषोराअवस्था या वयस्क-अवस्था में बदल सकती है। वैलेन्ट के अनुसार कॉलेज के अनुभवों के कारण लड़के तथा लड़कियों के प्रारंभिक व्यक्तित्व में कठोर परिवर्तन हो सकते है। थॉमस एवं चेस ने इसी तरह का विचार प्रस्तुत किया है।

5.5 कारेन हार्नी का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

कारेन हार्नी एक महिला मनोवैज्ञानिक थी जिन्हें फ्रायड का न तो सहकर्मी और न ही शिष्य ही कहा जा सकता है, परंतु इतना जरूर कहा जा सकता है कि उनके प्रषिक्षण पर फ्रायडियन मनोविष्लेषण का प्रभाव काफी पड़ा। हार्नी कई बिन्दुओं पर फ्रायड से अलग विचार व्यक्त की; परंतु उसने उनके विचारों को ऐडलर एवं युंग के समान तिरस्कृत नहीं किया बल्कि उनमें संषोधन कर उन्हें उन्नत बनाने की कोषिष की। उन्होंने स्वयं ही कहा है ''मैं कोई नये स्कूल की स्थापना नहीं करना चाहती, परंतु फ्रायड द्वारा डाले गये नींव पर ही कुछ बनाना चाहती हूँ''। उनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त पर उनके अपने यौन अर्थात् स्त्रैण दृष्टिकोण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों का पर्याप्त प्रभाव झलकता है। उनके इस सिद्धान्त को निम्नांकित प्रमुख शीर्षकों में बाँटकर वर्णन किया जा सकता है-

1. बाल्यावस्था की आवश्यकता
2. मूल चिन्ता
3. स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति
4. चिन्ता दूर करने के उपाय

बाल्यावस्था की आवश्यकताएँ

हार्नी, फ्रायड के इस मत से सहमत थी कि वयस्क व्यक्तित्व के निर्धारण में बाल्यावस्था के आरंभिक वर्षो का महत्व काफी होता है। परंतु हार्नी इस बिन्दु पर फ्रायड से अलग विचार रखती है कि व्यक्तित्व का निर्माण किस तरह से होता है। हार्नी का मत है कि बाल्यावस्था के सामाजिक बल न कि जैविक बलों द्वारा व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है। बच्चों तथा माता-पिता के साथ सामाजिक संबंध से व्यक्तित्व विकास प्रभावि होता है।

हार्नी का यह मत था कि बाल्यावस्था की दो आवश्यकताएँ प्रमुख होती हैं जिनका व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्षः प्रभाव पड़ता है। ये दो आवश्यकताएँ हैं-संतुष्टि आवश्यकता तथा सुरक्षा आवश्यकता। संतुष्टि आवश्यकता में मौलिक दैहिक आवश्यकताएँ जैसे-भोजन, पानी, लैंगिक क्रिया, नींद आदि की आवश्यकता को सम्मिलित किया गया है। सुरक्षा आवश्यकता में डर से स्वतंत्रता तथा सुरक्षा की आवश्यकता सम्मिलित होती है। इन दोनों आवश्यकता ओं का स्वरूप सार्वभौमिक होता है। इन दोनों में हार्नी ने सुरक्षा आवश्यकता को व्यक्तित्व विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि इस बात पर निर्भर करती है कि बच्चा को माता-पिता से कितना स्नेह मिलता है और माता-पिता द्वारा किस हद तक वह एक वांछित बच्चा समझा जाता है। हार्नी का मत है कि जब सुरक्षा आवश्यकता की तुष्टि नहीं होती है तो बच्चों में विद्वेष उत्पन्न हो जाता है। बच्चे कुछ कारणों से जैसे-निःसहायता का भाव, माता-पिता के डर आदि से अपने विद्वेष भाव का दमन कर देते हैं। जब विद्वेष भाव का दमन हो जाता है, तो उससे बच्चों में चिन्ता की उत्पत्ति होती है जिसे मूल चिन्ता कहा जाता है।

मूल चिन्ता-

हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में मूल चिन्ता एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। मूल चिन्ता से हार्नी का तात्पर्य बच्चों में अकेलापन तथा निःसहायता का भाव से होता है, जो विद्वेष के भाव के दमन से जुड़ा होता है। हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता एक ऐसी चिन्ता है जिसके कारण बाद में व्यक्ति में तंत्रिकातापी रोग विकसित होता है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता के तीन तत्व होते हैं-असमर्थता या निःसहायता का भाव, विद्वेष तथा अलगाव। जब बच्चों को घर में वास्तविक प्यार एवं स्नेह नहीं मिलता है, तो इनमें इन तत्वों का विकास हो जाता है। जब माता-पिता से बच्चों को तिरस्कार मिलता है, तो उनमें असमर्थता तथा अलगाव का भाव विकसित हो जाता है तथा वे इन भावों को दूर करने का असफल प्रयत्न भी करते हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि उनमें विद्वेष विकसित हो जाता है जिसके कारण वे दूसरों के प्रति आषंकित रहते हैं जो धीरे-धीरे उन्हें दूसरों के प्रति आक्रमक बना देता है। उनमें दोष-भाव विकसित हो जाते हैं जिसका पहले तो वे दमन कर देते हैं परंतु बाद में इससे उनमें चिन्ता विकसित हो जाती है। इस तरह से हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता विकसित होने का कारण एक ऐसा घरेलू वातावरण बतलाया गया है जिसमें माता-पिता एवं बच्चों के संबंध में सच्चा प्यार एवं स्नेह की कमी होती है।

हार्नी के अनुसार मूल चिन्ता से बच्चा अपने आप को बचाने के लिए कुछ तरीका अपनाता है जिसमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. स्नेह प्राप्त करना-

इसमें बच्चे दूसरों से स्नेह एवं प्यार पाने की भरपूर कोषिष करते हैं। दूसरों द्वारा किये गये आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहते हैं।

2. विन्रमता दिखाना-

विनम्रता आत्म-रक्षा का एक दूसरा प्रमुख उपाय है। इसमें व्यक्ति किसी एक व्यक्ति या प्रत्येक व्यक्ति के विचारों को काफी विनम्रता से स्वीकार करता है। वह कभी भी ऐसा कुछ नहीं करता है जिससे दूसरे व्यक्ति को क्रोध उत्पन्न हो जाए। परिस्थिति यदि ऐसी होती भी है, तो वह अपनी इच्छा एवं आवश्यकता का दमन कर देता है। व्यक्ति में यह विश्वास होता है कि यदि हम विनम्रता दिखायेंगे तो मुझे लोग चोट नहीं पहुँचायेंगे।

3. दूसरों पर नियंत्रण पाना-

दूसरों पर नियंत्रण पाना या अपने बल का उपयोग करने में सफल होना आत्म-रक्षा का तीसरा महत्वपूर्ण प्रक्रम है। जब व्यक्ति अपने आप को दूसरों से श्रेष्ठ या उत्तम समझता है या अपने को अधिक सबल या अपनी उपलब्धियों को अधिक महत्वपूर्ण समझता है, तो वह एक तरह से निःसहायता की क्षतिपूर्ति करता है तथा सुरक्षा के भाव को मजबूत करता है।

4. प्रत्याहार या निवर्तन-

मूल चिन्ता से आत्म-रक्षा का एक चौथा तरीका वह है जिसमें व्यक्ति मनोवैज्ञानिक अर्थ में दूसरों से एक तरह से अपने आपको पीछे खींच लेता है। यहाँ व्यक्ति एक तरह से दूसरों से पूर्णतः स्वतंत्र हो जाता है तथा वह बाह्य एवं भीतरी आवश्यकता ओं की तुष्टि के लिए किसी अन्य व्यक्ति पर निर्भर नहीं रहता है।

आत्म-रक्षा के इन चारों प्रक्रमों का एक सामान्य लक्ष्य है- व्यक्ति को चिन्ता से बचना। ये सभी प्रक्रम व्यक्ति में सुरक्षा तथा पुनर्विष्वास उत्पन्न करते हैं।

स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति-

जब व्यक्ति अपनी जिन्दगी की बहुत सारी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है जिसके कारण उसे बार-बार असफलता ही हाथ लगती है, तो उसमें कुछ विषेष आवश्यकता एँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके व्यक्तित्व का एक स्थायी अंग बन जाती है। इसे हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता कहा है। इसे स्नायुविकृत आवश्यकता इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे व्यक्ति समस्या का कोई संगत समाधान नहीं कर पाता है। ऐसी आवश्यकता एँ सामान्य तथा मनःस्नायुविकृत दोनों ही व्यक्तियों में पाये जाते हैं, परंतु मनःस्नायुविकृत व्यक्तियों में इसकी प्रबलता अधिक होती है। हार्नी के अनुरूप ऐसे स्नायुविकृत आवश्यकताएँ निम्नांकित दस हैं -स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता, प्रबल जीवन साथी की आवश्यकता, जिन्दगी का संकुचित एवं सख्त घेरे में रखने की आवश्यकता, सत्ता की आवश्यकता , शोषण की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता , व्यक्तिगत प्रशंसा की आवश्यकता , व्यक्तिगत उपलब्धि तथा आकांक्षा की आवश्यकता, आत्म-पर्याप्तता तथा स्वतंत्रता की आवश्यकता, पूर्णता तथा अनाक्रमण की आवश्यकता ।

स्पष्टतः उपर्युक्त आवश्यकता एँ हम सभी व्यक्तियों में होती है। परंतु जब कोई व्यक्ति उनमें से किसी आवश्यकता की गहन तुष्टि को ही मूल चिन्ता को दूर करने के उपाय के रूप में स्वीकार कर लेता है, तो उसका स्वरूप स्नायुविकृत या तंत्रिका रोगी हो जाता है। बाद में हार्नी ने स्नायुविकृत आवश्यकता के इस सिद्धान्त में परिवर्तन किया क्योंकि ये इनसे संतुष्ट नहीं थी। उन्होंने बाद में कहा कि इन सभी दसों आवश्यकताओं की अभिव्यक्ति मात्र तीन तरह की मनोवृत्ति द्वारा की जा सकती है जिसे उन्होंने स्नायुविकृत प्रवृत्ति कहा है। स्नायुविकृत प्रवृत्ति एक ऐसा व्यवहार एवं

मनोवृत्ति है जिसे व्यक्ति अपनी ओर तथा अन्य दूसरे व्यक्ति की ओर विकसित करता है तथा इन मनोवृत्तियों द्वारा वह अपनी स्नायुविकृति आवश्यकता ओं की अभिव्यक्ति करता है। इस तरह की व्यवहारात्मक तथा मनोवृत्ति प्रवृत्तियों का वर्णन निम्नांकित है-

व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में अति अनुपालनषीलता का गुण पाया जाता है। व्यक्ति दूसरों का स्नेह, स्वीकृति एवं अनुमोदन प्राप्त करने के लिए उनकी प्रत्येक इच्छा के अनुसार कार्य करने के लिए तत्पर रहता है। इसमें स्नेह एवं अनुमोदन की आवश्यकता तथा प्रबल जीवन साथ प्राप्त करने की आवश्यकता आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति में दूसरों के प्रति आक्रामकता तथा विद्वेष अधिक मात्रा में पाया जाता है। इसमें सत्ता की आवश्यकता , शोषण की आवश्यकता , प्रशांसा एवं आकांक्षा आदि की आवश्यकता को सम्मिलित किया जा सकता है।

व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति-

इस तरह की प्रवृत्ति में व्यक्ति दूसरों का सामना नहीं करना चाहता है और उनसे दूर हटने की कोशिश करता है। उसे लोगों से मिलना-जुलना अच्छा नहीं लगता है तथा वह एकान्तप्रिय हो जाता है।

इन तीनों तरह के स्नायुविकृत प्रवृत्तियों के पीछे एक उभयनिष्ठ कारक होता है जिसे उन्होंने सामाजिक कुसमायोजन कहा है। ये तीनों तरह की प्रवृत्तियों का स्वरूप बाध्यकर होता है जिसका मतलब यह हुआ कि स्नायुविकृत व्यक्ति उनमें से किसी एक ढंग की मनोवृत्ति दिखलाते हुए व्यवहार करने के लिए बाध्य होता है। इन तीनों तरह की प्रवृत्तियों से तीन अलग-अलग व्यक्तित्व प्रकारों का जन्म होता है जिनका वर्णन निम्नांकित है-

फरियादी व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व, व्यक्तियों की ओर झुकने की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है। ऐसे व्यक्ति जरूरत से ज्यादा दूसरों पर निर्भर करते हैं एवं दूसरों के स्नेह एवं अनुमोदन को जरूरत से ज्यादा महत्व देते हैं। दूसरे लोगों के साथ व्यवहार करते समय ऐसे लोगों का दृष्टिकोण मैत्रीपूर्ण होता है तथा दूसरों की भलाई करने के ख्याल से अपनी इच्छा एवं आकांक्षा की कुर्बानी भी देते हैं। अक्सर वे एक निःसहायता एवं कमजोरी की मनोवृत्ति इस ख्याल से दिखलाते हैं कि दूसरे लोग उन्हें ऐसा समझकर स्नेह एवं सुरक्षा प्रदान कर सके।

विद्वेषी या आक्रामक व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों के विरूद्ध होने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्ति आक्रामक, शक्की, समाज विरोधी तथा विद्वेषी प्रकृति के होते हैं। ऐसे लोगों को अपनी क्षमता पर जरूरत से ज्यादा भरोसा रहता है तथा दूसरों पर नियंत्रण एवं अपनी श्रेष्ठता बनाये रखने के ख्याल से वे हमेशा आधिपत्य दिखाने की कोशिाशा करते हैं। ऐसे लोग दूसरों के साथ व्यवहार करने में या किसी तरह का संबंध स्थापित करने में इस बात का ख्याल अधिक करते हैं कि उन्हें उस संबंध से क्या लाभ होगा। वे यह नहीं सोचते हैं कि उससे दूसरों को क्या लाभ होगा।

असम्बद्ध व्यक्तित्व प्रकार-

इस तरह का व्यक्तित्व प्रकार व्यक्तियों से दूर हटने की प्रवृत्ति से विकसित होता है। ऐसे व्यक्तियों में आत्म केन्द्रिता, एकान्तप्रियता तथा असामाजिकता अधिक होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे लोग अन्य सभी लोगों से एक सांवेगिक दूरी बनाकर रखते हैं। ऐसे लोग दूसरों को न तो प्यार करते हैं, न घृणा करते हैं और न ही उनके साथ किसी तरह का सहयोग करते हैं। ऐसे लोग अधिक से अधिक समय अकेले होकर व्यतीत करना चाहते हैं।

हार्नी ने अपने सिद्धान्त में ये भी स्पष्ट किया है कि एक तंत्रिका रोगी व्यक्ति में उपर्युक्त तीन तरह की प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति अधिक प्रबल होता है। जबकि अन्य दो कुछ ही मात्रा में उपस्थित होते हैं। परंतु वे दमित होते हैं। जब कोई दमित प्रवृत्ति अपनी अभिव्यक्ति के लिए सक्रिय प्रयास जारी करता है, तो इससे व्यक्ति में मानसिक संघर्ष होता है।

मूल चिन्ता को कम करने के प्रयास-

हार्नी ने अपने व्यक्तितव सिद्धान्त में कुछ वैसे उपायों का भी वर्णन किया है जिनके माध्यम से व्यक्ति अपने में उत्पन्न मूल चिन्ता को कम करता है। ऐसे उपायों को निम्नांकित दो भागों में बाँटा जा सकता है।

आदर्शवादी आत्म-छवि-

हार्नी का मत है कि मूल चिन्ता को दूर करने के ख्याल से अपने आप के बारे में व्यक्ति एक आदर्शवादी छवि विकसित कर लेता है जिसमें वह अपने आप को सभी तरह के गुणों से युक्त पाता है। यह आदर्शवादी छवि प्रायः अवास्तविक एवं अतिरंजित होता है। ऐसी परिस्थिति में वास्तविक आत्मन् तथा आदर्शवादी आत्मन् में काफी अन्तर होता है। आदर्शवादी आत्मन् के माँगों को पूरा करने के लिए सामान्यतः एक स्नायुविकृत प्रयास होता है। ऐसा प्रयास बाध्यकर, अविभेदी तथा अतुष्टनीय होता है। अपने आदर्शवादी आत्मन् को समर्थन प्रदान करने के लिए व्यक्ति एक विशेष तंत्र विकसित कर लेता है जिसे घमंड तंत्र कहा जाता है जिसमें व्यक्ति घमंड से व्यवहार करता है तथा अपने आप में वह विशेष शक्ति, बुद्धि, धन प्राप्त कर लेने की बात सोच रखता है जो अन्य किसी में नहीं होता है। इतना ही नहीं, वह अपने आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को समर्थन देने के लिए व्यवहारों का कुछ महत्वपूर्ण मानकों को मन में बैठा लेता है और उसी के अनुरूप व्यवहार करता है।

रक्षा प्रक्रम-

हार्नी का मत है कि व्यक्ति मूल चिन्ता को दूर करने के लिए कुछ रक्षा प्रक्रम का भी सहारा लेता है। उनके अनुसार ऐसे रक्षा प्रक्रम दो प्रकार के होते हैं-यौक्तिकीकरण तथा बाह्ताता। यौक्तिकीकरण एक ऐसा रक्षा प्रक्रम है जिसमें अयुक्तिसंगत अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं से उत्पन्न मानसिक संघर्ष या तनाव का समाधान उन अभिप्रेरकों एवं इच्छाओं को युक्तिसंगत बनाकर अर्थात तर्कपूर्ण एवं विवेकपूर्ण व्याख्या कर किया जाता है और मानसिक संघर्ष को दूर करने की कोशिश की जाती है। इस तरह से हार्नी ने यौक्तिकीकरण का उपयोग फ्रायड के ही अर्थ में किया। बाह्ताता को हार्नी ने प्रक्षेपण के तुल्य माना है जिसमें व्यक्ति अपनी क्रिया की व्याख्या, कुछ बाह्य कारकों में दोषारोपण करके करता है। प्रायः दोषारोपण में वह अपने से कमजोर तत्वों को ही निशाना बनाता है।

स्पष्ट हुआ कि हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त का समग्र बल जैविक कारक न होकर सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक है।

हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जिन तथ्यों पर प्रकाश डाला है उसके आलोक में इस सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएँ कही जा सकती है।

1. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी द्वारा जैविक कारक को गौण तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों को प्रधान माना जाना एक महत्वपूर्ण उपलब्धि बतलाया है और कहा है कि सचमुच में व्यक्तित्व के निर्धारण में सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों की श्रेष्ठता पर बल डालकर अन्य कई मनोवैज्ञानिकों को इस क्षेत्र में शोध एवं मंत्रणा करने का उत्तम प्रोत्साहन दिया गया है।
2. मनोवैज्ञानिकों ने हार्नी के कुछ संप्रत्ययों जैसे-मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता एवं स्नायुविकृत प्रवृत्ति को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है। कई मनोवैज्ञानिकों ने उनके द्वारा प्रतिपादित स्नायुविकृत प्रवृत्ति को विचलित व्यवहार के बारे में जानने का एक उत्तम तरीका बतलाया है।
3. कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा आत्म-सम्मान, सुरक्षा की आवश्यकता तथा आदर्शवादी आत्म-प्रतिभा को हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त का मुख्य पहलू माना गया है क्योंकि इसके द्वारा दो बातों अर्थात् व्यक्तित्व का विकास तथा स्नायुविकृत प्रवृत्तियों से व्यक्तित्व किस तरह से प्रभावित होता है, की सफल व्याख्या होती है। सामाजिक अन्तःक्रियाओं के आलोक में ऐसी व्याख्या व्यक्तित्व के अन्य सिद्धान्त में नहीं मिलता है।

इन गुणों के बावजूद निम्नांकित बिन्दुओं पर हार्नी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त की आलोचना की गयी है-

1. हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त का शोधपरक मूल्य कम बतलाया गया है। इनके संप्रत्ययों पर अधिक शोध नहीं किये गये हैं तथा इनकी लोकप्रियता इतनी नहीं है जितना कि फ्रायड, एडलर एवं युंग के सिद्धान्तों की थी। इसका एक मुख्य कारण यह था कि हार्नी के शिष्य भी कम थे जो उनके विचारों एवं सिद्धान्तों पर गहन अध्ययन करते।
2. फ्रायडवादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि हार्नी ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में जैविक मूलप्रवृत्तियों की उपेक्षा करके तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर जरूरत से ज्यादा बल डालकर व्यक्तित्व के सिद्धान्त की एक अधूरी व्याख्या प्रस्तुत की है।
3. कुछ आलोचकों ने यह भी कहा है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में लैंगिकता, बाल्यावस्था विकास, आक्रमकता तथा अचेतन की उपेक्षा करके हार्नी ने बहुत बड़ी भूल की है।
4. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में यद्यपि हार्नी ने सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारकों को महत्वपूर्ण माना है, फिर भी उन्होंने समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र में उपलब्ध आँकड़ों जिनसे उनके सिद्धान्त में मजबूती आती, का उपयोग नहीं किया है। उन्होंने यह भी विस्तृत रूप से नहीं बतलाया है कि किस तरह से सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारकों द्वारा व्यक्तित्व का विकास हो पाता है।
5. यह भी कहा गया है कि हार्नी के सिद्धान्त में उतनी संगति नहीं है जितना कि फ्रायड के सिद्धान्त में है तथा इनका सिद्धान्त मध्यवर्गीय अमेरिकन संस्कृति से जरूरत से ज्यादा प्रभावित होता पाया गया है मानों यह सिद्धान्त सिर्फ इस वर्ग के व्यक्तियों के व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए बना हो।

इन आलोचनाओं के बावजूद हार्नी द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त के महत्व का अंदाज हम इस बात से भी लगा सकते हैं कि न्यूयार्क शहर में हार्नी के नाम पर दो संस्थान खोले गये हैं जो मानसिक समस्याओं के उपचार से संबंद्ध प्रशिक्षण प्रदान करता है। ये संस्थान हैं-कारेन हार्नी क्लिनिक, तथा कारेन हार्नी साइकोएनालिटिक एन्स्टीट्यूट।

5.6 इरिक फ्रॉम का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

व्यक्तित्व के सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों में इरिक फ्रॉम का व्यक्तित्व सिद्धान्त भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन्होंने एडलर तथा हार्नी के समान ही व्यक्तित्व का एक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक मॉडल प्रस्तुत किया। जो व्यक्तित्व के प्रमुख निर्धारक के रूप में जैविक कारकों को नहीं बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों को स्वीकार करता है। फ्रॉम का मत है कि व्यक्तित्व ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक कारकों द्वारा प्रभावित होता है। फ्रॉम के अनुसार व्यक्ति का समाज के साथ जो संबंध होता है, वह स्थिर न होकर परिवर्तनीय होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे-हाल एवं उनके सहयोगियों ने यह कहा है कि फ्रॅाम ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में फ्रायड के दृष्टिकोण तथा कार्ल मार्क्स के सामाजिक सिद्धान्तों एवं दर्शनशास्त्र को सुसंयोजित करने का सफल प्रयास किया है। उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित प्रमुख भागों में बाँटकर प्रस्तुत किया जा सकता है।

1. स्वतंत्रता बनाम सुरक्षा: मौलिक मानवीय द्विविधा
2. पलायन के प्रक्रम या मानसिक प्रक्रम
3. मूल आवश्यकताएँ
4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास
5. व्यक्तित्व प्रकार

स्वतंत्रता बनाम सुरक्षा: मौलिक मानवीय द्विविधा-

फ्रॉम की पहली पुस्तक 1941 में प्रकाशित हुई जिसका शीर्षक 'स्केप फ्रॉम फ्रीडम' था। इस पुस्तक में उन्होंने मनुष्य को एक सामाजिक पशु का दर्जा दिया है और यह बतलाने की कोशिश किया है जैसे-जैसे व्यक्ति अपनी अनुभूतियों के आधार पर अपने आप को विकसित करता है, उसमें स्वतंत्रता की भावना प्रबल होती गयी। आधुनिक युग में पहले की अपेक्षा मनुष्यों में स्वतंत्रता की भावना अधिक पायी जाती है। फ्रॉम का यह मत है कि जैसे-जैसे लोगों में स्वतंत्रता की भावना मजबूत हुई है, उनमें अकेलापन, असार्थक तथा दूसरों से असंबद्ध या विमुख होने की प्रवृत्ति भी अधिक बढ़ गयी है। दूसरे तरफ जब व्यक्तियों में स्वतंत्रता कम होती थी, तो उनमें सुरक्षा तथा संबंधन की भावना भी तीव्र थी। इस तरह स्वतंत्रता की भावना सुरक्षा एवं संबंधन की भावना के विपरीत दिख पड़ता है। अतः एक ओर व्यक्ति अपने आप को जब स्वतंत्र करना चाहता है तथा पर्यावरण के वस्तुओं एवं घटनाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखना चाहता है तो दूसरी ओर इस तरह के स्वतंत्रता के प्रयास से उसे अकेलापन, असार्थकता तथा अलगाव जैसे कटु भावों का भी सामना करना पड़ता है। जैसे-एक बच्चा जो अपने माता-पिता के नियंत्रण से स्वतंत्र होना चाहता है, माता-पिता के बिना अपने आप को अकेला, लाचार एवं निःसहाय भी अनुभव कर सकता है। इस तरह की द्विविधा को फ्रॉम ने अस्तित्ववादी द्विविधा कहा है।

इस द्विविधा से क्या छुटकारा पाया जा सकता है? फ्रॉम ने यह कहा कि दो ऐसे दृष्टिकोण हैं जिन्हें आपनाकर हम इस द्विविधा से कुछ हद तक बच सकते हैं तथा जिन्दगी में सार्थक तथा अर्थपूर्ण भाव उत्पन्न कर सकते हैं। पहली विधि वह है जिसमें अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी स्वतंत्रता एवं अखंडता की कुरबानी दिये बगैर व्यक्ति पुनर्संगठित हो सकता हे। इस तरह की परिस्थिति में व्यक्ति, एक-दूसरे से स्नेह एवं प्यार के बंधन में बँधा होगा और तब कोई अकेलापन तथा असार्थक होने का अनुभव नहीं करेगा। दूसरी विधि वह है जिसमें व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता की भावना को पूर्णतः त्याग करके वैयक्तिकता तथा अखंडता के सामने घुटने टेक दे। परंतु इस दूसरी विधि में खतरा यह है कि इससे व्यक्ति का विकास नहीं होगा तथा आत्म-अभिव्यक्ति भी नहीं होगी परंतु निशिचत रूप से लोगों के मन से अकेलापन तथा असार्थकता की चिन्ता दूर हो जाएगी।

पलायन के प्रक्रम या मानसिक प्रक्रम-

स्वतंत्रता से पलायन या खोये हुए सुरक्षा के भाव की पुनर्प्राप्ति के लिए फ्रॉम ने ऊपर में जो सामान्य उपागमों का जिक्र किया है, उसके अलावा भी उन्होंने पलायन के तीन प्रक्रमों जिसे मानसिक प्रक्रम भी कहा जाता है, का वर्णन किया है। वे तीन प्रक्रम निम्नांकित हैं-

सत्तावाद

विध्वंसता

स्वचलन अनुरूपता

1. सत्तावाद-

सत्तावाद की अभिव्यक्ति आत्म-पीड़न या परपीड़न प्रयासों के रूप में होता है। आत्म-पीड़न प्रयासों में व्यक्ति अपने आप को तुच्छ, अपर्याप्त एवं कमजोर समझता है। ऐसे व्यक्ति जानबूझकर दूसरों के नियंत्रण में अपने आप को सौंप देते हैं। इन सभी विनम्रता की क्रियाओं से उनमें सुरक्षा का भाव पनपता है तथा इस प्रकार से वे अपने अकेलापन एवं निःसहायता के भाव को दूर करते हैं। परपीड़न प्रयासों में, जो आत्मपीड़न प्रयासों के ठीक विपरीत होता है, व्यक्ति दूसरों पर जबरन अधिकार जमाने की कोशिश करता है। तीन तरह से परपीड़न प्रयासों की अभिव्यक्ति कर व्यक्ति अपनी निःसहायता तथा अकेलापन की भाव के दूर करता है तथा सुरक्षा का भाव विकसित करता है। पहला तरीका वह है जिसमें व्यक्ति दूसरों को अपने ऊपर निर्भर होने के लिए पूर्णतः बाध्य कर देता है कि वह उन पर अपना निरपेक्ष शक्ति दिखा सके। दूसरा तरीका वह है जिसमें व्यक्ति दूसरों का शोषण करता है तथा जिसमें वह दूसरों के सभी वांछित चीजों को अपने कब्जे में कर लेता है। तीसरा तरीका वह है जिसमें व्यक्ति दूसरों को तकलीफ देता है या उसके तकलीफ का कारण बनता है। इस तकलीफ में अन्य बातों के अलावा सांवेगिक तकलीफ अवशय ही सम्मिलित होता है। इन तीनों तरह के परपीड़न प्रयासों या कोशिश द्वारा अपने में सुरक्षा का भाव वह विकसित करता है तथा अकेलापन एवं निःसहायता के भाव को दूर करता है।

2. विध्वंसता-

फ्रॉम के अनुसार दूसरा महत्वपूर्ण पलायन प्रक्रम विध्वंसता है जो सत्तवाद के विपरीत है। सत्तावाद में व्यक्ति वस्तु के साथ सतत अन्तःक्रिया करता है जबकि विध्वंसतता में व्यक्ति वस्तु को पूर्णतः नष्ट कर देना चाहता है। इस तरह से व्यक्ति अपने वातावरण में आक्रमक व्यवहार करके निःसहायता तथा एकान्तवासिता के भाव को दूर करता है।

3. स्वचालित अनुरूपता-

पलायन प्रक्रम की तीसरी विधि स्वचालित अनुरूपता है जिसमें व्यक्ति दूसरों के साथ सभी प्रकार के मतभेदों को भूलाकर अपने अकेलापन तथा अलगाव के भाव को दूर करता है। ऐसा करने के लिए वह दूसरों के विचारों, मतों, आज्ञाओं को बिना शर्त मानकर उसके अनुरुप व्यवहार करने लगता है।

मूल आवश्यकताएँ-

एक जीवित प्राणी के रूप में व्यक्ति में कई दैहिक आवश्यकताएँ होती हैं जिनसे इनका अस्तित्व बना रहता है। भोजन, पानी, यौन की आवश्यकता इस श्रेणी की आवश्यकता है। परंतु मनुष्यों में इन दैहिक आवश्यकता ओं के अलावा कुछ मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ भी होती हैं जो सुरक्षा प्रणोद तथा इसके विपरीत स्वतंत्रता का प्रणोद के बीच हुए अन्तःक्रिया से उत्पन्न होती हैं। ये छः मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ इस प्रकार हैं- संबंद्धता की आवश्यकता

, श्रेष्ठता की आवश्यकता, गहरापन की आवश्यकता , पहचान की आवश्यकता , उन्मुखता प्रारूप की आवश्यकता , तथा उत्तेजन आवश्यकता ।

1. संबद्धता की आवश्यकता -

इस आवश्यकता में व्यक्ति पारस्परिक आदर एवं बोधगम्यता के माध्यम से दूसरों के साथ उत्तम संबंध विकसित करने की कोशिश करता है। इस आवश्यकता की प्राप्ति, फ्रॉम के अनुसार, उत्पादक प्यार के माध्यम से होता है जिसमें व्यक्ति में उत्तरदायित्व, आदर तथा दूसरों की देख-रेख करने के भाव की प्रधानता होती है। जब इस आवश्यकता की तुष्टि नहीं हो पाती है, तो एक विशष तरह की अवस्था उत्पन्न होती है जिसे आत्म मोह या आत्म रति कहा जाता है जिसमें व्यक्ति अपने भाव, चिन्तन आवश्यकताओं पर ही केन्द्रित होने के करण वह वातावरण के अन्य वस्तुओं या घटनाओं के साथ अपने आप को संबद्ध नहीं कर पाता है।

2. श्रेष्ठता या उत्कृष्टता की आवश्यकता -

इस आवश्यकता से तात्पर्य वैसी आवश्यकता से होती है जिसमें व्यक्ति अपने पाशविक प्रकृति से ऊपर उठना चाहता है ताकि वह कुछ सर्जनात्मक रूप से अपने बारे में सोच सके। अतः इस आवश्यकता में व्यक्ति सर्जनात्मक तथा उत्पादक बनने की कोशिश करता है। अगर किसी कारण उसका यह सर्जनात्मक आवश्यकता अवरूद्ध हो जाती है, तो वह विध्वंसात्मक रूख अपना लेता है। फ्रॉम के अनुसार विध्वंसात्मक, सर्जनात्मक के समान ही मानव प्रकृति का एक अंश होता है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ मिलकर श्रेष्ठता या उत्कृष्टता की आवश्यकता की तुष्टि करती हैं, परंतु इन दोनों में से सर्जनात्मक का महत्व अधिक होता है।

3. गहरापन की आवश्यकता -

इससे तात्पर्य एक ऐसी आवश्यकता से होती है जिसमें व्यक्ति सक्रिय रहना चाहता है ताकि वह अपने आप को एक अर्थपूर्ण प्राणी समझ सके। इस तरह की आवश्यकता की उत्पत्ति प्रकृति के साथ व्यक्ति का मुख्य संबंध के क्षुब्ध होने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। इस तरह की क्षुब्धता या घाटा के कारण व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के साथ संबंधों में नया आधार खोजता है। अन्य व्यक्तियों के साथ भाई-चारे का संबंध स्थापित करना इस तरह की आवश्यकता का एक उत्तम उदाहरण है।

4. पहचान की आवश्यकता -

इस आवश्यकता में व्यक्ति अपनी पहचान एक अपूर्व व्यक्ति के रूप में बनाकर रखना चाहता है। इस तरह की पहचान बनाये रखने के ख्याल से सर्जनात्मक तथा उत्पादक व्यक्ति अपनी क्षमता को पूर्णता के स्तर तक विकसित करने की कोशिश करता है या वह किसी समूह या धर्म के साथ पूर्णतः अनुपालन दिखाने की कोशिश करता है ताकि उसकी पहचान स्वतंत्र रूप से बनी रहीं।

5. उन्मुखता प्रारूप की आवश्यकता -

इस तरह की आवश्यकता में व्यक्ति अपने आप एवं दूसरों के प्रति एक ऐसी उन्मुखता विकसित करने की कोशिश करता है जिसमें उसकी एक सही एवं वास्तविक छवि उभर सके। इस तरह की उन्मुखता प्रारूप यौक्तिक या अयौक्तिक दोनों तरह के विचारों पर आधारित होता है। यौक्तिक उन्मुखता प्रारूप होने पर वास्तविकता का एक वस्तुनिष्ठ प्रत्यक्षण व्यक्ति करता है तथा अयौक्तिक उन्मुखता प्रारूप होने पर व्यक्ति को पर्यावरण का एक आत्मनिष्ठ प्रत्यक्षण होता है जिससे उसका संबंध वास्तविकता से काफी कम होने लगता है।

6. उत्तेजन आवश्यकता -

इस आवश्यकता से तात्पर्य बाह्य वातावरण को इतना उत्तेजक बनाये रखने से होता है जिसमें व्यक्ति अधिक एवं सतर्क होकर कार्य कर सके। मानव मस्तिष्क को निष्पादन के शीर्ष स्तर को बनाये रखने के लिए एक सतत बाह्य उत्तेजन की जरूरत होती है। बिना इस तरह के उत्तेजन के व्यक्ति के लिए अपने इर्द-गिर्द के वातावरण के साथ सम्पूर्ण आवेष्टन बनाये रखना संभव नहीं है।

बाल्यावस्था में व्यक्तित्व का विकास-

फ्रॉम का मत था कि जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होता है, उसमें स्वतंत्रता तथा स्वायतता का भाव भी मजबूत होता जाता है और जब वह अपने माता-पिता के संबंधों पर निर्भरता कम दिखाता है, तो उनमें असुरक्षा, निःसहायता तथा अकेलापन का भाव विकसित होता है। सच्चाई यह है कि बच्चा कई तरह के प्रक्रमों का उपयोग करके बढ़ती हुई स्वतंत्रता से अपने आप को मुक्त करना चाहता है ताकि उसका संबंध सुरक्षा के साथ बना रहे। बच्चा कौन-सा प्रक्रम का उपयोग करेगा वह माता-पिता तथा बच्चा के बीच में हुई अन्तःक्रिया पर निर्भर करता है। इस तरह की अन्तरवैयक्तिक संबंधता के तीन प्रकार होते हैं-

1. सहजीवी संबद्धता
2. प्रत्याहार/विध्वंसता
3. प्यार

1. सहजीवी संबद्धता-

इस तरह की संबद्धता में व्यक्ति को कभी भी स्वतंत्रता की अवस्था की प्राप्ति नहीं होती है और वह दूसरों का विशेषकर माता-पिता पर निर्भर रह कर अकेलापन तथा असुरक्षा के भाव से पलायन करता है।

2. प्रत्याहार/विध्वंसता-

इस तरह के बाल्यावस्था प्रक्रम में व्यक्ति दूसरों से अपने आप को दूर रखता है। बच्चा इस प्रक्रम को तब अपनाता है जब उसके माता-पिता उसके प्रति तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करते हैं। ऐसी स्थिति में बच्चा अपने आप को उनसे दूर रखता है।

3. प्यार-

इस तरह के अन्तःक्रिया में माता-पिता बच्चों को पर्याप्त स्नेह देते हैं तथा सुरक्षा एवं उत्तरदायित्व के बीच उचित संतुलन बनाये रखने की भरपूर कोशिश करते हैं। इस तरह की अन्तःक्रियाओं द्वारा बच्चों के आत्मन् को विकसित होने का माता-पिता द्वारा सबसे उत्तम अवसर प्रदान किया जाता है।

व्यक्तित्व प्रकार-

फ्रॉम के मतानुसार चारित्रिक शीलगुण सभी तरह के व्यवहार के निर्धारक होते हैं और एक ऐसा महत्वपूर्ण कारक है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने आप को वातावरण की वस्तुओं या व्यक्तियों के साथ संबंध स्थापित करता है। इस तरह से व्यक्ति का व्यक्तित्व या चरित्र ऐसे सभी शीलगुणों का एक मिश्रण होता है। उन्होंने व्यक्तित्व शीलगुणों को दो मुख्य भागों में बाँटा है-उत्पादक शीलगुण तथा अनुत्पादक शीलगुण। उत्पादक शीलगुण वैसे शीलगुणों को कहा जाता है जिसे व्यक्तित्व विकास के लिए उपयुक्त एवं आदर्श माना जाता है। अनुत्पादक शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जिससे व्यक्ति के अस्वस्थ्यकर विकास का पता चलता है। इन दोनों शीलगुणों के आधार पर उन्होंने व्यक्तित्व के दो प्रकारों का वर्णन किया है-

1. उत्पादक व्यक्तित्व प्रकार-

ऐसा व्यक्तित्व प्रकार एक आदर्श व्यक्तित्व होता है। इसमें व्यक्ति के सभी तरह की अनुभूतियों का समावेश होता है और इसमें व्यक्ति अपने भीतर छिपे अन्तःशक्ति की पूर्ण पहचान कर उसके अनुरूप कार्य करने की प्रेरणा दिखलाता है। फ्रॉम ने इस तरह के व्यक्तित्व प्रकार को सर्जनात्मकता से भिन्न माना है तथा कहा है कि यह एक ऐसा प्रकार है जिसे सभी व्यक्ति विकसित कर सकते हैं क्योंकि इसका उद्देश्य आत्मन् का विकास होता है।

2. अनुत्पादक व्यक्तित्व प्रकार-

अनुत्पादक व्यक्तित्व प्रकार एक तरह का अवांछित व्यक्तित्व प्रकार है जिसे फ्रॉम ने निम्नांकित चार भागों में बाँटा है-

क. ग्रहणशील प्रकार-

इस तरह के व्यक्ति हमेशा दूसरों से मदद की उम्मीद रखते हैं ऐसे व्यक्ति दूसरों से स्नेह, अनुराग, प्यार आदि को पाने की उम्मीद तो अवश्य रखते हैं। परंतु जब उन्हें दूसरों को स्नेह तथा अनुराग देने की बारी आती है तो मौके से मुकर जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को जब दूसरों से प्रत्याशित लाभ नहीं होता है, तो वे काफी चिन्तित नजर आते हैं। ऐसे लोगों की विशेषताएँ फ्रायड के मुख-अन्मुखी व्यक्तित्व तथा हार्नी के फरियादी व्यक्तित्व प्रकार से मिलती-जुलती हैं।

ख. जमाखोर प्रकार-

ऐसे लोग स्वार्थी, क्रमबद्ध तथा पंडिताऊ प्रकृति के होते हैं। इन्हें बाहरी दुनिया धमकीपूर्ण लगता है और जब वे कुछ बचा लेते हैं तथा अपने पास कुछ जमाकर रख लेते हैं, तो उनमें सुरक्षा का भाव विकसित हो जाता है। ऐसे लोगों में अपने भावों-संवेगों तथा भौतिक सामग्रियों में बाध्यकर क्रमबद्वता देखने की तीव्र इच्छा होती है। ऐसे लोगों में व्यक्तित्व की विशेषताएँ बहुत कुछ फ्रायड द्वारा प्रतिपादित गुदा धारक प्रकार तथा हार्नी , द्वारा प्रतिपादित असंबंद्ध प्रकार वाले व्यक्तित्व की विशेषताओं से मिलता-जुलता है।

ग. शोषक प्रकार-

ऐसे लोग अपने बल एवं धूर्तता के आधार पर किसी चीज को हासिल कर लेने में बहादुर होते हैं। इनमें दूसरों के प्रति आक्रमकता कूट-कूटकर भरी होती है। ऐसे लोगों की व्यक्तित्व विशेषताएँ फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मुख-आक्रामक प्रकार तथा हार्नी द्वारा प्रतिपादित आक्रमक प्रकार की विशेषताओं से बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

घ. बाजारू प्रकार-

ऐसे लोग अपनी सफलता इस बात से आँकते हैं कि वे अपने आपको या अपनी सेवा को कितनी अधिक-से-अधिक बेच सकते हैं। सचमुच में, वे अपने आप को एक ऐसा वस्तु के समान समझते हैं जिसे बाजार में बेचा या खरीदा जा सकता है।

उपर्युक्त प्रमुख व्यक्तित्व प्रकारों के अलावा बाद में फ्रॉम ने दो जो अन्य व्यक्तित्व प्रकारों का भी वर्णन किया- शावकामुक प्रकार तथा जीवकामुक प्रकार। शवकामुक प्रकार व्यक्तित्व में बर्बादी, मृत्यु, पतन आदि से विशेष लगाव होता है तथा ऐसे लोगों में इन सब कार्यो से विशेष आनन्द आता है। फ्रॉम के अनुसार एडोल्फ हिटलर का व्यक्तित्व इस श्रेणी के व्यक्तित्व का उत्तम नमूना है। इस तरह के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति को भूत पर अधिक विशवास होता है तथा भविष्य में इनका कोई विशवास नहीं होता है। ऐसे लोग एकान्तप्रिय, लोगों से दूरी रखने वाले तथा भाव शून्य प्रकृति के होते हैं। ये लोग हत्या, खून, लाश, खोपड़ी आदि का स्पप्नचित्र बनाते रहते हैं। ठीक इस तरह के व्यक्तित्व प्रकार के विपरीत जीव कामुक प्रकार होता है जिन्हें अपनी जिन्दगी से प्यार होता है तथा इनमें व,र्द्धन,

सृजन तथा निर्माण आदि के प्रति विशेष उन्मुखता होती है। ऐसे लोग दूसरों को बल दिखाकर, डरा-धमकाकर प्रभावित नहीं करते हैं बल्कि उन्हें प्यार एवं स्नेह से प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। ऐसे लोग अपने आत्मन् तथा अन्य लोगों के विकास एवं वर्द्धन पर अधिक बल डालते हैं।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि फ्रॉम ने व्यक्तित्व के विकास पर समाज एवं संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों को महत्वपूर्ण माना है। उनका यह भी मत था कि प्रत्येक व्यक्ति को बाल्यावस्था में इस ढंग से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि वे समाज के माँगों के अनुरूप व्यवहार कर सके। उन्होंने यह भी कहा कि जो समाज व्यक्ति की जरूरतों को पूरा नहीं करता है, वह बीमार समाज होता है और तुरंत ही उसे प्रतिस्थापित कर देना चाहिए। ऐसा समाज जिसमें व्यक्ति की आवश्यकता ओं की पूर्ति होती है तथा जिनसे उत्पादक उन्मुखता बढ़ती है, को उन्होंने मानवतावादी सामुदायिक समाजवादिता कहा है।

फ्रॉम द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त के कुछ गुण तथा अवगुण है। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. फ्रॉम द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह बतलाया गया है कि इसमें व्यक्तित्व के निर्धारक के रूप में सामाजिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक कारकों की स्वतंत्र पहचान की गयी है।
2. व्यक्तित्व के प्रति फ्रॉम का जो दृष्टिकोण है उसका संदर्भ काफी विस्तृत है जिससे व्यक्तित्व की एक समग्र व्याख्या संभव हो पायी है। वे सिर्फ मनोविशलेषक नहीं थे बल्कि अन्य शास्त्रों जैसे-इतिहास, समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र से भी तथ्यों का संग्रहण करके व्यक्तित्व में उसका उचित उपयोग किये हैं।

   इन गुणों के बावजूद उनके सिद्धान्तों के कुछ अवगुण हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. उनके सिद्धान्त की सबसे प्रमुख कमी यह है कि उसमें तथ्यों के समर्थन में कोई मजबूत एवं ठोस वैज्ञानिक तथा आनुभाविक समर्थन नहीं हैं।
2. कुछ आलोचकों का मत है कि फ्रॉम के व्यक्तित्व सिद्धान्त में नवीनता नहीं है। इसमें फ्रायड, युंग एवं हार्नी के संप्रत्ययों का संदर्भ तो यदा-कदा मिलता है परंतु आधुनिक मानवतावादी संप्रत्ययों को सम्मिलित नहीं किया गया है।
3. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि फ्रॉम द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में यथार्यता की कमी है तथा अस्पष्टता की अधिकता है। फलतः ऐसे संप्रत्ययों की वैधता की जाँच नहीं हो पायी है। इनके द्वारा प्रतिपादित विभिन्न तरह के व्यक्तित्व प्रकारों का संप्रत्यय ऐसे ही संप्रत्यय के उदाहरण है।
4. मनोवैज्ञानिकों का यह भी मानना है कि फ्रॉम का विचार आदर्शवादी ज्यादा है व्यावहारिक कम। फलस्वरूप उनका सिद्धान्त अवास्तविक अधिक लगता है। यही कारण है कि इन आलोचकों ने उन्हें मनोवैज्ञानिक कम तथा दार्शनिक अधिक माना है।

   इन आलोचनाओं के बावजूद फ्रॉम के योगदानों का अपना विशिष्ट महत्व है। बहुत कम ही ऐसे मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने फ्रॉम के समान मानव के व्यवहारों एवं व्यक्तित्व के प्रकारों की मौलिक व्याख्या की है।

5.7 बान्दुरा का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

बान्दुरा का व्यक्तित्व सिद्धान्त स्कीनर के व्यवहारवादी सिद्धान्त का ही विस्तृत रूप है जिसमें वैसे आन्तरिक संज्ञानात्मक चरों को भी महत्व दिया गया है जो उद्धीपक तथा अनुक्रिया के बीच मध्यस्थता करते हैं, जैसे-आवश्यकता, प्रणोद, इच्छा, संवेग इत्यादि। यानी, बान्दुरा ने अपने सामाजिक-सीखना सि,द्धान्त में सीखने के

महत्वपूर्ण नियमों को तो महत्व दिया ही है, साथ-ही व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमताओं को भी इसमें काफी महत्व दिया गया है।

इसलिए व्यक्तित्व के सामाजिक-सीखना सिद्धान्त को संज्ञानात्मक सीखना सिद्धान्त की भी संज्ञा दी गयी है। व्यक्तित्व के सामाजिक सीखना सि,द्धान्त में तीन मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्तों को रखा गया है-अलबर्ट बान्दुरा, मार्टिन सेलिगमैन तथा वाल्टर मिशेल। इन तीनों में अलबर्ट बान्दुरा के सिद्धान्त को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया है तथा इस सिद्धान्त ने व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में अन्य सामाजिक-सीखना सिद्वान्त की तुलना में अधिक शोध करने के लिए मनोवैज्ञानिकों को आकर्षित किया है।

बान्दुरा द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व का सिद्धान्त अन्य सामाजिक-सीखना सिद्धान्तों के अनुरूप निम्नांकित दो मुख्य प्रस्तावनाओं पर आधारित है-

1. अधिकतर मानव व्यवहार अर्जित होते हैं, अर्थात् व्यक्ति उन्हें अपने जीवन-काल में सीखता है।
2. मानव जीवन व व्यवहार के सम्पोषण एवं विकास की व्याख्या करने के लिए सीखने का नियम पर्याप्त है।

बाण्डुरा के सामाजिक-सीखना सिद्धान्त में मानव स्वभाव के कुछ खास-खास पूर्वकल्पनाओं जैसे-विवेकपूर्णता, पर्यावरणीयता, परिवर्तनशीलता तथा ज्ञेयता आदि पर अधिक बल डाला गया है परन्तु अधिभूतवाद जैसी पूर्वकल्पना पर नाम मात्र का बल डाला गया है। समस्थिति-विषमस्थिति की पूर्वकल्पना को बाण्डुरा सिद्धान्त में महत्व नहीं दिया गया है। बाण्डुरा के सामाजिक-सीखना के सिद्धान्त को निम्नांकित 6 प्रमुख भागों में बाँट कर प्रस्तुत किया जा सकता है-

1. अन्योन्यनिर्धार्यता का संप्रत्यय
2. आत्म-तंत्र
3. प्रेरणा
4. मॉडलिंग: प्रेक्षण द्वारा सीखना
5. प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रियाएँ
6. मापन एवं शोध

अन्योन्यनिर्धार्यता का संप्रत्यय-

बान्दुरा के सिद्धान्त में अन्योन्यनिर्धार्यता का संप्रत्यय एक महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। इस संप्रत्यय के माध्यम से बान्दुरा यह स्पष्ट करना चाहते थे कि मानव व्यवहार संज्ञानात्मक, व्यवहारात्मक तथा पर्यावरणी निर्धारकों के बीच सतत अन्योन्य अन्तःक्रिया का एक प्रतिफल होता है। इस तरह के अन्योन्य अन्तःक्रिया की प्रक्रिया को बान्दुरा ने अन्योन्य निर्धार्य्ता की संज्ञा दी है। इस संप्रत्यय के अनुसार मानव क्रिया में तीन कारकों का परस्पर प्रभाव हमेशा पड़ता है। वे तीन कारक हैं-

1. बाह्य वातावरण
2. संज्ञानात्मक एवं आन्तरिक घटनाएँ
3. व्यवहार

इन तीनों के अन्योन्य प्रभावों को ऊपर के चित्र में दिखलाया गया है चित्र से स्पष्ट है कि तीनों कारक त्रिभुज के प्रत्येक कोना में एक-दूसरे से संबंद्ध एवं अन्तःनिर्भर दिखलाये गए हैं। चित्र से यह भी स्पष्ट है कि इन तीन तत्वों में से कोई भी एक तत्व या कारक अन्य दोनों को प्रभावित कर सकता है। जैसे, किसी व्यक्ति का यह विशवास कि

वह क्या कर सकता है और यदि वह अमुक कार्य करे तो उसका क्या परिणाम होगा (संज्ञानात्मक कारक) से उसका वास्तविक व्यवहार प्रभावित होता है और फिर उसके वास्तविक व्यवहार से उसका वातावरण प्रभावित हो जात है जो बाद में चलकर व्यक्ति के प्रत्याशा को काफी हद तक प्रभावित कर सकता है।

अन्योन्य निर्धार्यता के संप्रत्यय को एक उदाहरण द्वारा इस प्रकार समझाया जा सकता है। उदाहरण के रूप में टेलीविजन पर जो दिखलाया जाने वाला कार्यक्रम है वह तो सभी व्यक्तियों के लिए एक ही समान होता है। परन्तु कोई व्यक्ति विशेष के लिए यह कार्यक्रम अलग हो सकता है जो यह इस पर निर्भर करता है कि वह क्या देखना पसंद करता है। दर्शकों की पसंद से भविष्य में दिखलाये जाने वाले कार्यक्रम प्रभावित होते हैं क्योंकि इनके पसंद के अनुरूप ही कार्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता महसूस की जाती है। इसके अलावा कार्यक्रम को तैयार करने में लगा धन तथा अन्य जरूरतों से भी यह प्रभावित होता है कि भविष्य में दर्शकों के लिए कैसा कार्यक्रम तैयार होगा। इस तरह से दिखलाया गया कार्यक्रम अंशातः दर्शकों के पसन्द को प्रभावित करता है। इस उदाहरण में बाण्डुरा के अनुसार सभी तीन कारक दर्शक का पसंद, टेलीविजन देखने का व्यवहार तथा दिखलाया गया कार्यक्रम परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं।

आत्म-तंत्र-

अन्योन्य निर्धार्यता के संप्रत्यय से स्पष्ट है कि प्रत्येक चीज परस्पर ढंग से अन्तःक्रियात्मक होते हैं। प्रशन यह उठता है कि क्या इनका कोई केन्द्र बिन्दु भी होता है? बान्दुरा ने इस प्रशन का उत्तर 'हाँ' के रूप में दिया है और वह केन्द्र बिन्दु है-आत्म-तंत्र।

बान्दुरा ने यह स्पष्ट किया कि आत्म-तंत्र कोई मानसिक एजेन्ट नहीं है जिससे व्यवहारों का नियंत्रण होता है बल्कि यह एक ऐसा संज्ञानात्मक संरचना है जो व्यक्ति को एक संदर्भ प्रक्रम प्रदान तो करता ही है साथ-ही-साथ प्रत्यक्षण, मूल्यांकन एवं व्यवहारों के संचालन के लिए रास्ता भी प्रशस्त करता है। आत्म-तंत्र का संबंध चिन्तन तथा प्रत्यक्षण से विशेष रूप से होता है। आत्म-तंत्र का एक महत्वपूर्ण कार्य आत्म-नियमन है। आत्म-नियमन से तात्पर्य चिन्तन द्वारा अपने वातावरण में जोड़-तोड़ करने तथा अपने कार्यो के परिणामों को स्पष्ट करने की क्षमता से होता है। आत्म-नियमन व्यवहार में तीन प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं-

क. आत्म-प्रेक्षण

ख. निर्णय प्रक्रिया

ग. आत्म-अनुक्रिया

आत्म-प्रेक्षण-

आत्म-प्रेक्षण में व्यक्ति अपने आप को कुछ खास-खास कारकों जैसे निष्पादन के गुण, मौलिकता आदि के रूप में प्रेक्षण करता है। निर्णयन प्रक्रिया में व्यक्ति अपने व्यवहार को वैयक्तिक मानदंडों के रूप में तथा दूसरों के साथ तुलना करके किसी निर्णय पर पहुँचता है। आत्म-अनुक्रिया में व्यक्ति पहले किये गये प्रेक्षणों एवं निर्णयों के आधार पर अपने आप को धनात्मक एवं ऋणात्मक ढंग से मूल्यांकन करता है और उसी के संदर्भ में अपने आप को पुरस्कृत करता है या दंड देता है।

आत्म-तंत्र का एक महत्वपूर्ण तत्व आत्म-सामर्थ्य है। बान्दुरा के अनुसार आत्म-सामर्थ्य से तात्पर्य ऐसे आत्म-प्रत्यक्षण से होता है जिसमें व्यक्ति यह अनुमान लगाता है कि वह किसी दी हुई परिस्थिति में कितने प्रभावकारी ढंग से कार्य कर सकता है। दूसरे शब्दों में, आत्म-सामर्थ्य से तात्पर्य व्यक्ति द्वारा किये गये इस उम्मीद या प्रत्याशा से

होता है कि वह अमुक परिस्थिति में कितना प्रभावकारी ढंग से कार्य कर सकता है। ऐसे प्रत्याषा के दो प्रकार हैं- सामर्थ्य प्रत्याशा तथा परिणाम प्रत्याशा। सामर्थ्य प्रत्याशा से तात्पर्य व्यक्ति में उस तरह के विशवास से होता है जिसके सहारे वह यह उम्मीद करता है कि किसी खास तरह के परिणाम की प्राप्ति के लिए जो व्यवहार या कार्य की जरूरत है, उसे वह सफलतापूर्वक कर सकता है। जैसे यदि कोई यह विशवास करता है कि वर्ग में दिये गए समस्या का समाधान करने के लिए उसके पास पर्याप्त कौशल है, तो कहा जाएगा कि उसमें सामर्थ्य प्रत्याशा अधिक है। परिणाम प्रत्याशा से तात्पर्य व्यक्ति के उस विशवास से होता है जिसके सहारे वह यह समझता है कि अमुक व्यवहार करने से अमुक परिणाम निशिचत रूप से मिलेंगे। जैसे, यदि छात्र वर्ग में दिये गए समस्या का समाधान कर लेता है और यह उम्मीद करता है कि उसका समाधान शत-प्रतिशत सही होगा और यदि सचमुच में ऐसा होता है, तो यह कहा जाएगा कि छात्रों में परिणाम प्रत्याशा अधिक मजबूत थे। यदि किसी व्यक्ति में सामर्थ्य प्रत्याशा ऊँचा है तथा परिणाम प्रत्याशा वास्तविक है, तो व्यक्ति कड़ी मेहनत करेगा और जब तक लक्ष्य पर पहुँच नहीं जाता है अपना प्रयास जारी रखेगा। बान्दुरा के अनुसार सामर्थ्य प्रत्याशा समायोजनशीलता का एक महत्वपूर्ण भाग होता है।

प्रेरणा-

बान्दुरा के लिए प्रेरणा एक संज्ञानात्मक व्याकृति यानी, कन्स्ट्रक्ट है तथा इसके दो स्रोत होते हैं-पहला स्रोत भविष्य में मिलने वाला पुनर्बलन है। इस तरह के पुनर्बलन से व्यक्ति एक खास ढंग से व्यवहार करने के लिए प्रेरित होता है। दूसरा स्रोत एक निश्चित लक्ष्य या निष्पादन के वांछित स्तर को निर्धारित करके उसी के आलोक में अपने निष्पादन का मूल्यांकन करता है। इससे भी व्यक्ति उस वांछित स्तर के अनुरूप निष्पादन करने के लिए प्रेरित होता है। बान्दुरा तथा शुन्क ने इस सम्बन्ध में एक प्रयोग भी किया है। इस अध्ययन के परिणाम में यह देखा गया कि गणितीय कौशलों में कमजोर बच्चे जब अपने लिये निश्चित किये गए छोटे-छोटे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं तो उनका निष्पादन उस परिस्थिति की तुलना में काफी उन्नत हो जाता है जब उसके द्वारा निर्धारित किये गए लक्ष्य सुदूर थे तथा जिन पर पहुंचने में उसे अधिक समय लगता था। इस प्रयोग के आधार पर बान्दुरा तथा शुन्क द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि व्यक्ति जब अपने व्यवहार पर सतत मनन करता है तथा अपने व्यवहारों का मूल्यांकन करते रहता है, तो इससे एक तरह की आत्म प्रेरणा मिलती है और वह पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप और अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है।

मॉडलिंग: प्रेक्षण द्वारा सीखना

बान्दुरा का मत है कि व्यक्ति दूसरों (या मॉडल) के व्यवहारों का प्रेक्षण करके तथा उसे दोहराकर वैसा ही व्यवहार करना सीख लेता है। इसे ही मॉडलिंग की संज्ञा दी जाती है। इस सिलसिले में बान्दुरा रॉस तथा रॉस ने एक लोकप्रिय प्रयोग किया है। इस प्रयोग में स्कूल के बच्चों को वयस्क द्वारा तीन से चार फीट की एक गुड़िया जिसे बौब गुड़िया का नाम दिया गया था, को उछालते हुए, मारते हुए एवं उसके प्रति आक्रात्मकता करते हुए दिखलाया गया है। जब इन बच्चों को उसी गुड़िया के साथ अकेला छोड़ दिया गया तो देखा गया कि उनके द्वारा भी वैसा ही आक्रामक व्यवहार उस गुड़िया के प्रति दिखलाया गया। बाद के प्रयोगों में जब बच्चों के टेलीविजन पर ऐसे ही आक्रामक दृश्य दिखलाये गए, तो उनका व्यवहार उन बच्चों की तुलना में अधिक आक्रामक हो गए जिन्हें ऐसे दृश्य टेलीविजन पर नहीं दिखलाये गए थे। बान्दुरा द्वारा किये गए शोधों के आधार पर मॉडल के निम्नांकित तीन कारकों को अधिक महत्वपूर्ण बतलाया गया है जिसमें मॉडलिंग प्रभावित होता है:-

मॉडल की विशेषताएं

प्रेक्षक की विशेषताएं

व्यवहार के पुरस्कार परिणाम

मॉडल की विशेषताएं-

बान्दुरा ने मॉडल के कुछ ऐसी विशेषताओं का वर्णन किया है जिनसे मॉडलिंग की प्रक्रिया प्रभावित होती है अर्थात जिसे मॉडल के व्यवहारों के अनुकरण करने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। इन विशेषताओं में मॉडल तथा प्रयोज्य के बीच समानता प्रयोज्य के अनुपात में मॉडल के उम्र एवं यौन, मॉडल का स्तर एवं प्रतिष्ठा तथा मॉडल द्वारा किया गया व्यवहार आदि प्रमुख हैं। जब प्रयोज्य एवं मॉडल के बीच समानता घटती है, तो इससे मॉडलिंग में कमी आती है। प्रयोज्य उन मॉडलों से ज्यादा प्रभावित होते हैं जो समान उम्र एवं यौन के होते हैं।उसी तरह से जब मॉडल के रूप में किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति द्वारा अमुक व्यवहार करते दिखलाया जाता है, तो ऐसी परिस्थिति में प्रयोज्य उसके व्यवहारों का नकल तेजी से करते हैं। अर्थात मॉडलिंग की प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। जब मॉडल उसी तरह से कोई जटिल व्यवहार करता पाया जाता है, तो प्रयोज्य उसका अनुकरण साधारण व्यवहार की तुलना में कम करता है। स्पष्ट हुआ कि मॉडल की कुछ विशेषताएं हैं जिनमें मॉडलिंग की प्रतिक्रिया तीव्र हो जाती है। जब मॉडल उसी तरह से कोई जटिल व्यवहार करता पाया जाता है, तो प्रयोज्य उसका अनुकरण साधारण व्यवहार की तुलना में कम करता है।

प्रेक्षक की विशेषताएं -

प्रेक्षक या प्रयोज्य की भी कुछ विशेषताएं होती हैं जिनसे मॉडलिंग प्रभावित होती है। जिस प्रेक्षक या दर्शक या प्रयोज्य में आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान कीकमी होती है, वे उन दर्शकों या व्यक्तियों की तुलना में मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण अधिक करते हैं जिनमें आत्म-विश्वास तथा आत्म-सम्मान का भाव अधिक होता है। उसी तरह से जिन व्यक्तियों के अपने बीते दिनों में दूसरों के व्यवहारों का अनुकरण करने के लिए पुरस्कार दिया गया होता है, वे दिये गए मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण उन व्यक्तियों की तुलना में तेजी से करते हैं जिन्हें ऐसे पुरस्कार पाने का कोई अनुभव नहीं होता है।

व्यवहार का पुरस्कार परिणाम -

मॉडलिंग की प्रक्रिया मॉडल के व्यवहारों को अनुकरण करने के बाद मिलने वाले पुरस्कार पर भी निर्भर करता है। बान्दुरा के अनुसार यह कारक इतना अधिक प्रभावशाली है कि इसके सामने उपुर्यक्त दोनों कारकों या विशेषताओं का महत्व गौण हो जाता है। जैसे, बान्दुरा का मत है कि व्यक्ति निश्चित रूप से एक प्रतिष्ठित मॉडल के व्यवहारों का अनुकरण करता है परन्तु यदि इस अनुकरणित व्यवहार के बाद व्यक्ति को पुरस्कार नहीं मिलता है या कोई धनात्मक लाभ नहीं होता है, तो प्रतिष्ठित मॉडल का भी मॉडलिंग पर कोई प्रभाव नहीं रह जाता है।

प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रियाएं-

बान्दुरा ने अपने सिद्धान्त में मॉडलिंग को प्रभावित करने वाले कारकों की सिर्फ पहचान ही नहीं की है बल्कि प्रेक्षणात्मक सीखना के स्वरूप का विश्लेषण भी किया है और पाया कि इस तरह का सीखना निम्नांकित चार अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रियाओं द्वारा नियंत्रित होती है-

अवधान-सम्बन्धी प्रक्रियाएं

धारणात्मक प्रक्रियाएं

पुनरूत्पादक प्रक्रियाएं

प्रेरणात्मक प्रक्रियाएं

अवधान-सम्बन्धी प्रक्रियाएं-

मॉडलिंग की सबसे पहली महत्वपूर्ण प्रक्रिया यह है कि प्रयोज्य मॉडल पर ठीक से ध्यान दें। मॉडल का एक मात्र प्रत्यक्षण कर लेने से ही इस बात की गारंटी नहीं हो जाती है कि मॉडलिंग होगा ही। सच्चाई यह है कि जब तक व्यक्ति मॉडल के संगत तथा उपयुक्त संकेत पर सही-सहीं ध्यान नहीं देगा तथा उपयुक्त उद्दीपक घटनाओं का ठीक ढंग से चयन नहीं करेगा, तब तक मॉडलिंग की प्रक्रिया आरम्भ नहीं होगी। व्यक्ति द्वारा मॉडल पर ध्यान दिया जाना कई बातों पर निर्भर करता है जिसमें मॉडल की उम्र, यौन, प्रतिष्ठा आदि प्रधान है। यदि मॉडल का उम्र एवं यौन व्यक्ति के उम्र एवं यौन से समान है तथा मॉडल की प्रतिष्ठा व्यक्ति की नजर से अधिक है तो व्यक्ति सामान्यतः मॉडल पर अधिक ध्यान देता पाया जाता है।

धारणात्मक प्रक्रियाएँ-

प्रेक्षणात्मक सीखना की दूसरी महत्वपूर्ण प्रक्रिया धारणा से संबंद्व है। प्रेक्षणात्मक सीखना के लिए यह आवशयक है कि व्यक्ति मॉडल के सभी सार्थक व्यवहारों को याद रखे या उसे धारण कर रखे। ऐसा नहीं करने से प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रिया सम्पन्न नहीं होगी। मॉडल के सार्थक व्यवहार को धारण कर रखने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति उसे कोडित करे तथा संकेत रूप में चित्रित करे। सांकेतिक चित्रण के इस आन्तरिक प्रक्रिया के दो महत्वपूर्ण तंत्र बान्दुरा द्वारा बतलाये गए हैं-प्रतीकात्मक तंत्र तथा शाब्दिक तंत्र। बान्दुरा का मत है कि जब व्यक्ति मॉडल पर ध्यान से देखता है, तो वह उसके महत्वपूर्ण पहलुओं की एक पुनः प्राप्यणीय प्रतिमा मन में बना लेता है जो मॉडल के संबंधित व्यवहार को बाद में याद करने में मद्द करता है। शाब्दिक तंत्र प्रतिमा निर्णय के समान होता है और इसमें जो कुछ भी व्यक्ति प्रेक्षण करता है उसका एक तरह से शाब्दिक कोडिंग होता है। मूल प्रेक्षण के दौरान व्यक्ति अपने-आप से यह वर्णन करता है कि मॉडल क्या कर रहा है। ये शाब्दिक वर्णन एक तरह का कोड बन जाते हैं जिसे बाद में व्यक्ति बिना स्पष्ट व्यवहार किये ही मन-ही-मन आसानी से पूर्वाभ्यास कर लेता है।

पुनरूत्पादक क्रियाएँ-

बान्दुरा का पुनरूत्पादक क्रियाओं से तात्पर्य सांकेतिक चित्रण को क्रिया या व्यवहार में परिणत करने से होता है। बान्दुरा का मत है कि मॉडल के व्यवहार को ध्यान में रखने, उसका सांवेगिक चित्रण कर लेने तथा मन-ही-मन उसका पुनर्भ्यास कर लेने मात्र से ही व्यक्ति उस व्यवहार को सही-सही नहीं कर पाता है। यह बात विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक स्पष्ट हो जाती है जहाँ व्यक्ति को जटिल एवं कौशल व्यवहार सीखना होता है। इस तरह की परिस्थिति में मॉडल के व्यवहारों का क्रिया में परिणत करके पुनर्भ्यास करना आवशयक हो जाता है। उदाहरणस्वरूप, मान लिया जाए कि कोई व्यक्ति कार चलाना सीख रहा है। कार चलाने में जो मौलिक क्रियाएँ हैं उसे तो व्यक्ति दूसरों को (मॉडल) कार चलाते देखकर सीख सकता है तथा मॉडल के व्यवहार का सांकेतिक चित्रण को व्यक्ति मन-ही-मन कई बार दोहरा सकता है लेकिन इसका वास्तविक व्यवहार में परिणत किया जाना अर्थात् कार चलाना प्रारंभ में काफी फूहड़ एवं स्थूल होगा। इसके लिए मात्र प्रेक्षण पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए कार चलाने का वास्तविक अभ्यास तथा इस व्यवहार की परिशुद्वता से मिलने वाला पर्याप्त पुनर्निवेशन अनिवार्य है।

प्रेरणात्मक प्रक्रियाएँ-

प्रेक्षणात्मक सीखना की यह चौथी प्रक्रिया है जिसका संबंध प्रेरणात्मक प्रक्रियाओं से है। चाहे व्यक्ति मॉडल के व्यवहार को कितना ही ध्यानपूर्वक क्यों न देखे और उसे धारण करके रखे तथा उसमें व्यवहार को करने की क्षमता चाहे कितनी भी अधिक क्यों न हो उस व्यवहार को तब तक ठीक ढंग से नहीं कर पाता है जब तक कि वह उसे करने के लिये प्रेरित न हो या उसे करने के पर्याप्त प्रोत्साहन या पुनर्बलन नहीं दिया गया हो। जब पर्याप्त पुनर्बलन दिया जाता है तो मॉडलिंग या प्रेक्षणात्मक सीखना को व्यक्ति तुरन्त ही कार्य में परिणत कर लेता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि उचित प्रोत्साहन या उचित पुनर्बलन से व्यवहार का वास्तविक निष्पादन प्रभावित नहीं होता है बल्कि उससे अवधानात्मक एवं धारणात्मक प्रक्रियाएँ भी प्रभावित होती हैं।

बान्दुरा के अनुसार ऐसे पुनर्बलन दो प्रकार के होते हैं- स्थानापन्न पुनर्बलन तथा आत्म पुनर्बलन। जब व्यक्ति यह देखता है कि मॉडलद्वारा अमुक व्यवहार करने पर उसे धनात्मक पुनर्बलन मिलता है, तो इस तरह के पुनर्बलित व्यवहार को मात्र देखकर वह भी ऐसा व्यवहार करना सीख लेता है। इस तरह के पुनर्बलन को स्थानापन्न पुनर्बलन कहा जाता है। जब व्यक्ति को किसी कार्य के करने के आत्म-संतुष्टि एवं गर्व महसूस होता है, तो उसे आत्म-पुनर्बलन की संज्ञा दी जाती है। इन दोनों तरह के पुनर्बलन का महत्व प्रेक्षणात्मक सीखना में काफी अधिक बतलाया गया है।

मापन एवं शोध-

बान्दुरा ने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व मापन के लोकप्रिय प्रविधियों जैसे-स्वतंत्र साहचर्य, स्वप्न विशलेषण या प्रेक्षण प्रविधि का प्रयोग नहीं किया है। उनके अनुसार व्यवहारात्मक तथा संज्ञानात्मक चरों का मापन महत्वपूर्ण है। संज्ञानात्मक चरों का मापन के लिए आत्म-प्रतिवेदन प्रविधियों की सिफारिश की गयी है। जैसे आत्मसामर्थ्यता का मापन उन्होंने कई व्यवहारात्मक परिहार्य परीक्षण जिसमें 29 एकांश थे पर रेटिंग्स करवा कर किया। छात्रों में परीक्षण दुशिंचता को मापने के लिए एक व्यक्तित्व परीक्षण का निर्माण किया था। इसके अलावा मॉडलिंग अध्ययन में बच्चों के व्यवहारों का अध्ययन प्रत्यक्ष प्रेक्षण तथा दैहिक मापों के भी आधार पर किया गया।

जहां तक शोध का प्रश्न है बान्दुरा ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में प्रयोगशाला प्रयोग शोध पर अधिक बल डाला है उन्होंने मांडलिंग के अध्ययन में विशेषकर टेलीविजन का आक्रामक व्यवहार की उत्पत्ति में पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन में प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह में प्रयोज्यों को बांटकर अध्ययन करने में विशेष अभिरूचि दिखलायी है।

बान्दुरा के व्यक्तित्व सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताएं हैं।

1. सामाजिक-सीखना सिद्धान्त काफी वस्तुनिष्ठ सिद्धान्त है तथा इसे प्रयोगशाला विधि के लिए काफी उपयुक्त माना गया है। बान्दुरा के सिद्धान्त पर कई आनुभाविक शोध किये गए हैं जिनसे इस सिद्धान्त को काफी समर्थन मिला है।
2. बान्दुरा के सामाजिक सीखना सिद्धान्त को अधिकतर शोध मनोवैज्ञानिकों एवं नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा बीसवीं शताब्दी का व्यक्तित्व के अध्ययन एवं उपचार में अधिक उत्तेजनपूर्ण एवं रचनात्मक क्रान्ति माना है।
3. बान्दुरा के प्र्रेक्षणात्मक सीखना तथा उसका व्युत्पन्न व्यवहार परिमार्जन को प्रयोगशाला परिस्थिति से अलग करके दिन-प्रतिदिन की वास्तविक समस्याओं को सुलझाने में लोगों ने उसे काफी उपयोगी बतलाया है।
4. बान्दुरा के सामाजिक सीखना सिद्धान्त से लोगों ने कई संगत एवं महत्वपूर्ण मूल्यांकन प्रविधि ज्ञात करने में सफल हुए हैं। इनके सिद्धान्त से निकाली नयी मॉडलिंग की प्रविधि एक ऐसी ही प्रविधि है जो मनोविज्ञान के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुई है।

इन गुणों के बावजूद सामाजिक सीखना सिद्धान्त के कुछ अवगुण हैं जो निम्नांकित हैं -

1. आलोचकों का मत है कि बान्दुरा का सामाजिक सीखना सिद्धान्त व्यक्तित्व के सिर्फ परिधीय पहलू की व्याख्या करता है। इन आलोचकों का मत है कि इस सिद्धान्त में मात्र स्पष्ट व्यवहार पर बल डालकर मानव व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे, चेतन एवं अचेतन प्रेरणात्मक बलों की पूर्णरूपेण उपेक्षा की गयी है। फलतः इस सिद्धान्त में जो व्यक्तित्व की व्याख्या की गयी है उसे पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।

2. स्कीनर जैसे व्यवहारवादियों का कहना है कि बान्दुरा ने अपने सिद्धान्त में जिस संज्ञानात्मक चरों को सम्मिलित किया है, वह अनावश्यक होने के साथ-ही-साथ अस्पष्ट स्वरूप के हैं जिन्हें आसानी से मापा नहीं जा सकता है। इन चरों में चूंकि उतनी वस्तुनिष्ठता नहीं है जितनी कि स्पष्ट व्यवहार में है, अतः इसे अधिक संगत नहीं माना जा सकता है।

3. बान्दुरा ने, जैसा कि कुछ आलोचकों ने कहा है, अपने सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया है कि संज्ञानात्मक चरों द्वारा व्यक्ति का व्यवहार किस तरह से प्रभावित होता है।

4. कुछ आलोचकों, जिसमें शुल्ज प्रधान हैं, का कहना है कि बान्दुरा ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया है कि संवेग तथा संघर्ष किस तरह से मानव व्यवहार को दिशा-निर्देशित तथा नियंत्रित करता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद बान्दुरा का सामाजिक-सीखना सिद्धान्त जिसमें संज्ञानात्मक चरों पर बल डाला गया है, व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए नए द्वार खोल रखा है जिसे कई आधुनिक मनोवैज्ञानिक एक महत्वपूर्ण योगदान समझते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व विकास पर जन्म-क्रम के प्रभाव को महत्वपूर्ण माना-

अ. बान्दुरा ब. ऐडलर

स. हार्नी द. फ्रॉम

2. व्यक्तित्व को 'शवकामुक' तथा 'जीवकामुक' प्रकार में किसने विभाजित किया-

अ. फ्रायड ब. युंग

स. हार्नी द. फ्रॉम

5.8 सार-संक्षेप-

व्यक्तित्व का सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त मानव स्वभाव की व्याख्या कुछ मनोवैज्ञानिक सम्प्रत्ययों, जैसे- इच्छाशक्ति, मूल चिन्ता, स्नायविक आवश्यकता आदि तथा कुछ सामाजिक, सम्प्रत्ययों, जैसे-जीवन शैली, जन्म-क्रम, दूसरों पर नियंत्रण पाना, सत्तावादिता, सम्बद्धता आवश्यकता आदि के परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास करता है। अल्फ्रेड ऐडलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया जा सकता है- व्यक्तित्व गतिकी, सामाजिक रूचि, सर्जनात्मक व्यक्तित्व, जन्मक्रम आदि।

कारेन हार्नी के व्यक्तित्व सिद्धान्त में स्त्रैण दृष्टिकोण तथा सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों का पर्याप्त प्रभाव झलकता है। इनके सिद्धान्त को निम्नलिखित भागों में बांटा गया है- बाल्यावस्था की आवश्यकता, मूल चिन्ता, स्नायुविकृत आवश्यकता तथा स्नायुविकृत प्रवृत्ति, चिन्ता दूर करने के उपाय आदि।

इरिक फ्रॉम ने व्यक्तित्व की व्याख्या ऐतिहासिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक कारकों के परिप्रेक्ष्य में की। उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नलिखित वर्गो में विभाजित किया गया है-स्वतंत्रता बनाम सुरक्षाः मौलिक माननीय दुविधा, पलायन के प्रक्रम, मूल आवयकताएं, बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास तथा व्यक्तित्व प्रकार।

बान्दुरा के व्यक्तित्व सिद्धान्त में सीखने के महत्वपूर्ण नियमों के साथ-साथ व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमताओं को भी काफी महत्व दिया गया है। इनके सिद्धान्त के प्रमुख भाग हैं-अन्योन्य निर्धार्यता, आत्म-तंत्र, प्रेरणा, मॉडलिंग, प्रेक्षणात्मक सीखना की प्रक्रियाएं, मापन एवं शोध।

5.9 पारिभाषिक शब्दावली-

मूल चिन्ता-बच्चों में पाया जाने वाला अकेलापन एवं निःसहायता का भाव जो विद्वेष के भाव के दमन से जुड़ा होता है।

शवकामुक व्यक्तित्व-इसमें बर्बादी, मृत्यु, पतन आदि से विशेष लगाव होता है तथा ऐसे लोगों में इन सब कार्यो से विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है।

जीव कामुक व्यक्तित्व-इन्हें अपनी जिन्दगी से प्यार होता है तथा इसमें वर्द्धन, सृजन एवं निर्माण के प्रति विशेष उन्मुखता होती है।

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में कारेन हार्नी के सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
2. इरिक फ्रॉम ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में किन-किन मूल आवश्यकताओं पर बल दिया है? वर्णन करें।
3. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बान्दुरा के विचारों की समीक्षा करें।
4. व्यक्तित्व पर जन्म-क्रम के प्रभाव के सम्बन्ध में ऐडलर के विचारों का उल्लेख करें।

5.11 संदर्भ-ग्रन्थ-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5- Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6 Eysenck – The scientific study of personality.

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. ब 2. द

इकाई – 6 व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त (पैवलोव एवं स्कीनर), मानवतावादी एवं स्व सिद्धान्त (मेसलो, रोजर्स) (Learning Theory of Personality (Pavlov and Skinner), Humanistic and Self Theory (Maslow, Rogers)

इकाई संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त से तात्पर्य
6.4 पैवलव का व्यक्तित्व सिद्धान्त
6.5 स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त
6.6 व्यक्तित्व के मानवतावादी एवं आत्म सिद्धान्त का तात्पर्य
6.7 मैसलो का व्यक्तित्व सिद्धान्त
6.8 रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त
6.9 सार संक्षेप
6.10 पारिभाषिक शब्दावली
6.11 निबन्धात्मक प्रश्न
6.12 संदर्भ-ग्रन्थ
6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.1 प्रस्तावना-

पिछली इकाई में आपने व्यक्तित्व के सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया। इस सिलसिले में ऐडलर, फ्रॉम, हार्नी एवं बान्दुरा के व्यक्तित्व सिद्धान्त की चर्चा की गई।

आइए, अब व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त तथा मानवतावादी एवं आत्म-सिद्धान्त पर चर्चा करें। अधिगम सिद्धान्त के अन्तर्गत यहां पैवलव एवं स्कीनर के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला गया है तथा मानवतावादी एवं आत्म-सिद्धान्त के अन्तर्गत अब्राहम मासलो एवं काले रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त की चर्चा की गई है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आपको अधिगम सिद्धान्तों तथा मानवतावादी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्तित्व को समझने एवं इसकी व्याख्या करने में मद्द मिलेगी।

6.2 उद्देश्य-

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्तों की तुलना कर सकें।
2. पैवलव एवं स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त में भेद कर सकें।
3. मासलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें।
4. रोजर्स के आत्म-सिद्धान्त के तत्वों को समझ सकें।
5. उपर्युक्त व्यक्तित्व सिद्धान्तों के गुण-दोषों पर प्रकाश डाल सकें।

6.3 व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्त से तात्पर्य-

अधिगम सिद्धान्त से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन सिद्धान्तों से है जो मानव स्वभाव की व्याख्या सीखे हुए व्यवहार के आधार पर करता है। इसके अन्तर्गत मूलतः व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक आते हैं जिन्होंने मानव स्वभाव को सीखे हुए व्यवहार का समुच्चय माना। इसका पहला श्रेय रूसी मनोवैज्ञानिक पैवलव को जाता है जिन्होंने क्लासिकी अनुकूलन या अनुबन्धन द्वारा व्यवहार सीखने की क्रिया का प्रायोगिक अध्ययन किया। इस क्षेत्र में दूसरा महत्वपूर्ण कार्य स्कीनर ने क्रियाप्रसूत व्यवहार का अध्ययन कर किया तथा मानव स्वभाव की व्याख्या पुनर्बलन द्वारा सीखने के आधार पर की। इस प्रकार, व्यक्तित्व का अधिगम सिद्धान्त मानव स्वभाव एवं व्यवहार की व्याख्या क्लासिकी एवं प्रवर्तन अनुकूलन के आधार पर करता है।

व्यक्तित्व के अधिगम सिद्धान्तवादियों का मानना है कि व्यक्तित्व उन आदत-तंत्रों का समुच्चय है जिसे वस्तुनिष्ठ रूप से अवलोकित किया जा सकता है। इस समूह के मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को समझने का प्रयास प्रयोगशालाओं में किए गये अध्ययनों तथा वस्तुनिष्ठ प्रदत्तों के माध्यम से किया, न कि उपचार-गृह में किए गये अध्ययनों या केस-इतिहास द्वारा प्राप्त प्रदत्तों के माध्यम से।

6.4 पैवलव का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

इवान पी. पैवलव एक रूसी शरीर क्रिया-शास्त्री थे जिन्होंने मूलतः सीखने के क्लासिकी अनुकूलन या अनुबन्धन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, परन्तु व्यवहार के परिवर्तन और परिमार्जन में क्लासिकी अनुकूलन की भूमिका ने व्यक्तित्व की व्याख्या भी अधिगम के आधार पर करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसीलिए, व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पैवलव के सिद्धान्त को अधिगम सिद्धान्त के रूप में ही जाना जाता है।

व्यक्तित्व के इस सिद्धान्त का आधार पैवलव द्वारा कुत्ते पर किया गया वह प्रयोग है जिसमें कुत्ते ने घंटी की आवाज पर लार टपकाना शुरू कर दिया था। यह प्रयोग दो अवस्थाओं में किया गया था-

पहली अवस्था-

स्वाभाविक उत्तेजना	स्वाभाविक अनुक्रिया
घंटी की आवाज -	चौंकने की अनुक्रिया
भोजन -	लार टपकाने की अनुक्रिया

दूसरी अवस्था-

घंटी की आवाज (अस्वाभाविक उत्तेजना) - लार का टपकना

+

भोजन (स्वाभाविक उत्तेजना

कई प्रयासों के बाद

घंटी की आवाज - लार का टपकना

यानी, घंटी की आवाज, जो लार टपकाने के लिए एक अस्वाभाविक उत्तेजना थी तथा लार टपकना, जो घंटी की आवाज के लिए एक अस्वाभाविक अनुक्रिया थी, आपस में जुड़ गई, यानी, युग्मित हो गई। इसे ही अनुकूलन या अनुबन्धन कहा गया तथा घंटी की आवाज को अनुकूलित उत्तेजना एवं आवाज सुनकर लार टपकाने की क्रिया को अनुकूलित अनुक्रिया की संज्ञा दी गई।

अपने उपर्युक्त प्रयोग के आधार पर पैवलव ने बताया कि अनुकूलन के विकास में उत्तेजनाओं के क्रम का महत्वपूर्ण स्थान है तथा शिक्षण क्रिया में व्यक्ति घटनाक्रम को ही सीखता है। उनके अनुसार अनुकूलन के लिए यह भी आवश्यक है कि तटस्थ उत्तेजना और मौलिक उत्तेजना (स्वाभाविक उत्तेजना) के क्रमशः उपस्थित होने के बीच समय अन्तराल न्यूनतम हो,

पैवलव ने अनुकूलित व्यवहार के उत्पन्न होने में प्रेरणा एवं प्रबलन के महत्व को भी स्वीकार किया। उनके अनुसार, पर्याप्त प्रेरणा और प्रबलन के अभाव में अनुकूलित व्यवहार उत्पन्न नहीं होगा क्योंकि प्रेरणा ही प्राणी को क्रियाशील बनाती है। पैवलव ने यह भी स्पष्ट किया कि अनुकूलन की घटना उत्पन्न होने के लिए यह आवश्यक है कि तटस्थ उत्तेजना और मौलिक उत्तेजना के अतिरिक्त और कोई प्रभावक उत्तेजना न हो-यानी उन्हें नियंत्रित रखा जाय।

पैवलव के अनुकूलन व्यवहार का समर्थन वाटसन ने भी अलबर्ट नामक शिशु पर प्रयोग करके किया। अलबर्ट पहले सफेद चूहे के साथ खेलता था तथा धमाकेदार आवाज से भयभीत होता था। जब वह चूहे की ओर हाथ बढ़ाता कि जोरदार आवाज उत्पन्न की जाती। नतीजा यह हुआ कि चूहे के साथ खेलने वाला बच्चा अब चूहे को देखते ही डरने लगा। स्थिति यहां तक आ गई कि अब वह किसी भी रोयेंदार सफेद वस्तु को देखकर डरने लगा। यानी, उसके व्यक्तित्व में भय का विकास अनुकूलन द्वारा हुआ जो पैवलव के सिद्धान्त पर आधारित है।

हमारे दैनिक जीवन में भी अनेक ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं जब अनुकूलन द्वारा व्यक्ति में विशेष प्रकार का भय, आकर्षण अथवा घृणा के संवेग विकसित होते हैं।

सामाजिक शिक्षण की प्रक्रियाएं भी अनुकूलन के प्रतिफल होते हैं। मनोवृत्ति, विश्वास, धर्म, भाषा, पूर्वग्रह, आदि के शिक्षण में अनुकूलन का और अधिक महत्व है। जातीय एवं साम्प्रदायिक पूर्वग्रह, पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध, धनी-गरीब के बीच का भेदभाव एवं उनके बीच की अन्तःक्रियाएं आदि अनुकूलन के ही परिणाम हैं।

अनुकूलन एक ऐसी घटना है जो व्यक्ति के व्यवहार को जन्म से मृत्यु तक प्रभावित करता है क्योंकि सीखना एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। नवजात शिशु जब अपनी मां के स्तन को मुँह से पकड़कर चूसने की प्रतिक्रिया करता है तो यह स्वाभाविक अनुक्रिया कहलाती है, परन्तु जब वह माँ की आवाज सुनते ही चूसने जैसी अनुक्रिया करता है तो यह अनुकूलन से उत्पन्न व्यवहार है।

स्पष्ट है कि पैवलव का अनुकूलन सिद्धान्त व्यक्तित्व की व्याख्या भी अधिगम के आधार पर करता है और व्यक्तित्व को अनुकूलन द्वारा सीखी गई अनुक्रियाओं का समुच्चय मानता है।

6.5 स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

एक व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिक होने के कारण स्कीनर ने व्यक्तित्व की व्याख्या भी उद्धीपकों के प्रति सीखी गई अनुक्रियाओं के संग्रहण एवं स्पष्ट व्यवहारों या आदत-तंत्रों के एक समुच्चय के रूप में की। इसीलिए व्यक्तित्व से स्कीनर का तात्पर्य सिर्फ उन व्यवहारों से है जिसे वस्तुनिष्ठ रूप में अवलोकित किया जाय तथा जिसमें आसानी से हेर-फेर किया जा सके। स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त को व्यक्तित्व का व्यवहारात्मक-सीखना सिद्धान्त भी कहते हैं। इन्होंने व्यक्तित्व को समझने का प्रयास प्रयोगशालाओं में किए गए अध्ययनों के माध्यम से किया, न कि उपचार गृह में किए गए अध्ययनों के माध्यम से।

इनका व्यक्तित्व सिद्धान्त कुछ सिद्धान्तों, जैसे-मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, संज्ञानात्मक सिद्धान्त, मानवतावादी सिद्धान्त का विरोधी है। स्कीनर ने व्यक्तित्व की व्याख्या करने में आन्तरिक प्रक्रियाओं जैसे-प्रणोद, अभिप्रेरकों

तथा अचेतन आदि के महत्व को अस्वीकार कर दिया, क्योंकि इनका प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है। उसी तरह से उन्होंने दैहिक प्रक्रियाओं को भी यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि उन्हें चूँकि स्पष्ट रूप से प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है, अतः उस पर वैज्ञानिक व्याख्या के लिए भरोसा नहीं किया जा सकता है। स्कीनर ने मानव जीव को एक रिक्त जीव कहा है। रिक्त जीव कहने का उद्देश्य मानव व्यवहार की उत्पत्ति में आन्तरिक प्रक्रियाओं की भूमिकाओं पर कटाक्ष करना तथा इस पर बल डालना था कि मानव जीव के भीतर कुछ भी ऐसा नहीं होता है जो वैज्ञानिक ढंग से व्यक्ति के व्यवहारों की व्याख्या कर सके। स्कीनर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में वैयक्तिक विभिन्नता के अध्ययन में रूचि नहीं दिखलायी है बल्कि उनकी मुख्य अभिरूचि मानव व्यवहार के सामान्य नियमों की खोज में अधिक थी। स्कीनर के सिद्धान्त की एक विशेषता यह भी है कि इन्होंने अपना अध्ययन सामान्य, असामान्य या असाधारण व्यक्तियों पर न करके पशुओं पर विशेषकर चूहों एवं कबूतरों पर किया और कहा कि चूँकि उनके सिद्धान्त का संबंध सभी तरह के व्यवहारों से है, अतः इन पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करके मानव के व्यवहारों को भी आसानी से समझा जा सकता है। उन्होंने पशु व्यवहार के अध्ययन पर इसलिए भी जोर दिया है क्योंकि ऐसे व्यवहारों का अध्ययन सरल है। स्कीनर के अनुसार जीव का व्यवहार किसी स्पष्ट नियमों से निर्धारित होता है तथा वातावरण के कारकों द्वारा नियंत्रित होता है।

स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त मानव प्रकृति के कुछ खास-खास पहलुओं जैसे-निर्धार्यता, अधिभूतवाद, पर्यावरणीयता, परिवर्तनशीलता, वस्तुनिष्ठता, प्रतिक्रियाशीलता, तथा ज्ञेयता पर अधिक बल डालता है तथा अन्य पहलुओं जैसे विवेकपूर्णता-अविवेकपूर्णता तथा समस्थिति-विषमस्थिति को पूर्णरूपेण अस्वीकृत करता है क्योंकि स्कीनर ने मानव व्यवहार के आन्तरिक स्रोतों पर बल नहीं दिया है।

स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व का अध्ययन व्यक्ति के जननिक पृष्ठभूमि तथा विशिष्ट शिक्षण इतिहास का क्रमबद्ध एवं परिशुद्ध मूल्यांकन के आधार पर संभव है। इसका मतलब यह हुआ कि स्कीनर के लिये व्यक्तित्व के अध्ययन में जीव के व्यवहार तथा उसके पुनर्बलित परिणामों के विशिष्ट संबंधों की खोज सम्मिलित होता है। स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या निम्नांकित आधारों पर की जा सकती है-

1. क्रियाप्रसूत व्यवहार
2. पुनर्बलन अनुसूची
3. क्रमिक सन्निकटन: व्यवहारों को रूप-ग्रहित करना
4. अंधविश्वासी व्यवहार
5. व्यवहारों का आत्म-नियंत्रण
6. व्यक्तित्व मापन
7. क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का अनुप्रयोग

स्कीनर ने निम्नलिखित तीन पूर्वकल्पनाएं अभिव्यक्त की थीं-

1. व्यवहार वैध होता है- उनका मत था कि मनोविज्ञान चूँकि एक विज्ञान है, अतः विभिन्न घटनाओं से संबंधित व्यवहारों में एक क्रमबद्धता की खोज उसमें की जाती है।
2. व्यवहार को पूर्वानुमानित किया जा सकता है- मनोविज्ञान का संबंध सिर्फ भूत से ही नहीं होता है बल्कि भविष्य से भी होता है। इसमें भविष्य में होने वाले व्यवहारों के बारे में एक पूर्वकथन किया जाता है।

3. व्यवहार को नियंत्रित किया जा सकता है- स्कीनर का मत था कि हम लोग अपने व्यवहारों के बारे में सिर्फ पूर्वकथन ही नहीं करते बल्कि उसका काफी हद तक नियंत्रण भी कर पाते हैं।

आइए, अब स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या उपर्युक्त सातों आधारों पर करें-

क्रियाप्रसूत व्यवहार-

स्कीनर के अनुसार व्यक्तित्व का सापेक्ष पहलू यदि कोई है, तो वह व्यवहार है जिसका गहन प्रयोगात्मक अध्ययन करके व्यक्तित्व के बारे में समझा जा सकता है। उन्होंने व्यवहार के दो प्रकार बतलाये हैं-क्रियाप्रसूत व्यवहार तथा प्रतिवादी व्यवहार। प्रतिवादी व्यवहार से तात्पर्य वैसे व्यवहार से होता है जिसे व्यक्ति वातावरण के ज्ञात उद्धीपकों के प्रति करता है। साधारण स्तर पर प्रतिवादी व्यवहार स्वतः एवं अनैच्छिक होता है। जैसे रोशनी से प्रभावित होकर पुतली का फैलना या सिकुड़ना, भोजन देखकर मुँह में पानी (लार) आना, ठंढक से काँपना आदि साधारण स्तर के प्रतिवादी व्यवहार हैं जिन्हें व्यक्ति सीखता नहीं है। परन्तु अधिक जटिल स्तर पर प्रतिवादी व्यवहार को व्यक्ति सीखता है और ऐसे सीखना को अनुबन्धन कहा जाता है। जैसे, किसी वक्ता द्वारा मुख्य भाषण देने के लिये बने सेट एवं उसकी चमक-दमक देखकर पसीना-पसीना होना तथा घबड़ा जाना एक ऐसे ही प्रतिवादी व्यवहार का उदाहरण है। इस तरह के प्रतिवादी व्यवहार के सीखने का प्रयोगात्मक अध्ययन पैवलव द्वारा एक कुत्ते पर प्रयोग कर किया गया तथा वाटसन एवं रेनर द्वारा मानव पर (अल्बर्ट नामक शिशु पर) एक प्रयोग करके सफलतापूर्वक किया गया। क्रियाप्रसूत व्यवहार से तात्पर्य वैसे व्यवहार से होता है जो वातावरण के किसी स्पष्ट उद्धीपक द्वारा उत्पन्न नहीं होता है। प्रायः ऐसे व्यवहारों को व्यक्ति अपनी इच्छा से न कि उद्धीपक से प्रभावित होकर करता है। स्कीनर का यह मत है कि अधिकतर मानव व्यवहार क्रियाप्रसूत व्यवहार की श्रेणी के ही होते हैं हालांकि उन्होंने पैवलोवियन अनुबन्धन के कई नियमों का सहर्ष स्वागत भी किया है। स्कीनर का मत था कि क्रियाप्रसूत व्यवहार के करने के बाद की घटनाओं का प्रभाव जीव पर काफी अधिक पड़ता है। यदि इस तरह के व्यवहार को करने के बाद पशु या मानव को पुरस्कार मिलता है तो इससे वह अधिक प्रोत्साहित होकर भविष्य में फिर उस व्यवहार को दोहराता है, परन्तु यदि उस तरह के व्यवहार करने के बाद उसे दंड मिलता है, तो वह भविष्य में उस व्यवहार की पुनरावृत्ति नहीं करना चाहता है। स्कीनर ने स्कीनर बक्स में चूहों पर तथा कबूतर बक्स में कबूतरों पर कई प्रयोग करके उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि की है। जिस प्रक्रिया द्वारा क्रियाप्रसूत व्यवहार का अनुबन्धन होता है उसे क्रियाप्रसूत अनुबन्धन कहा जाता है।

जन्म के बाद से व्यक्ति कई तरह के व्यवहार करता है और उसमें से जो व्यवहार पुनर्बलित होते हैं, वे अपने आप ही अधिक मजबूत होकर एक निश्चित पैटर्न का निर्माण करते हैं। स्कीनर का व्यक्तित्व से मतलब ऐसे ही मजबूत क्रियाप्रसूत व्यवहारों के एक पैटर्न या संग्रहण से था।

पुनर्बलन अनुसूची-

पुनर्बलन अनुसूची से स्कीनर का तात्पर्य क्रियाप्रसूत अनुक्रिया को करने के बाद पुनर्बलन के देने या रोकने के लिए तैयार किया गया एक विशेष पैटर्न या अनुसूची से होता है। अपने शोध के प्रारंभिक अवस्था में स्कीनर ने प्रत्येक सही अनुक्रिया को पुनर्बलित किया। इसे सतत पुनर्बलन कहा गया है। परन्तु शीघ्र ही स्कीनर ने यह पाया कि दिन प्रतिदिन की अधिकतर परिस्थितियाँ इस प्रकार की होती है जहाँ व्यक्ति को प्रत्येक अनुक्रिया व्यवहार करने के बाद पुरस्कार या पुनर्बलन नहीं मिल पाता है। सच्चाई यह है कि कुछ ऐसी परिस्थिति में कुछ व्यवहार के बाद तो पुनर्बलन मिलता है तो कुछ के बाद पुनर्बलन नहीं मिलता है। इस तरह के पुनर्बलन को उन्होंने आंशिक पुनर्बलन या

आंतरायिक पुनर्बलन कहा है। उन्होंने आंतरिक पुनर्बलन के चार प्रकार बतलाये हैं-निश्चित अनुपात अनुसूची, परिवर्त्य-अनुपात अनुसूची, निश्चित अन्तराल अनुसूची तथा परिवर्त्य अन्तराल अनुसूची। निश्चित अनुपात अनुसूची में प्राणी को एक निश्चित संख्या जैसे, 5, 10, 12 आदि में सही अनुक्रिया करने के बाद ही उसे पुनर्बलन मिलता है। परिवर्तय अनुपात अनुसूची में पुनर्बलन देने के लिये कोई ऐसी संख्या पूर्व निश्चित नहीं होती हैं। प्रयोगकर्ता कभी तीन सही अनुक्रिया तो कभी पाँच तो कभी सात (या कोई भी संख्या) के बाद अपने मन से पुनर्बलन देता है। निश्चित अंतराल अनुसूची में सही अनुक्रिया की संख्या चाहे कुछ भी हो, एक निश्चित समय बीतने के बाद ही पुनर्बलन दिया जाता है। परिवर्त्य अंतराल अनुसूची में पुनर्बलन देने का कोई निश्चित समय अंतराल नहीं होता है। समय अंतराल की सीमा कुछ भी हो सकती है, अर्थात् कभी दो मिनट तो कभी पाँच मिनट तो कभी तीन मिनट आदि-आदि। इसमें से निश्चित अनुपात अनुसूची दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में सबसे अधिक सामान्य है और व्यक्ति के व्यवहार पर यह काफी नियंत्रण रखता है। अधिकतर नौकरियों में व्यक्ति द्वारा किये गए कामों की इकाइयों को मापकर उसी के अनुरूप उनका वेतन दिया जाता है। अधिक ऐसे इकाई होने पर उन्हें अधिक वेतन दिया जाता है। दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में व्यक्ति द्वारा जुआ खेलना परिवर्त्य अनुपात अनुसूची के उदाहरण हैं। जब किसी व्यक्ति को कुछ निश्चित घंटे काम करने या एक-एक हफ्ता पर अपने काम के लिये उसे वेतन दिया जाता है तो यह निश्चित अंतराल अनुसूचित का उदाहरण है। माता-पिता द्वारा बच्चों को उनके व्यवहारों को यदा-कदा प्रशंसा करना परिवर्त्य अंतराल अनुसूची के उदाहरण है। दोनों तरह के परिवर्त्य अनुसूचियों द्वारा सीखे गए व्यवहारों को व्यक्ति जल्दी नहीं भूलता है। क्योंकि वह यह नहीं जान पाता है कि उसे कब पुनर्बलन मिलेगा।

क्रमिक सन्निकटन: व्यवहारों को रूप-ग्रहित करना-

क्रमिक सन्निकटन की विधि जिसे रूप ग्रहित करना भी कहा जाता है, एक ऐसी प्रविधि है जिसमें धीरे-धीरे एक-एक करके अनुक्रिया को पुनर्बलित किया जाता है और उसे वैसे व्यवहारों से प्रतिस्थापित किया जाता है जो वांछित व्यवहार जिसे प्रयोगकर्ता सीखना चाहता है, के काफी हद तक सादृश्य होता है। जैसे, स्कीनर ने इस प्रविधि द्वारा कबूतर को एक निर्दिष्ट जगह पर चोंच मारना सिखलाने के लिए इस प्रकार की योजना बनाया-पहले जब कबूतर उस निर्दिष्ट जगह की ओर मुड़ा तो उसे पुनर्बलन प्रदान किया गया। इसके बाद कबूतर को पुनर्बलन तब दिया गया जब वह उस निर्दिष्ट स्थान की ओर किसी प्रकार की गति किया। इसके बाद कबूतर को पुनर्बलन तब दिया गया जब वह उस निर्दिष्ट स्थान के नजदीक आने की अनुक्रिया किया और अन्त में कबूतर को पुनर्बलन तब दिया गया जब उसकी चोंच उस निर्दिष्ट स्थान को स्पर्श किया। इस तरह से कबूतर को उस निर्दिष्ट स्थान पर चोंच मारना सीखलाया गया। इस तरह से क्रमिक सन्निकटन की प्रविधि में जीव को पुनर्बलन तभी प्रदान किया जाता है जब उसका व्यवहार धीरे-धीरे वांछित व्यवहार अर्थात् सिखाने वाले व्यवहार के नजदीक आते जाते हैं। इस प्रविधि का प्रयोग बच्चों में बोलना सिखलाना तथा सही शब्दों का उच्चारण सिखलाने में काफी किया गया है।

अंधविश्वासी व्यवहार-

स्कीनर के अनुसार अंधविश्वासी व्यवहार से तात्पर्य वैसे अनुबन्धन से है जिसमें अनुक्रिया तथा पुनर्बलन के बीच एक स्पष्ट परन्तु अकार्यात्मक या संयोग संबंध होता है। ऐसी परिस्थिति में प्राणी को यह अनुभव होता है कि उसके अमुक व्यवहार का कारण अमुक पुनर्बलन ही है जबकि सच्चाई यह है कि उस व्यवहार तथा पुनर्बलन में कोई वास्तविक संबंध नहीं होता है। स्कीनर ने इस तरह के व्यवहार को प्रयोगशाला में देखा। उदाहरण के लिए मान लिया

जाय कि चूहा को स्कीनर बक्स में निश्चित अंतराल अनुसूची जिसमें प्रत्येक 15 सेकंड पर पुनर्बलन दिया जाता है लीवर दबाने की अनुक्रिया को सिखलाया जा रहा है। इस अनुसूची में चूहा चाहे वांछित व्यवहार करे या न करे, उसे प्रत्येक 15 सेकंड पर पुनर्बलन मिलेगा। ऐसा संभव है कि जिस समय पुनर्बलन दिया जा रहा हो, वह कुछ-न-कुछ व्यवहार जैसे, पूँछ हिलाना, पिछले दोनों पैरों पर खड़ा होकर आगे के दोनों पैरों से मुँह खुजलाना, आदि कर रहा हो। उस समय जो भी व्यवहार चूहा कर रहा होता है, वह पुनर्बलित हो जाता है। इस तरह का व्यवहार आकस्मिक रूप से पुनर्बलित हो जाता है और स्कीनर ने देखा कि ऐसा व्यवहार बाद में चूहा प्रायः यह सोचकर संभवतः करता है कि ऐसा करने से उसे आगे फिर पुनर्बलन मिलेगा। इस तरह के व्यवहार को स्कीनर ने अंधविश्वास व्यवहार कहा है। दिन-प्रतिदिन की जिन्दगी में अंधविश्वासी व्यवहार के अनेक उदाहरण मिलते हैं-छात्रों द्वारा परीक्षा के दिन दही खाकर परीक्षा-भवन में जाना, बिल्ली द्वारा रास्ता काटने को अशुभ मानना, शीशे के टूटने को अशुभ मानना, सोना खो जाने को अशुभ मानना, आदि-आदि। स्कीनर ने यह भी स्पष्ट किया है कि अंधविश्वासी व्यवहार निश्चित रूप से व्यक्ति के अपने अनुबन्धन इतिहास का ही परिणाम नहीं होता है बल्कि एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में सांस्कृतिक एवं सामाजिक कहानियों एवं रूपक कथाओं के रूप में हस्तांतरित होते रहता है।

व्यवहारों का आत्म-नियंत्रण-

स्कीनर के सिद्धान्त का मुख्य सार-तत्व यह था कि प्राणी का व्यवहार वाह्य उद्धीपकों द्वारा परिवर्तित होता है तथा प्राणी के भीतर कोई वैसा आन्तरिक बल नहीं होता है जो उसके व्यवहार को परिवर्तित करे। उन्होंने यह भी कहा है कि बाह्य उद्धीपकों से यद्यपि प्राणी का व्यवहार परिवर्तित होता है, प्राणी भी अपने व्यवहार से बाह्य उद्धीपकों को प्रभावित करता है। स्कीनर का आत्म-नियंत्रण से तात्पर्य यह नहीं था कि प्राणी का व्यवहार कुछ आन्तरिक रहस्यमुक्त बलों से नियंत्रित होता है बल्कि इनका तात्पर्य यह था कि प्राणी उन चरों पर अपना नियंत्रण रखता है जिससे उसका व्यवहार प्रभावित होता है। जैसे, यदि आपको अपने पड़ोसी के रेडियो की आवाज पढ़ने में विध्न डालता है, तो आप उस कमरे से स्थान बदलकर एक ऐसे कमरे में कर लेते हैं जहाँ उसके रेडियो की आवाज से आपको पढ़ने में कोई विध्न नहीं पहुँचता हो। यह आत्म-नियंत्रण का उदाहरण है। स्कीनर ने आत्म-नियंत्रण के कई प्रविधियों का वर्णन किया है जिसमें प्रमुख निम्नांकित हैं-

1. **संतुष्टि प्रविधि-**

   यह एक ऐसी प्रविधि है जिसमें व्यक्ति अपने आप को बुरी आदतों से छुटकारा पाने के लिए उसे बार-बार तब तक दोहराते जाता है। जब तक कि उससे वह ऊब न जाए। इस प्रविधि द्वारा सिगरेट पीने की बुरी आदत को छोड़ने के लिए व्यक्ति तब तक सिगरेट एक के बाद एक करके पीते जायेगा, जब तक उसे सिगरेट से विरूचि न उत्पन्न हो जाय।

2. **असुखद या विरूचिपूर्ण उद्धीपकों का प्रयोग-**

   आत्म-नियंत्रण की इस प्रविधि में व्यक्ति वातावरण में कुछ ऐसा परिवर्तन करता है कि उसे असुखद या विरूचिपूर्ण उद्धीपकों का सामना करना पड़ता है और इस तरह से वह अपनी आदतों से छुटकारा पा जाता है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति शराब की अपनी बुरी आदत को छोड़ना चाहता है, तो वह अपने इस विचार की घोषणा अपने दोस्तों एवं रिश्तेदारों के बीच करता है। यदि वह अपने इस घोषणा पर अटल नहीं रहता है, तो उसे अपने दोस्तों एवं रिश्तेदारों की आलोचना का सामना करना पड़ता है जो स्पष्टतः व्यक्ति के लिए एक तरह का

असुखद या विरूचिपूर्ण उद्धीपक होगा। अतः उम्मीद की जाती है कि वह ऐसे उद्धीपकों से बचने के लिए अपनी घोषणा पर अमल करेगा।

3. आत्म-पुनर्बलन-

आत्म-नियंत्रण की इस प्रविधि में व्यक्ति अपने द्वारा किये गये उत्तम व्यवहारों या वांछित व्यवहारों को दिखलाने के लिए अपने आपको पुनर्बलित करता है। जैसे, अपने उस व्यवहार से खुश होना या उससे पूर्णतः संतुष्टि एवं प्रसन्नता व्यक्त करना, आदि-आदि आत्म-पुनर्बलन के कुछ उदाहरण हैं। इस तरह के आत्म-पुनर्बलन से व्यक्ति में आत्म-नियंत्रण पर पकड़ मजबूत होती है।

व्यक्तित्व मापन-

स्कीनर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में व्यक्तित्व मापन के लिए कुछ वैसी प्रविधियों का जिक्र नहीं किया है जैसा कि हम अन्य सिद्धान्तों में पाते हैं। अतः उन्होंने स्वतंत्र साहचर्य, स्वप्न विश्लेषण तथा प्रक्षेपी प्रविधियाँ जैसी प्रविधियों का वर्णन अपने सिद्धान्त में नहीं किया है। यद्यपि स्कीनर की अभिरूचि व्यक्तित्व मापन की ऐसी प्रविधियों में नही थी, फिर भी उन्होंने व्यवहारों के मापन में अभिरूचि दिखलायी है। उनका मत था कि व्यवहार चाहे वांछनीय हो या अवांछनीय हो, उसे मापना आवश्यक है। जब तक व्यवहार को मापा नहीं जाता, उसमें परिमार्जन भी नहीं लाया जा सकता है। अतः व्यवहार मापन व्यवहार परिमार्जन के लिए आवश्यक माना गया।

स्कीनर ने व्यवहार मापन का कार्यात्मक विश्लेषण किया है जिसमें व्यवहार के तीन पहलू शामिल होते हैं-व्यवहार की आवृत्ति, परिस्थिति जिसमें व्यवहार उत्पन्न होता है तथा व्यवहार से संबंधित पुनर्बलन। जब तक इन तीन पहलुओं को पहले से मापा नहीं जाता है, व्यवहार परिमार्जन के प्रोग्राम को प्रारंभ करना संभव नहीं है। स्कीनर के अनुसार व्यवहार परिमार्जन के औपचारिक प्रोग्राम में व्यवहार मापन के लिए निम्नांकित तीन प्रविधियाँ महत्वपूर्ण हैं-

1. व्यवहार का प्रत्यक्ष प्रेक्षण
2. आत्म-प्रतिवेदन विधि
3. व्यवहार का दैहिक मापन

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित हैं-

1. व्यवहार का प्रत्यक्ष प्रेक्षण-

इस प्रविधि में दो या दो से अधिक प्रेक्षक व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहारों का सीधा प्रेक्षण करके उसकी विश्वसनीयता तथा यथार्थता का निर्धारण करते हैं। हाकिन्स, पेटरसन, स्कीविड तथा विजोऊ ने माँ तथा उसके 4 साल के बच्चे के अन्तःक्रियाओं का सीधा प्रेक्षण करके 9 अवांछित व्यवहारों की पहचान किया है। इन्हीं अवांछित व्यवहारों के कारण माँ को नैदानिक मनोवैज्ञानिक के पास बच्चे का उपचार के लिए लाना पड़ा था। इस केस में मनोवैज्ञानिकों द्वारा माँ को यह सख्त निर्देश दिया गया कि वे उस बच्चा पर तभी ध्यान दे जब वह धनात्मक ढंग से व्यवहार करे और जब वह 9 अवांछित व्यवहारों में से कोई भी व्यवहार करे, तो उस पर वह बिल्कुल ही ध्यान न दे। इससे उस बच्चा में व्यवहार परिमार्जन करना संभव हो सका।

2. आत्म-प्रतिवेदन विधि-

इस प्रविधि में व्यक्ति एक तरह से अपने व्यवहार का प्रेक्षण स्वयं करता है और वह ऐसा करके परीक्षक को बतलाता है कि प्रश्नावली आत्म-प्रतिवेदन का सबसे प्रमुख एवं उत्तम तरीका है जिसमें छपे प्रश्नों को एक-एक करके व्यक्ति पढ़ते जाता है और उसका उत्तर भी देते जाता है। गीर (1965) ने एक ऐसा ही उत्तम प्रश्नावली विकसित किया है जिसका नाम 'फियर सर्वे अनुसूची' रखा गया हैं इस अनुसूची द्वारा इस तथ्य का मापन होता है कि व्यक्ति कुछ खास-खास परिस्थितियों, जैसे-कार चलाना, शल्य कार्य के लिए डॉक्टर के यहाँ जाना तथा लोगों के बीच भाषण देने जाने में कितन डर का अनुभव करता है। स्वयं स्कीनर ने इस विधि का प्रयोग अपने पूरे जीवन अवधि में दो बार ही किया था (स्कीनर (1933, 1979)। वे कई कारणों से इस प्रविधि को अधिक महत्व नहीं देते थे।

3. व्यवहार का दैहिक माप-

इस प्रविधि में व्यवहार का मापन करने के लिए कुछ शारीरिक प्रक्रियाओं जैसे-हृदय की गति, मांसपेशियों का तनाव तथा मस्तिष्कीय तरंग आदि का मापन किया जाता है। इस तरह से इन सूचकों द्वारा व्यक्ति पर विभिन्न उद्धीपकों के प्रभावों को मापना संभव हो पाता है। इस प्रविधि का प्रयोग अन्य विधियों द्वारा किये गए मापनों की वैधता की जाँच के लिये भी की जाती है।

व्यवहार मापन की चाहे जो भी प्रविधि क्यों न अपनायी जाय, इसका उद्देश्य विभिन्न उद्धीपक परिस्थितियों में व्यवहारों को मापना है। यहाँ हमेशा ध्यान इस बात पर दिया जाता है कि व्यक्ति क्या करता है न कि इस बात पर कि व्यक्ति को वह व्यवहार करने के लिये क्या प्रेरित कर रहा है।

क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का अनुप्रयोग-

स्कीनर का मत है कि व्यक्ति में असामान्य व्यवहार का विकास उन्हीं नियमों के अनुरूप होता है जिससे सामान्य व्यवहार का विकास प्रभावित होता है। उन्होंने यह भी कहा है कि वातावरण में जोड़-तोड़ करके असामान्य व्यवहार के जगह पर सामान्य व्यवहार को स्थापित किया जा सकता है। उनके अनुसार असामान्य व्यवहार को क्रियाप्रसूत अनुबन्धन के नियमों के अनुसार परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रविधि को व्यवहार परिवर्तन या व्यवहार परिमार्जन या व्यवहार चिकित्सा की संज्ञा दी दी जाती हैं उन्होंने व्यवहार परिमार्जन के कई विधियों का वर्णन किया है जिसमें विभेदी पुनर्बलन, सांकेतिक व्यवस्था तथा विलोपन प्रमुख हैं। इन तीनों का वर्णन निम्नांकित हैं-

1. विभेदी पुनर्बलन-

व्यवहार चिकित्सा की यह एक ऐसी विधि है जिसमें चिकित्सक रोगी के कुसमायोजित व्यवहार को हटाने के लिये उसकी जगह पर समायोजित व्यवहार धनात्मक पुनर्बलन देकर तथा ऐसा व्यवहार नहीं करने पर उसे धनात्मक पुनर्बलन से वंचित करके उपचार करता है।

2. सांकेतिक व्यवस्था-

इस प्रविधि में व्यक्ति विशेष प्रयास करके कुछ वस्तु अर्जित करता है। उस वस्तु को संकेत या प्रतीक कहा जाता है। संकेत मुद्रा के रूप में कार्य करता है जिससे व्यक्ति वांछित वस्तुओं को खरीद सकता है। व्यक्ति जितना ही अधिक समायोजित व्यवहार करता है, उतना ही अधिक वह प्रतीक या संकेत अर्जित करता है। कुसमायोजित व्यवहार को करने से उसे कोई ऐसा प्रतीक या संकेत नहीं मिलता है। इसका परिणाम यह होता

है कि व्यक्ति धीरे-धीरे कुसमायोजित व्यवहार करना छोड़ देता है तथा उसकी जगह पर समायोजित व्यवहार सीख लेता है।

3. विलोपन-

इस प्रविधि में किसी अपअनुकूलित या कुसमायोजित व्यवहार को दूर करने के लिए उसे पुनर्बलित करने वाले कारकों को हटा दिया जाता हैं प्रबलित करने वाले तत्वों को हटा देने से धीरे-धीरे अपअनकूलित व्यवहार या कुसमायोजित व्यवहार अपने आप ही विलोपित हो जाता है।

स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण एवं अवगुण हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. स्कीनर के सिद्धान्त द्वारा कई तरह के प्रयोगात्मक शोधों का जन्म हुआ है। इससे इस सिद्धान्त की सुस्पष्ट वैधता की झलक मिलती है।
2. स्कीनर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के मूल-भूत तत्वों का अनुप्रयोग कई तरह की परिस्थितियों में किया गया है। इसका प्रयोग नैदानिक परिस्थिति, शिक्षा तथा उद्योग के क्षेत्र में सर्वाधिक किया गया है। नैदानिक परिस्थिति में व्यवहार चिकित्सा के रूप में, शिक्षा में शिक्षण मशीन तथा कार्यक्रमिक सीखना के रूप में तथा उद्योग में उन्नत कार्य निष्पादन तथा सुरक्षा उपायों के रूप में अधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

कुछ खास-खास कारकों के आधार पर स्कीनर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त की आलोचना भी की गयी है। इनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. कुछ आलोचकों का मत है कि स्कीनर का व्यक्तित्व सिद्धान्त एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के समान बिल्कुल ही नहीं लगता है। इनका सिद्धान्त इतना सरल तथा तात्विक है कि उससे जटिल मानव व्यवहार की व्याख्या नहीं हो पाती है।
2. आलोचकों का मत है कि स्कीनर ने अपना अधिकतर प्रयोग चूहों एवं कबूतरों पर किया है और उससे प्राप्त तथ्यों के आधार पर मानव व्यवहार की व्याख्या की है। इसे कई मनोवैज्ञानिकों ने न केवल अनुचित बल्कि अवैज्ञानिक भी माना है।
3. स्कीनर ने प्राणी को एक रिक्त जीव कहा है जो पूर्णरूपेण बाह्य, उद्धीपक-अनुक्रिया पुनर्बलन, रूपावली से नियंत्रित होता है। इस पर आलोचकों ने आपत्ति उठायी है और कहा कि प्राणी का व्यवहार सिर्फ बाह्य उद्धीपकों तथा पुनर्बलन से ही निर्धारित नहीं होता है बल्कि प्रेरणाओं, इच्छाओं, संवेगों आदि से भी नियंत्रित होता है। स्कीनर ने इन आन्तरिक बलों के महत्व की अवहेलना करके बहुत भारी भूल की है।
4. स्कीनर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में वैयक्तिक विभिन्नता के अध्ययन में कोई अभिरूचि नहीं दिखलाया है हालांकि उन्होंने वैयक्तिक प्रयोज्यों का गहन रूप से अध्ययन किया है। उनकी अभिरूचि व्यवहार के सामान्य नियम के प्रतिपादन में अधिक थी।
5. हॉल तथा उनके सहयोगियों ने स्कीनर के सिद्धान्त पर व्यंगात्मक टिप्पणी करते हुए कहा है कि स्कीनर के सिद्धान्त को एक ऐसा व्यक्तित्व का सिद्धान्त कहा जा सकता है जो उन घटनाओं या व्यवहारों की व्याख्या करने की कोशिश करता है जिसे हम सामान्यतः व्यक्तित्व कहते हैं। परन्तु इसे एक व्यक्तित्व सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इनके सिद्धान्त में व्यवहारों का पूर्वकथन करने तथा उसकी व्याख्या करने के लिए किसी व्यक्तित्व व्याकृति का उपयोग नहीं किया गया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद स्कीनर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व का सिद्धान्त काफी महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है। इस सिद्धान्त के समर्थन में स्वयं स्कीनर द्वारा तथा साथ-ही-साथ उनके शिष्यों द्वारा काफी शोध किये गए हैं और अमेरिकी मनोविज्ञानी स्कीनर के इन महत्वपूर्ण योगदानों के प्रति काफी आभारी हैं।

6.6 व्यक्तित्व के मानवतावादी एवं आत्म-सिद्धान्त का तात्पर्य-

व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मानवतावादी दृष्टिकोण एक सबल ‘‘तृतीय बल’’ के रूप में स्थापित हुआ जो मूलतः मनोविश्लेषण (प्रथम बल) एवं व्यवहारवाद (द्वितीय बल) का विरोधी था। इसके संस्थापक अब्राहम मासलो थे जिन्होंने मनोविश्लेषण को असामान्य व्यक्तियों का अध्ययन करने वाला दृष्टिकोण बताया तो व्यवहारवाद को पशु व्यवहार की यांत्रिक व्याख्या करने वाला। मासलो के अनुसार मानवों की प्रकृति आदरणीय एवं आत्म-सिद्धि से युक्त होती है। उनमें वर्द्धन तथा अन्तःशक्ति जैसे सर्जनात्मक क्षमता पायी जाती है। मानवतावादी विचारधारा के समर्थक कार्ल रोजर्स ने बताया कि मानव प्रकृति की व्याख्या स्वतंत्रता, विवेकपूर्णता, आत्मनिष्ठता, पूर्णतावाद, अग्रलक्षता आदि के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए तथा व्यक्ति की अनुभूतियों, भावों, मनोवृत्तियों तथा उसके आत्मन् के बारे में तथा दूसरों के बारे में व्यक्तिगत विचारों के अध्ययन पर बल दिया जाना चाहिए।

6.7 मैसलो का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

अब्राहम मैसलो एक मानवतावादी मनोविज्ञानी थे। इन्होंने व्यक्तित्व के प्रति भी मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया व्यवहारवाद तथा मनोविश्लेषण की आलोचना करते हुए इन्होंने कहा कि व्यक्तित्व के अर्थ को इन दोनों ही विचार धाराओं ने अत्यन्त ही संक्षिप्त एवं सीमित कर दिया है तथा व्यक्तित्व का अध्ययन अत्यन्त ही सीमित दृष्टिकोण से किया है।

मैसलो ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में प्राणी के अनूठापन पर, उसके मूल्यों के महत्व पर तथा व्यक्तिगत वर्धन एवं आत्म-निर्देश की क्षमता पर सर्वाधिक बल डाला है। इस बल के कारण ही उनका मानना है कि सम्पूर्ण प्राणी का विकास उसके भीतर से एक संगठित ढंग से होता है। इन आन्तरिक कारकों की तुलना में बाह्य कारकों जैसे आनुवंशिकता तथा गत अनुभूतियों का महत्व नगण्य होता है। व्यक्तित्व विकास में आन्तरिक बलों पर इतना अधिक बल दिये जाने के कारण उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त को व्यक्तित्व का सम्पूर्ण गत्यात्मक सिद्धान्त भी कहा गया है। मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित तीन मुख्य भागों में बाँट कर प्रस्तुत किया जा सकता है-

(क) व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल

(ख) स्वस्थ व्यक्तित्व: आत्म-सिद्ध व्यक्ति का विकास

(ग) व्यक्तित्व का मापन एवं शोध

व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल-

मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका अभिप्रेरण सिद्धान्त है। इनका विश्वास था कि अधिकांश मानव व्यवहार कोई-न-कोई व्यक्तिगत लक्ष्य पर पहुँचने की प्रवृत्ति से निर्देशित होता है। सचमुच में, उनके व्यक्तित्व सिद्धान्त में यही अभिप्रेरणात्मक प्रक्रियाएँ मूल सारतत्व है।

शारीरिक या दैहिक आवश्यकता शारीरिक या दैहिक आवश्यकता शारीरिक या दैहिक आवश्यकतामैसलो का मत था कि मानव अभिप्रेरक जन्मजात होते हैं और उन्हें प्राथमिकता या शक्ति के आरोही पदानुक्रम में सुव्यवस्थित किया जा सकता है। ऐसे अभिरकों को प्राथमिकता या शक्ति के आरोही क्रम में इस प्रकार बतलाया गया है-

1. शारीरिक या दैहिक आवश्यकता
2. सुरक्षा की आवश्यकता
3. संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता
4. सम्मान की आवश्यकता
5. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता

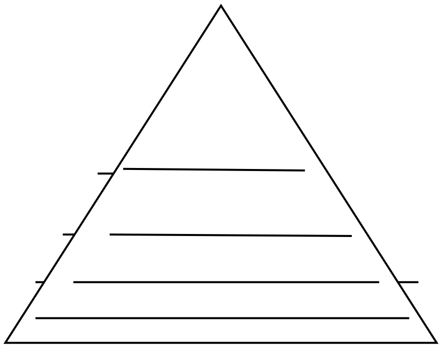

मैसलो का पदानुक्रम मॉडल

इनमें से प्रथम दो आवश्यकताओं अर्थात् शारीरिक या दैहिक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता को निचले स्तर की आवश्यकता तथा अन्तिम तीन आवश्यकताओं अर्थात् संबंद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता तथा आत्म-सिद्धि की आवश्यकता को एक साथ मिलाकर उच्च-स्तरीय आवश्यकता कहा है। इस पदानुक्रमिक मॉडल में जो आवश्यकता जितनी ही नीचे हैं, उसकी प्राथमिकता या शक्ति उतनी ही अधिक मानी गयी है। इस तरह से व्यक्ति में सबसे प्रबल आवश्यकता शारीरिक या दैहिक आवश्यकता होती है जिसकी संतुष्टि तात्कालिक होना अनिवार्य है तथा सबसे कम प्रबल या कमजोर आवश्यकता आत्म-सिद्धि की आवश्यकता होती है।

इस मॉडल की एक प्रमुख बात यह है कि मॉडल के किसी भी स्तर की आवश्यकता को उत्पन्न होने के लिये यह आवश्यक है कि उससे नीचे वाले स्तर की आवश्यकता की संतुष्टि पूर्णतः नहीं तो कम-से-कम अंशतः अवश्य ही हो जाय। मैसलो ने यह भी स्पष्ट किया है कि हम पदानुक्रमिक मॉडल में जैसे-जैसे नीचे से ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं, प्रत्येक स्तर पर आवश्यकताओं की संतुष्टि का प्रतिशत भी धीरे-धीरे कम होता जाता है। उनके अनुसार शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि लगभग 85 प्रतिशत, सुरक्षा आवश्यकताओं की संतुष्टि लगभग 70 प्रतिशत, संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की संतुष्टि लगभग 50 प्रतिशत, सम्मान की आवश्यकता की संतुष्टि लगभग 40 प्रतिशत, तथा आत्म-सिद्धि की आवश्यकता की संतुष्टि लगभग 10 प्रतिशत ही होती है।
पदानुक्रमिक मॉडल के पाँच स्तरों की आवश्यकताओं का वर्णन निम्नांकित हैं-

1. दैहिक या शारीरिक आवश्यकता-

इस श्रेणी की आवश्यकता में भोजन करने की आवश्यकता, पानी पीने की आवश्यकता, सोने की आवश्यकता, यौन की आवश्यकता तथा सीमान्त तापक्रम के बचने की आवश्यकता आदि को सम्मिलित किया गया है। ये सारे जैविक प्रणोदन का सीधा संबंध प्राणी के जैविक सम्पोषण से होता है। इस श्रेणी की आवश्यकता की प्राथमिकता या प्रबलता सबसे अधिक है। फलस्वरूप, व्यक्ति को इससे ऊपर के स्तर की आवश्यकता की ओर बढ़ने के पहले इन जैविक आवश्यकताओं की संतुष्टि एक न्यूनतम स्तर पर करना अनिवार्य है।

2. सुरक्षा की आवश्यकता-

जब व्यक्ति की जैविक आवश्यकताओं की संतुष्टि हो जाती है तो वह पदानुक्रम के दूसरे स्तर की आवश्यकता अर्थात् सुरक्षा की आवश्यकता की ओर अग्रसर होता है और उसका व्यवहार इस आवश्यकता से काफी प्रभावित होने लगता है। इस श्रेणी की आवश्यकता में शारीरिक सुरक्षा, स्थिरता, निर्भरता, बचाव, डर, चिन्ता आदि की अनुभूतियों से मुक्ति आदि सम्मिलित होते हैं। मैसलो (1970) ने नियम-कानून बनाये रखने की आवश्यकता, विशेष क्रम आदि बनाये रखने की आवश्यकता को भी इसी श्रेणी में सम्मिलित किया है। इस तरह की आवश्यकता बच्चों में अधिक प्रबल होती है क्योंकि वे अन्य लोगों की अपेक्षा अपने आप को अधिक निःसहाय एवं दूसरों पर आश्रित समझते हैं। एक स्वस्थ एवं परिपक्व वयस्क में सुरक्षा की आवश्यकता होती है और वह उसमें संतुलित ढंग से संतुष्ट होता है। मैसलो के अनुसार सुरक्षा की आवश्यकता कुछ खास तरह के तंत्रिकातापी या स्नायुविकृत व्यक्ति जैसे मनोग्रस्ति-वाध्यता के रोगियों में अधिक सुस्पष्ट होता है। ऐसे लोग इर्द-गिर्द के हालातों को खौफनाक एवं खतरनाक समझकर अपने में सुरक्षा की आवश्यकता पर अधिक जोर डालते हैं तथा अधिक समय एवं शारीरिक ऊर्जा की खपत करते हैं और यदि इसके बावजूद भी इन्हें अपने प्रयास में सफलता नहीं मिलती है, तो इससे उनमें एक विशेष तरह की चिन्ता जिसे मैसलो ने मूल चिन्ता कहा है, की उत्पत्ति होती है।

3. संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता-

मैसलो के पदानुक्रम मॉडल में यह तीसरे स्तर की आवश्यकता है। जब व्यक्ति की जैविक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता की पूर्ति बहुत हद तक हो जाती है, तो उसमें संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता उत्पन्न होती है। संबद्धता की आवश्यकता से तात्पर्य अपने परिवार या समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान पाने की इच्छा से तथा किसी संदर्भ समूह की सदस्यता प्राप्त करने से, अच्छे पड़ोसी से संबंध बनाये रखने से होता है। स्नेह की आवश्यकता से तात्पर्य दूसरों को स्नेह देने एवं दूसरों से स्नेह पाने की आवश्यकता से होती है। संबंद्धता की आवश्यकता तथा स्नेह की आवश्यकता चूँकि एक-दूसरे से काफी जुड़े होते हैं, अतः मैसलो ने इसे एक ही श्रेणी में रखा है। स्नेह की आवश्यकता में मैसलो ने यौन को भी रखा है परन्तु इस आवश्यकता को यौन आवश्यकता के तुल्य नहीं माना है। उन्होंने यह स्पष्ट किया है कि यौन स्नेह की आवश्यकता को अभिव्यक्त करने का मात्र एक तरीका है। मैसलो (1968) ने यह स्पष्ट किया कि स्नेह की आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होने से व्यक्ति में कुसमायोजन होता है। मैसलो (1968) ने इस बिन्दु पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''स्नेह पाने की भूख एक तरह का अपर्याप्तता रोग है।''

4. सम्मान की आवश्यकता-

सम्मान की आवश्यकता पदानुक्रमिक मॉडल में चौथे स्तर की आवश्यकता है। सम्मान की आवश्यकता व्यक्ति में तब उत्पन्न होती है जब इससे नीचे की तीनों श्रेणियों की आवश्यकताएँ अर्थात् जैविक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता तथा संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की पूर्ति संतोषजनक ढंग से हो जाती है। सम्मान की आवश्यकता में मैसलो ने दो प्रकार की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया है- आत्म-सम्मान की आवश्यकता तथा दूसरों से सम्मान पाने की आवश्यकता। पहले प्रकार की आवश्यकता में उत्तम क्षमता प्राप्त करने की इच्छा, आत्म-विश्वास, व्यक्तिगत वर्धन, उपयुक्तता, उपलब्धि, स्वतंत्रता आदि की भावना सम्मिलित होती है। दूसरों से सम्मान पाने की आवश्यकता में दूसरों से सम्मान, पहचान, प्रशंसा, ध्यान तथा स्वीकृति आदि पाने की इच्छा से होती है। आत्म-सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति होने से व्यक्ति में आत्म-विश्वास, शक्ति पर्याप्तता एवं श्रेष्ठता के गुण विकसित होते हैं। इन गुणों के परिणामस्वरूप व्यक्ति सभी क्षेत्रों में अपने आप को अधिक योगय एवं उत्पादक

समझने लगता है। दूसरी तरफ यदि व्यक्ति में आत्म-सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है, तो व्यक्ति अपने आप को लाचार, कमजोर, हतोत्साहित तथा सम्सयाओं से निपटने की पर्याप्त क्षमता की कमी आदि गुणों से युक्त मानता है। मैसलो ने यह भी स्पष्ट किया कि सही अर्थ में आत्म-सम्मान व्यक्ति की योग्यताओं एवं क्षमताओं के वास्तविक मूल्यांकन पर तथा साथ-ही-साथ दूसरों से प्राप्त वास्तविक सम्मान पर आधारित होता है। यह आवश्यक है कि व्यक्ति को दूसरों से मिलने वाला मान-सम्मान अवास्तविक या छिछला न होकर उनके अर्जित योग्यताओं एवं क्षमताओं पर आधारित हो।

5. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता-

मैसलो के पदानुक्रमिक मॉडल का यह सबसे अन्तिम चरण होता है जहाँ व्यक्ति तब पहुँचता है जब इसके नीचे की चारों आवश्यकताओं अर्थात् जैविक आवश्यकता, सुरक्षा की आवश्यकता, संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता तथा सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति संतोषजनक ढंग से हुई हो। आत्म-सिद्धि से तात्पर्य आत्म-उन्नति की एक ऐसी अवस्था से होती है जहाँ व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं अन्तःक्षमताओं से पूर्णरूपेण अवगत होता है तथा उसके अनुरूप अपने आप को विकसित करने की इच्छा करता है। संक्षेप में, आत्म-सिद्धि से तात्पर्य अपनी अन्तःक्षमताओं के अनुरूप अपने आप को विकसित करना होता है।

मैसलो (1968) ने यह स्पष्ट किया कि आत्म-सिद्धि की आवश्यकता की अवस्था पदानुक्रमिक मॉडल के अन्य अवस्थाओं से इस अर्थ में भिन्न है कि इसके ठीक निचली अवस्था अर्थात् सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर व्यक्ति अन्य अवस्थाओं के समान स्वतः इस अवस्था में अर्थात् आत्म-सिद्धि की अवस्था में नहीं आ जाता है। मैसलो द्वारा आत्म-सिद्ध व्यक्तियों पर किये गए शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि इस अंतिम अवस्था में सिर्फ वही लोग आ पाते हैं जिनमें सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति हुई हो, साथ-ही-साथ, जिनमें बी मूल्यों की परिपूर्णता हो। अगर व्यक्ति ऐसा है जिन्हें सम्मान की आवश्यकता की पूर्ति तो हुई है परन्तु बी-मूल्यों की कमी हे, तो वैसे लोग आत्म-सिद्धि के इस अंतिम अवस्था में नहीं आ पाते हैं।

मैसलो ने अपने शोध के आधार पर निम्नांकित चार और अन्य ऐसे कारक बतलाये हैं जिसके चलते व्यक्ति इस अंतिम अवस्था में पहुँचने से वंचित रह जाता है। वे चार कारण हैं-

1. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता एक कमजोर या सबसे कम प्रबल आवश्यकता है। फलतः यह अन्य आवश्यकताओं से आसानी से दब जाती है और व्यक्ति इस अवस्था पर पहुँचने की तमन्ना खो देता है।
2. जिन व्यक्तियों में अपनी अन्तःक्षमताओं एवं अन्तःशक्तियों को उन्नत करने पर एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने की आशंका हो जाती है जिसके साथ उनका निपटना संभव नहीं हो सकता है, तो वैसे लोग भी इस अंतिम अवस्था तक पहुँचने से वंचित रह जाते हैं। इस तरह की मनोग्रन्थि को मैसलो ने जोनाह मनोग्रन्थि कहा है।
3. आत्म-सिद्धि की आवश्यकता की अवस्था पर व्यक्ति इसलिए भी नहीं पहुँच पाता है क्योंकि इस अवस्था पर जाने के लिए व्यक्ति में पर्याप्त अनुशासन, प्रयास, आत्म-नियंन्त्रण एवं आत्म-साहस की आवश्यकता होती है। इन गुणों के अभाव में व्यक्ति इस अंतिम अवस्था पर पहुँचने से वंचित रह जाता है।
4. जिन व्यक्तियों को बाल्यावस्था में अत्यधिक स्नेह एवं स्वतंत्रता या फिर अत्यधिक तिरस्कार एवं नियंत्रण का सामना करना होता है, वह भी इस अवस्था तक नहीं पहुँच पाते हैं।

पदानुक्रमिक मॉडल की उपर्युक्त पाँच आवश्यकताएँ हैं जिन्हें मैसलो ने मूल आवश्यकता कहा है। इन मूल आवश्यकताओं के अलावा भी कुछ आवश्यकताएँ हैं जिनका व्यक्ति के व्यवहारों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। ऐसे आवश्यकताओं में निम्नांकित प्रधान हैं-

1. संज्ञानात्मक आवश्यकता
2. तंत्रिकातापी आवश्यकता
3. न्यूनता अभिप्रेरक
4. वर्धन अभिप्रेरक

1. संज्ञानात्मक आवश्यकता-

संज्ञानात्मक आवश्यकता से तात्पर्य उन आवश्यकताओं से होता है जो सूचनात्मक होती हैं। इस श्रेणी में मैसलो ने जानने की आवश्यकता तथा समझने की आवश्यकता को रखा है। इन दोनों आवश्यकताओं का एक अपना अलग पदानुक्रम होता है जिसमें प्रबलता के क्रम में पहले जानने की आवश्यकता को रखा गया है और उसके बाद समझने की आवश्यकता को। दूसरे शब्दों में, जानने की आवश्यकता की प्रबलता समझने की आवश्यकता से अधिक होती है। संज्ञानात्मक आवश्यकता का महत्व यह है कि इन आवश्यकताओं को बाधित होने से पदानुक्रमिक मॉडल की पाँचों आवश्यकताओं की संतुष्टि होना दुर्लभ हो जाता है। जैसे, जैविक आवश्यकता की संतुष्टि होने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति यह जाने कि भोजन कहाँ है ? सुरक्षा आवश्यकता की संतुष्टि होने के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति यह जाने कि शरणस्थान का निर्माण कैसे किया जाता हैं ? यही बात पदानुक्रमिक मॉडल की अन्य आवश्यकताओं के साथ भी है।

2. तंत्रिकातापी या स्नायुविकृत आवश्यकता-

मैसलो के अनुसार कुछ आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जिनकी संतुष्टि से व्यक्ति में स्वास्थ्य का वर्धन नहीं होता है बल्कि व्यक्ति में विकृति, निष्क्रियता आदि बनी रहती है। इसे उन्होंने तंत्रिकातापी आवश्यकता कहा है। ऐसी आवश्यकताओं की उत्पत्ति तब होती है जब व्यक्ति में मूल आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं होती है। जैसे, जब व्यक्ति की संबद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होती है तो वह दूसरों के प्रति आक्रामक एवं विद्वेषी हो जाता है जो तंत्रिकातापी या स्नायुविकृत आवश्यकता का एक उदाहरण बनता है।

3. न्यूनता अभिप्रेरक-

इस अभिप्रेरक को मैसलो ने डी-अभिप्रेरक भी कहा है। इस तरह के अभिप्रेरक का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति में न्यून या हीन अवस्थाओं जैसे-भूख, ठंडक, असुरक्षा आदि से उत्पन्न तनाव को दूर करने के लिये प्रेरित करता है। अतः डी-अभिप्रेरक मैसलो के पदानुक्रम मॉडल के निम्न-स्तरीय आवश्यकता के लगभग समान है। मैसलो (1962) ने डी-अभिप्रेरक के निम्नांकित पाँच विशेषताओं पर प्रकाश डाला है-

क. डी-अभिप्रेरक की अनुपस्थिति से व्यक्ति बीमार पड़ जाता है। जैसे, यदि व्यक्ति अपनी भूख मिटाने के लिये भोजन न करे तो वह आसानी से बीमार पड़ जा सकता है।

ख. डी-अभिप्रेरक की उपस्थिति से व्यक्ति में रूग्नता की रोक-थाम होती है। जैसे, व्यक्ति यदि भोजन समय से करता है, तो वह बीमार पड़ने से बच सकता है।

ग. डी-अभिप्रेरक के पुनः स्थापन से व्यक्ति चंगा हो जाता है।

घ. कुछ विशेष परिस्थिति में वंचित व्यक्ति द्वारा डी-अभिप्रेरक को अन्य अभिप्रेरकों की तुलना में पसंद किया जाता है। जैसे, एक भूखा व्यक्ति भोजन को यौन के अनुपात में अधिक पसंद करता है।

ड. आत्म-सिद्ध व्यक्तियों के लिये डी-अभिप्रेरक बहुत महत्वपूर्ण नहीं होता है। ऐसे व्यक्तियों में इस तरह का अभिप्रेरक कार्यात्मक रूप से अनुपस्थित होते हैं। परन्तु जो लोग आत्म-सिद्ध नहीं होते हैं उनका व्यवहार डी-अभिप्रेरक से अधिक निर्देशित होता है।

4. वर्धन अभिप्रेरक-

वर्धन अभिप्रेरक से तात्पर्य वैसे अभिप्रेरकों से होता है जो व्यक्ति को अपनी अन्तःशक्ति या अन्तःक्षमताओं की पहचान कर उसे विकसित करने के लिये प्रेरित करता है। अतः यह निश्चित रूप से एक उच्च-स्तरीय आवश्यकता है। इसे मैसलो ने मेटा-आवश्यकता या सत्व-अभिप्रेरक या बी-अभिप्रेरक भी कहा है। इस तरह की आवश्यकता या अभिप्रेरक आत्म-सिद्ध व्यक्तियों का मुख्य अभिप्रेरक होता है। बी-अभिप्रेरक की उत्पत्ति व्यक्ति में तब होती है जब उसके डी-अभिप्रेरक की संतुष्टि हो जाती है। मैसलो (1967) ने यह भी स्पष्ट किया है कि मेटा आवश्यकता डी-अभिप्रेरक के समान ही सहज-वृत्ति की होती है। अतः मानसिक स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए तथा अधिकतम वर्द्धन एवं विकास के लिए ऐसे अभिप्रेरकों की संतुष्टि अनिवार्य है। ऐसा नहीं होने से व्यक्ति मानसिक रूप से बीमार हो जाता है। अपनी अन्तःशक्तियों के अधिकतम विकास की प्राप्ति में असफल रहने पर जो बीमारी उत्पन्न होती है, उसे मैसलो ने मेटारोग कहा है। मैसलो ने मेटा-आवश्यकता में 18 तरह की आवश्यकताओं को सम्मिलित किया है और उससे संबद्ध मेटारोग का भी वर्णन किया है। ये 18 आवश्यकताएँ हैं- सच्चाई, अच्छाई, सुन्दरता, पूर्णता, द्विभाजन उत्कर्ष, सजीवता, अद्वितीयता, पूर्णता, अनिवार्यता, सम्पूरण, न्याय, क्रम, सरलता, विस्तृतता, प्रयासशीलता, विनोदशीलता, आत्म-पर्याप्तता, तथा अर्थपूर्णता। प्रत्येक मेटा आवश्यकता से संबंधित कुछ मेटा रोग है। जैसे, सच्चाई जैसी मेटा-आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होने पर व्यक्ति में विश्वासहीनता, शक, कटुता आदि का विकास होता है। अच्छाई जैसी मेटा-आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होने से व्यक्ति में घृणा, अरूचि, विरक्ति आदि जैसे गुण विकसित होते हैं।

स्वस्थ व्यक्तित्व: आत्मसिद्ध व्यक्ति का विकास-

मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त की एक मुख्य विशेषता यह है कि यह सिद्धान्त मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों के अध्ययन पर आधारित है। मैसलो ने इन व्यक्तियों का अध्ययन करके आत्मसिद्ध व्यक्तियों की पहचान करने के लिए कुछ खास-खास विशेषताओं का वर्णन किया है। ऐसी विशेषताएँ की संख्या सोलह हैं-

1. ऐसे व्यक्तियों का प्रत्यक्षण वास्तविक होता है अर्थात् उसमें पूर्वाग्रह, अनियमितता आदि की बू नहीं होती है।
2. ऐसे व्यक्ति अपने आप का, दूसरों का तथा वातावरण के अन्य वस्तुओं का प्रत्यक्षण ठीक वैसे ही करते हैं जैसा कि वे होते हैं।
3. ऐसे लोगों में सरलता, स्वाभाविकता तथा सहजता का गुण होता है।
4. ऐसे लोग समस्या-केन्द्रित व्यवहार करते हैं न कि आत्म-केन्द्रित व्यवहार करते हैं।
5. ऐसे लोगों में अनासक्ति का भाव होता है तथा वे गोपनीयता को पसंद करते है।

6. ऐसे लोग स्वतंत्रता तथा स्वायत्ता को पसंद करते हैं।
7. ऐसे लोगों में अन्य लोगों एवं घटनाओं को नवीनतम दृष्टिकोण से न कि घिसी-पिटी ढंग से अवलोकन करने की विशेष शक्ति होती है।
8. ऐसे लोगों में कुछ विशेष अलौकिक शक्ति एवं अनुभूतियाँ होती है जिनसे व्यक्ति अपने आप को काफी आश्वस्त, साहसी एवं निर्णायक समझता है। इसे मैसलो ने शीर्ष अनुभूति कहा है।
9. ऐसे लोगों का संबंध कुछ विशेष महत्वपूर्ण लोगों के साथ अधिक घनिष्ठ होता है तथा ऐसे लोगों में बहुत सारे लोगों के साथ सतही संबंध बनाये रखने की बुरी आदत नहीं होती है।
10. ऐसे लोग प्रजातन्त्रात्मक मूल्य एवं मनोवृत्ति अधिक दिखलाते हैं।
11. ऐसे लोग साधन एवं साध्य में स्पष्ट अन्तर रखकर उस पर पहल करते हैं।
12. ऐसे लोगों के मनोविनोद का भाव विद्वेषी न होकर दार्शनिक होता है।
13. ऐसे लोग सर्जनात्मक प्रवृत्ति के होते हैं।
14. ऐसे लोग संस्कृति के प्रति अनुरूपता नहीं दिखलाते हैं।
15. ऐसे लोग अपने वातावरण के साथ सिर्फ समायोजन ही नहीं करते हैं बल्कि उसकी उत्कृष्टता को भी समझने की कोशिश करते हैं।

मैसलो (1971) ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में यह भी बतलाया है कि व्यक्ति में आत्म-सिद्धि को किस तरह से प्रोत्साहित किया जा सकता है। इन्होंने आत्म-सिद्धि को बढ़ाने या प्रोत्साहित करने के लिए स्कूल को सबसे उत्तम स्थान बतलाया है और कहा है कि छात्रों को अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने में रूचियुक्त व्यवसाय की खोज करने तथा उत्तम मूल्यों को समझने के लिये किये गए प्रयासों से आत्म-सिद्धि का विकास होता है।

व्यक्तित्व का मापन एवं शोध-

ऐसे तो स्वयं मैसलो ने व्यक्तित्व मापन के लिए कोई प्रविधि का प्रतिपादन नहीं किया है लेकिन एवरेट शोस्ट्रोम ने आत्म-सिद्धि को मापने के लिये एक विशेष प्रश्नावली का निर्माण किया है जिसे पर्सनल ऑरियन्टेशन इन्वेन्ट्री (पी.ओ.आई.) की संज्ञा दी गयी है। इस परीक्षण में कथनों का 150 युग्म होते हैं और उनमें से व्यक्ति को यह बतलाना होता है कि युग्म का कौन कथन उसके लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। पी. ओ. आई में दो मुख्य मापनी हैं-समय सामर्थ्यता मापनी तथा आन्तरिक निर्देशन मापनी। समय सामर्थ्यता मापनी द्वारा इस तथ्य का मापन होता है कि व्यक्ति की गतिविधियाँ कहाँ तक अपने वर्तमान समय के अनुरूप होती है तथा आन्तरिक-निर्देशन मापनी इस तथ्य का मापन करता है कि कहाँ तक व्यक्ति महत्वपूर्ण निर्णय एवं मूल्यों के लिये अपने ऊपर न कि दूसरों के ऊपर निर्भर करता है। बाद में शोस्ट्रोम ने पी .ओ. आई. को अधिक उन्नत बताया और उसका नाम पर्सनल ऑरियन्टेशन डाइमेन्सन या पी. ओ. डी. रखा। इसमें 240 एकांश हैं और पी. ओ. आई. से इसका सहसंबंध धनात्मक पाया गया। जोन्स एवं क्रैन्डला (1986) आत्म-सिद्धि को मापने के लिए 15 एकांश वाला एक परीक्षण विकसित किया है। आत्म-सम्मान के दो महत्वपूर्ण तत्व अर्थात् विश्वास तथा लोकप्रियता को मापने के लिये लोर्र एवं ऊण्डर्लिक (1986) ने एक आविष्कारिका विकसित किया है जिसे आत्म-मनोवृत्ति आविष्कारिका कहा गया। स्वयं मैसलो ने व्यक्तित्व मापन के लिए साक्षात्कार, स्वतंत्र साहचर्य, प्रक्षेपण प्रविधियाँ एवं जीवन-संबंधी सामग्रियों का उपयोग करने पर अधिक बल डाला गया था।

स्वयं मैसलो अपने सिद्धान्त के किसी पहलू पर कोई विशेष शोध तो नहीं किये परन्तु अन्य मनोवैज्ञानिकों ने पी. ओ. आई की मदद से कुछ शोध किये हैं। अधिकतर ऐसे शोध सहसंबंधात्मक हैं जिनमें पी. ओ. आई. पर आये प्राप्तांक को व्यक्तित्व या व्यवहार के अन्य मापकों के साथ सहसंबंधित किया गया है।

मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण एवं परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त ने सबसे प्रथम बार व्यक्ति के व्यवहारों को आशावादी एवं मानवतावादी दृष्टिकोणों से समझने की प्रेरणा प्रदान की। सचमुच में लोग व्यवहारवादी दृष्टिकोण एवं मनोविश्लेषणाात्मक दृष्टिकोण से व्यक्तित्व की गई व्याख्या से ऊब गये थे। मैसलो के सिद्धान्त ने लोगों को इस ऊब से छुटकारा दिलाया।
2. मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का सामाजिक, नैदानिक एवं वैयक्तिक परिस्थितियों में काफी सफलतापूर्वक प्रयोग किया गया है। इससे इस सिद्धान्त की उपयोगिता काफी विस्तृत है। सुल्ज (1990) के अनुसार इस सिद्धान्त की उपयोगिता मनोचिकित्सा, शिक्षा, चिकित्साशास्त्र तथा संगठनात्मक व्यवस्था आदि में काफी अधिक है।
3. मैसलो द्वारा प्रतिपादित आत्म-सिद्धि का संप्रत्यय आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के लिए एक वरदान साबित हुआ है क्योंकि इस संप्रत्यय के आधार पर मानव की आन्तरिक अंतःशक्तियों को समझने में काफी मदद मिली है।

इन गुणों के बावजूद मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त में कुछ खामियाँ हैं जिन पर भी लोगों ने प्रकाश डाला है। इन खामियों में निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त के विभिन्न संप्रत्यय एक-दूसरे पर काफी अतिच्छादित है। फलतः किसी एक संप्रत्यय का दूसरे संप्रत्यय से अलग कर वर्णन करना या उस पर शोध करना संभव नहीं है। इससे इनके सिद्धान्त में अनावश्यक जटिलता उत्पन्न हो गयी है।
2. सुल्ज (1990) के अनुसार मैसलो ने अपने सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये मात्र 49 प्रयोज्यों का साक्षात्कार लिया तथा उन पर कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का क्रियान्वयन कर आँकड़े इकट्ठा किये। सुल्ज ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि इतना कम प्रयोज्यों से प्राप्त आँकड़ों पर आधारित सिद्धान्त को एक वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं माना जा सकता है।
3. कुछ आलोचकों का मत है कि मैसलो ने अपने अध्ययन में आत्म-सिद्ध व्यक्तियों के बारे में जिन साधनों के माध्यम से आँकड़ों का संग्रहण किया है, वह काफी अस्पष्ट एवं अयथार्थ है। उन्होंने कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं जीवन-कथा संबंधी सामग्रियों के सहारे आत्म-सिद्ध व्यक्तित्यों के बारे में सूचना इकट्ठा किया था। आलोचकों का मत है कि मैसलो ने परीक्षण एवं जीवन-कथा संबंधी सामग्रियों का विश्लेषण कैसे किया था, यह कभी भी उन्होंने स्पष्ट नहीं किया तथा साथ-ही-साथ उन्होंने यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि जीवित व्यक्तियों पर साक्षात्कार एवं स्वतंत्र साहचर्य से प्राप्त अनुक्रियाओं के आधार पर वे यह निष्कर्ष कैसे निकाल पाये कि ऐसे व्यक्ति में से कुछ व्यक्ति आत्म-सिद्ध हैं।

6.8 रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त-

अब्राहम मैसलों के समान ही रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त भी मानवतावादी विचारधारा से ओत-प्रोत है। इन्होंने व्यक्तित्व की व्याख्या संवृतिशास्त्र या घटना विज्ञान के नियमों के आधार पर की जिसमें व्यक्ति की अनुभूतियों,

भावों एवं मनोवृत्तियों तथा उनके अपने बारे में या आत्मन् के बारे में तथा दूसरों के बारे में व्यक्तिगत विचारों का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता है। यही कारण है कि रोजर्स के सिद्धान्त को मानवतावादी आन्दोलन के तहत एक पूर्णतः सांवृत्तिक सिद्धान्त माना गया है। रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को आत्म् सिद्धान्त या व्यक्ति-केन्द्रित सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है।

रोजर्स द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व सिद्धान्त में मानव प्रकृति के बारे में जो पूर्वकल्पनाएँ की गयीं हैं, वे निम्नांकित हैं-

1. इस सिद्धान्त में मानव प्रकृति के कुछ खास-खास पूर्वकल्पनाओं जैसे-स्वतंत्रता, विवेकपूर्णता, पूर्णतावाद, परिवर्तनशीलता, आत्मनिष्ठता, अग्रलक्षता, विषमस्थिति, तथा अज्ञेयता पर अधिक बल डाला गया है।
2. दूसरी तरफ, इस सिद्धान्त में मानव प्रकृति के शरीरगठनात्मक पूर्वकल्पना पर नाम मात्र का बल डाला गया है।

रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है-

क. व्यक्तित्व के स्थायी पहलुएँ

ख. व्यक्तित्व की गतिकी

ग. व्यक्तित्व का विकास

व्यक्तित्व के स्थायी पहलू -

रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त उनके द्वारा प्रतिपादित रोगी-केन्द्रित मनोचिकित्सा से प्राप्त अनुभूतियों पर आधारित है। चूँकि उनके सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों एवं वर्धनों का अध्ययन करना है, अतः इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व संरचना का गहन अध्ययन उस ढंग से नहीं किया गया जिस ढंग से फ्रायड ने अपने सिद्धान्त में किया था। फिर भी इन्होंने व्यक्तित्व की संरचना के दो महत्वपूर्ण पहलुओं पर बल डाला है जिससे व्यक्तित्व की संरचना के वर्धन में परिवर्तन की संतोषजनक व्याख्या हो पाती है। ये दो पहलू हैं-प्राणी तथा आत्मन्।

1. प्राणी-

रोजर्स (1959) के अनुसार प्राणी एक ऐसा दैहिक जीव है जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से कार्य करता है। इसमें प्रासंगिक क्षेत्र तथा आत्मन् दोनों ही सम्मिलित होते हैं। रोजर्स का मत है कि प्राणी सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र होता है। इन अनुभूतियों में अपने दैहिक गतिविधियों से संबंधित अनुभूतियाँ, साथ-ही-साथ, बाह्य वातावरण की घटनाओं के प्रत्यक्षण की अनुभूतियाँ, दोनों ही सम्म्लि ित होती हैं। रोजर्स के अनुसार सभी तरह की चेतन एवं अचेतन अनुभूतियों के योग से जिस क्षेत्र का निर्माण होता है, उसे प्रासंगिक क्षेत्र कहा जाता है। मानव व्यवहार के होने का कारण यही प्रासंगिक क्षेत्र होता है न कि कोई बाह्य उद्धीपक, जैसा कि स्कीनर ने कहा था। प्रासंगिक क्षेत्र की एक मुख्य विशेषता यह है कि इसके बारे में स्वयं व्यक्ति ही सही-सही जानता है। कोई दूसरा व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के प्रासंगिक क्षेत्र के बारे में नहीं जान सकता है। हाँ, परानुभूतिक अनुमान के आधार पर कभी-कभी किसी व्यक्ति के प्रासंगिक क्षेत्र के बारे में जाना जा सकता है

2. आत्मन्-

रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र का एक भाग अधिक विशिष्ट हो जाता है जिसे रोजर्स ने आत्मन् की संज्ञा दी है। रोजर्स के अनुसार आत्मन् व्यक्तित्व का एक अलग विमा नहीं होता है जैसा कि फ्रायड के अनुसार अहं व्यक्तित्व का एक अलग विमा होता है। रोजर्स का मत है किसी व्यक्ति में आत्मन् नहीं होता है बल्कि स्वयं आत्मन् का अर्थ ही सम्पूर्ण प्राणी से होता है।

रोजर्स के अनुसार आत्मन् का विकास शैशवावस्था में होता है जब शिशु की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रूप प्राप्त करने लगता है और ‘‘मैं’’ या ‘‘मुझको’’ के रूप में धीरे-धीरे विशिष्ट होने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि शिशु धीरे-धीरे अपनी पहचान से अवगत होने लगता है। फलतः उसे अच्छे-बुरे का ज्ञान होने लगता है, उसे सुखद एवं दुखद अनुभूतियों में अन्तर का प्रत्यक्षण होने लगता है तथा वह किसी कसौटी पर अपनी अनुभूतियों की प्रभावशीलता की परख भी करना प्रारंभ कर देता है। रोजर्स के अनुसार आत्मन् के दो उपतंत्र हैं -

क. आत्म-संप्रत्यय

ख. आदर्श-आत्मन्

क. आत्म-संप्रत्यय-

आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से होता है जिससे व्यक्ति अवगत होता है, हालांकि उसका यह प्रत्यक्षण हमेशा सही नहीं होता है। आत्म-संप्रत्यय को व्यक्ति प्रायः विशेष कथनों के रूप में व्यक्त करता है जैसे- ‘‘मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो.......’’। आत्म-संप्रत्यय की दो विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता यह है कि आत्म-संप्रत्यय का एक बार निर्माण हो जाने से उसमें सामान्यतः परिवर्तन नहीं होता है। हाँ, बहुत कोशिश करने से उसमें परिवर्तन हो सकता है। जो अनुभूतियाँ व्यक्ति के आत्म-संप्रत्यय के साथ असंगत होती हैं, उसे व्यक्ति स्वीकार नहीं करता है और यदि स्वीकार भी करता है तो विकृत रूप में। दूसरी विशेषता यह है कि व्यक्ति का आत्म-संप्रत्यय उसके वास्तविक या जैविक आत्मन् से भिन्न होता है। जैविक आत्मन् का कुछ अंश या भाग ऐसा होता है जिससे व्यक्ति अवगत नहीं होता है। अतः इसे आत्म-संप्रत्यय नहीं कहा जा सकता है। परन्तु जैसे ही व्यक्ति उस अंश या भाग से अवगत हो जाता है, वह आत्म-संप्रत्यय बन जाता है। जैसे-यकृत हमारे जैविक संप्रत्यय का एक अंश या भाग है न कि हमारे आत्म-संप्रत्यय का। परन्तु यदि व्यक्ति का यकृत खराब ढंग से कार्य करने लगता है, तो वह उससे अवगत हो जाता है और अब यह आत्म-संप्रत्यय का उदाहरण होगा।

ख. आदर्श आत्मन्-

आत्मन् का दूसरा उपतंत्र आदर्श-आत्मन् है। आदर्श-आत्मन् से तात्पर्य अपने बारे में विकसित किये गए एक ऐसी छवि से होता है जिसे वह आदर्श मानता है। दूसरे शब्दों में, आदर्श आत्मन् में वे सभी गुण आते हैं जो प्रायः धनात्मक होते हैं तथा जिसे व्यक्ति अपने में विकसित होने की तमन्ना करता है। रोजर्स का मत है कि आदर्श आत्मन् तथा प्रत्यक्षित आत्मन् में अन्तर एक सामान्य व्यक्तित्व में नहीं होता है। परन्तु जब इन दोनों में असंगतता विकसित हो जाती है ताकि इन दोनों में स्पष्ट अंतर हो जाता है, तो इससे एक अस्वस्थकर व्यक्तित्व होने का संकेत मिलता है। मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति ‘‘जो वे हैं’’ और ‘‘जो वे होना चाहते हैं,’’ में कोई अन्तर महसूस नहीं करते हैं।

व्यक्तित्व की गतिकी-

रोजर्स ने अपने व्यक्तित्व गतिकी की व्याख्या करने के लिए एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक का भी वर्णन किया है जिसे उन्होंने वस्तुवादी प्रवृत्ति कहा है। रोजर्स (1959) के शब्दों में, ‘‘वस्तुवादी प्रवृत्ति से तात्पर्य प्राणी में सभी तरह की क्षमताओं को विकसित करने की जन्मजात प्रवृत्ति से होती है जो व्यक्ति को उन्नत बनाने या प्रोत्साहन देने का काम करता है।’’ दूसरे शब्दों में वस्तुवादी प्रवृत्ति व्यक्ति की जिन्दगी का एक ऐसा अभिप्रेरक होता है जो व्यक्ति को अपने

आत्मन् को उन्नत बनाने तथा प्रोत्साहन देने का काम करता है। रोजर्स के सैद्धान्तिक तंत्र में वस्तुवादी प्रवृति मात्र अकेला अभिप्रेरणात्मक संरचना है। वस्तुवादी प्रवृत्ति के कुछ खास-खास गुण होते हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख है-

1. वस्तुवादी प्रवृत्ति पूरे शरीर की दैहिक क्रियाओं में सुदृढ़ होती है। इसका मतलब यह हुआ कि यह एक जैविक तथ्य है न कि मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति। आंगिक स्तर पर वस्तुवादी प्रवृत्ति व्यक्ति की न्यून आवश्यकताओं जैसे-भूख, प्यास, हवा आदि की आवश्यकता की तो पूर्ति करता ही है साथ-ही-साथ, शरीर के अंगों की संरचनाओं एवं कार्यो को भी सुदृढ़ एवं मजबूत बनाता है।
2. वस्तुवादी प्रवृत्ति का उद्देश्य मात्र तनाव में कमी करना नहीं होता है बल्कि इससे तनाव में वृद्धि भी होती है। दूसरे शब्दों में, रोजर्स का मत था कि व्यक्ति द्वारा लक्ष्य पर पहुँचने से तनाव में जो कमी आती है उससे तो मानव व्यवहार प्रभावित होता ही है साथ-ही-साथ, व्यक्ति का व्यवहार अपने आप को सतत विकसित करने एवं उन्नत बनाने के प्रयास से भी प्रभावित होता है।
3. रोजर्स का मत है कि वस्तुवादी प्रवृत्ति सभी तरह के प्राणियों अर्थात् मानव एवं पशुओं दोनों में ही होती है।
4. वस्तुवादी प्रवृत्ति एक ऐसी कसौटी के रूप में कार्य करती है जिस पर रखकर व्यक्ति अपनी जिन्दगी की अनुभूतियों की परख या मूल्यांकन करता है। मूल्यांकन को इस प्रक्रिया को जैविक मूल्य निर्धारण प्रक्रिया कहा जाता है। मूल्यांकन के बाद जिन अनुभूतियों द्वारा व्यक्ति अपने आत्मन् को प्रोत्साहित कर पाता है, उसे व्यक्ति स्वीकारात्मक मूल्य देता है तथा जिन अनुभूतियों द्वारा व्यक्ति अपने आत्मन् का विरोध होते पाता है, उसे नकारात्मक मूल्य प्रदान करता है। रोजर्स का मत है कि व्यक्तित्व की दो मुख्य आवश्यकताएँ होती हैं जिनसे उनका व्यवहार लक्ष्य की ओर निर्देशित होता है।
    1. अनुरक्षण आवश्यकता
    2. संवृद्धि आवश्यकता

1. अनुरक्षण आवश्यकता-

इस आवश्यकता के माध्यम से व्यक्ति अपने आप को ठीक ढंग से अनुरक्षित करके रखता है। इससे व्यक्ति अपनी मूल आवश्यकताओं जैसे-भोजन की आवश्यकता, हवा की आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता आदि की संतुष्टि की ओर अग्रसर होता है। इससे व्यक्ति अपने आत्म-संप्रत्यय के विचारों को सुरक्षा भी प्रदान करता है। शायद यही कारण है कि व्यक्ति किसी नये विचार जो उसके आत्म-संप्रत्यय के विपरीत होता है, उसका विरोध करता है या व्यक्ति उन अनुभूतियों को विकृत कर देता है, जिसे वह अपने आत्म-संप्रत्यय के अनुकूल नहीं पाता है।

2. संवृद्धि आवश्यकता-

यद्यपि व्यक्ति अपने आत्म-संप्रत्यय को यथावत बनाये रखता है और उसमें परिवर्तन साधारणतः नहीं चाहता है, फिर भी उसमें अपने आप को विकसित करने की तथा पहले से और भी अधिक उन्नत बनाने की भी एक प्रेरणा होती है। इसी प्रेरणा को रोजर्स ने संवृद्धि आवश्यकता कहा है। इस संवृद्धि आवश्यकता की अभिव्यक्ति कई रूपों में होती है। जैसे-व्यक्ति द्वारा उन चीजों को सीखना जिनसे उन्हें तुरंत पुरस्कार नहीं मिलता है, एक ऐसी ही आवश्यकता का उदाहरण है। इसके अलावा उत्सुकता, आत्म-अन्वेषण, परिपक्वता, तथा दोस्ती आदि के रूप में भी संवृद्धि आवश्यकता की अभिव्यक्ति होती है।

रोजर्स का मत है कि ऐसे तो वस्तुवादी प्रवृत्ति द्वारा बहुत तरह की आवश्यकताओं की उत्पत्ति होती है परन्तु इनमें दो तरह की आवश्यकताएँ प्रधान होती हैं-

1. स्वीकारात्मक सम्मान तथा
2. आत्म-सम्मान

स्वीकारात्मक सम्मान से तात्पर्य दूसरों द्वारा स्वीकार किये जाने, दूसरों का स्नेह पाने एवं उनके द्वारा पसंद किये जाने की इच्छा से होती है। जैसे-जैसे बच्चों में आत्मन् विकसित होते जाता है, इस तरह के स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता तीव्र होने लगती है। दूसरों से बच्चों को सम्मान मिलने पर उत्पन्न संतुष्टि तथा ऐसा सम्मान नहीं मिलने पर उत्पन्न असंतोष के रूप में इस आवश्यकता की अभिव्यक्ति होती हैं इस तरह की आवश्यकता का स्वरूप पारस्परिक होता है। दूसरे शब्दों में, जब कोई व्यक्ति दूसरों को स्नेह, प्यार एवं अनुराग देकर दूसरे के स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता को संतुष्ट करता है तो उससे उसे अपने में भी एक तरह की संतुष्टि होती है। रोजर्स के अनुसार स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता दो तरह की होती है- शर्तपूर्ण स्वीकारात्मक सम्मान तथा शर्तरहित स्वीकारात्मक सम्मान। शर्तपूर्ण स्वीकारात्मक सम्मान में दूसरों का स्नेह, प्यार एवं अनुराग प्राप्त करने के लिए उनके द्वारा निश्चित किये गए मानदण्डों के अनुरूप व्यक्ति को व्यवहार करना पड़ता है। रोजर्स का मत था कि बच्चों को इस तरह से शर्त रखकर उन्हें प्रेम या स्नेह देना उनके मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है और ऐसे बच्चे एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति बनने से वंचित रह जाते हैं। शर्तहीन स्वीकारात्मक सम्मान में दूसरों का स्नेह, प्यार एवं मान-सम्मान पाने के लिए कोई शर्त नहीं रखी जाती है। माता-पिता द्वारा बच्चों को दिया गया स्नेह एवं मान-सम्मान इसी श्रेणी का सम्मान होता है। इस तरह के सम्मान पाने से बच्चे बहुत तेजी के साथ एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति बनने की ओर अग्रसर होते हैं और रोजर्स ने इस पर अत्यधिक बल डाला है।

आत्म-सम्मान से तात्पर्य इस बात से होता है कि व्यक्ति में अपने-आप को सम्मान एवं स्नेह देने की आवश्यकता होती है। यह आवश्यकता भी अर्जित होती है और व्यक्ति में संतोषजनक आत्म-अनुभूतियों से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में, जब व्यक्ति को महत्वपूर्ण व्यक्तियों से मान-सम्मान मिलता है, तो इससे उसमें धनात्मक आत्म-सम्मान की भावना या प्रेरणा भी मजबूत हो जाती है। इस तरह से आत्म-सम्मान की आवश्यकता की उत्पत्ति तो स्वीकारात्मक सम्मान की आवश्यकता से ही होती है, परन्तु एक बार उत्पन्न हो जाने के बाद यह एक स्वतंत्र एवं आत्म-सतत प्रकृति की हो जाती है।

व्यक्तित्व का विकास-

रोजर्स ने फ्रायड एवं इरिक्सन के समान व्यक्तित्व का कोई अवस्था सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है। दूसरे शब्दों में, रोजर्स ने व्यक्तित्व के विकास का वर्णन विभिन्न चरणों या अवस्थाओं में फ्रायड एवं इरिक्सन के समान नहीं किया है। उन्होंने व्यक्तित्व के विकास में आत्मन् तथा व्यक्तित्व की अनुभूतियों में संगतता को महत्वपूर्ण बतलाया है। जब इन दोनों में अर्थात् व्यक्ति की अनुभूतियों तथा उनके आत्म-संप्रत्यय के बीच अन्तर हो जाता है तो इससे व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है। असंगतता के अन्तर से उत्पन्न इस चिन्ता की रोकथाम के लिए व्यक्ति कुछ बचाव प्रक्रियाएँ प्रारंभ कर देता है। इसे प्रतिरक्षा की संज्ञा दी गयी है। रोजर्स ने दो तरह के प्रतिरक्षात्मक उपायों को महत्वपूर्ण बतलाया है-विकृति तथा खंडन। विकृति में व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की एक अनुपयुक्त व्याख्या करता है ताकि वह आत्म-संप्रत्यय के कुछ अनुकूल दिख पड़े। यहाँ व्यक्ति अनुभूतियों का प्रत्यक्षण तो करता है परन्तु उसका वास्तविक अर्थ वह नहीं समझ पाता है। खंडन में व्यक्ति विरोधी अनुभूतियों को चेतना में लाने से ही इनकार कर

देता है, फलतः व्यक्ति में चिन्ता की मात्रा निश्चित रूप से कम हो जाती है। इन दोनों तरह के रक्षात्मक उपायों अर्थात खंडन एवं विकृति का अधिक प्रयोग करने से व्यक्तित्व में दृढ़ता का विकास हो जाता है। यौक्तिकीकरण, क्षतिपूर्ति, स्थिर-व्यामोह, विभ्रम, गलत विश्वास, तथा अन्य तंत्रिकातापी व्यवहार इस तरह की दृढ़ता से उत्पन्न होते हैं।
दूसरी तरफ, यदि व्यक्ति की अनुभूतियों एवं आत्म-संप्रत्यय में कोई अन्तर नहीं होता है, अर्थात् उनमें संगति होती है, तो इससे एक स्वस्थ व्यक्ति का विकास होता है। इस तरह के स्वस्थ व्यक्तित्व को रोजर्स ने एक तकनीकी नाम अर्थात् पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति कहा है। ऐसे व्यक्ति से रोजर्स का तात्पर्य उन व्यक्तियों से होता है जो अपनी क्षमताओं एवं योग्यताओं का सही-सही प्रयोग करते हैं, अपनी अन्तःशक्तियों की अच्छी पहचान करते हैं तथा अपनी अनुभूतियों एवं पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में विश्वास के साथ अग्रसर होते हैं। रोजर्स (1961) ने एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति के निम्नांकित पाँच गुण बतलाये हैं-

1. एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति स्पष्ट शब्दों में करते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी अनुभूतियों की माँगों पर ध्यान देते हैं और उसके अनुरूप व्यवहार करने की कोशिश करते हैं। वे इन अनुभूतियों का दमन नहीं करते हैं । ऐसे व्यक्ति अपने धनात्मक अनुभूतियों, जैसे-प्रशंसा, प्रोत्साहन आदि में बचाव प्रक्रियाओं का प्रयोग कम-से-कम करते हैं। ऐसे व्यक्ति की प्रकृति अधिक सांवेगिक होती है क्योंकि वे दोनों तरह की अनुभूतियों का, अर्थात् धनात्मक अनुभूतियों एवं ऋणात्मक दोनों तरह की अनुभूतियों का सामना करते हैं।
2. एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की दूसरी विशेषता यह है कि जिन्दगी के प्रत्येक क्षण का उपयोग ऐसे व्यक्ति सही अर्थ में करते हैं तथा प्रत्येक क्षण में कैसे रहना चाहिए, उसका उन्हें पूरा-पूरा ज्ञान होता है। इस तरह की अवस्था को रोजर्स ने 'अस्तित्वात्मक रहन-सहन' कहा है। ऐसे व्यक्ति जिन्दगी के प्रत्येक क्षण में एक नया अनुभव प्राप्त करते हैं। फलस्वरूप प्रत्येक क्षण उनके लिए नया होता है और किसी क्षण में वे क्या करेंगे या नहीं करेंगे, इसका पहले कोई भी व्यक्ति अनुमान नहीं लगा सकता है।
3. एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की तीसरी विशेषता यह है कि ऐसे व्यक्ति एक निश्चित विश्वास के साथ व्यवहार करते हैं और उन्हें अपने व्यवहार की सार्थकता पर पूर्ण विश्वास होता है। ऐसे व्यक्ति कोई व्यवहार करते समय सामाजिक मानकों द्वारा कम निर्देशित होते हैं तथा अपने जैविक अनुभूतियों से प्राप्त अनुभूतियों की पुकार के अनुरूप यह निश्चित करते हैं कि उन्हें क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए। इसे रोजर्स ने एक तकनीकी नाम दिया है जिसे जैविक विश्वास कहा जाता है।
4. रोजर्स के अनुसार एक पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की चौथी विशेषता आनुभाविक स्वतंत्रता है। आनुभाविक स्वतंत्रता से तात्पर्य व्यक्ति की इस अनुभूति से होता है कि वह कोई भी कार्य करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र होता है तथा अपने प्रत्येक व्यवहार एवं उसके परिणाम के लिए वह स्वयं ही जिम्मेवार है।
5. पूर्णरूपेण सफल व्यक्ति की एक विशेषता यह भी है कि इसमें सर्जनात्मकता का गुण होता है। ऐसे व्यक्ति रचनात्मक ढंग से अपना समय व्यतीत करते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ण भरपाई करने की कोशिश करते हैं। ऐसे व्यक्ति बदलती हुई परिस्थितियों के साथ रचनात्मक ढंग से समायोजन कर लेते हैं।

   रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्त के कुछ गुण है तो कुछ परिसीमाएँ भी हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित है-

1. रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त मनोचिकित्सा तथा वर्ग शिक्षण के लिए एक महा वरदान साबित हुआ है, विशेषकर मनोचिकित्सा के क्षेत्र में अनेकों मनोवैज्ञानिकों ने रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त की उपयोगिताओं की संपुष्टि की है।
2. रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त का अन्य महत्वपूर्ण गुण रोजर्स द्वारा आत्मन् पर बल दिया जाना है। उन्होंने मानवतावादी आन्दोलन के तहत जो सांवृत्तिक व्याख्या प्रदान की है, वह अपने आप में अनूठा है। इस तरह की व्याख्या कि प्रत्येक व्यक्ति में अपनी अन्तःशक्तियों को पहचानने और उसके अनुरूप व्यवहार करने की अद्भुत क्षमता होती है, हमें व्यक्तित्व के किसी और सिद्धान्त में देखने को नहीं मिलता है।
3. रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त में आन्तरिक संगतता अधिक है तथा प्रत्येक संप्रत्यय को ठोस शब्दों में परिभाषित करने की कोशिश की गयी है। इस सिद्धान्त से भविष्य के व्यक्तित्व सिद्धान्तवादी अच्छा सबक ले सकते है और उसी के अनुरूप व्यक्तित्व सिद्धान्त तैयार करने में सही मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

इन गुणों के बावजूद रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त की दो प्रमुख आलोचनाएँ हैं जो निम्नांकित है-

1. रोजर्स ने अपने इस सिद्धान्त में यह स्पष्ट नहीं किया है कि संवृद्धि तथा वस्तुवादिता के जन्मजात अन्तःशक्तियों से उनका क्या तात्पर्य था। सचमुच में संवृद्धि एवं वस्तुवादिता इस सिद्धान्त के दो प्रमुख स्तंभ हैं जिसके बारे में आलोचकों ने उपर्युक्त प्रश्न को उठाया है। इनसे संबंधित कई प्रश्नों का उत्तर हमें रोजर्स के सिद्धान्त में नहीं मिलता है। जैसे, क्या ऐसी अन्तःशक्तियाँ मूलतः शारीरिक होती हैं या मूलतः मनोवैज्ञानिक होती हैं ? क्या इन अन्तःशक्तियों में वैयक्तिक विभिन्नता होती है अर्थात् क्या ऐसी अन्तःशक्तियाँ कुछ व्यक्तियों में अधिक तथा कुछ व्यक्तियों में कम पायी जाती है?
2. रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त पर गौर करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने व्यक्तित्व के अध्ययन करने का सबसे उत्तम तरीका व्यक्ति की अनुभूतियों की परख करना बतलाया है। उन्होंने ऐसा इसलिए दावा किया है क्योंकि वे प्रायः मनोचिकित्सा करते समय रोगियों के आत्म-निवेदनों को सुनते थे तथा उनकी अनुभूतियों को ठीक ढंग से परखने की कोशिश करते थे। आलोचकों का मत है कि इस तरीके को सही नहीं माना जा सकता है क्योंकि इससे उन कारकों तथा बलों का पता नहीं चलता है जिससे रोगी सामान्यतः अवगत नहीं होता है अर्थात् संभवतः वे उसके अचेतन अवस्था में होते हैं परन्तु रोगी के व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करते हैं।

इन आलोचनाओं के बावजूद रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त अपनी अहमियत रखता है क्योंकि इसमें मानव व्यक्तित्व के प्रति विवेकी एवं स्वीकारात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से किस मनोवैज्ञानिक ने व्यक्तित्व की व्याख्या क्लासिकी अनुकूलन के आधार पर की -

(अ) पैवलव (ब) स्कीनर

(स) मासलो (द) रोजर्स

2 व्यवहार की व्याख्या के लिए पुनर्बलन अनुसूची किस मनोवैज्ञानिक ने प्रस्तुत की-

(अ) बान्दुरा (ब) पैवलव

(स) स्कीनर (द) टॉलमैन

3. मासलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त को किस उपागम के अन्तर्गत रखा गया है -

(अ) मनोगत्यात्मक उपागम (ब) मानवतावादी उपागम
(स) अधिगम उपागम (द) मनो-सामाजिक उपागम

6.9 सार-संक्षेप-

व्यक्तित्व का अधिगम सिद्धान्त व्यक्तित्व के निर्माण और विकास में क्लासिकी तथा क्रियाप्रसूत अनुकूलन की भूमिका को महत्वपूर्ण मानता है तथा मानव स्वभाव की व्याख्या सीखे गये व्यवहार के समुच्चय के रूप में करता है।

पैवलव ने क्लासिकी अनुकूलन के आधार पर व्यक्तित्व एवं मानव स्वभाव की व्याख्या की।

स्कीनर ने क्रियाप्रसूत व्यवहार के आधार पर व्यक्तित्व की व्याख्या की तथा व्यवहार घटित होने में पुनर्बलन की भूमिका को महत्वपूर्ण माना।

मैस्लो ने व्यक्तित्व की व्याख्या मानवतावादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में की तथा आत्म-सिद्धि की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य माना।

रोजर्स ने आत्म-सिद्धान्त के स्थापन में व्यक्ति की अनुभूतियों, भावों एवं मनोवृत्तियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया तथा मानव स्वभाव की व्याख्या उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियों का अध्ययन कर करने पर बल दिया।

6.10 पारिभाषिक शब्दावली-

अनुकूलन-किसी अस्वाभाविक या तटस्थ उत्तेजना से किसी स्वाभाविक अनुक्रिया का जुड़ जाना अनुकूलन कहलाता है।

प्रतिवादी व्यवहार-वैसा व्यवहार जो व्यक्ति वातावरण के ज्ञात उद्धीपकों के प्रति स्वतः एवं अनैच्छिक रूप से करता है।

क्रियाप्रसूत व्यवहार-वैसा व्यवहार जो वातावरण के किसी स्पष्ट उद्धीपक द्वारा उत्पन्न नहीं होता, बल्कि इसे व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छा से करता है।

आत्म-सिद्धि - आत्म-उन्नति की एक ऐसी अवस्था जहाँ व्यक्ति अपनी योग्यताओं एवं अन्तःक्षमताओं को विकसित करने की इच्छा करता है।

आदर्श आत्मन्-व्यक्ति के स्वयं के बारे में विकसित की गई एक ऐसी छवि जिसे वह आदर्श मानता है।

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न-

1. पैवलव के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या करें।
2. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में स्कीनर के विचारों को प्रस्तुत करें।
3. व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मानवतावादी विचारधारा से आप क्या समझते हैं? मासलो के आत्म-सिद्धि सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
4. रोजर्स द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्त पर प्रकाश डालें।
5. टिप्पणी लिखें-

1. पुनर्बलन अनुसूची
2. मेटा-आवश्यकता
3. आत्म-संप्रत्यय

6.12 संदर्भ-ग्रन्थ

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5. Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6. Eysenck – The scientific study of personality

6.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर-

1. अ   2. स   3. ब

इकाई 7 व्यक्तित्व का डोलार्ड एवं मिलर सिद्धान्त (Dollard and Miller Theory of Personality)

इकाई संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का परिचय
7.3.1 सीखने के मूल तत्व
7.3.2 उच्चतर मानसिक क्रियाएं
7.3.3 अनुकरण
7.3.4 भय एवं चिन्ता
7.3.5 संघर्ष
7.3.6 दमन एवं अचेतन
7.3.7 व्यक्तित्व का असामान्य विकास
7.3.8 मनःचिकित्सा
7.4 डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का मूल्यांकन
7.5 सार संक्षेप
7.6 पारिभाषिक शब्दावली
7.7 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न
7.8 संदर्भ-ग्रन्थ
7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.1 प्रस्तावना-

व्यक्तित्व की व्याख्या हेतु विकसित विभिन्न सिद्धान्तों में डोलार्ड एवं मिलर का उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त एक अधिगम आधारित सिद्धान्त है जो व्यक्तित्व की व्याख्या सीखे गये व्यवहार के साथ-साथ मनोविष्लेषमात्मक दृष्टिकोण से भी करता है।

प्रस्तुत इकाई में डोलार्ड एवं मिलर द्वारा वर्णित विभिन्न संप्रत्ययों पर प्रकाश डाला गया है तथा इन संप्रत्ययों के आलोक में व्यवहार के विभिन्न आयामों को समझने की कोशिश की गई है।

इस सिद्धान्त के अध्ययन से आपको व्यक्तित्व के अन्य अधिगम सिद्धान्तों से इस सिद्धान्त की तुलना करना आसान होगा, साथ-ही, व्यक्तित्व को नये ढंग से समझने में मद्द मिलेगी।

7.2 उदेश्य -

इस इकाई का अध्ययन करने के पष्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि-

1. डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की व्याख्या कर सकें,
2. इस व्यक्तित्व सिद्धान्त के प्रमुख संप्रत्ययों का उल्लेख कर सकें तथा
3. इस सिद्धान्त की तुलना दूसरे व्यक्तित्व सिद्धान्तों से कर सकें।

7.3 डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त का परिचय-

व्यक्तित्व का यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसका प्रतिपादन एक समाजशास्त्री और एक मनोवैज्ञानिक ने मिलकर किया। अतः व्यक्तित्व का यह सिद्धान्त एक अन्तर्विषयक उपागम (इन्टर डिसिलिनरी पप्रोच) है।

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक जॉन डोलार्ड एक समाजशास्त्री थे, जबकि नील मिलर एक मनोवैज्ञानिक थे।

इनके सिद्धान्त में हमें तीन तत्वों का एक अनोखा संगम देखने को मिलता है। वे तीन तत्व हैं-सीखने का प्रयोगात्मक अध्ययन, व्यक्तित्व विकास का मनोविश्लेषणात्मक उपागाम तथा व्यवहार को समझने में अंतर्दृष्टि।

अगर ध्यानपूर्वक देखा जाए तो डोलार्ड तथा मिलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त हल-स्पेन्स उपागम पर आधारित हैं जिसका संबंध व्यवहार की उत्पत्ति में अभिप्रेरण के महत्व को दिखलाना एवं उन तरीकों को बतलाना है जिससे सीखे गये अभिप्रेरक का विकास व्यक्तियों में होता है। इसीलिए इस सिद्धान्त को व्यक्तित्व का उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त भी कहते हैं।

डोलार्ड तथा मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त में उद्धीपक तथा अनुक्रिया के बीच में सीखे गए साहचर्य पर अधिक बल डाला गया है और इसी के सहारे कई महत्वपूर्ण संप्रत्ययों की व्याख्या की गयी है। इस सिद्धान्त के प्रमुख संप्रत्यय इस प्रकार हैं-

1. सीखने के मूल-तत्व
2. उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएँ
3. अनुकरण
4. भय एवं चिन्ता
5. संघर्ष
6. दमन एवं अचेतन
7. व्यक्तित्व का असामान्य विकास
8. मनोचिकित्सा

इन संप्रत्ययों तथा उनके महत्व का वर्णन निम्नांकित हैं-

7.3.1 सीखने के मूल-तत्व

डोलार्ड तथा मिलर (1950) का मत है कि अधिकतर मानव व्यवहार अर्जित होते हैं। इनका कहना है कि सीखने की परिस्थितियाँ चाहे कितनी भी असमान क्यों न हों, किसी भी व्यवहार को सीखने में चार मूल-तत्व सम्मिलित होते हैं। इन्हीं चारों तत्वों के आधार पर साधारण सीखना या जटिल सीखना की व्याख्या की जा सकती है। इनके चार मूल तत्व निम्नलिखित हैं-

1. प्रणोद
2. संकेत
3. अनुक्रिया
4. पुनर्बलन

इन चारों के महत्व को दिखलाने के लिए उन्होंने एक प्रयोग किया है जिसका वर्णन यहाँ अपेक्षित है। यह प्रयोग एक 6 साल की लड़की पर किया गया। इस प्रयोग में एक कमरा में रखे आलमारी के सबसे नीचे वाले खाने में रखे

कई किताबों में से बीच के एक किताब में उस लड़की की मनपसंद मीठा टॉफी छिपा कर रख दिया गया है। कमरे में लड़की को, जो कुछ घंटों से भूखी थी, बुलाकर यह कहा गया कि आलमारी के एक किताब में मीठी टॉफी छुपाकर रखी गयी है। वह उसे ढूँढ निकाले। यह भी कहा गया कि इस खोज के सिलसिले में वह एक-एक करके जिन किताबों को हटाये, उसे वह अलग रखते जाय। परिणाम में देखा गया कि प्रयोग के प्रथम चरण में लड़की ने कई तरह के यादृच्छिक व्यवहार, जैसे-ऊपरी खाने के किताबों को ढूँढना, आलमारी में रखे मैगजीन एवं टेबुल पर रखे किताबों को उलटना पुलटना आदि, किया। अन्त में करीब 210 सेकंड लगाकर एवं 36 गलत किताबों को प्रतिस्थापित करने के बाद वह मीठी टॉफी ढूँढ निकालने में समर्थ हो गयी। पुरस्कार के रूप में लड़की को टॉफी खाने दिया गया। दूसरी बारी में दूसरी मीठी टॉफी उसी किताब में छिपाकर रखा गया। लड़की को कमरे में बुलाकर पहले की तरह ही निर्देष दिये गये और वह टॉफी खोजना प्रारंभ कर दी। इस बार वह सीधे निचले खाने में खोजना प्रारंभ कर दी और करीब 12 किताबों को प्रतिस्थापन करने के बाद तथा मात्र 86 सेकंड में वह टॉफी खोज निकालने में समर्थ हुई। यह प्रयोग 10 प्रयासों तक चला और 10वें प्रयास के अन्त में लड़की ने टॉफी खोजने में कोई भी त्रुटि नहीं की तथा इस प्रयास में वह मात्र 2 सेकेंड का समय ली।

इस प्रयोग के माध्यम से उन्होंने उपर्युक्त चारों संप्रत्ययों के महत्व का वर्णन किया है जो निम्नलिखित है-

1. अन्तोंद या प्रणोद-

प्रणोद से तात्पर्य किसी भी ऐसी शक्तिषाली उद्धीपक से होता है जो प्राणी को क्रिया करने के लिए तो प्ररित करता है परन्तु उस क्रिया के स्वरूप का निर्धारण नहीं करता है। प्रणोद की शक्ति उद्धीपक की शक्ति, जिससे प्रणोदन उत्पन्न होता है, पर निर्भर करता है। जितना ही प्रणोद मजबूत होगा, उससे प्राणी में उतना सतत व्यवहार उत्पन्न होता है। उपर्युक्त प्रयोग में भूख लड़की में एक प्रणोद का उदाहरण है जो सचमुच में एक तरह का जन्मजात प्रणोद है। इसके अलावा कुछ प्रणोद जन्मजात न होकर अर्जित होते हैं। ऐसे प्रणोद को व्यक्ति अपने जीवनकाल में सीखता है। जैसे, रूपया-पैसा प्रारंभ में षिषु के लिये न तो धनात्मक होता है और न ही ऋणात्मक होता है। परन्तु धीरे-धीरे वह उसके प्रति धनात्मक महत्व देना सीख लेता है।

2. संकेत-

संकेत से डोलार्ड एवं मिलर का तात्पर्य वैसे उद्धीपक से है, जो यह बतलाता है कि कब, कहाँ तथा कैसे प्राणी द्वारा अनुक्रियाएँ की जाती हैं। संकेत तीव्रता एवं प्रकार के दृष्टि से भिन्न होता है। जैसे, प्रकार की दृष्टि से संकेत श्रव्य तथा चाक्षुष मुख्य दो तरह के होते हैं तथा तीव्रता के दृष्टिकोण से संकेत कमजोर या तीव्र कुछ भी हो सकता है। उपर्युक्त उदाहरण में लड़की श्रव्य संकेत के आधार पर अर्थात् प्रयोगकर्ता से मिले शाब्दिक निर्देष के आधार पर अनुक्रिया अर्थात् टॉफी खोजने की अनुक्रिया कर रही थी। इसके अलावा चाक्षुष संकेत जैसे आलमारी के एक खाने से दूसरे खाने में अन्तर करना, किताबों के बीच अन्तर करना आदि के आधार पर भी अनुक्रिया कर रही थी।

3. अनुक्रिया-

डोलार्ड तथा मिलर (1950) के अनुसार अनुक्रिया से तात्पर्य प्राणी द्वारा प्रणोद तथा संकेत के प्रतिक्रिया के रूप में होने वाला व्यवहार से होता है। उपर्युक्त उदाहरण में लड़की द्वारा उस उपयुक्त एवं सही किताब को उठाना जिसमें टॉफी छिपायी गयी थी, एक अनुक्रिया का उदाहरण है। किसी भी दी हुई परिस्थिति में कुछ अनुक्रियाएँ की होने की संभावनाएँ अन्य अनुक्रियाओं की तुलना में अधिक होती है। अनुक्रिया के होने के इस मौलिक क्रम को अनुक्रिया का प्रारंभिक पदानुक्रम कहा जाता है। इससे फिर अनुक्रिया के होने की संभावना में भी परिवर्तन हो जाता है। इसे

अनुक्रिया का परिणामी पदानुक्रम कहा जाता है। जैसे, उपर्युक्त उदाहरण में लड़की द्वारा प्रारंभ में कई किताबों में टॉफी का खोजा जाना, कई तरह से संबंधित प्रश्नों को करना तथा अन्य कई संबंधित व्यवहारों को करना आदि अधिक की जाती थीं परन्तु बाद के प्रयासों में ऐसी गलत अनुक्रियाएँ कम की जाती थीं तथा सही अनुक्रिया के होने की संभावना अधिक होती थी।

4. पुनर्बलन-

पुनर्बलन से डोलार्ड तथा मिलर का तात्पर्य एक ऐसी घटना से था जो संकेत तथा अनुक्रिया के बीच के संबंध को मजबूत करके भविष्य में अनुक्रिया के होने की संभावना को बढ़ाता है। इन लोगों के अनुसार किसी अनुक्रिया को सीखने के लिए पुनर्बलन या पुरस्कार का होना अनिवार्य है। इन लोगों ने पुनर्बलन को प्रणोद में कमी के रूप में परिभाषित किया है और कहा है कि जब कोई घटना से प्राणी के प्रणोद जैसे-भूख, प्यास आदि में कमी हो जाती है तो इसके बाद होने वाली अनुक्रिया पुनर्बलित हो जाती है और बाद में फिर उसी अनुक्रिया को व्यक्ति दोहराना चाहता है। उपर्युक्त उदाहरण में लड़की द्वारा उपयुक्त अनुक्रिया के बाद टॅफी प्राप्त कर लेना एक पुनर्बलन का उदाहरण है। टॉफी खा लेने से लड़की की भूख अर्थात् प्रणोद में कमी आ जाती है जिसके परिणामस्वरूप टॉफी खोजने की अनुक्रिया पुनर्बलित हो जाती है। यही कारण है कि लड़की आगे के प्रयासों में इस अनुक्रिया को अधिक दृढ़ता के साथ दोहराती है।

डोलार्ड तथा मिलर (1959) ने अपने सिद्धान्त में सीखने के सिद्धान्त के कुछ अन्य संप्रत्ययों की भी व्याख्या की है जिनमें प्रमुख हैं-प्रयोगात्मक विलोपन, स्वतः पुनर्लाभ, सामान्यीकरण तथा विभेद।

1. प्रयोगात्मक विलोपन-

जब सीखी गयी अनुक्रिया धीरे-धीरे अपुनपुर्बलित होती जाती है, तो अन्त में एक ऐसी अवस्था आती है जहाँ प्राणी उस अनुक्रिया को करना पूर्णतः बन्द कर देता है। इसे ही प्रयोगात्मक विलोपन की संज्ञा दी जाती है। एक धूम्रपान करने वाला व्यक्ति जब यह अनुभव करने लगता है कि सिगरेट पीने से उसे संतुष्टि नहीं हो रही है, तो वह धीरे-धीरे सिगरेट पीना कम कर दे सकता है और अन्त में वह सिगरेट पीना बन्द भी कर दे सकता है। कुछ अनुक्रियाएँ ऐसी होती हैं जिनकी विलोपन गति तीव्र होती है तथा कुछ ऐसी अनुक्रियाएँ होती हैं जिनकी विलोपन गति धीमी होती है। डोलार्ड तथा मिलर (1959) ने अपने शोधों के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि अन्य बातों के अलावा विलोपन गति इस कारक या तथ्य से प्रभावित होती है कि वह आदत जिसका विलोपन होता है, कितनी मजबूत होती है। आदत जितनी ही मजबूत होगी, उसके विलोपन की गति उतनी ही धीमी होगी।

2. स्वतः पुर्नलाभ-

जब कोई विलोपित अनुक्रिया अचानक बिना किसी पुनर्बलन के ही पुनः प्राणी द्वारा की जाती है तो उसे स्वतः पुनर्लाभ कहा जाता है। जैसे, यदि कुछ दिनों या महीनों तक धूम्रपान बन्द कर देने के बाद प्राणी भयानक धूम्रपान करना प्रारंभ कर देता है, तो वह स्वतः पुनर्लाभ का उदाहरण होगा। विलोपन तथा स्वतः पुनर्लाभ दोनों से ही व्यक्ति में अनुकूली व्यवहार विकसित होते हैं। चूँकि अपुनर्बलित अनुक्रियाएँ धीरे-धीरे विलोपित हो जाती हैं, व्यक्ति उसके जगह पर पहले से अधिक संतुष्टि प्रदान करने वाली क्रिया को सीखकर अपने व्यवहार को अधिक अनुकूली बनाता है।

3. सामान्यीकरण-

एक सीखी गयी अनुक्रिया का प्रभाव दूसरी अनुक्रिया पर होना ही सामान्यीकरण कहलाता है। दो परिस्थितियों में संकेतों का पैटर्न लगभग समान होता है, तो इससे सामान्यीकरण अधिक होता है। जैसे, कोई व्यक्ति यदि ब्राण्ड ‘अ’ सिगरेट पी लेता है तो वह ब्राण्ड ‘ब’ सिगरेट भी पीने में कोई हिचकिचाहट नहीं दिखलायेगा। डोलार्ड तथा मिलर ने यह बतलाया है कि जैसे-जैसे प्रणोद की शक्ति बढ़ती जाती है, सामान्यीकृत अनुक्रिया की शक्ति भी बढ़ती जाती है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति ब्राण्ड ‘अ’ सिगरेट ही अधिक पीता है परन्तु कई हतों से किसी कारण से वह उसे नहीं पी पाया है, तो वह एक ऐसा सिगरेट भी पीने के लिए तैयार हो जाएगा जिसकी महक एवं कष उसे बिल्कुल ही पसंद नहीं है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि उसमें कई हतों से सिगरेट नहीं पीने से प्रणोद में वृद्धि हो गयी थी।

4. विभेद-

विभिन्न संकेत के पैटर्नो में अन्तर के प्रत्यक्षण को ही विभेदन कहा जाता है। जब एक संकेत पैटर्न के प्रति की गयी अनुक्रिया पुरस्कृत होती है परन्तु दूसरा संकेत पैटर्न के प्रति की गयी अनुक्रिया पुरस्कृत नहीं होती है तो इससे विभेद की उत्पत्ति होती है और व्यक्ति दो संकेत पैटर्न के बीच विभेदन करना सीख लेता है। विभेदन का आधार प्रायः संकेत का रंग, आकार, प्रकार, समय, जगह आदि होता है। डोलार्ड तथा मिलर (1950) के अनुसार व्यक्तित्व में जो अन्तर देखने को मिलता है, उसका आंशिक कारण व्यक्ति के विभेदन करने की परिवर्ती क्षमताएँ तथा समान अनुक्रियाओं के पुनर्बलन एवं अपुनर्बलन से उत्पन्न होने वाली विभिन्न अनुभूतियाँ होती हैं।

7.3.2 उच्चतर मानसिक प्रक्रियाएँ-

डोलार्ड तथा मिलर (1959) का मत है कि वातावरण के साथ व्यक्ति की अन्तःक्रियाएं दो तरह की होती है। पहले प्रकार की अन्तःक्रियाएँ वे हैं जिनका प्रभाव वातावरण पर तुरंत पड़ता है और ऐसे अन्तःक्रिया में प्रायः एक ही संकेत होते हैं। जैसे, चलते साइकिल के सामने किसी व्यक्ति के आ जाने पर अचानक साइकिल को रोक देना एक ऐसी ही अन्तःक्रिया के उदाहरण हैं। दूसरे तरह की अन्तःक्रियाओं को संकेत उत्पन्न अनुक्रिया कहा जाता है जिसमें व्यक्ति के मन में एक संकेत से ही कई तरह की अनुक्रियाएँ एक-एक करके उत्पन्न होने लगती हैं। ऐसी अन्तःक्रियाओं में कई तरह की आन्तरिक घटनाएँ जिसे चिन्ता कहा जाता है, सम्मिलित होती है। जैसे, जनरल ओर देखकर मन में यह याद आ जाना कि दंतमंजन लेना है, और फिर यह देखना कि पॉकेट में पर्याप्त रूपया है या नहीं, संकेत उत्पन्न अनुक्रिया के उदाहरण हैं। संकेत उत्पन्न व्यवहार स्पष्ट एवं अस्पष्ट कुछ भी हो सकता है। संकेत उत्पन्न व्यवहार द्वारा कई तरह के कार्य किये जाते हैं जिनमें सामान्यीकरण तथा विभेदीकरण प्रधान है। डोलार्ड तथा मिलर के अनुसार, बोली गयी भाषा, चिन्तन, लिखित भाषा तथा भावभंगिमा सभी संकेत उत्पन्न अनुक्रिया के उदाहरण हैं। बहुत-सी ऐसी अनुक्रियाओं से दूसरों के साथ संचार स्थापित करने में मदद मिलती है।

तर्कणा एक दूसरा प्रमुख उच्चतर मानसिक प्रक्रिया है जिस पर डोलार्ड तथा मिलर ने बल डाला है। तर्कणा को प्रयत्न एवं भूल की अपेक्षा समस्या समाधान की एक अधिक उपयुक्त विधि समझा गया है। तर्कणा द्वारा व्यक्ति उपयुक्त अनुक्रियाओं को चुनने में सफल हो जाता है जिससे समाधान में तीव्रता आ जाती है। इससे भविष्य में किए जाने वाले कार्यो को योजना बनाने में मदद मिलती है। चूँकि तर्कणा में संकेत उत्पन्न अनुक्रियाओं का प्रयोग होता है, इसलिए कई प्रयत्न एवं भूल वाले कदम अपने-आप समाप्त हो जाते हैं और कुछ पूर्व पुनर्बलित अनुक्रियाएँ एक क्रम में आगे आने लगती है। कुछ तर्कणा में व्यक्ति लक्ष्य से ही प्रारंभ कर पीछे की ओर तब तक जाता है जब तक कि वह सही अनुक्रिया नहीं कर लेता है। कई समस्याओं का समाधान व्यक्ति इस दूसरे तरह की तर्कणा के आधार पर भी करता है।

7.3.3 अनुकरण-

डोलार्ड तथा मिलर (1950) ने प्रारंभ में अनुकरण को एक सीखा गया व्यवहार माना था। परन्तु बाद में उन्होंने इसे एक जन्मजात प्रवृत्ति माना है जो सीखना या प्रषिक्षण द्वारा परिवर्तित होती है। उन्होंने अनुकरण के तीन प्रकार बतलाये हैं-समान व्यवहार, नकल उतारने वाला व्यवहार तथा समेल आधारित व्यवहार।

1. समान व्यवहार-

समान व्यवहार दूसरों को देखकर या बिना देखे हुए ही सीखा जाता है। जब किसी संकेत के प्रति प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र होकर एक समान व्यवहार करता है, तो इसे ही डोलार्ड एवं मिलर ने समान व्यवहार की संज्ञा दी है। घंटी की आवाज सुनकर वर्ग से बच्चों का निकलना एक समान व्यवहार का उदाहरण है।

2. नकल उतारने वाला व्यवहार-

जब कोई व्यक्ति सचेत होकर किसी खास उदेश्य से दूसरे के व्यवहार के समान अपना व्यवहार बनाने की कोषिष करता है, तो उसे नकल उतारने वाला व्यवहार कहा जाता है। इस तरह का व्यवहार समान व्यवहार से इस अर्थ में भिन्न होता है कि इसमें व्यक्ति में सचेतता एवं एक उद्देश्य होता है जबकि समान व्यवहार करने में व्यक्ति में कोई ऐसा निष्चित प्रयोजन नहीं होता है। नकल उतारने वाला व्यवहार करने में व्यक्ति अपने व्यवहार तथा दूसरे व्यक्ति के व्यवहार में जो अन्तर देखता है, उसे कम करने का भरसक प्रयास करता है।

3. समेल-आधारित व्यवहार-

समेल आधारित व्यवहार तीसरे तरह का अनुकरण है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के व्यवहारों को संकेत मानकर उसका अनुकरण करता है। यहाँ वह अपने व्यवहार तथा दूसरों के व्यवहार की समानताओं एवं विभिन्नताओं पर अधिक ध्यान नहीं देता है। नकल उतारने वाला व्यवहार तथा समेल आधारित व्यवहार में अन्तर यह है कि नकल उतारने वाला व्यवहार में नकल उतारने वाला व्यक्ति तथा जिसके व्यवहारों का नकल उतारने वह जा रहा है, में सामाजिक समानता होती है अर्थात, वे दोनों ही सामाजिक रूप से लगभग समान होते है जबकि समेल आधारित व्यवहार में ऐसे दोनों व्यक्तियों में सामाजिक असमानता पायी जाती है। इस तरह के व्यवहार में एक व्यक्ति जिसके व्यवहारों को संकेत मानकर अनुकरण किया जाता है पहले व्यक्ति से अधिक योग्य कुशल एवं अनुभवी होते हैं। छोटे भाई द्वारा बड़े भाई के व्यवहारों को संकेत मानकर अनुकरण करना समेल आधारित व्यवहार का उदाहरण है।

7.3.4 भय एवं चिन्ता-

डोलार्ड तथा मिलर के अनुसार भय एवं चिन्ता मानव व्यवहार के दो ऐसे शक्तिषाली प्रेरणात्मक बल है जिसे व्यक्ति सीखता है।इन मनोवैज्ञानिकों का मत है कि भय एवं चिन्ता प्रणोद, संकेत, अनुक्रिया एवं पुनर्बलन के रूप में कार्य करके व्यक्ति को कुछ सीखने की प्रेरणा देता है। भय से तात्पर्य किसी बाह्य या भीतरी, वास्तविक या काल्पनिक खतरों के प्रति एक आषंका से होता है जबकि चिन्ता से तात्पर्य एक ऐसे भय से होता है जिसका स्रोत अस्पष्ट होता है और दमन के कारण छिपा होता है। चिन्ता तथा भय के बीच का संबंध इतना अधिक घनिष्ठ है कि डोलार्ड तथा मिलर ने इसकी एक ही संप्रत्यय के रूप में व्याख्या की है जो निम्नांकित है-

1. प्रणोदन के रूप में भय-

डोलार्ड तथा मिलर ने भय एवं चिन्ता को प्रणोद कहा है। उससे नयी अनुक्रियाएँ करने के लिए व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। भय या डर के कारण हम घरों में या अन्य सुरक्षा प्रदान करने वाले स्थानों में छिप जाते हैं। भय या डर से

हम सड़क पर कार या अन्य सवारी को सतर्कता से चलाते हैं। इसी ढंग से चिन्ता के कारण हम अध्ययन में अधिक मन लगाते हैं या कभी-कभी नख को दाँत से काटने लगते हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि भय तथा चिन्ता प्रणोद के रूप में कार्य करके हमें कुछ व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं।

2. अनुक्रिया के रूप में भय-

भय तथा चिन्ता व्यक्ति की आन्तरिक अनुक्रिया हैं जो बाह्य अनुक्रियाओं के समान सीखे जाते हैं तथा वे विलोपित होते हैं एवं उनका स्वतः पुनर्लाभ भी होता है। यद्यपि भय तथा चिन्ता आन्तरिक अनुक्रियाएँ हैं, वे कई तरह की बाह्य अनुक्रिया पैदा करती हैं। भय प्रायः भाग जाने की अनुक्रिया उत्पन्न करता है जबकि चिन्ता प्रायः रक्षात्मक प्रक्रमों की उत्पत्ति करती है।

3. संकेत के रूप में भय-

भय का संकेत मूल्य भी होता है क्योंकि यह एक उद्धीपक होता है जो अन्य उद्धीपकों से भिन्न होता है। संकेत के रूप में भय अधिक तीव्र मात्रा में हो सकता है या कम तीव्र मात्रा में हो सकता है। व्यक्ति कुछ आन्तरिक संकेतों को 'भय' की संज्ञा देकर उसके प्रति अनुक्रिया करना सीख लेता है।

4. पुनर्बलन के रूप में संकेत-

भय एवं चिन्ता अपने आप में पुनर्बलन या पुरस्कार नहीं है परन्तु उसमें कमी का होना एक पुनर्बलन है। एक बालक बड़ा कुत्ता देखकर डर जाता है और भाग जाता है। यहाँ भाग जाना अपने आप में पुनर्बलन नहीं है परन्तु इससे प्रणोद में कमी उत्पन्न होती है जो एक पुनर्बलन कारक के रूप में कार्य करता है।

7.3.5 संघर्ष-

डोलार्ड तथा मिलर (1959) का मत है कि जब दो समान परन्तु अमेल अनुक्रियाएँ करने के लिए व्यक्ति एक ही समय में बाध्य हो जाता है, तो इससे उसमें संघर्ष उत्पन्न होता है। जब व्यक्ति इस संघर्ष की स्थिति में होता है, तो उसमें तनाव, चिन्ता, दुविधा आदि पाये जाते हैं। डोलार्ड तथा मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त में संघर्ष पर गंभीर रूप से एवं गहन रूप से शोध किया गया है और इसके लिए इनके सिद्धान्त की ख्याति काफी है। अपने शोधों के आधार पर इन्होंने चार तरह के संघर्ष का वर्णन किया है तथा कुछ महत्वपूर्ण पूर्वकल्पनाओं का भी वर्णन किया है। संघर्ष प्रकारों का वर्णन करने के पहले यह आवष्यक है कि उन पूर्वकल्पनाओं पर एक नजर डाली जाय। ऐसी पूर्वकल्पानाएँ निम्नांकित चार हैं-

1. डोलार्ड तथा मिलर (1950) की एक महत्वपूर्ण पूर्वकल्पना यह थी कि जब व्यक्ति लक्ष्य के नजदीक आ जाता है, तो व्यक्ति में लक्ष्य पर पहुँचने की प्रवृत्ति हो जाती है। इसे इन लोगों ने उपागम की क्रमिकता की संज्ञा दी है।
2. जब व्यक्ति किसी उद्धीपक के नजदीक पहुँच जाता है, तो उससे दूर होने की प्रवृत्ति उसमें मजबूत हो जाती है। इसे डोलार्ड तथा मिलर ने परिहार की क्रमिकता की संज्ञा दी है।
3. जब एक ही लक्ष्य का धनात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही मूल्य होते हैं, तो व्यक्ति जैसे-जैसे ऐसे लक्ष्य के करीब आता है, उसमें परिहार की शक्ति उपागम की शक्ति से अधिक मजबूत होती है।
4. जब व्यक्ति में प्रणोद की मात्रा अधिक होती है, तो उसमें धनात्मक मूल्य के लक्ष्य पर पहुँचने की प्रवृत्ति तथा ऋणात्मक मूल्य के लक्ष्य से दूर रहने की प्रवृत्ति अधिक मजबूत होती है।

डोलार्ड तथा मिलर (1950) ने निम्नांकित चार तरह के संघर्ष के प्रकार वर्णन किया-

1. उपागम-उपागम संघर्ष
2. परिहार-परिहार संघर्ष
3. उपागम-परिहार संघर्ष
4. द्विउपागम-परिहार संघर्ष

1. उपागम-उपागम संघर्ष-

जब व्यक्ति के सामने दो धनात्मक लक्ष्य होते हैं जो समान रूप से महत्वपूर्ण एवं आकर्षक होते हैं तथा जब व्यक्ति इन दोनों की प्राप्ति एक ही समय में कर लेना चाहता है तो इससे उत्पन्न मानसिक संघर्ष को उपागम-उपागम संघर्ष कहा जाता है। जैसे, यदि कोई व्यक्ति एक ही समय में अपने दोस्त के बारात में शामिल होना चाहता है तथा साथ-ही-साथ उसी समय अपने बीमार पिता के पास भी जाना चाहता है, तो इससे जो संघर्ष उसके मन में उत्पन्न होगा, वह उपागम-उपागम संघर्ष होगा।

2. परिहार-परिहार संघर्ष -

इस तरह के संघर्ष में व्यक्ति दो ऋणात्मक लक्ष्यों के बीच घिर जाता है और इन दोनों से छुटकारा पाना चाहता है क्योकि इनमें से किसी भी एक की पूर्ति उसके लिए हानिकारक होती है। परन्तु यदि उसे बाध्य होकर किसी एक लक्ष्य के पक्ष में निर्णय लेना पड़ा तो वह मानसिक संघर्ष से गुजरने लगता है। उसकी स्थिति ‘इधर गढ्डा उधर खाई’ वाली हो जाती है।

3. उपागम-परिहार संघर्ष-

इस तरह के संघर्ष में व्यक्ति के सामने लक्ष्य तो एक ही होता है परन्तु उसके प्रति परस्पर विरोधी भाव उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। इस लक्ष्य पर वह पहुँचना भी चाहता है तथा साथ-ही-साथ उससे दूर भी रहना चाहता है। इस तरह का संघर्ष अन्य संघर्षो की अपेक्षा अधिक घातक होता है।

4. **द्विउपागम-परिहार संघर्ष-**

इस तरह के संघर्ष में दो या कभी-कभी दो से अधिक भी, धनात्मक लक्ष्य व्यक्ति को एक साथ अपनी-अपनी ओर खींचने लगते हैं। जीवन की अधिकांश परिस्थितियाँ इसी प्रकार की होती हैं जिसमें व्यक्ति को कई धनात्मक एवं ऋणात्मक लक्ष्यों का सामना एक साथ करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में उत्पन्न संघर्ष को द्विउपागम-परिहार संघर्ष या बहु-उपागम परिहार संघर्ष कहा जाता है।

7.3.6 दमन एवं अचेतन-

वैसे प्रणोद, संकेत तथा अनुक्रियाएँ जिससे कभी भी व्यक्ति अवगत नहीं हो पाया है या जिसकी संज्ञा नहीं दे पाया है, अचेतन में चला जाता है। फ्रायड के समान ही डोलार्ड तथा मिलर 1950 का मत है कि लैंगिक एवं आक्रामक अनुक्रियाएँ व्यक्ति के अचेतन में रहती हैं। दमन से तात्पर्य उन विचारों से होता है जो व्यक्ति के शाब्दिक नियंत्रण में

नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, ऐसे विचारों के लिए व्यक्ति कोई पर्याप्त शाब्दिक लेबल नहीं दे पाता है। चूँकि दमन प्राक्षाब्दिक तथा स्वचालित होता है, अतः व्यक्ति चाहकर भी दमन को रोक नहीं पाता है। डोलार्ड तथा मिलर के अनुसार दमन की प्रक्रिया इसलिए होती है क्योंकि जब व्यक्ति कुछ खास-खास अनुभूतियों के बारे में सोचना बन्द कर देता है, तो वह अपने आप में पुरस्कृत हो जाता है। चूँकि दमन में व्यक्ति कुछ खास-खास विचारों के बारे में चिन्ता करना बन्द कर देता है, अतः व्यक्ति इन विचारों को उत्पन्न करने वाले संकेतों के बीच के संबंधों को ठीक ढंग से प्रत्यक्षण नहीं कर पाता है। दमन की मात्रा साधारण से पूर्ण स्मृति-लोप तक की हो सकती है। चूँकि दमन व्यक्ति को अपने चिन्तन एवं भावों को शब्दों के रूप में अभिव्यक्त करने से रोकता है तथा वह फिर अपनी समस्याओं के बारे में तर्कसंगत ढंग से सोचना असंभव कर देता हैद्व इससे जो व्यवहार उत्पन्न होता है, उसे डोलार्ड एवं मिलर ने मूढ़ व्यवहार कहा है।

7.3.7 व्यक्तित्व का असामान्य विकास-

डोलार्ड तथा मिलर (1959) का मत है कि व्यक्तित्व का असामान्य व्यवहार संघर्ष, दमन तथा पुनर्बलन आदि के परिणामस्वरूप विकसित होता है। अधिकतर असामान्य व्यवहारों को बचपनावस्था में सीखा जाता है और इसे माता-पिता तथा अन्य सामाजिक एजेण्टों द्धारा उद्धेष्यरहित रूप से सिखलाये जाते हैं। इनका कहना है कि तीव्र भय से व्यक्ति प्रायः असामान्य व्यवहार को विकसित कर लेता है। भय की स्थिति में व्यक्ति के मन में संघर्ष उत्पन्न होता है। संघर्ष से व्यक्ति अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाता है और इससे प्रणोद में कमी नहीं आती है और व्यक्ति उच्च प्रणोद की स्थिति में सतत बना होता है। इससे उसमें तनाव एवं चिड़चिड़ापन उत्पन्न होता है जिसे डोलार्ड तथा मिलर (1959) ने विशेष संज्ञा अर्थात् दुर्दषा कहा है। दुर्दषा से घिरे हुए व्यक्ति में कई तरह के असामान्य लक्षण जैसे अनिद्रा, दुर्भीति, बेचैनी, भावषून्यता आदि प्रधान रूप से देखे जाते हैं। संघर्ष से व्यक्ति में अवरोध उत्पन्न होता है अर्थात् विचारों एवं चिन्तन का अवरोध उत्पन्न होता है जिससे दमन उत्पन्न होता है। दमन से व्यक्ति में विवकी एवं अविवेकी क्रियाओं के बीच अन्तर करने की क्षमता समाप्त हो जाती है और इस तरह की स्थिति को डोलार्ड तथा मिलर ने मूढ़ता की संज्ञा दी है। ऐसे मूढ़ व्यक्ति आत्म-दोषयुक्त ढंग से व्यवहार करते हैं जिससे व्यक्ति में असामान्यता उत्पन्न हो जाती है।

7.3.8 मनोचिकित्सा-

डोलार्ड तथा मिलर (1950) यह मानते हैं कि असामान्य व्यवहार सीखा हुआ व्यवहार होता है और मनोचिकित्सा में व्यक्ति को नये ढंग से समायोजन करने की क्षमता को सिखलाया जाता है। इन लोगों ने मनोचिकित्सा में फ्रायड द्वारा प्रतिपादित प्रविधियों जैसे स्पप्न विष्लेषण, स्वतंत्र साहचर्य तथा हस्तान्तरण आदि को महत्वपूर्ण बतलाया है तथा साथ-ही-साथ सामान्यीकरण, विभेदीकरण तथा विलोपन को उपयोगी बतलाया है। इन प्रक्रियाओं के माध्यम से रोगी को उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओं का प्रयोग अधिक-से-अधिक करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जब रोगी सही-सही ढंग से विवकी एवं अविवेकी क्रियाओं में अन्तर करना सीख लेता है, तो उससे दमन एवं स्पष्ट

अवरोध अपने आप समाप्त हो जाते हैं और उसमें दूरदर्षिता, वास्तविक प्रत्याषाएँ, अनुकूली योजना एवं सूझ-बूझ आदि काफी बढ़ जाते है।

7.4 डोलार्ड तथा मिलर सिद्धान्त का मूल्यांकन-

डोलार्ड तथा मिलर द्वारा प्रतिपादित उद्धीपक अनुक्रिया सिद्धान्त का मूल्यांकन करने के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस सिद्धान्त के कुछ गुण एवं परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

1. डोलार्ड तथा मिलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्ति के सिद्धान्त को वैण्डुरा के सामाजिक-सीखना सिद्धान्त की तुलना में अधिक विस्तृत माना जाता है। इस सिद्धान्त में व्यवहारवादी नियमों को मनोविश्लेषण तथा सामाजिक विज्ञानों से जोड़ने की कोशिश की गयी है। फलस्वरूप, इसमें व्यक्तित्व की एक विस्तृत एवं सामान्य व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।
2. डोलार्ड एवं मिलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व का सिद्धान्त पहले ऐसा सिद्धान्त है जिसमें स्पष्ट एवं अस्पष्ट दोनों ही तरह के शाब्दिक व्यवहार पर संकेत तथा अनुक्रिया के रूप में बल डाला गया है। संकेत उत्पन्न अनुक्रिया के आधार पर व्यक्तित्व के उच्चतर मानसिक क्रियाओं की संतोषजनक व्याख्या हो पायी है।
3. इस सिद्धान्त के सभी प्रमुख संप्रत्यय स्पष्ट रूप से एवं वैज्ञानिक ढंग से परिभाषित है तथा आनुभाविक घटनाओं से वस्तुनिष्ठ रूप से संबंधित है। इससे इस सिद्धान्त की विश्वसनीयता एवं निर्भरता अधिक बढ़ जाती है।
4. इस सिद्धान्त की व्याख्या से स्पष्ट है कि इसमें एक ठोस एवं प्रत्यक्षवादी उपागम पर अधिक बल डाला गया है तथा आत्मन्ष्ठि संप्रत्यय जैसे अन्तर्ज्ञान आदि का सहारा व्यक्तित्व की व्याख्या में नहीं की गयी है।
5. डोलार्ड एवं मिलर का सिद्धान्त विशिष्ट रूप से एवं सावधानीपूर्वक सीखने की प्रक्रिया का विश्लेषण करता है तथा उस पर व्यक्तित्व की व्याख्या को आधारित किया गया है। फलस्वरूप, इस क्षेत्र में अन्य सिद्धान्तों के लिए यह सिद्धान्त एक मॉडल के रूप में कार्य करता है।
6. इस सिद्धान्त में व्यक्तित्व की व्याख्या करने में सामाजिक सांस्कृतिक चरों का खुलकर प्रयोग किया गया है। फलस्वरूप, इस सिद्धान्त को सांस्कृतिक मानवषास्त्रियों द्वारा भी अधिक प्रयोग में लाया गया है।

इन गुणों के बावजूद व्यक्तित्व के इस सिद्धान्त के कुछ परिसीमाएँ हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1. डोलार्ड एवं मिलर द्वारा प्रतिपादित उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त की सबसे जबर्दस्त आलोचना यह है कि इस सिद्धान्त में न तो उद्धीपक और न ही अनुक्रिया को ही विषिष्ट रूप से समझने की कोषिष की गयी है। दूसरे शब्दों में, इस सिद्धान्त में मानव व्यवहार के उपयुक्त उद्धीपकों को तथा उन अनुक्रियाओं जिससे व्यवहार की उत्पत्ति होती है, को वस्तुनिष्ठ रूप से नहीं परिभाषित नहीं किया गया है। आलोचकों ने व्यंग्यात्मक टिप्पणी करते हुए कहा है कि इस सिद्धान्त में उद्धीपक एवं अनुक्रिया के संबंध के बारे में अधिक कहा गया है जबकि स्वयं उद्धीपक तथा अनुक्रिया के बारे में कोई खास बात नहीं कही गयी है।

2. इस सिद्धान्त की एक अन्य आलोचना यह है कि यह अत्यन्त सरल सिद्धान्त है जिसमें मान व्यवहारों को छोटी-छोटी इकाइयों में बाँट कर अध्ययन करने पर बल डाला गया है। पूर्णतावादी सिद्धान्तवादियों का मत है कि प्राणी को जब तक कार्यात्मक रूप से एक सम्पूर्ण प्राणी के रूप में नहीं समझा जाता है, उनके व्यवहारों को समझना एवं उसके बारे में पूर्वकथन करना संभव नहीं है।
3. उद्धीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त की आलोचना इसलिए भी की गयी है क्योंकि इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या करने में भाषा एवं चिन्तन प्रक्रियाओं के महत्व की उपेक्षा की गयी है। दूसरे शब्दों में इस सिद्वान्त द्धारा इस तथ्य की व्याख्या नहीं होती है कि व्यक्ति जटिल संज्ञानात्मक कार्यो को किस प्रकार सम्पन्न कर पाता है।
4. कुछ आलोचकों का मत है कि मिलर तथा डोलार्ड द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धान्त की मूल प्राक्कल्पनाएँ पषुओं पर न कि मानव पर किये गए तथ्यों पर आधारित है। क्या पषुओं पर किये गए अध्ययनों के आधार पर मनुष्यों की उन विशेषताओं के बारे में समझा जा सकता है जो पषुओं की विशेषताओं से भिन्न होते हैं? इस प्रश्न का संतोषजनक उत्तर हमें अभी तक इस सिद्धान्त के आधार पर नहीं मिल पाया है।

इन आलोचनाओं के बावजूद मिलर तथा डोलार्ड द्वारा प्रतिपादित उद्धीपक अनुक्रिया सिद्धान्त को एक प्रमुख सिद्धान्त माना गया है क्योंकि यह वस्तुनिष्ठ एवं आनुभाविक शोधों पर आधारित है।

अभ्यास प्रश्न -

1. व्यक्तित्व के डोलार्ड एवं मिलर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त में जॉन डोलार्ड थे-

क. एक मनोवैज्ञानिक ख. एक समाजशास्त्री

ग. एक इतिहासकार घ. इसमें से कोई नहीं

2. डोलार्ड एवं मिलर ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में कितनी तरह के संघर्ष का वर्णन किया है।

क. दो ख. तीन

ग. चार घ. पाँच

7.5 सार संक्षेप

डोलार्ड एवं मिलर का व्यक्तित्व सिद्धान्त एक अधिगम सिद्धान्त है जिसमें निम्नलिखित तीन तत्वों का अनोखा संगम देखने को मिलता है-सीखने का प्रयोगात्मक अध्ययन, व्यक्तित्व विकास का मनोविष्लेषणात्मक उपागम तथा व्यवहार को समझने में अन्तर्दृष्टि।

इस सिद्धान्त के प्रमुख सम्प्रत्यय निम्नलिखित हैं-सीखने के मूलतत्व उच्चतर मानसिक क्रियाएं, अनुकरण, भय एवं चिन्ता, संघर्ष, दमन एवं अचेतन, व्यक्तित्व का असामान्य विकास तथा मनोचिकित्सा।

7.6 पारिभाषिक शब्दावली-

प्रणोदः एक ऐसा शक्तिषाली उद्धीपक जो व्यक्ति/प्राणी को क्रिया करने के लिए प्रेरित तो करता है, परन्तु उस क्रिया के स्वरूप का निर्धारण नहीं करता।

पुनर्बलनः एक ऐसी घटना जो संकेत या अनुक्रिया के बीच के सम्बन्ध को मजबूत करके भविष्य में अनुक्रिया के होने की संभावना को बढ़ाता है।

7.7 स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न -

1. डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त की समीक्षा करें।
2. डोलार्ड एवं मिलर के व्यक्तित्व सिद्धान्त के प्रमुख संप्रत्यय कौन-कौन से हैं? सीखने के मूल तत्वों की व्याख्या करें।
3. डोलार्ड एवं मिलर के अनुसार व्यक्तित्व के लिए विभिन्न तरह के मानसिक संघर्ष की संगतता बतायें।

7.8 संदर्भ-ग्रन्थ सूची-

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान- अरूण कुमार सिंह/आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास।
2. सामान्य मनोविज्ञान- सिन्हा एवं मिश्रा, भारती भवन।
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान- सुलैमान एवं खान, शुक्ला बुक डिपो, पटना-
4. Walter Mischel – Introduction to Personality.
5. Shaffer & Lazarus – Theories of Personality.
6. Eysenck – The scientific study of personality.

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख 2. ग

इकाई 8. व्यक्तित्व के प्रकार एवं शीलगुण सिद्धान्त; प्रकार एवं शीलगुण में अन्तर, व्यक्तित्व के लिए शीलगुण दृष्टिकोण (Trait and Type Theory of personality; Differences between Trait and Type, State/trait Approaches to Personality)

इकाई संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 शील गुण उपागमों का वर्णन

8.3.1 शीलगुण सिद्धान्त की विशेषतायें

8.3.2 शीलगुण सिद्धान्त में मनोवैज्ञानिकों के विचार

8.3.2.1 आलपोर्ट का योगदान

8.3.2.2 कैटेल का योगदान

8.3.2.3 एच.जे. आइजेंक का योगदान

8.3.2.3.1 व्यक्तित्व का स्वरूप

8.3.2.3.2 व्यक्तित्व के प्रकार

8.3.2.4 व्यक्तित्व के पंच आयामी सिद्धान्त

8.3.3 शीलगुण सिद्धान्त का मूल्यांकन

8.4 प्रकार सिद्धान्त (Type Theory)-

8.4.1 प्रकार सिद्धान्त की विशेषतायें

8.4.2 प्रकार सिद्धान्त में मनोवैज्ञानिकों के विचार

8.4.2.1 शारीरिक संरचना के आधार पर

8.4.2.1.1 क्रैश्मर का योगदान

8.4.2.1.2 शेल्डन का योगदान

8.4.2.2 मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर

8.4.2.2.1 युंग के व्यक्तित्व प्रकार

8.4.2.3 प्रकार सिद्धान्त का मूल्यांकन

8.5 व्यक्तित्व के प्रकार एवं शीलगुण सिद्धान्त में विभिन्नताएं

8.6 स्टेट व्यक्तित्व उपागम (State approaches to personality)

8.6.1 स्टेट/ प्रकार व्यक्तित्व उपागम में विभिन्नतायें

8.7 सारांश

8.8 शब्दावली

8.9 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक संस्थानो का गत्यामक संगठन है जो वातावरण के प्रति व्यक्ति के अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है। अर्थात व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक संस्थानों अथवा मानसिक एवं शारिरिक संस्थानो का गत्यामक संगठन है क्योंकि व्यक्ति का व्यक्तित्व बाल्यावस्था से लेकर जीवनपर्यन्त परिवर्तित होता रहता है और यही व्यक्ति का जीवनपर्यन्त मार्गान्तिकरण करता है।व्यक्ति संसार में कुछ आनुवांशिक गुणों को लेकर आता है जो उसके शारीरिक और मानसिक विकास में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का निर्धारण करते हैं। प्रत्येक मानव प्राणी वशिष्ट भौगोलिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेश में विकसित होता है। सामाजिक परिवेश में परिवार, विद्यालय, सामाजिक समूह का व्यक्तित्व के विकास पर विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समूह और समाज में कुछ मूल्य पाये जाते हैं। इन मूल्यों और आदर्शों का, जो संस्कृति के प्रमुख तत्त्व हैं, व्यक्तित्व विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार व्यक्ति का व्यक्तित्व आनुवंशिक और परिवेशगत दोनों प्रकार के कारकों द्वारा निर्धारित होता है ।व्यक्तित्व के वर्णनात्मक सिद्धान्तों के अन्तर्गत दो तरह के सिद्धान्त आते हैं- प्रकार सिद्धान्त तथा शीलगुण सिद्धान्त। व्यक्तित्व अध्ययन का प्रकार एवं शीलगुण उपागम व्यक्ति की विशेषताओं पर बल देता है तथा वह अध्ययन करने का प्रयास करता है कि ये विशेषतायें किस प्रकार संगठित होती हैं।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- व्यक्तित्व के उपागमों के बारे में बता सकेंगे।
- व्यक्ति के शीलगुण सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे |
- व्यक्ति के प्रकार सिद्धांत की व्याख्या कर सकेंगे|

व्यक्तित्व के प्रकार एवं शीलगुण सिद्धांत में अंतर का अध्ययन सकेंगे|

8.3 व्यक्तित्व के उपागमों का वर्णन

8.3.1 शीलगुण सिद्धांत (Trait Theory). शीलगुण व्यक्ति के व्यवहारों की एक ऐसी विशेषता है जो विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में प्रकट होती है। किसी व्यक्ति को ईमानदार, उत्साही, संवेदनशील आदि कहा जाता है। ये सभी शब्द विशेषण हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति के प्रमुख लक्षणों को व्यक्त किया जा सकता है। इन्हीं लक्षणों को शीलगुण कहते हैं। सबसे पहले शीलगुण के द्वारा व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए आलपोर्ट एवं आडवर्ट ने 17953 अंग्रेजी शब्दों का चयन किया जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की विशेषताओं को व्यक्त किया जा सकता है। आलपोर्ट (1937) के अनुसार 'प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न मात्राओं में अनेक शीलगुण होते हैं और इन शीलगुणों को संगठन एक निश्चित प्रकार का होता है।'

शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व की रचना विभिन्न शीलगुणों से हुई है। व्यक्तित्व रूपी भवन की इकाई को शीलगुण कहते हैं। विभिन्न शीलगुणों के संगठन से व्यक्तित्व संरचित होता है। शीलगुण अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार द्वारा प्रकट होते हैं। चैपलिन के अनुसार- 'शीलगुण अपेक्षाकृत स्थिर एवं संगत व्यवहार प्रतिरूप है जिनकी अभिव्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में होती है।' प्रत्येक शीलगुण की

मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। जैसे- प्रभुत्व शीलगुण सभी व्यक्तियों में होता है, परन्तु किसी व्यक्ति में इसकी मात्रा कम होती है और किसी में अधिक। इसी कारण कुछ मनोवैज्ञानिकों ने शीलगुण के स्थान पर विमा या आयाम शब्द का प्रयोग किया है। विशेष रूप से कैटेल और आइजेंक ने इस बात पर बल दिया है कि प्रत्येक शीलगुण व्यक्तित्व की एक विमा है, इस विमा के विभिन्न बिन्दुओं पर उस विशेष शीलगुण की मात्राओं को अंकित किया जा सकता है। इस प्रकार विमा के निश्चित बिन्दु से शीलगुण की एक निश्चित मात्रा का बोध होता है।

शीलगुण सिद्धान्त की विशेषतायें (Characteristics of Trait Theory).

इस सिद्धांत की विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

1. इस सिद्धांत का सबसे बड़ा गुण यह है कि इससे व्यक्तित्व के आधार तत्वों को समझने में सहायता मिलती है।
2. शीलगुण सिद्धान्त के आधार पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बीच समानता की व्याख्या की जा सकती है।
3. यह सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति का व्यवहार स्थिर और संगतिपूर्ण होता है।
4. आइजेंक द्वारा प्रस्तुत द्विध्रुवीय विमाओं के आधार पर व्यक्तित्व की अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता, मनःस्नानुविकृति-स्थिरता तथा मनोविक्षिप्तता-यथार्थता प्रवृत्ति की व्याख्या सरल हो जाती है।

8.3.2. शीलगुण सिद्धान्त में मनोवैज्ञानिकों के विचार- इस तरह से शीलगुण में व्यक्तित्व के उन महत्वपूर्ण विमाओं (dimensions) की पहचान करने की कोशिश की जाती है जिनके आधार पर व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न समझे जाते हैं। इस उपागम की मान्यता यह है कि यदि एक बार यह जान लिया जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किस तरह से भिन्न है, फिर यह आसानी से मापा जा सकता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कितना भिन्न है और तब अध्ययनकर्ता उन अन्तरों को विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति व्यवहार के अन्तरों के साथ संबंद्ध कर उसकी व्याख्या करता है। शीलगुण सिद्धान्त में मूल रूप से दो मनोवैज्ञानिकों के विचार का उल्लेख किया जाता है जो निम्नांकित है-

8.3.2.1. आलपोर्ट का योगदान (Contribution of Allport)- आलपोर्ट का नाम शीलगुण सिद्धान्त के साथ गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। यही कारण है कि आलपोर्ट द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त को 'आलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त (Allport's trait theroy) कहा जाता है जिसकी विस्तृत चर्चा हम आगे करेंगे। आलपोर्ट ने शीलगुण को मुख्यतः दो भागों में बांटा है जो इस प्रकार है-

1. **सामान्य शीलगुण (Common trait**)- सामान्य शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जो किसी समाज या संस्कृति (culture) के अधिकतर लोगों से पाया जाता है। फलतः सामान्यस शीलगुण ऐसा शीलगुण है जिसके आधार पर किसी समाज या संस्कृति के अधिकतर लोगों की तुलना आपस में की जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रभुत्व (dominance) की माप पर मोहन का शीलगुण यदि 70वें शततमक (percentile) पर है, तो इसका मतलब हुआ कि 7०% व्यक्तियों का गुण मोहन की तुलना में कम है। स्पष्टतः यहाँ प्रभुत्व के शीलगुणों के आधार पर मोहन की तुलना अन्य व्यक्तियों से की जा रही है। अतः प्रभुत्व एक सामान्य शीलगुण (Common trait) का उदाहरण हुआ।
2. **व्यक्तिगत शीलगुण (Personal trait**)- आलपोर्ट (Allport) के अनुसार व्यक्तिगत शीलगुण (personal trait) एक दूसरा महत्वपूर्ण शीलगुण है जिसे उन्होंने व्यक्तिगत प्रवृत्ति (personal disposition) कहना अधिक उचित ठहराया है। उनका विचार है कि व्यक्तिगत प्रवृत्ति (disposition) से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से

होता है जो किसी समाज या संस्कृति के व्यक्ति विशेष तक ही सीमित होता है, अर्थात उस समय या संस्कृति के सभी व्यक्तियों के बीच तुलना नहीं की जा सकती है परन्तु एक ही व्यक्ति का तुलनात्मक (active) अध्ययन भिन्न-भिन्न पहलुओं पर हो सकता है। आलपोर्ट ने अपने शब्दावली में सामान्य शीलगुण के लिए सिर्फ शीलगुण का प्रयोग किया तथा वैयक्तिक शीलगुण के लिए वैयक्तिक पूर्ववृत्ति का प्रयोग किया। आलपोर्ट ने वैयक्तिक पूर्ववृत्ति को निम्नांकित तीन भागों में बॉटा है-

1. कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण
2. केन्द्रीय पूर्ववृत्ति या शीलगुण
3. गौण पूर्ववृत्ति या शीलगुण

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है-

(1) कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण (Cardinal disposition): कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुण से होता है जो व्यक्ति में इतना अधिक व्यापक होता है कि वह प्रत्येक व्यवहार इसी से प्रभावित होकर करता पाया जाता है। जैसे, शान्ति एवं अहिंसा में विश्वास महात्मा गाँधी के कार्डिनल शीलगुण का एक उदाहरण है। आक्रामकता हिटलर एवं नेपोलियन का एक कार्डिनल शीलगुण था जिससे वे विश्वविख्यात थे। यह शीलगुण सभी व्यक्तियों में नहीं पाया जाता है परन्तु जिसमें पाया जाता है वह इसी शीलगुण के लिए जाने जाते है।

(2) **केन्द्रीय प्रवृत्ति या शीलगुण (Central Disposition)** केन्द्रीय प्रवृत्ति सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 ऐसे प्रवृत्तियाँ या गुण होते हैं जिसके भीतर उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। एक तरह से यदि कहा जाय कि व्यक्तित्व इन 5 से 10 गुणों के भीतर जिंदा रहता है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस तरह के गुणों या प्रवृत्तियों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहा जाता है। सामाजिकता (Sociability) आत्मविश्वास (Self-confidence) उदासी (Depression),आदि कुछ केन्द्रीय प्रवृत्ति (Central disposition) के उदाहरण हैं।

(3) **गौण प्रवृत्ति या शीलगुण (Secondary Disposition)** - गौण प्रवृत्ति वैसे गुणों को कहा जाता है जो व्यक्तित्व के लिए कम महत्वपूर्ण, कम संगत (Consistent), कम अर्थपूर्ण तथा कम स्पष्ट होते हैं, जैसे-खाने की आदत, केश सज्जा, पहनावा, आदि कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जिनके आधार पर व्यक्तिव को समझने में कोई खास मदद नहीं मिलती हैं और न ही इसके आधार पर व्यक्तित्व के बारे में कोई खास अर्थ ही लगाया जा सकता है। आलपोर्ट ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि एक व्यक्ति के लिए एक गुण केन्द्रीय प्रवृत्ति (Central disposition) हो सकता है, परन्तु दूसरे के लिए वही गुण गौण प्रवृत्ति (**Secondary Disposition**) हो सकता है। उदाहरणार्थ, वहिर्मुखी (extrovert) के लिए सामाजिकता एक केन्द्रीय प्रवृत्ति है परन्तु अन्तर्मुखी (Introvert)के लिए सामाजिकता एक गौण प्रवृत्ति है। इस तरह से हम देखते हैं कि आलपोर्ट ने व्यक्तित्व के शीलगुणों को कई भागों में बाँटकर एक यथोचित व्याख्या प्रस्तुत की है।

8.3.2.2. कैटेल का योगदान (Contribution of Cattell)- शीलगुण सिद्धान्त में आलपोर्ट के बाद कैटेल का नाम अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। इन्होंने शीलगुण सिद्धान्त में आलपोर्ट के योगदान करके इस सिद्धान्त को व्यक्तित्व की व्याख्या करने में काफी प्रबल बनाया है।

कैटेल ने प्रमुख शीलगुणों की खोज की शुरूआत आलपोर्ट द्वारा बतलाये गए 18,000 शीलगुणों में से 4,500 शीलगुणों को चुनकर किया। बाद में, इनमें से समानार्थ (Synonym) शब्दों को एक साथ मिलाकर इसकी संख्या उन्होंने 200 कर दी और फिर बाद में विशेष सांख्यिकीय विधि (Statistical method) यानी कारक विश्लेषण (Factor analysis) के सहारे अन्तर सहसम्बन्ध (Interco relation) द्वारा उसकी संख्या 35 कर दी।

कैटेल ने शीलगुणों को कई ढंग से विभाजित कर अध्ययन किया है। उनका सबसे मशहूर वर्गीकरण वह है जिसमें उन्होंने व्यक्तित्व के शीलगुणों का सतही शीलगुण (surface trait) तथा मूल या स्त्रोत शीलगुण (source trait) के रूप में विभाजन किया है। इन दोनों का वर्णन निम्नांकित है-

(1) **सतही शीलगुण (surface trait)** -जैसा कि नाम से भी स्पष्ट है, इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व की ऊपरी सतह या परिधि पर होता है यानी, इस तरह के शीलगुण ऐसे होते हैं जो व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया (interaction) में आसानी में अभिव्यक्त हो जाते हैं। इसकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होती हे कि सम्बन्धित शीलगुण के बारे में व्यक्ति में कोई दो मत हो ही नहीं सकते हैं। जैसे-प्रसन्नता, परोपकारिता, सत्यनिष्ठा कुछ एसे शीलगुण हैं जो सतही शीलगुण के उदाहरण हैं जिनकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में स्पष्ट रूप से होती है।

(2) **स्त्रोत या मूल शीलगुण (source trait)** - कैटेल के अनुसार मूल शीलगुण व्यक्तिव की अधिक महत्वपूर्ण संरचना है तथा इसकी संख्या सतही शीलगुण की अपेक्षा कम होती है। मूल शीलगुण सतही शीलगुण के समान, व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो पाते हैं। अतः इसका प्रेक्षण (observation) सीधे नहीं किया जा सकता है। कैटेल के अनुसार मूल शीलगुण व्यक्तित्व की भीतरी संरचना होती है जिसके बारे में हमें ज्ञान तब होता है जब हम उससे सम्बन्धित सतही शीलगुण को एक साथ मिलाने की कोशिश करते हैं। जैसे- सामुदायिकता (gregariousness),निःस्वार्थता (unselfishness) तथा हास्य (humour) तीन ऐसे सतही शीलगुण हैं जिन्हें एक साथ मिलाने से एक नया मूल शीलगुण बनता है जिसे मित्रता की संज्ञा दी जाती है।

सामान्य रूप से मूल शीलगुण (source trait)को कैटेल (Cattell) ने दो भागों में बाँटा है-

a. पर्यावरण-प्रभावित शीलगुण (environmental-mold traits)तथा

b. स्वाभाविक शीलगुण (constitutional traits)

a. **पर्यावरण-प्रभावित शीलगुण (environmental-mold traits)** - कुछ मूल शीलगुण ऐसे होते हैं जिनके विकास में आनुवंशिकता (heredity) की अपेक्षा वातावरण-सम्बन्धी कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन्हें पर्यावरण-प्रभावित शीलगुण (environmental-mold traits) कहा जाता है।

b. **स्वाभाविक शीलगुण (constitutional traits)** - कुछ ऐसे शीलगुण होते हैं जिनके विकास में वातावरण की अपेक्षा आनुवंशिकता का प्रभाव अधिक पड़ता है। इस तरह के शीलगुण को स्वाभाविक शीलगुण (constitutional traits) कहा जाता है।

कैटेल ने शीलगुणों का विभाजन उस व्यवहार पर भी किया है जिससे वे सम्बन्धित होते हैं। इस कसौटी के आधार पर शीलगुण के तीन प्रकार हैं-

a. गत्यात्मक शीलगुण (**dynamic trait**)

b. क्षमता शीलगुण (**ability traits**)

c. चित्तप्रकृति शीलगुण (**temperament trait**)

a. **गत्यात्मक शीलगुण (dynamic trait)**- गत्यात्मक शीलगुण वैसे शीलगुण को कहा जाता है जिससे व्यक्ति का व्यवहार एक खास लक्ष्य की ओर अग्रसित होता है। मनोवृत्ति (attitude), लालसा (urge) तथा मनोभाव (sentiments) गत्यात्मक शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं।

b. **क्षमता शीलगुण (ability traits)**- क्षमता शीलगुण से तात्पर्य कुछ वैसे शीलगुणों से होता है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने में काफी प्रभावकारी सिद्ध होते हैं।

c**. चित्तप्रकृति शीलगुण (temperament trait)**- चित्तप्रकृति शीलगुण से तात्पर्य, वैसे शीलगुणों से होता है जो किसी लक्ष्य पर पहुँचने के प्रयास से उत्पन्न होता है तथा जिसका सम्बन्ध व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति (emotional state) अनुक्रिया करने की शक्ति (energy) तथा दर (rate) आदि से सम्बन्धित होता है। सांवेगिक स्थिरता ,मस्तमौलापन आदि चित्तप्रकृति शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं।

कैटेल ने यह भी बतलाया है कि व्यक्तित्व के शीलगुणों का अध्ययन करने के लिए मूलतः तीन स्रोत (source) हैं-जीवन अभिलेख (life record) आत्म रेटिंग (self-rating) तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षण (objective test) पहले स्रोत से प्राप्त आँकड़ों को L-data, दूसरे स्रोत से प्राप्त आँकड़ों को Q-data तथा तीसरे स्रोत से प्राप्त आँकड़ों को OT-data कहा जाता है।

8.3.2.3. एच.जे. आइजेंक का योगदान (Contribution of Eysenk)-

आइजेंक ने भी अपने अध्ययन में गणितीय उपागम को अपनाया है। उन्होंने विज्ञान में मापन की आवश्यकता पर बल दिया है और अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षण निर्मित किए हैं। व्यक्तित्व सिद्धान्त के सम्बन्ध में उनका कहना है कि इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शेष है फिर भी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किए हैं वे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिकों के विचारों को ग्रहण करते हुए एक अत्यन्त तर्कसंगत व्यक्तित्व सिद्धांत की स्थापना की है। व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उनके प्रमुख विचार इस प्रकार हैं-

8.3.2.3.1. व्यक्तित्व का स्वरूप- आइजेंक के अनुसार व्यक्तित्व के स्वरूप पर विचार करते समय उसके संज्ञानात्मक, चारित्रिक, भावनात्मक तथा शारीरिक पक्ष पर ध्यान देना आवश्यक है। आइजेंक ने व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए लिखा है-

‘‘व्यक्तित्व प्राणी के वास्तविक एवं सम्भाव्य व्यवहार संरूप का वह समग्र है जिसका निर्धारण आनुवंशिकता और वातावरण करता है। इसका प्रारम्भ तथा गठन व्यवहार संरूप से सम्बन्धित अनुभागों के गठन तथा उनसे सम्बन्धित प्रकार्यात्मक अन्तर्क्रिया के द्वारा होता है।

एक अन्य परिभाषा में आइजेंक ने व्यक्तित्व को व्यवहार बताया है-

‘‘व्यक्तित्व व्यवहार है, बशर्ते व्यवहार में संगत वाचिक एवं स्वायत्त अनुक्रिया तथा प्रेक्षणीय निष्पादन सम्मिलित हो। यह केवल विशिष्ट उद्दीपक-अनुक्रिया यांत्रिकी का समुच्चय नहीं है।’’

आलपोर्ट द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व की परिभाषा को आइजेंक ने स्वीकार किया है। इस प्रकार आइजेंक के अनुसार व्यक्तित्व सभी संज्ञानात्मक, भावनात्मक, क्रियात्मक और शारीरिक लक्षणों का एक समग्र समुच्चय है।

3.2.3.2. व्यक्तित्व के प्रकार -

जिस प्रकार कैटेल ने अपने सिद्धान्त में शीलगुणों पर अत्यधिक बल दिया है उसी प्रकार आइजेंक ने व्यक्तित्व निरूपण में प्रकारों को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण माना है। आइजेंक ने कारक विश्लेषण के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्राथमिक आयाम बताए हैं-

a. अन्तर्मुखता- बहिर्मुखता (Introversion-Extroversion)
b. मनस्तापीयता- स्थिरता (Neuroticism- Stability)
c. मनोविक्षिप्तता - पराहं की क्रियाये (Psychoticism- Superego function)

a. अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता**(Introversion-Extroversion)-**अन्तर्मुखी व्यक्तियों में पराहं की प्रधानता होती है और बहिर्मुखी व्यक्तियों के कार्य एवं व्यवहार अधिकतर इदं से प्रेरित होते हैं।

b. मनस्तापीयता- स्थिरता **(Neuroticism- Stability)** - मनस्तापी व्यक्ति में मनस्ताप के और मनोविक्षिप्त व्यक्ति में मनोविक्षिप्तता के शीलगुण और लक्षण पाये जाते हैं।

c. मनोविक्षिप्तता- पराहं की क्रियाये **(Psychoticism- Superego function)** - मनोविक्षिप्त व्यक्ति में मनोविक्षिप्तता के शीलगुण और लक्षण पाये जाते हैं।

आइजेंक ने अनेक प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तित्व प्रकार और व्यक्तित्व आयाम आनुवंशिकता से अत्यधिक प्रभावित होते हैं। अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व में शारीरिक दृष्टि से पाये जाने वाले अन्तर का आधार मस्तिष्क का एक गुण है जिसके कारण व्यक्ति किन्हीं परिस्थितियों में जागृत और बहिर्मुखी हो जाता है और किन्हीं में वह शान्त और अन्तर्मुखी रहता है व्यक्तित्व के इस आयाम के शारीरिक पक्ष पर आइजेंक ने समुचित प्रकाश डाला है। आइजेंक के अनुसार व्यक्तित्व तीन प्रकार के होते हैं फिर भी उनका मत है कि किसी व्यक्ति को पूर्णरूप से एक प्रकार का नहीं माना जा सकता। दूसरे प्रकार की विशेषतायें भी व्यक्ति में पायी जाती है। व्यवहार की दृष्टि से बहुत से व्यक्तियों में मनस्तापी और मनोविक्षिप्तता दोनों के लक्षण होते हैं और बहुत से व्यक्तियों में सामान्य तथा मनस्तापी दोनों की विशेषतायें पायी जाती है।

व्यक्तित्व के कारकों का अध्ययन करके आइजेंक ने यह बताया कि इन कारकों में पदानुक्रमिक सम्बन्ध पाया जाता है। हॉल एवं लिण्डजे के अनुसार आइजेंक व्यक्तित्व को पदानुक्रम में संगठित मानते हैं। आइजेंक ने व्यक्तित्व के चार प्रमुख कारक बताए हैं-

1. त्रुटि कारक
2. विशिष्ट कारक
3. सामूहिक कारक
4. सामान्य कारक

1. सबसे निचले स्तर पर त्रुटि कारक पाया जाता है। यह सबसे कम महत्वपूर्ण होता है। इस कारक के फलस्वरूप व्यक्तित्व सम्बन्धी कुछ विशिष्ट अनुक्रियाएँ होती हैं जिनका कोई विशेष महत्व नहीं होता।

2. दूसरे सोपान पर आइजेंक ने विशिष्ट कारक को रखा है। इस कारक के फलस्वरूप होने वाली अनुक्रियाओं को आदतजन्य अनुक्रियाएँ कहते हैं। व्यक्ति की आदतों के मूल में विशिष्ट कारक होते हैं।

3. तीसरे सोपान पर सामूहिक कारक होते हैं। इन कारकों का सम्बन्ध उस समूह से होता है जिसमें व्यक्ति रहता है। सामूहिक कारक से ही व्यक्ति के शीलगुण प्रेरित होते हैं। आइजेंक के अनुसार शीलगुण ऐसी आदतें हैं जिनमें निरन्तरता और समरूपता पाई जाती है। इन सामूहिक कारकों द्वारा व्यक्ति के शीलगुणों एवं अभिवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं।

4. चौथे और अन्तिम सोपान पर आइजेंक ने सामान्य कारक को स्थान दिया है। ये कारक सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि इनके द्वारा व्यक्तित्व के प्रकार निर्धारित होते हैं। आइजेंक ने शीलगुणों के पुन्ज को प्रकार कहा है। व्यक्ति के शीलगुणों से अधिक महत्वपूर्ण उनके प्रकार हैं क्योंकि वे ही शीलगुणों के पुन्ज हैं।

आइजेंक ने व्यक्तित्व का जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया है उसका आधार गणितीय एवं मात्रात्मक है परन्तु वह पूर्णरूपेण इन्द्रियानुभविक नहीं है। उसमें सामान्य तथा विशेष तत्वों का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। आइजेंक की यह मान्यता उसके सिद्धान्त का मूल आधार है। आइजेंक यह भी मानते हैं कि व्यक्तित्व का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए उसकी पूर्ववर्ती और अनुवर्ती परिस्थितियों का सही-सही निरीक्षण करना आवश्यक है। इस प्रकार आइजेंक ने व्यक्तित्व को एक मध्यवर्ती चर माना है क्योंकि इसका सम्बन्ध पूर्ववर्ती और अनुवर्ती परिस्थितियों से होता है। आइजेंक ने व्यक्तित्व अध्ययन के व्यष्टिवादी उपागम को स्वीकार नहीं किया है। वह व्यक्तित्व की अनन्यता को महत्त्व नहीं देता।

व्यक्तित्व की संकल्पना को प्रायोगिक एवं सामाजिक मनोविज्ञान में उपयोगी बनाने की दृष्टि से आइजेंक इस बात पर बल देता है कि व्यक्तित्व का विश्लेषण गणितीय आधार पर किया जाय क्योंकि न तो व्यक्तित्व अनन्य है, न सार्वभौम। गणितीय आधार पर अध्ययन करने से इसके कुछ आयाम सामने उपस्थित होते हैं। आइजेंक ने व्यक्तित्व के तीन प्रकार बतलाए हैं, वे वास्तव में व्यक्तित्व के तीन ऐसे आयाम हैं जो उसके व्यक्तित्व सिद्धान्त पर समुचित प्रकाश डालते हैं।

मूल्यांकन -

1. आइजेंक ने व्यक्तित्व अध्ययन के लिए गणितीय उपागम अपनाया।
2. उसने व्यक्तित्व सम्बन्धी शोध कार्य के लिए ऐसी विधियों का उपयोग किया जिनको पहले प्रयुक्त नहीं किया गया।
3. ऐसी ही एक विधि है निष्कर्ष विश्लेषण । निष्कर्ष विश्लेषण के ही आधार पर आइजेंक ने व्यक्तित्व के तीन प्रकार एवं तीन आयाम बताए हैं।
4. आइजेंक की निकष विश्लेषण की विधि कारक विश्लेषण में मिलती जुलती है।
5. हॉल एवं लिण्डजे के अनुसार आइजेंक ने व्यक्तित्व सम्बन्धी धारणाओं की जाँच करके उनके मध्य पाये जाने वाले अनावश्यक भ्रम के जाल को काट-छाँट व्यक्तित्व सिद्धांत को एक सुचारु स्वरूप देने का प्रयास किया।
6. बिस्काफ के अनुसार फ्रायड के बाद आइजेंक ऐसा मनोवैज्ञानिक था जिसने व्यक्तित्व मनोविज्ञान के मनोचिकित्सा के क्षेत्र में महान योगदान किया।
7. आइजेंक ने व्यक्तित्व के जैविक निर्धारकों पर अधिक बल दिया है।

8. आइजेंक ने अपने व्यक्तित्व सिद्धांत के विषय में अत्यधिक शोध कार्य को प्रोत्साहन दिया है।
9. उसकी धारणा है कि उसके व्यक्तित्व सिद्धांत का ठोस आधार निर्मित करने के लिए अभी और अधिक व्यक्तित्व सम्बन्धी खोज की आवश्यकता है।

आइजेंक ने व्यक्तित्व मापन हेतु जिन परीक्षणों का निर्माण किया है वे व्यक्तित्व के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

ऊपर वर्णित आलपोर्ट, कैटेल तथा आइजेंक के योगदानों पर विचार करने पर एक प्रश्न उठकर जो सामने आता है, वह यह है कि मानव व्यक्तित्व के प्रमुख शीलगुण या विमा कौन-कौन हैं? सचमुच में शीलगुण उपागम इस प्रश्न का उत्तर संतोषजनक ढंग से देने में सफल नहीं हो पाया है।

8.3.2.4. व्यक्तित्व के पञ्च आयामी सिद्धांत -

गत दो दशकों में किए गए महत्वपूर्ण शोधों के आधार पर मनोविज्ञानिकों में इस सिलसिले में कुछ खास विमाओं के बारे में सहमति होती नजर आती है। ऐसे प्रमख शोधकर्ता हैं - कोस्टा एवं मैकक्रे (Costa & MC Crae, 1989) ,होगान(Hogan, 1983) मैकक्रे (McCrae,1989) नौलर, ला एवं कोमरे (Noller, Law & Comrey, 1987) इन शोधकर्ताओं के बीच लगभग इन बात को सहमति है कि व्यक्तित्व के निम्नांकित पाँच महत्वपूर्ण तथा हृस्ट-पुष्ट (robust) विमाएँ हैं जो सभी द्विध्रुवीय (bipolar) हैं-

(1) बहिर्मुखता (**Extraversion or E**)- व्यक्तिव का यह एक ऐसा विमा है जिसमें एक परिस्थिति में व्यक्ति सामाजिक, मजाकिया, 'स्नेहपूर्ण', वातूनी ¼talkavtive½ आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वह संयमी ,गम्भीर, रूखापन, शांत, सचेत रहने आदि का शीलगुण भी दिखता है। इस तरह से वहिर्मुखता को एक द्विध्रुवीय विमा माना गया है।

(2) सहमतिजन्यता (**Agreeableness or A**) - इस विमा के भी दो छोर या ध्रुव बतलाये गए हैं। इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी, दूसरों पर विश्वास करने वाला, उदार, सीधा, सादा, उत्तम प्रकृति (good natured) आदि से सम्बद्ध व्यवहार दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु, चिड़चिड़ा, जिद्दी, बेरहम आदि बनकर भी व्यवहार करता पाया जाता है।

(3) कर्तव्यनिष्ठता (**Conscientiounsess or C**) - इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित, उदारदायी, सावधान एवं काफी सोच-विचार कर व्यवहार करने से सम्बद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वही व्यक्ति बिना सोच-समझे, असावधानीपूर्वक, कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से सम्बद्ध शीलगुण दिखाता है।

(4) स्नायुविकृति (**Neuroticism or N**) - इस विमा में व्यक्ति एक ओर कभी-कभी तो सांवेगिक रूप से काफी शांत, संतुलित, रोगभ्रमी विचारों (hypochondriac thoughts) से अपने आप को मुक्त पाता है तो दूसरी आरे वह कभी-कभी अपने आप को सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से घिरा हुआ पाता है।

(5) अनुभूतियों का खुलापान या संस्कृति (**Openness to experiences or culture or O**) - इस विमा में कभी-कभी व्यक्ति एक तरह काफी संवेदनशील, काल्पनिक, बौद्धिक, भद्र आदि व्यवहार से सम्बद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी ओर वह काफी असंवेदनशील, रुखा, संकीर्ण, असभ्य एवं अशिष्ट व्यवहारों से सम्बद्ध शीलगुण भी दिखाता है।

उपर्युक्त पाँच शीलगुणों को नोरमैन (Norman, 1963) ने 'दी विग फाइव' (The Big Five) कहा है जो आलपोर्ट, गोल्डवर्ग (Goldberg, 1980) तथा कैटेल द्वारा किये गए शोधों पर आधृत है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इन पाँचों शीलगुणों को सबसे अधिक मान्यता दी जा रही है क्योंकि इन लोगों का मत है कि चाहे व्यक्ति किसी समाज या संस्कृति का हो, उसके बारे में इन पाँचों शीलगुणों के बारे में जानकर उसके व्यक्तिव के बारे में सही-सही एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उसके महत्व पर बहुत स्टीक टिप्पणी एक महिला व्यक्तिव मनोवैज्ञानिक जिसका नाम हैम्पसन (Hampson, 1988) द्वारा की गयी है जो इस प्रकार है-

''व्यक्तिव वर्णन के ये पाँच विस्तृत क्षेत्रों द्वारा उन सभी प्रमुख तरोकों को अभिग्रहित किया है जिसमें मानव एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। गोल्डवर्ग (1981) ने तो यहाँ तक सुझाव दिया है कि उसे सार्वनिक रूप से भाष्ज्ञा के रूप में उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि इनके द्वारा उन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों के पहचान होती है जिसे व्यक्ति सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बावजूद एक-दूसरे के बारे में जानना चाहते हैं।''

उपर्युक्त पाँच विमाओं को याद रखने के खयाल से 'OCEAN'के रूप में कूटसंकेतीकरण (coding) किया जा सकता है। इस विमाओं को माने के लिए कोस्टा तथा मैकक्रे (Costa & McCrae, 1992) ने एक प्रश्नावली भी विकसित की है, जिसे एनईओ-व्यक्तित्व आविष्कारिका (संशोधित) (NEO-Personality Inventory Revised / NEO- PI-R)कहा गया है।

8.3.3 शीलगुण सिद्धान्त का मूल्यांकन -

यद्यपि शीलगुण सिद्धान्त प्रकार सिद्धान्त से अधिक वैज्ञानिक एवं पूर्ण लगता है, फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने इसकी भी कुछ आलोचनाएँ की हैं जो निम्नांकित हैं-

(1) शीलगुण सिद्धान्त में कारक विश्लेषण (factor analysis) कर शीलगुण सिद्धान्तवादी (trait theorists)शीलगुणों की कोई एक निश्चित संख्या निर्धारित करने में अबतक असमर्थ रहे हैं।
(2) शीलगुण सिद्धान्तवादियों द्वारा बताये गये प्रमुख शीलगुण की संख्या के बारे में असहमति तो है ही, साथ-ही-साथ ऐसे शीलगुण एक-दूसरे से पूर्णतः स्पष्ट, भिन्न एवं स्वतंत्र नहीं है।
(3) शीलगुण सिद्धान्त में व्यक्तित्व की व्याख्या अलग-अलग शीलगुणों के रूप में की जाती है।
(4) शीलगुण सिद्धान्त में परिस्थितिजन्य कारकों (situational factors) के महत्व को स्वीकार नहीं किया गया है।
(5) शीलगुण उपागम का स्वरूप वर्णनात्मक (descriptive) है। इसमें व्यक्तित्व के मौलिक एवं महत्वपूर्ण विमाओं (dimensions) का सिर्फ वर्णन किया जाता है, परंतु इस बात की व्याख्या नहीं की जाती है कि किस तरह से विभिन्न शीलगुणों का विकास होता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद व्यक्तित्व का शीलगुण उपागम एक महत्वपूर्ण उपागम है जिसके माध्यम से व्यक्तित्व के स्वरूप को समझने की कोशिश की गयी है।

8.4 प्रकार सिद्धान्त (Type Theory)-

प्रकार सिद्धान्त की मान्यता यह है कि सभी व्यक्ति प्रकृति समानता के आधार पर कुछ निश्चित प्रकारों में बँटे होते हैं और प्रत्येक प्रकार में कुछ निश्चित एवं स्पष्ट शीलगुण होते हैं। व्यक्तित्व के प्रकारा सिद्धान्त के समर्थकों में हिपोक्रेट्स, क्रेश्मर, शेल्डन, युंग आदि का नाम उल्लेखनीय है। इन मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को कई प्रकारों में

विभाजित करके व्यक्तित्व के वास्तविक स्वरूप को समझाने का प्रयास किया। यह सिद्धान्त इस विश्वास पर आधारित है कि सभी व्यक्ति प्रकृति समानता के आधार पर कुछ निश्चित प्रकारों में बँटे होते हैं, प्रत्येक प्रकार के व्यक्तियों में कुछ स्पष्ट शीलगुण होते हैं, जो दूसरे प्रकार के व्यक्तियों में उसी मात्रा में नहीं होते हैं।

8.4.1. प्रकार सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें - इस सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें निम्न प्रकार हैं-

1. इस सिद्धांत में गेस्टाल्टवाद की झलक दिखाई देती है। इस सिद्धान्त के अनुसार 'प्रकार' आकृति के समान पूर्ण होता है। व्यक्तित्व का मूल्यांकन इनके विभिन्न अंशों (शीलगुणों) को देखने से नहीं बल्कि इसके संगठित रूप (प्रकार) को देखने से सम्भव है।
2. प्रकार सिद्धान्त के आधार पर व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है जैसे- व्यवसायिक चयन भिन्न-भिन्न व्यवसाय के लिये अलग-अलग स्वभाव वाले व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अतः इस सिद्धान्त के प्रकाश में अपेक्षित प्रकार के व्यक्ति के चयन में सुविधा होती है।
3. इस सिद्धान्त से व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित अनुसन्धानों में बहुत सहायता मिलती है। हिपोक्रेट्स के वर्गीकरण की चाहे जितनी आलोचना की जाय, लेकिन इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हिपोक्रेट्स के वर्गीकरण से प्रेरित होकर क्रेशमर और शेल्डन ने इस क्षेत्र में सराहनीय अनुसंधान किया। इसी तरह युंग के वर्गीकरण से लाभान्वित होकर आइजेंक ने सामान्य और असामान्य व्यक्तित्व से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किया।
4. इस सिद्धान्त की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इससे व्यक्तित्व के अध्ययन का एक संकेत अथवा आरम्भ बिन्दु मिलता है। 'प्रकार' व्यक्तित्व के मानक रूप हैं, जिनके साथ विभिन्न व्यक्तियों की तुलना की जा सकती है और प्रत्येक व्यक्ति का पूरा चित्रण प्राप्त किया जा सकता है।

8.4.2. प्रकार सिद्धान्त में मनोवैज्ञानिकों के विचार-

व्यक्तित्व में भिन्न-भिन्न शीलगुणों व प्रकारों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अर्थात अपूर्व होता है। व्यक्तित्व के प्रकारा सिद्धान्त के समर्थकों में हिपोक्रेट्स, क्रेशमर, शेल्डन, युंग आदि का नाम उल्लेखनीय है।

यदि व्यक्तित्व के अध्ययन के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि आज से 2400 वर्ष पहले भी इस सिद्धान्त के द्वारा व्यक्तित्व की व्याख्या कि जाती थी। सबसे पहला व्यक्तित्व प्रकार सिद्धान्त थियोफेस्ट्स का था जो अरस्तु के शिष्य थे।सिकंदर (356-323) BC के समय में थियोफेस्ट्स एक लोकप्रिय एवं चर्चित व्यक्ति थे इनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व प्रकार की लोकप्रियता उस समय काफी थी। इसमें खुशमदी प्रकार एक महत्वपूर्ण प्रकार था। परन्तु इनके द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व प्रकार चूंकि क्रमबद्ध प्रेक्षण पर आधारित नहीं था, और न ही बहुत विस्तृत था अतः लोगों द्वारा एक नए प्रकार की आवश्यकता महसूस की गयी। इसके बाद हिपोक्रेट्स ने एक नया व्यक्तित्व प्रकार 400 BC में प्रतिपादित किया। इन्होंने शरीर द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व के चार प्रकार बतलाए है। इनके अनुसार हमारे शरीर में चार मुख्य द्रव पाये जाते है- पीला पित्त, काला पित्त, रक्त तथा कफ या श्लेष्मा। प्रत्येक व्यक्ति में इन चारों द्रवों में कोई एक द्रव अधिक प्रधान होता है और व्यक्ति का स्वभाव या चित्तप्रकृति इसी की प्रधानता से निर्धारित होता है।

1. **पीला पित्त-** जिस व्यक्ति में पीले पित्त की प्रधानता होती है, उस व्यक्ति का चित्त प्रकृति या स्वभाव चिड़चिडा होता है और व्यक्ति प्रायः बेचैन दिख पड़ता है अैसे व्यक्ति तुनकमिजाजी भी होते है। इस तरह के प्रकार को हिपोक्रेट्स ने गुस्सैल कहा है।
2. **काला पित्त**- जब व्यक्ति में काले पित्त की प्रधानता होती है, तो वह प्रायः उदास तथा मंदित नजर आता है इस तरह के प्रकार को विषादी या निराशावादी कहा जाता है।
3. **रक्त-** जिस व्यक्ति में अन्य द्रवों की अपेक्षा रक्त की प्रधानता होती है, वह प्रसन्न तथा खुशमिजाज होता है इस तरह के व्यक्तित्व के प्रकार को उत्तसाही या आशावादी कहा गया है।
4. **कफ या श्लेष्मा**- जिस व्यक्ति में कफ या श्लेष्मा जैसे द्रव की प्रधानता होती है, वह शान्त स्वभाव का होता है तथा उसमें निष्क्रियता पायी जाती है। इसमें भावशून्यता के गुण भी पाये जाते है। इस तरह के व्यक्तित्व के प्रकार को विरक्त कहा गया है।

हिपोक्रेट्स के बाद रोसटन, 1824 ने सबसे प्रभावकारी व्यक्तित्व प्रकार विकसित किया जिसका आधार शारीरिक डील-डॉल था। इन्होंने व्यक्तित्व के चार प्रकार बतलाए-

1. **प्रमस्तिष्कीय प्रकार-** ऐसे व्यक्ति दुबले पतले तथा लम्बे डील-डॉल के होते है।
2. **पेशीय प्रकार-** ऐसे व्यक्तियों के शरीर की मांसपेशियां गठी होती है।
3. **आत्मसात्करणी प्रकार-** ऐसे लोग गोल मटोल शारीरिक संरचना वाले होते है।
4. **श्वसनी प्रकार-** ऐसे लोगों की शारीरिक कद कोई एक विशेष श्रेणी का न होकर मिला जुला प्रकार का होता है।

भायोला, (1909) ने उक्त श्रेणी को उन्नत बनाने की कोशिश की है और उपरोक्त श्रेणीयों को मात्र तीन श्रेणी में ही रखकर व्यक्तित्व के एक प्रकार सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। भायोला के अनुसार तीन प्रकार है-

1. माइक्रोस्पालनकिक
2. नोरमोसप्लानकिक तथा
3. मैक्रोस्पलानकिक

इन तीनों का व्यक्तित्व प्रकार की विशेषताएँ रोस्ट्न द्वारा बतलाये गये क्रमशः प्रथम तीन प्रकार की विशेषताओं के समान होते है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रकार सिद्धान्त को दो भागों में बॉटकर व्यक्तित्व की व्याख्या की गयी है।

8.4.2.1 . शारीरिक संरचना के आधार पर -व्यक्ति के व्यक्तित्व में शारीरिक तथा मानसिक दोनों ही प्रकार के गुण सन्निहित होते हैं। किसी व्यक्ति का शारीरिक आकार-प्रकार उसके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण भाग होता है। एक सामान्य व्यक्ति दूसरे के शारीरिक रूप-रंग को देखकर ही उसके व्यक्तित्व की जानकारी प्राप्त करता है।

8.4.2.1.1. क्रैश्मर का योगदान- क्रैश्मर ने शारीरिक संरचना के आधार पर ही व्यक्तित्व के चार प्रकार बताये थे -

(अ) पिकनिक - ये मोटे और नाटे शरीर के होते हैं। इनका स्वभाव हँसमुख होता है। ये आराम-पसंद, वार्तालाप पसन्द, मिलनसार तथा सुख-दुःख में जल्दी प्रभावित होने वाले होते हैं।

(ब) एस्थेनिक - ये दुबले –पतले और लम्बे शरीर वाले होते हैं। मुख्यतः ये बुद्धिवादी और चिन्तनशील होते हैं। इनमें शारीरिक शक्ति की कमी पाई जाती है।

(स) एथलेटिक - इनका शारीरिक गठन अच्छा होता है। कन्धा चौड़ा तथा माँसपोशियाँ मजबूत होती है। ये शक्तिशाली, साहसी, निभी्रक, प्रभुत्व की इच्छा रखने वाले तथा समाज में अधिक सफल होते हैं।

(द) डिस्प्लास्टिक- ये व्यक्ति उपर्युक्त तीनों प्रकार का मिश्रित रूप होते हैं। ऐसे व्यक्ति बहुत कम पाये जाते हैं।

8.4.2.1.2. शेल्डन का योगदान- शेल्डन ने भी शारीरिक संरचना के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये थे।

(अ) एण्डोमार्फिक- ये कोमल तथा गोल-मटोल शरीर वाले होते हैं। इनका शरीर चिकनाहटपूर्ण होता है।

(ब) मीसोमार्फिक- ये शारीरिक दृष्टि से अधिक हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इनकी हड्डियों और माँसपेशियों में अधिक बल होता है। ये लोग अधिक स्वस्थ, अधिक ठोस शरीर वाले तथा अधिक शक्तिशाली होते हैं।

(स) एक्टोमार्फिक- ये व्यक्ति दुबले पतले शरीर वाले, लम्बे, दुर्बल माँसपेशियों वाले तथा शारीरिक दृष्टि से हीन होते हैं।

क्रेशमर तथा शेल्डन द्वारा वर्णित उपर्युक्त व्यक्ति-प्रकारों से यह स्पष्ट होता है कि किस प्रकार शारीरिक संरचना व्यक्तित्व के शीलगुणों के निर्धारण में भूमिका निर्वाह करती है।

8.4.2.2. मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर (On the basis of psychological characteristics)- कुछ मनोवैज्ञानिकों ने वयक्तित्व का वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर किया है। इसमें युग,आइजेन्क तथा गिलफोर्ड का नाम अत्यधिक मशहूर है।

8.4.2.2.1. युंग के व्यक्तित्व प्रकार - युंग ने व्यक्तित्व के निम्नांकित दो प्रकार बतलायें हैं-

(a) बहिर्मुखी (**Extrovert**) इस तरह के व्यक्ति की अभिरूचि विशेषकर समाज के कार्यों की ओर होता है। वह अन्य लोगों से मिलना-जुलना पसंद करता है तथा प्रायः खशमिजाज होता है। ऐसे व्यक्ति आशावादी (व्चजपउपेजपब) होते हैं तथा अपना संबंध यथार्थता से अधिक आदर्शवादी से कम रखते हैं। ऐसे लोगों को खाने-पीने की ओर भी अधिक अभिरूचि होती है। ऐसे लोग समाज के लिए काफी उपयोगी होते हैं।

(b) अन्तर्मुखी (**Introvert**) ऐसे व्यक्ति में वहिर्मुखी के विपरीत गुण पाये जाते हैं। इस तरह के व्यक्ति बहुत लोगों से मिलना-जुलना पसंद नहीं करते हैं और उनकी दोस्ती कुछ ही लोगों तक सीमित होती है। इनमें आत्मकेन्द्रिता (self-centredness) का गुण अधिक पाया जाता है। इन व्यक्तियों को अकेलापन अधिक पसंद होता है तथा ऐसे लोग रूढ़िवादी प्रकृति के होते हैं तथा पुराने रीति-रिवाजों एवं नियमों को आदर देने वाले होते हैं।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा युग के इन दो प्रकारों की आलोचना की गयी है और इनलोगों ने कहा कि सभी लोग इन दोनों में से किसी एक श्रेणी में आए ही यह जरूरी नहीं है। अधिकतर लोगों में इन दोनों श्रेणियों के गुण पाये जाते हैं। फलस्वरूप एक परिस्थिति में वे वहिर्मुखी के रूप में व्यवहार करते हैं तथा दूसरी परिस्थिति में वे अन्तर्मुखी के रूप में व्यवहार करते हैं। एसे व्यक्तियों को आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने उभयमुखी (ambivert)की संज्ञा दी है।

8.4.2.2. आइजेन्क के व्यक्तित्व प्रकार - आइजेन्क (Eysenck, 1947) ने भी मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बतलायें हैं। इन्होंने युग के अन्तर्मुखी-वहिर्मुखी सिद्धान्त की सत्यता की जांच करने के लिए 10,000 सामान्य (normal) एवं तंत्रिका रोगियों (nurotics) पर अध्ययन किया और विशेष सांख्यिकीय

विश्लेषण (statical analysis)कर यह बतलाया कि व्यक्तित्व के निम्नांकित तीन प्रकार होते हैं जो द्विध्रुवीय (dipolar) हैं-

(a) अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता (**Inroversion-Extraversion**)- आइजेन्क ने युग के अन्तर्मुखता तथा वहिर्मुखता के सिद्धान्त को तो स्वीकार किया परन्तु युग के समान उन्होंने इसे व्यक्तित्व का दो अलग-अलग प्रकार नहीं माना। उनका कहना था कि चूँकि ये दोनों प्रकार एक-दूसरे के विपरीत हैं, अतः इन्हें एक साथ मिलाकर रखा जा सकता है तथा एक ही मापनी (scale) बनाकर अध्ययन किया जा सकता है। चूँकि ऐसा नहीं होता है कि ये दोनों तरह के गुण एक ही व्यक्ति में एक साथ अधिक या कम हों, अतः इसे आइजेन्क ने व्यक्ति का एक ही विमा माना है जो स्पष्टतः द्विधुरवीय हैं। जैसे-किसी व्यक्ति में यदि सामाजिकता अधिक है तथा वह लोगों से मिलना-जुलना अधिक पसंद करता है तो यह कहा जाता है तो यह कहा जाता हे कि व्यक्ति इस बिम्ब के वहिर्मुखता पक्ष में अधिक ऊँचा है।

(b) स्नायुविकृति-स्थिरता (**Neuroticism-Stability**)- आइजेन्क के अनुसार व्यक्तित्व का यह दूसरा प्रमुख विमा है। व्यक्तित्व के इस प्रकार के पहले छोर पर होने पर व्यक्ति में सांवेगिक नियंत्रण कम होता है तथा उनकी इच्छा शक्ति (will power) कमजोर होती है। इनके विचारों एवं क्रियाओं में मन्दता पायी जाती है। इनमें अन्य व्यक्तियों के सुझाव (suggestion) को चुपचाप स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति अधिक होती है। तथा इनमें सामाजिकता (sociability) का अभाव पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों द्वारा प्रायः अपनी इच्दाओं का दमन (repression) किया जाता है। इस प्रकार के दूसरे छोन पर स्थिरता होती है जिसकी ओर बढ़ने पर उक्त व्यवहारों या लक्षणों की मात्रा घटती जाती है और व्यक्ति में स्थिरता की मात्रा बढ़ती है।

(c) मनोविकृतता-पराहं की क्रियाएँ (**Psychoticism-Superego function**)- आइजेन्क ,1952 ने व्यक्तित्व के इस विमा को बाद में किये गये शोध के आधार पर जोड़ा है। आइजेन्क ने इस प्रकार की व्याख्या करते हुए कहा कि व्यक्तित्व का यह विमा मानसिक रोग की एक विशेष श्रेणी जिसमें मनोविक्षिप्ति (psychosis) रोग से पीड़ित व्यक्ति नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि मनोविक्षिप्ति रोगों से पीड़ित व्यक्ति में मनोविक्षिप्ति के गुण अधिक होंगे। आइजेन्क के अनुसार मनोविकृति वाले व्यक्तित्व के विमा में क्षीण एकाग्रता (poor concentration) क्षीण स्मृति (poor memory) तथा क्रूरता (cruelty) का गुण अधिक होता है। इसके अलावा ऐसे व्यक्ति में असंवेदनशीलता (insensitivity) दूसरों के प्रति सौहार्दपूर्ण संबंध की कमी, किसी प्रकार के खतरे के प्रति असतर्कता, सृजनात्मकता (creativity) की कमी आदि गुण पाये जाते हैं। इस विमा के दूसरे छोर पर पराहं की क्रियाएँ (super-ego functions) होती हैं जैसे-जैसे इस छोर की ओर हम बढ़ते हैं, उक्त लक्षणों या व्यवहारों की मात्रा घटती जाती है तथा व्यक्ति में आदर्शत्व (ideality) तथा नैतिकता (morality) की मात्रा बढ़ती जाती है।

इस तरह से हम देखते हैं कि आइजेन्क के तीनों विमा या प्रकार द्विध्रुवीय हैं। मतबल यह कदापि नहीं है कि अधिकतर व्यक्तियों को दो छोरों में से किसी एक छोर पर रखा जा सकता है। सच्चाई यह है कि प्रत्येक 'प्रकार' या विमा के बीच में ही अधिकतर व्यक्तियों को रखा जाता है।

गिलफोर्ड (Guilford, 1959) ने आइजेन्क के अन्तर्मुखता-वर्हिमुखता के 'विमा' का काफी विस्तृत रूप से विश्लेषण किया और पाया कि इन प्रकारों में व्यक्तित्व के कई तरह के शीलगुण पाये जाते हैं। इस तरह से उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर आइजेन्क (1947) के विचारों की पुष्टि की है।

8.4.2.3. प्रकार सिद्धान्त का मूल्यांकन –

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के प्रकार सिद्धान्त में व्यक्तित्व के समान शीलगुणों को एक साथ मिलाकर एक विशेष 'प्रकार' का निर्माण किया जाता है और उसी विशेष प्रकार के अनुसार व्यक्तित्व की व्याख्या की जाती हैं इस सिद्धान्त की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि इसमें व्यक्तित्व को एक संगठित एवं समग्र (as a whole) रूप से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। इन गुण के बावजूद भी इस सिद्धान्त की आलोचना की गयी है जो निम्नांकित है-

(1) प्रकार सिद्धान्त मे इस बात की पूर्वकल्पना (assumption) की गयी है कि सभी व्यक्ति किसी न किसी प्रकार या श्रेणी में निश्चित रूप से आते हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि एक ही व्यक्ति में व्यक्तित्व के कई प्रकारों का गुण मिलता है जिसके कारण उन्हें किसी एक 'प्रकार' में रखना संभव नहीं है।

(2) प्रकार सिद्धान्त के अनुसार जब किसी व्यक्ति को एक विशेष 'प्रकार' में रखा जाता है तो यह पूर्वकल्पना भी साथ-साथ कर ली जाती है कि उसमें उस 'प्रकार' से संबंधित सभी गुण होंगे। परन्तु सच्चाई इस तरह की नहीं होती है।

(3) प्रकार सिद्धान्त द्वारा व्यक्ति के संरचना (structure)की व्याख्या तो होती है परन्तु व्यक्तित्व विकास (Personality development) की व्याख्या नहीं होती है। इस सिद्धान्त में उन कारकों का उल्लेख नहीं है जिससे व्यक्तित्व का विकास प्रभावित होता है तथा इस सिद्धान्त से व्यक्त्वि विकास की अवस्थाओं का भी पता नहीं चलता है।

(4) कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकार सिद्धान्त में विशेषकर शारीरिक गठनों (body builds) के आधार पर किए गए वर्गीकरण में सामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक के महत्व को बिल्कुल ही गौण रखा गया है।

(5) शेल्डन ने अपने प्रकार सिद्धान्त में शारीरिक गठ0928 तथा स्वभाव से संबंधित शीलगुणों के बीच उच्च सहसंबंध (high correlation) यानी 0.78 से अधिक सहसंबंध पाया है। कुछ आलोचकों का मत है कि यह सहसंबंध वास्तविक नहीं था।

(6) सैनफोर्ड (1961) के अनुसार प्रकार सिद्धान्त में किसी व्यक्ति को एक विशेष प्रकार में रखते समय उसके कुछ ही शीलगुणों पर ध्यान दिया जाता है और अधिकांश शीलगुणों की उपेक्षा कर दी जाती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी प्रकार सिद्धान्त की मान्यता आज भी बनी हुई है। जिसका प्रमाण हमें इस बात से मिल जाता है कि इन विभिन्न प्रकारों के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष रूप से अध्ययन किया जा रहा है।

8.5. व्यक्तित्व के प्रकार एवं शीलगुण सिद्धान्त में विभिन्नताएं –

व्यक्तित्व के प्रकार एवं शीलगुण सिद्धान्तों के अध्ययन पर इनमें कुछ अंतर दृष्टिगत होते है, जो निम्नवत् है-

1. प्रकार सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व का मूल्यांकन इनके संगठित रूप को देखने से संभव जबकि शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व का मूल्यांकन उनके विभिन्न अंशों को देखने से संभव है।
2. प्रकार सिद्धान्त के आधार व्यवहारिक समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है जबकि शीलगुण सिद्धान्त व्यक्ति के व्यवहार की स्थिरता एवं संगतिपूर्णता पर बल देता है।

3. प्रकार सिद्धान्त में व्यक्तित्व में अध्ययन का एक संकेत अथवा आरंभ बिन्दु मिलता है जबकि शीलगुण सिद्धान्त में कोई आरम्भ बिन्दु नहीं होता है।
4. प्रकार सिद्धान्त व्यक्तित्व को कई प्रकारों में विभाजित कर समझने का प्रयास करता है जबकि व्होलर, 1963 के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति स्वयं में एक पूर्ण प्रकार है। शीलगुण सिद्धान्त व्यक्तित्व के अनेक शीलगुणों को महत्व देकर उसके समग्र का अध्ययन करता है।
5. प्रकार सिद्धान्त इस विश्वास पर आधारित है कि व्यक्तित्व प्रकार में स्थिरता होती है, जबकि शीलगुण सिद्धान्त किसी भविष्यवाणी पर आधारित नहीं है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व के प्रकार एवं शीलगुण सिद्धान्त में विभिन्नताएं हैं परन्तु इन सिद्धान्तों की महत्ता भी व्याप्त है।

8.6. स्टेट व्यक्तित्व उपागम (State approaches)

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में उसके शारीरिक पक्ष के साथ-साथ मानसिक पक्ष का भी समन्वय होता है। इसलिए व्यक्ति के मानसिक पक्ष से सम्बन्धित जितने भी कारक होते हैं वे सभी व्यक्तित्व के निर्धारकों की भूमिका का निर्वाह करते हैं।

8.6.1. स्टेट व्यक्तित्व उपागम- व्यक्तित्व के स्टेट उपागम व्यक्ति के क्षणिक व्यवहार और अनुभव पर आधारित होता है जो कि परिस्थिति और उस तात्कालिक स्थिति के प्रेरणा पर आधारित होता है। विभिन्न प्रकार तथा शीलगुण कारकों के अतिरिक्त अनेक ऐसे मनोवैज्ञानिक या स्टेट कारक हैं जो व्यक्तित्व निर्धारण में सहायक होते हैं। किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व में उसके शारीरिक पक्ष के साथ-साथ मानसिक पक्ष का भी समन्वय होता है। इसलिए व्यक्ति के मानसिक पक्ष से सम्बन्धित जितने भी कारक होते हैं वे सभी व्यक्तित्व के निर्धारकों की भूमिका का निर्वाह करते हैं। व्यक्तित्व में व्यक्ति का व्यवहार पक्ष भी सम्मिलित होता है और यह उसकी अनेक मानसिक विशेषताओं द्वारा निर्धारित होता है। निम्नांकित मनोवैज्ञानिक कारक व्यक्तित्व निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

1. बुद्धि(Intelligence) - बुद्धि एक ऐसी मानसिक योग्यता है जिसका प्रभाव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र पर पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे अमूर्त चिन्तन की योग्यता, समायोजन की योग्यता तथा अधिगम की योग्यता कहा है। बुद्धि का प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर भी पड़ता है। प्रायः तीव्र बुद्धि वाले व्यक्ति में श्रेष्ठता की भावना और मन्दबुद्धि व्यक्तियों में हीनता की भावना विकसित हो जाती है, जो उनके व्यक्तित्व की संरचना को प्रभावित करती है। मन्द बुद्धि व्यक्तियों का समायोजन भी सन्तोषजनक नहीं होता तथा उनमें कई प्रकार के व्यवहारिक दोष उत्पन्न हो सकते हैं। 70 से कम बुद्धिलब्धि वाले व्यक्तियों को मन्दबुद्धि की श्रेणी में रखा जाता है। मानसिक मन्दता से ग्रस्त व्यक्तियों का शारीरिक विकास भी प्रायः कम होता है। इसके अतिरिक्त मंगोलिज्म, क्रेटेनिज्म, हाइड्रोसिफैली तथा माइक्रोसिफैली जैसी असामान्य शारीरिक विशेषताएँ भी मानसिक मन्दता के कारण दिखाई पड़ती है। सामान्य तथा उच्च बुद्धि के व्यक्तियों में उपर्युक्त कमियाँ नहीं पायी जाती। किसी भी परिस्थिति में एक बुद्धिमान तथा एक निम्नबुद्धि वाले व्यक्ति के व्यवहार में स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व पर मानसिक योग्यता का भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

2. प्रेरणा (Motivation) - प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकतायें होती हैं जिन्हें वह पूरा करना चाहता है। आवश्यकताओं के कारण उसमें एक प्रेरणा उत्पन्न होती है और वह लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो

उठता है। व्यक्ति के व्यवहार किसी न किसी प्रेरणा के कारण होते हैं। कुछ आवश्यकताएँ सामान्य होती हैं जिनकी पूर्ति व्यक्ति सामूहिक तथा सामाजिक स्तर पर करता है। यह आवश्यकताएँ किसी एक समूह अथवा समाज के सभी व्यक्तियों में सामान्य रूप से पायी जाती है और उस समूह के सभी व्यक्ति उन आवश्यकताओं से सम्बन्धित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए व्यवहार करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति का व्यवहार उसकी आवश्यकताओं एवं प्रेरणाओं से निर्धारित होता है।

इन सामान्य आवश्यकताओं के अतिरिक्त कुछ व्यक्तिगत आवश्यकताएँ भी होती हैं, जिनकी पूर्ति व्यक्ति अपने स्तर पर करता है, जैसे- व्यक्ति की महत्वाकांक्षाएँ, प्रभुत्व की आवश्यकताएँ, संग्रह की आवश्यकता, आत्मप्रदर्शन की आवश्यकता आदि। ये व्यक्तिगत आवश्यकताएँ जिस सीमा तक व्यक्ति को प्रेरित करती हैं, उस सीमा तक व्यक्ति का व्यवहार उनसे निर्देशित होता है। अलग-अलग प्रकार की आवश्यकताएँ व्यक्ति में अलग-अलग प्रकार के व्यवहारों को उत्पन्न करती है। प्रत्येक प्रकार की आवश्यकता से सम्बन्धित लक्ष्य होते हैं। व्यक्ति यदि उस लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तो उसकी आपवश्यकता की सन्तुष्टि हो जाती है, किन्तु यदि वह लक्ष्य प्राप्ति में असफल होता है, तो उसमें कुण्ठा तथा हीनता उत्पन्न होती है और यदि इसकी मात्रा अधिक बढ़ जाती है तो व्यक्तित्व असामान्य हो जाता है।

3. रुचि (Interest) - रुचि एक प्रकार की व्यक्तिगत प्रेरणा है, जो विभिन्न उद्दीपकों के प्रति व्यक्ति के झुकाव को निर्धारित करती है। व्यक्ति को जिन वस्तुओं अथवा कार्यों में रुचि रहती है, वह उनकी ओर बढ़ता है औरप उसमें लिप्त रहने में उसे सुखद अनुभूति होती है। इसके विपरीत अरुचिपूर्ण कार्यों को करने से उसे आनन्द की अनुभूति नहीं होती और ऐसे कार्यों से वह दूर भागना चाहता है। इस प्रकार व्यक्ति का व्यवहार उसकी रुचियों से भी निर्धारित होता है। उदाहरण के लिए एक संगीतज्ञ तथा एक वैज्ञानिक, संगीत तथा विज्ञान की पृथक-पृथक रुचियों के कारण अलग-अलग विशिष्ट प्रकार का व्यक्तित्व विकसित करते हैं।

4. अभिवृत्ति (Attitude) - व्यक्ति अपने जीवनकाल में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यवहार करते समय अनेक उद्दीपको एवं व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। जिन उद्दीपकों अथवा व्यक्तियों से उसे लक्ष्य प्राप्ति में सहायता मिलती है उनके प्रति उसकी धनात्मक अभिवृत्ति विकसित होती है तथा जो उद्दीपक अथवा व्यक्ति उसकी लक्ष्य प्राप्ति में बाधक होते हैं उनके प्रति उसकी ऋणात्मक अभिवृत्ति विकसित होती है। जिनके प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति धनात्मक होती है उनके प्रति वह अनुकूल संवेग रखता है तथा उनकी ओर उन्मुखता का व्यवहार करता है। इसके विपरीत जिनके प्रति उसकी ऋणात्मक अभिवृत्ति होती है, उनके प्रति वह दुःखद संवेगों का अनुभव करता है और उससे दूर भागना चाहता है। इस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित करने में उसकी अभिवृत्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका है।

5. चिन्ता (Anxiety) - आधुनिक युग में प्रत्येक व्यक्ति में न्यूनाधिक मात्रा में चिन्ता पाई जाती है और व्यक्ति उससे प्रभावित होता है। यह चिन्ता दो प्रकार की होती है-

(अ) शीलगुण चिन्ता (Trait Anxiety)

(ब) स्थिति चिन्ता (Status Anxiety)

चिन्ता व्यक्तित्व के एक शीलगुण के रूप में भी होती है और कभी-कभी उद्दीपक परिस्थितियों के विशिष्ट प्रकार से संरचित होने पर भी उत्पन्न होती है। कुछ व्यक्ति स्वभावतः अधिक चिन्ता करने वाले होते हैं। चिन्ता की कम अथवा अधिक मात्रा का प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है। चिन्ता एक अभिप्रेरणात्मक परिवर्त्य का भी कार्य

करती है। बहुत से कार्यों के निष्पादन में सामान्य स्तर की चिन्ता सहायक का कार्य करती है। इस प्रकार चिन्ता व्यक्ति के व्यवहार पर प्रभाव डालती है। अधिक चिन्ता करने वाले और बिल्कुल कम चिन्ता करने वाले व्यक्तियों के व्यक्तित्व में स्पष्ट रूप से अन्तर दिखलाई पड़ता है।

6. कुण्ठा (Frustration)- व्यक्ति सदैव किसी आवश्यकता से प्रेरित होकर कार्य करता है और आवश्यकता से सम्बन्धित लक्ष्य को प्राप्त करना चाहता है, जब उसकी लक्ष्य प्राप्ति में कोई बाधा उपस्थित होती है, तो उसमें निराशा एवं कुण्ठा उत्पन्न होती है। कुण्ठा की उपस्थिति में व्यक्ति अनेक प्रकार के व्यवहार करता है। वह या तो अपने लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग को परिवर्तित कर लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है अथवा प्रायः आक्रामकता प्रदर्शित करता है। यह आक्रामकता उस बाधा के प्रति, स्वयं अपने प्रति या किसी अन्य उद्दीपक के प्रति भी हो सकती है। जिस व्यक्ति को प्रायः ही असफलताओं का सामना करना पड़ता है, उसमें अत्यधिक मात्रा में कुण्ठा उत्पन्न हो जाती है और वह परिस्थिति से पलायन, तटस्थता अथवा आक्रामकता आदि व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है।

7. मूल्य (Value)- प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ अनुभव होते हैं और इन्हीं अनुभवों से मानव व्यवहार का दिशा-निर्देश करने वाले कुछ सिद्धान्तों का जन्म होता है। इन्हें मूल्य कहा जाता है और ये मूल्य यह प्रदर्शित करते हैं कि व्यक्ति अपनी सीमित शक्ति तथा समय में क्या करना चाहता है। ये मूल्य उसके सम्पूर्ण जीवन में पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करते हैं। इन मूल्यों से यह निर्धारित होता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व किस प्रकार का होगा क्योंकि व्यक्ति में जो मूल्य प्रधान होता है उसके व्यवहार में उसी मूल्य के अनुरूप आचरण दिखलाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए धार्मिक मूल्य वाले व्यक्ति में धार्मिक कृत्यों को करना, धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन, धार्मिक आचरण करना आदि व्यवहार दिखलाई पड़ते हैं जबकि एक राजनैतिक मूल्य वाले व्यक्ति में राजनैतिक गतिविधियों में संलग्नता दिखलाई पड़ती है।

8. संवेग (Emotion) - व्यक्ति के जीवन में उसके संवेगों का महत्वपूर्ण स्थान है। संवेग कभी व्यक्ति को कार्य करने की प्रेरणा देते हैं और कभी बाधा उपस्थित करते है। लगातार तीव्र संवेगात्मक तनाव के कारण व्यक्तियों के शारीरिक विकास में व्यतिक्रम उत्पन्न हो जाते हैं जिसका उसके सामाजिक अभियोजन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत स्नेह, प्रसन्नता, जिज्ञासा आदि ऐसे अनुकूल प्रभाव वाले संवेग हैं, जिनका व्यक्तित्व विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। स्कील्स एवं मैकार्थी ने अनाथालय के बालकों पर अध्ययन करके यह प्रदर्शित किया कि पारिवारिक स्नेह के अभाव के कारण इन बालकों में शारीरिक, मानसिक तथा भाषा विकास देर से होता है।

9. जीवनशैली (Life Style)- हर व्यक्ति की अपनी-अपनी अलग जीवन शैली होती है, जो यह निर्धारित करती है कि व्यकित् अपने जीवन को किस ढंग से जीना चाहता है। यह जीवन शैली सम्पूर्ण जीवन की ओर व्यक्ति के व्यक्तित्व को निर्देशित करती है। इस जीवन शैली के कारण ही एक समान शारीरिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मानसिक विशेषता रखने वाले व्यक्ति भी अलग-अलग प्रकार का व्यक्तित्व विकसित करते हैं।

8.6.1. स्टेट/ प्रकार व्यक्तित्व उपागम में विभिन्नतायें

1. स्टेट उपागम वातावरण पर आधारित होता है जबकि प्रकार उपागम व्यक्ति के गुणों पर आधारित होता है।
2. स्टेट उपागम क्षणिक होता है जबकि प्रकार उपागम लम्बे समय तक रहता है।
3. स्टेट उपागम पल-पल बदल सकता है जबकि प्रकार व्यक्तित्व को बदलने में समय लगता है।

4. व्यक्तित्व के स्टेट उपागम में चिंता, बुद्धि तथा संवेग आदि प्रमुख है जबकि प्रकार उपागम में शारीरिक रचना प्रमुख है।

8.7. सारांश

1. व्यक्तित्व की परिभाषा कई तरह से दी गयी है इसकी सर्वमान्य परिभाषा यह है कि व्यक्तित्व मनोदैहिक गुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समायोजन करता है।

2. व्यक्तित्व में दो उपागमों अर्थात प्रकार उपागम तथा शीलगुण उपागम की एक सैद्धांतिक व्याख्या प्रस्तुत की गयी है।

3. व्यक्तित्व कें स्टेट निर्धारक के रूप में मनोवैज्ञाकि कारक का वर्णन किया गया है। क्योकि यह क्षणिक होता है।

8.8. शब्दावली

स्थूलकाय प्रकार- ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है।

मेसोमार्फी- इस प्रकार के व्यक्तित्व के शरीर की हड्डीयॉ एवं मांसपेशियॉ काफी विकसित होती है।

बर्हिमुखी- इस तरह के व्यक्ति की अभिरूचि विशेकर समाज के कार्यो की ओर होता है।

सतही शीलगुण- इस तरह का शीलगुण व्यक्ति के दिन प्रतिदिन की अन्तः क्रिया में आसानी से अभिव्यक्त होता है।

सहमतीजन्यता- इसके अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी तो दूसरी परिस्थिति असहयोगी व्यवहार करता पाया जाता है।

8.9. अभ्यास प्रश्न -

निम्नलिखित कथनों में असत्य कथन बताइये-

1. व्यक्तित्व शीलगुण व्यक्ति की स्थायी विशेषता है|
2. मनोवृत्ति गत्यात्मक शीलगुण का उदाहरण है।
3. प्रकार सिद्धांत में व्यक्तित्व को एक असंगठित रूप से अध्ययन करने का प्रयास किया गया है|
4. आलपोर्ट ने व्यक्तित्व शीलगुणों के चार प्रकार बताये हैं।
5. परिस्थिति के अनुसार व्यवहार में परिवर्तन .... उपागम है।
6. महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व का.......................... शीलगुण शान्ति एवं अहिंसा में अटूट विश्वास था।
7. व्यक्तित्व के पंच द्विध्रुवीय आयाम का निर्माण .... ने किया है।

उत्तर -- 1. सत्य २.सत्य ३. सत्य ४. असत्य 5. स्टेट 6. कार्डिनल प्रवृत्ति 7. कोस्टा एवं मैकक्रे

8.10. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, सीताराम जायसवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
2. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास
3. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल - बनारसी दास
4. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, डी.एन. श्रीवास्तव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2
5. प्रतियोगिता मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास
6. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मधु अस्थाना एवं किरण बाला वर्मा, मोतीलाल बनारसी दास

8.11. निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व के प्रकार सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए।
2. शीलगुण सिद्धांत किसे कहते हैं? इस सम्बन्ध में आलपोर्ट के विचारों पर प्रकाश डालिये।
3. प्रकार एवं शीलगुण सिद्धांत में अंतर स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए-

a. सतही शीलगुण
b. कार्डिनल शीलगुण
c. प्रकार सिद्धान्त की प्रमुख विशेषतायें

इकाई 9. ऑलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त, व्यक्तित्व का टाइप A एवं टाइप B सिद्धान्त, व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त (Allport's Trait Theory of Personality, Type A and B Personality Theory, Trait Theory of Personality)

इकाई संरचना

9.1 प्रस्तावना:
9.2 उद्देश्य
9.3 आलपोर्ट व्यक्तित्व का शीलगुण सिद्धान्त
9.3.1. व्यक्ति की संरचना
9.4. टाइप ए एंव बी व्यक्तित्व का सिद्धान्त
9.5. व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त
9.5.1 कैटेल का योगदान
9.5.2 व्यक्तित्व के पाँच आयामी सिद्धान्त
9.5.3 - शीलगुण सिद्धान्त के मूल्यांकन
9.6. सारांश
9.7. शब्दावली
9.8. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9. संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.10 . निबन्धात्मक प्रश्न

9.1. प्रस्तावना:

व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसके मानसिक तथा शारीरिक दोनों ही पक्ष होते हैं। यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता हे जो आपस में अन्तःक्रिया करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण, संवेग, आदत, ज्ञानशकित, चित्त प्रकृति, चरित्र अभिप्रेरक आदि हैं जो सभी मानसिक गुण हैं परंतु इन सबका आधार शारीरिक अर्थात व्यक्ति के ग्रन्थीय प्रक्रियाएं एवं तंत्रिकीय प्रक्रियाएं हैं। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मानसिक है और पूर्णतः शारीरिक व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है अर्थात मनोशारीरिक तंत्र के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे-शीलगुण, आदत आदि एक दूसरे से इस तरह सम्बन्धित होकर संगठित हैं कि उन्हें एक दुसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन संभव है। निष्कर्ष तौर पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व में भिन्न-भिन्न शीलगुणों व प्रकारों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अर्थात अपूर्व होता है।

9.2. अध्ययन के उद्देश्य-

1. व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धांत में आलपोर्ट के दृष्टिकोण का अध्ययन।

2. व्यक्तित्व के टाइप 'ए' एवं टाइप 'बी' सिद्धांत का अध्ययन।
3. व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धांत का विस्तृत वर्णन।
4. व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धांत में कैटेल के सिद्धांत का अध्ययन।

9.3. आलपोर्ट व्यक्तित्व का शीलगुण सिद्धान्त-

गौर्डन आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जिसमें मानवतावादी एवं व्यक्तिवादी दृष्टिकोणों से मानव व्यवहार का अध्ययन करने का एक अनुपम संगम देखने को मिलता है। इनके सिद्धान्त में मानवतावादी दृष्टिकोण की परख इस बात से होती है कि इसमें मानव व्यवहार के सभी पहलुओं जैसे वर्धन की अन्तः शक्तियॉं, अनुभावतीत तथा आत्म-सिद्धि भी सम्मिलित है, के अध्ययन पर बल डाला गया है। इनके सिद्धान्त को व्यक्तिवादी के रूप आलपोर्ट को ग्रहणशील मनोवैज्ञानिक माना गया है क्योंकि इन्होंने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन में विभिन्न क्षेत्रों, जैसे- दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, साहित्य आदि से महत्वपूर्ण तथ्यों का चयन करके उसे विशेष रूप से संगठित किया है। आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त में मानव व्यवहार या मानव प्रकृति के बारे में कुछ महत्वपूर्ण पूर्वकल्पनाएँ की गयी हैं, जो निम्नांकित है-

1. इस सिद्धान्त में मानव व्यवहार के कुछ पूर्वकल्पनाओं जैसे विवेकपूर्णता, अग्रलक्षता तथा विषमस्थिति पर सर्वाधिक बल डाला गया है।

2. इस सिद्धान्त में मानव व्यवहार के कुछ पूर्वकल्पनाओं जैसे पूर्णतावाद एवं ज्ञेयता पर साधारण बल डाला गया है तथा स्वतंत्रता एवं आत्मनिष्ठता पर नाममात्र का बल डाला गया है। यहॉं संगठनात्मक-र्प्यावरणीयता तथा परिवर्तनशीलता-अपरिवर्तनशीलता के पूर्वकल्पनाओं पर बल डाला गया है।
3. आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित प्रमुख भागों में बॉंटकर अध्ययन किया जा सकता है-

1. व्यक्तित्व की संरचना
2. व्यक्तित्व की गतिकी
3. व्यक्तित्व का वर्धन
4. शोध एवं मापन

9.3.1. व्यक्ति की संरचना (Structure of personality)

व्यक्तित्व की परिभाषा: आलपोर्ट (1939)ने लगभग अपने समय की 49 परिभाषाओं का गहन अवलोकन कर व्यक्तित्व को निम्नांकित ढंग से परिभाषित किया- ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते है,'' बाद में उस समय की 52 परीभाषाओं का संशलेषण कर 1961 में आलपोर्ट ने अपनी परिभाषा में थोड़ा संशोधन किया और अंतिम पॉंच शब्द बदलकर इस प्रकार कर Characteristic Behaviour and thought को सम्मिलित किया गया। इस परिवर्तन का उद्देश्य यह बतलाना था कि व्यक्ति का व्यवहार मात्र अनुकूली ही नहीं होता है बल्कि कथनीय भी होता हैं अर्थात व्यक्ति वातावरण के साथ सिर्फ समायोजन या अनुकूल ही नहीं करता है बल्कि उसके साथ इस तरह की अन्तःक्रिया करता है कि उस वातावरण को भी व्यक्ति के साथ अनुकूल या समायोजन योग्य होना पड़ता है।

आलपोर्ट की इस परिभाषा के मुख्य बिन्दुओं की व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है-

1. **मनोशारीरिक तंत्र:** व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र है जिसमें मानसिक या मनोवैज्ञानिकतथा शारीरिक अन्तःक्रिया करते है। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण, संवेग, चरित्र, अभिप्रेरक आदि है जो सभी मानसिक गुण है परन्तु इन सबका आधार शारीरिक अर्थात व्यक्ति के ग्रन्थीय प्रक्रियाएँ एवं तंत्रिकीय प्रक्रियाएँ है। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक होता है और न पूर्णतः शारीरिक ही। व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

2.**गत्यात्मक संगठन:** गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य यह होता है कि मनौशरीरिक तंत्र के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे शीलगुण, आदत आदि एक-दूसरे से इस तरह संबंधित होकर संगठित है कि उन्हें एक-दूसरे से पर्णतः अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन संभव है। इस तरह के संगठन में विसंगठन भी समिलित होता है जिसके सहारे असामान्य व्यवहार की व्याख्या होती हैं दूसरे शब्दों में यदि किसी व्यक्ति के शीलगुणों के सगंठन में इस ढंग का परिवर्तन आ जाता है कि उसका व्यवहार विसंगठित हो जाता है जिसके फलस्वरूप वह असामान्य व्यवहार अधिक करने लग जाता है तो इसे एक गत्यात्मक संगठन की श्रेणी में ही रखा जाता है।

3.निर्धारण: इस परिभाषा में ‘निर्धारण’का प्रयोग विशेष अर्थ में किया गया है। इससे आलपोंट का तात्पर्य यह है कि ‘‘व्यक्तित्व कुछ है तथा कुछ करता है’’ इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व के सभी पहलू व्यक्ति के व्यवहारों एवं विचारों को उत्तेजित करते हैं तथा उसे निर्देशित करते है।

4.**विशिष्ट व्यवहार एवं चिन्तन:** इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक चीज जिसे व्यक्ति करता है या सोचता है, वह उस व्यक्ति की एक विशिष्टता होती है इस तरह से प्रत्येक व्यक्ति अनुठा है तथा वह किसी दूसरे से समान नहीं होता है।

1.**व्यक्तित्व शीलगुण:** जैसे फ्रायड के लिए व्यक्तित्व संरचना की इकाई मूलप्रवृत्ति है, उसी तरह आलपोर्ट के लिए व्यक्तित्व संरचना की इकाई शीलगुण है।सुल्ज के शब्दों में आलपोर्ट ने शीलगुण को इस प्रकार परिभाषित किया है, ‘‘आलपोर्ट ने शीलगुण को उद्दीपकों के विभिन्न प्रकारों के प्रति समान ढंग से अनुक्रिया करने का झुकाव या पूर्ववृत्तिके रूप में परिभाषित किया है। अपने वातावरण के उद्दीपक पहलुओं की ओर संगत एवं सहनीय ढंग से अनुक्रिया करने के तरीकों को शीलगुण कहा जाता है।’’ आलपोर्ट की इस परिभाषा से यह स्पष्ट है कि शीलगुण से उनका तात्पर्य व्यवहारों में संगतता से है।

आलपोर्ट ने शीलगुण को दो मुख्य भागों में बॉटा है-

1. सामान्य शीलगुण
2. वैयक्तिक शीलगुण,

1.**सामान्य शीलगुण:** सामान्य शीलगुण से आलपोर्ट का तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जो संस्कृति के कई लोगों में पाया जाता है। सामान्य शीलगुण एक तरह की अमूर्त्तता होती है जिससे सामाजिक मूल्योंतथा खास तरह से व्यवहार करने के सामाजिक दबाव से उत्पन्न होता है। आलपोर्ट ने इन शीलगुणों को बहुत महत्वपूर्ण नहीं माना है क्योंकि वे मौलिक शीलगुण नहीं है अर्थात इससे मात्र सतही अभिव्यक्ति की झलक मिलती है तथा व्यक्ति की वैयक्तिकता का एहसास नहीं होता है। चिन्ता, अनुरूपता, सामाजिक या राजनैतिक मनोवृत्ति सामान्य शीलगुण के कुछ उत्तम उदाहरण है। सामान्य शीलगुण को विमीय शीलगुण या नियमान्वेषी शीलगुण भी कहा गया है।

2.**वैयक्तिक शीलगुण:** जिसे वैयक्तिक पूर्ववृत्ति या आकृतिक शीलगुण भी कहा जाता है, से तात्पर्य वैसे शीलगुण से होता है जो व्यक्ति विशेष में पाया जाता है तथा जिसपर हम किसी संस्कृति के कई व्यक्तियों की तुलना नहीं कर सकते है। इससे व्यक्ति की विशेष समयोजनात्मक क्रियाएँ निर्देशित एवं प्ररित होती है। वैयक्तिक शीलगुण को

आलपोर्ट ने अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है क्योंकि इससे व्यक्तित्व की संरचना का विशेष एवं संगठित अध्ययन संभव हो पाता है। आलपोर्ट ने अपने शब्दावली में सामान्य शीलगुण के लिए सिर्फ शीलगुण का प्रयोग किया तथा वैयक्ति शीलगुण के लिए वैयक्तिक पूर्ववृत्ति का प्रयोग किया।

आलपोर्ट ने वैयक्तिक पूर्ववृत्ति को निम्नांकित तीन भागों में बॉटा है।

1. कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण
2. केन्द्रीय पूर्ववृत्ति या शीलगुण
3. गौण पूर्ववृत्ति या शीलगुण

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है-

1.**कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण:** कार्डिनल पूर्ववृत्ति या शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुण से होता है जो व्यक्ति में इतना अधिक व्यापक होता है कि वह प्रत्येक व्यवहार इसी से प्रभावित होकर करता पाया जाता है। जैसे, शांति एवं अहिंसा का शीलगुण महात्मा गॉधी का एक कार्डिनल शीलगुण था। आक्रामकता हिटलर एवं नेपोलियन का एक कार्डिनल शीलगुण था जिससे वे विश्वविख्यात थे। यह शीलगुण सभी व्यक्तियों में नहीं पाया जाता है परन्तु जिसमें पाया जाता है वह इसी शीलगुण के लिए जाने जाते है।

2.केन्द्रीय पूर्ववृत्ति या शीलगुण: केन्द्रीय शीलगुण वैसे शीलगुण को कहा जाता है जो व्यापक तो नहीं होते हैं परन्तु महत्वपूर्ण जरूर होते हैं जिनपर व्यक्ति अपनी जिन्दगी में अधिक प्रकाश डालता है। ऐसे शीलगुण प्रत्येक व्यक्ति में पाया जाता है तथा औसत इसकी संख्या 5 से 10 होती है। बहिर्गमन, भावुक, सचेत, सामाजिक, आक्रामकता आदि कुछ ऐसे ही शीलगुणों के उदाहरण है।

3.**गौण पूर्ववृत्ति या शीलगुण:** इस श्रेणी में उन शीलगुणों को रखा जाता है जो कम सुस्पष्ट, कम संगठित, कम संगत होते है और इसलिए व्यक्तित्व की संरचना के लिए कम महत्वपूर्ण होते है। जैसे, विशेष हेयर-स्टाइल रखना, खास प्रकार के भोजन करना, विशेष मनोवृत्ति तथा विशेष पहनावा आदि गौण पूर्ववृत्ति के उदाहरण है।

3. प्रोप्रियम: आलपोर्ट का मत है कि व्यक्तित्व असंबंधित शीलगुणों का मात्र एक बंडल नहीं होता है बल्कि इसमें शीलगुणों की एक संगति, एकता एवं समन्वय पाया जाता है इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व में कुछ ऐसे नियम होते है जों शीलगुणों, मूल्यों, अभिप्रेरकों को संगठित करता है। इस नियम को आलपोर्ट ने प्रोप्रियम कहा है। प्रोप्रियम एक लैटिन शब्द से बना है जिसका अर्थ 'अपना' होता है। प्रोप्रियम से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन सभी पहलुओं से होता है जिससे उनमें आन्तरिक एकता तथा संगतता आती है। प्रोप्रियम मानव प्रकृति के धनात्मक, सर्जनात्मक, वर्धन-उन्मुखी तथा अवस्थाओं के रूप में किया गया है। ये सात अवस्थाएँ शैशवावस्था से किशोरावस्था तक की होती है जिससे होकर प्रोप्रियम विकसित होता है। किशोरावस्था में आकर प्रोप्रियम का विकास पूर्ण हो जाता है। प्रथम तीन अवस्था अर्थात शारीरिक-आत्मन्, आत्म-पहचान तथा आत्म-सम्मान का विकास बच्चों के प्रथम तीन वर्ष की आयु में होती है। बाद की दो अवस्थाओं अर्थात आत्म-विस्तार तथा आत्म-प्रतिमा 4 साल से 6 साल की आयु में विकसित होती है तथा 'युक्तिसंगत समायोजन की अवस्था का विकास 6 साल से 12 साल की आयु में होती है तथा 'उपयुक्त प्रयास' की अवस्था किशोरावस्था में वकसित होती है। प्रोप्रियम में ये सभी सात पहलुओं का संगम पाया जाता है। इन सात अवस्थाओं का वर्णन निम्नांकित है-

1.शारीरिक-आत्मन्: इस अवस्था में बालक अपने अस्तित्व से अवगत होते है और अपने शरीर को वातावरण के अन्य वस्तुओं से भिन्न समझते है।

2.**आत्म-पहचान:** इस अवस्था में बच्चे यह अनुभव करने लगते है कि उनके भीतर कई तरह के परिवर्तन के बावजूद उनकी एक अलग पहचान है।

3.**आत्म-सम्मान**: इस अवस्था में बच्चे उन वस्तुओं तथा लोगों को पहचानने लगते है जो उनके मतलब के होते है। अर्थात जिससे उन्हें सम्मान मिलता है।

4.**आत्म-प्रतिमा:** यहॉं बच्चे अपने एवं अपने व्यवहार के बारे में एक वास्तविक एवं आदर्श प्रतिमा विकसित कर लेते है और वे अपने माता-पिता की प्रत्याशाओं को संतुष्ट कर सकने में सफल होते है। इस अवस्था में किसी को रोल माडल मानते है।

5.**युक्तिसंगत समायोजन** के रूप में आत्मन् इस अवस्था में बच्चे दिन-प्रतिदिन की समस्याओं के समाधान में तर्क एवं विवेक का प्रयोग करना सीख लेते हैं।

6.**उपयुक्त प्रयास:** यह अवस्था किशोरावस्था में विकसित होती है और इसमें किशोर दीर्घकालीन योजना तथा लक्ष्य का निर्माण करना प्रारंभ कर देता है।

व्यक्तित्व की गतिकी: व्यक्तित्व की गतिकी की व्याख्या आलपोर्ट ने कार्यात्मक स्वतंत्रता तथा चेतन एवं चेतन अभिप्रेरण के तहत किया है। इन दोनों संप्रत्ययों की व्याख्या इस प्रकार है-

1.कार्यात्मक स्वायत्तता: कार्यात्मक स्वायत्तता का संप्रत्यय एक प्रेरणात्मक संप्रत्यय है। कार्यात्मक स्वायत्तता का संप्रत्यय यह बतलाता है कि सामान्य एवं परिपक्व वयस्क के कुछ अभिप्रेरक अपने उन गत अनुभूतियों से कार्यात्मक रूप से संबधित नहीं होते है जिनसे उसकी उत्पत्ति संभवतः हुई। परन्तु यह तथ्य है कि अभिप्रेरक अपने मौलिक परिस्थिति से पूर्णतः स्वतंत्र या स्वायत्त होते है। आलपोर्ट का कहना था कि गत अनुभूतियॉं बीत चुकी होती है और वर्तमान व्यवहार का संबंध उन अनुभूतियों से अब नहीं रह जाता है भले ही इस वर्तमान व्यवहार का आधार वही गत अनुभूतियॉं ही क्यों न हो। दूसरे शब्दों में, जिन साधनों से पहले व्यक्ति किसी लक्ष्य की प्राप्ति करता था, वह अब स्वयं लक्ष्य हो जाता है। जैसे, किसी वृक्ष का विकास एवं वर्धन उसके उत्तम बीज के कारण होता है। परन्तु जब वृक्ष पूर्णतः परिपक्व हो जाता है या बड़ा हो जाता है, तो वह अपने विकास एवं वर्धन के लिए बीज पर आधारित नहीं होता है। वृक्ष अब आत्म-निर्धारक हो जाता है और अब बीज से कार्यात्मक रूप से वायत्तता प्राप्त कर चुका होता है। आलपोर्ट ने कार्यात्मक स्वायत्तता के दो स्तर बतलाये है-

1. संतनन कार्यात्मक स्वायत्तता
2. उपयुक्त कार्यात्मक स्वायत्तता

1.संतनन कार्यात्मक स्वायत्तता: संतनन कार्यात्मक स्वायत्तता अधिक साधारण एवं आसान संप्रत्यय है जिसका संबधं कुछ व्यवहारों जैसे व्यसन तथा पुनरावृत्ति होने वाली दैहिक क्रियाएँ जैसे बच्चों द्वारा एक ही व्यवहार को बार-बार करना तथा वयस्क द्वारा दिन-प्रतिदिन के कार्यो को एक रूटिन का माना है कि ऐसे व्यवहारों में तो कभी कोई उद्देश्य की पूर्ति ही हो जाती हो लेकिन वर्तमान समय में उससे किसी प्रकार के उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाती है। फलतः व्यक्तित्व का कोई महत्वपूर्ण अंश नहीं माना जा सकता है।

2.उपयुक्त कार्यात्मक स्वायत्तता: उपयुक्त कार्यात्मक स्वसयत्तता को आलपोर्ट ने अधिक महत्वपूर्ण बतलाया है और कहा है कि एक सामान्य एवं परिपक्य वयस्क की अभिप्रेरण को समझने के लिए यह आवश्यक है क्योंकि इसका संबधं व्यक्तित्व के सार से होता है। इस तरह कार्यात्मक स्वायत्तता से तात्पर्य व्यक्ति के अर्जित अभिरूचि, मूल्य, मनोवृत्ति, उद्देश्य आदि से होता है। इस तरह की स्वायत्तता से व्यक्ति के आत्म-प्रतिमा को संगत बनाने तथा

जीवन-शैली को उत्तम बनाने में काफी मदद मिलती है। आलपोर्ट के अनुसार उपयुक्त कार्यात्मक स्वायत्तता का नियंत्रण निम्नांकित तीन नियमों द्वारा होता है-

1. उर्जा स्तर को संगठित करने का नियम
2. दक्षता एवं निपुणता का नियम
3. उपयुक्त पैटर्निंग का नियम

इन तीनों का वर्णन निम्नांकित है-

1.उर्जा स्तर को संगठित करने का नियम: उर्जा स्तर को संगठित करने का नियम यद्यपि यह नियम यह नहीं बतलाता है कि एक अभिप्रेरक किस प्रकार से विकसित होता है, फिर भी यह नियम इस बात पर बल डालता है कि व्यक्ति अपने बचे हुए उर्जा शक्ति का प्रयोग नये-नये अच्छे व्यवहारों को करने में करता है ताकि वह इस बचे हुए शक्ति का गलत उपयोग अर्थात् ध्वंसात्मक एवं हानिकारक कार्यो में नहीं कर सके। जैसे, जब व्यक्ति नौकरी से अवकाश प्राप्त करता है, तो सामान्य कामों को खतम करने के बाद भी उसके पास उर्जा एवं समय काफी बच जाता है जिसका वह उपयोग नये अभिप्रेरकों एवं अभिरूचियों की प्राप्ति में करता है।

2.दक्षता एवं निपुणता का नियम: दक्षता एवं निपुणता का नियम यह नियम बतलाता है कि व्यक्ति अपने अभिप्रेरको की सन्तुष्टि उच्च स्तर पर करना चाहता है। एक मासान्य वयस्क अपनी उपलब्धियों से ही संतुष्टि नहीं हो जाता है बल्कि वह अपनी दक्षता एवं निपुणता को और आगे बढ़ाने की ओर प्रेरित रहता है।

3.उपयुक्त पैटर्निंग का नियम: उपयुक्त पैटर्निंग का नियम यह नियम बतलाता है कि जितने भी उपयुक्त अभिप्रेरक होते है, वे सभी एक-दूसरे से स्वतंत्र नहीं होते है बल्कि वे आत्मन् की संरचना पर आधारित होते है जिससे वे ठीक ढंग से जुड़े होते है। व्यक्ति अपना प्रत्यक्षणात्मक तथा संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं को इसी आत्मन् की ओर संगठित करता है। अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यह नियम व्यक्तित्व की संगतता था संगठन की प्राप्ति की ओर किये जाने वाले प्रयासों पर बल डालता है।

आलपोर्ट ने यह स्पष्ट किया कि सभी तरह के व्यवहार या अभिप्रेरक की व्याख्या कार्यात्मक स्वायत्तता के सिद्धान्त द्वारा नहीं की जा सकती है।

1. जैविक अंतर्नोद से उत्पन्न होने वाले व्यवहार, जैसे- भोजन करना, पानी पीना, सोना, सांस लेना आदि।
2. सहज क्रिया जैसे-पलक गिराना, पाचन क्रिया, जानुक्षेप आदि।
3. शरीरगठनात्मक तत्व जैसे-शारीरिक बनावट का खास प्रकार।
4. आदत कुछ आदतें तो कार्यात्मक रूप् से स्वायत्त होती है परन्तु कुछ ऐसी होती है जिनका कोई प्रेरणात्मक मूल्य नहीं होता है।
5. किसी पुनर्बलन के अभाव में छोड़ दिया गया व्यवहार या नहीं किया जाने वाला व्यवहार।
6. वैसे व्यवहार जिसे वयस्कावस्था में भी व्यक्ति अपने बाल्यावस्था के संघर्ष को दिखलाने के लिए करता है।
7. बाल्यावस्था की दमित इच्छाओं से संबंधित व्यवहार।
8. उदात्तीकरण अर्थात एक अभिप्रेरक जब दूसरे अभिप्रेरक के रूप में अभिव्यक्त होता है।

2. चेतन एवं चेतन अभिप्रेरण:

चेतन एवं अचेतन अभिप्रेरण आलपोर्ट ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में चेतन अभिप्रेरण पर बल डालते हुए कहा है कि स्वस्थ वयस्क इस बात से पूर्णतः अवगत होता है कि वह क्या कर रहा है तथा क्यों कर रहा है। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने अचेतन अभिप्रेरण के संप्रत्यय की उपेक्षा की है। आलपोर्ट का मत है कि अधिकतर अभिप्रेरण जिसका संबधं चेतन मन से होता है, वास्तव में अचेतन में छिपी इच्छाओं से प्रभावित होता है। आलपोर्ट के अनुसार असामान्य व्यक्तित्व भले ही अचेतन द्वारा नियंत्रित होता है परन्तु एक परिपक्व एवं सामान्य वयस्क का व्यक्तित्व पूर्णतः चेतन के नियंत्रण में होता है।

व्यक्तित्व का वर्धन: आलपोर्ट का मत था कि कोई व्यक्ति एक खास व्यक्तित्व लेकर पैदा नहीं होता है बल्कि जन्म के बाद वह एक खास व्यक्तित्व को विकसित करता है। बाल्यावस्था के व्यक्तित्व तथा वयस्कावस्था के व्यक्तित्व में कार्यात्मक निरंतरता नहीं होकर एक तरह का निभाजन होता है। उन्होंने बाल्यावस्था के व्यक्तित्व को मूलतः आनन्द प्राप्त करने वाला, ध्वंसात्मक, स्वार्थपरक, आश्रित आदि बतलाया है।

आलपोर्ट ने अपने सिद्धान्त में यह बतलाया है कि सामान्य विकास के अंतिम चरण में व्यक्ति एक परिपक्व एवं मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तित्व विकसित करता है। इस तरह के व्यक्तित्व के लिए उन्होंने निम्नांकित 6 कसौटियों का वर्णन किया है जो निम्नांकित है-

1. आत्मन् के ज्ञान का विस्तार।
2. दूसरों के साथ आत्मन् का सौहार्द्रपूर्ण संबंध।
3. संवेगात्मक सुरक्षा।
4. वास्तविक प्रत्यक्षण, कौशलों का विकास तथा कुछ कार्यो के प्रति वचनबद्धता।
5. आत्म-वस्तुनिष्ठता अर्थात आत्मन् में सूझ तथा हास्य का ज्ञान।
6. जिन्दगी की एक संतोषजनक नीति जिससे भविष्य के लक्ष्यों की ओर व्यक्ति की जिन्दगी के सभी पहलुओं को निर्देशित किया जाना संभव हो।

उपयुक्त 6 कसौटियों के आधार पर आलपोर्ट के अनुसार धनात्मक मानसिक स्वास्थ्य की पहचान की जा सकती है।

शोध एवं मापन: आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त का एक महतवपूर्ण पहलू शोध एवं मापन बतलाया गया हैं आलपोर्ट ने व्यक्तित्व शोध के लिए नियमान्वेषी दृष्टिकोण की तुलना में भावमूलक दृष्टिकोण की अहमियत अधिक बतलाया है। उनका कहना था कि नियमान्वेषी दृष्टिकोण जिसमें व्यक्तियों के विभिन्न समूहों के माध्यों की तुलना की जाती है, व्यक्ति के भीतर होने वाली प्रक्रियाओं को नजरअंदाज करता है। सिर्फ भावमूलक दृष्टिकोण से ही वैयक्तिक व्यक्तित्व के बारे में अर्थपूर्ण सूचना मिल सकती है। अभिव्यक्त व्यवहार पर किया गया। यह वह व्यवहार होता है जिससे व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है।

जहाँ तक मापन का प्रश्न है, आलपोर्ट ने इसके लिए कई विधियों का प्रतिपादन किया है। इन विधियों में विषय विश्लेषण, परीक्षण एवं मापनी, गहन विश्लेषण, रेटिंग्स, व्यक्तिगत लेखन, शारीरिक एवं शरीरगठनात्मक निदान आदि प्रमुख है। आलपोर्ट ने अन्य दो सहकर्मियों अर्थात् एवं लिण्डजे के साथ मिलकर 1960 में व्यक्त्वि मूल्यों को मापने का भी एक परीक्षण बनाया है जिसका नाम ''आलपोर्ट-भर्नन-लिण्डजे स्टडी ऑफ भैल्यू'' रखा गया है।

आलपोर्ट के सिद्धान्त का मूल्यांकनः आलपोर्ट के सिद्धान्त का मूल्यांकन आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ गुण एवं कुछ परिसीमाएँ भी है।

आलपोर्ट के सिद्धान्त का गुण:

इसके प्रमुख गुण निम्नांकित है-

1. आलपोर्ट ने अपना व्यक्तित्व सिद्धान्त शैक्षिक परिस्थितियों ने कि मनोविश्लेषणात्मक परिस्थिति में विकसित किया था। अतः इस सिद्धान्त को शिक्षण मनोवैज्ञानिकों द्वारा तुलनात्मक रूप से अधिक मान्यता दी गयी है।

2. आलपोर्ट के सिद्धान्त का एक विशेष गुण यह बतलाया गया है कि इसमें व्यक्ति के वर्तमान एवं भविष्य को उसके भूत की अपेक्षा महत्वपूर्ण माना गया है। व्यक्ति के प्रेरणा एवं व्यवहार को समझने के लिए आलपोर्ट ने उसके वर्तमान एवं भविष्य पर जो बल डाला है, वह अपने आप में अद्वितीय है। इससे व्यक्तित्व की संरचना को वैज्ञानिक ढ़ग से समझने में काफी मदद मिलती है।

3. आलपोर्ट का व्यक्तित्व शोध के प्रति जो भावमूलक दृष्टिकोण है, वह काफी सराहनीय है क्योंकि इससे व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व का विस्तृत विश्लेषण करने तथा उसे समझने में विशेष मदद मिलती है।

4. आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त में व्यक्तित्व की संरचना की व्याख्या शीलगुणों के रूप में की गयी है। उन्होंने शीलगुणों के विस्तृत प्रकार बतलाकर व्यक्तित्व की संरचना का जो वर्णन प्रस्तुत किया है, उसे आधुनिक मनोविज्ञानिकों द्वारा एक महत्वपूर्ण योगदान माना गया है।

आलपोर्ट के सिद्धान्त का आलोचनाएँ: इन गुणों के बावजूद आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त की कुछ आलोचनाएँ है जिनमें निम्नांकित प्रमुख है-

1. फिस्ट का मत है कि आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त दर्शनशास्त्रीय अनुमान एवं सामान्य बोध पर न कि वैज्ञानिक अनुसंधानों पर आधारित है। आलपोर्ट ने अपने सिद्धान्त के आधार पर बनाये गए प्राक्कल्पनाओं की जॉच करने के लिए कोई महत्वपूर्ण शोध नहीं किये है। अतः उनके सिद्धान्त के तथ्यों एवं मान्यतओं की वैधता अधिक नहीं बतलायी गयी है।

2. मनोविश्लेषकों ने आलपोर्ट के कार्यात्मक स्वसयत्तता के संप्रत्यय पर आपत्ति जतीयी है और कहा है कि इसमें व्यक्ति की गत अनुभूतियों को नजरअंदाज कर वर्तमान एवं भविष्य पर अधिक बल डाला गया है। इस तरह के वर्णन से व्यक्तित्व के स्वरूप् को सही-सही समझना कठिन है।

3. कुछ आलोचकों का मत है कि आलपोर्ट के सिद्धान्त द्वारा मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के कार्यात्मक स्वायत्त अभिप्रेरकों का तो वर्णन हो जाता है परन्तु बच्चों, मनोविकृत तथा तंत्रिकातापी व्यक्तियों के अभिप्रेरकों की व्याख्या आलपोर्ट के सिद्धान्त में नहीं होती है। ऐसे व्यक्ति क्यों व्यवहार करते है, इसका उत्तर हमें आलपोर्ट के सिद्धान्त में नहीं मिलता है।

4. कार्यात्मक स्वायत्तता के बारे में एक आलोचना यह भी की जाती है कि आलपोर्ट ने इसमें यह नहीं बतलाया है कि किस तरह से मौलिक अभिप्रेरक एक स्वायत्त अभिप्रेरक में बदल जाता है। उदाहरणस्वरूप, किसी प्रक्रिया द्वारा धन कमाने के लिए कड़ी मेहनत करने का अभिप्रेरक बाद में जब व्यक्ति धनी हो भी जाता है, तो वह अपने आप कड़ी मेहनत करने का एक स्वतंत्र अभिप्रेरक के रूप में किस तरह बदल जाता हैं चूं कि परिवर्तन के प्रक्रम को आलपोर्ट ने नहीं बतलाया है, अतः आलोचकों का मत है कि यह पूर्वकथन करना मुश्किल है कि बाल्यावस्था का कौन-सा अभिप्रेरक व्यस्कावस्था में एक स्वतंत्र अभिप्रेरक के रूप में परिणत हो जाएगा ?

5. आलपोर्ट ने व्यक्तित्व शोध के प्रति जो भावमूलक दृष्टिकोण अपनाया है, उसकी भी आलोचना आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गयी है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्तित्व के अध्ययन का सही दृष्टिकोण भावमूलक शोध न होकर नियमान्वेषी शोध है जिसमें कई व्यक्तियों को ''न कि किसी एक व्यक्ति को'' एक साथ अध्ययन करके और फिर उनका सांख्किीय विश्लेषण करके सामूहिक रूप से व्याख्या की जाती है। इस आलोचना के मुख्य कमर्थक सूल्ज है।

6. आधुनिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आलपोर्ट ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में सिर्फ स्वस्थ्य वयस्क का अध्ययन किया है स्नायुविकृत तथा मनोविकृत व्यक्तियों का अध्ययन नहीं किया है। अतः इसकी उपयोगिता काफी सीमित है।

7. कुछ आलोचकों जैसे फिट्स तथा फिशन का मत है कि आलपोर्ट के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ संप्रत्ययों का अध्ययन प्रयोगात्मक विधि द्वारा करना संभव नहीं है। जैसे, आलपोर्ट के एक अतिमहत्वपूर्ण संप्रत्यय अर्थात कार्यात्मक स्वायत्तता को प्रयोगशाला की परिस्थिति में किस तरह अध्ययन किया जा सकता है? इसे प्रयोगकर्त्ता में किस तरह जोड़-तोड़ कर सकता है ताकि इसका प्रभाव अन्य चरों पर देखा जा सके? इस प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर आलपोर्ट के सिद्धान्त में नहीं मिल पाता है।

8. कुछ आलोचकों जैसे सुल्ज ने आलपोर्ट के इस दावा को अस्वीकार कर दिया है कि बच्चा तथा वयस्क एवं सामान्य तथा असामान्य के व्यक्तित्व में अनिरंतरता होती हैं सुल्ज का मत है कि बच्चों पर तथा असामान्य व्यक्तियों पर कोई ऐसे शोध किये गए है जिनसे क्रमशः वयस्क एवं सामान्य व्यक्तियों को समझने में काफी मदद मिली है।

9. आलोचकों का यह भी मत है कि आलपोर्ट सिद्धान्तत में व्यक्तित्व पर सामाजिक कारकों के पड़ने वाले प्रभावों की उपेक्षा की गयी है।

इन आलोचनाओं के बावजूद आलपोर्ट का व्यक्तित्व सिद्धान्त उत्तेजनपूर्ण तथा व्याख्यात्मक दोनों ही है। इनका सिद्धान्त स्पष्ट चिन्तन एवं यथार्थता का एक ऐसा मानक प्रदान किया है जो भविष्य के मनोवैज्ञानिकों के लिए प्रेरणा का एक उत्तम स्त्रोत है।

9.4. टाइप ए एंव बी व्यक्तित्व का सिद्धान्त.

हाल के वर्षों में फ्रीडमैन एवं रोजेनमैन ने टाइप 'ए' तथा टाइप 'बी' इन दो प्रकार के व्यक्तित्वों में लोगों का वर्गीकरण किया है। इन दोनों शोधकर्ताओं ने मनोसामाजिक जोखिम वाले कारकों का अध्ययन करते हुए इन प्रारूपों की खोज की।

टाइप 'ए' व्यक्तित्व वाले लोगों में उच्च स्तरीय अभिप्रेरणा, धैर्य की कमी, समय की कमी का अनुभव करना, उतावलापन और कार्य के बोझ से हमेशा लदे रहने का अनुभव करना पाया जाता है। ऐसे लोग निश्चिन्त होकर मंद गति से कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। टाइप 'ए' व्यक्तित्व वाले लोग अति रक्तदाब और कॉरोनरी हृदय रोग के प्रति ज्यादा संवेदनशील होते है। इस प्रकार के लोगों में कभी-कभी सी.एच.डी. के विकसित होने का खतरा उच्च रक्तदाब, उच्च कोले स्ट्रोल स्तर और धुम्रपान से उत्पन्न होने वाले खतरों के अपेक्षा अधिक होता है। इसके विपरीत टाइप 'बी' व्यक्तित्व वाले निम्न अभिप्रेरणा वाले, धैर्य पूर्ण, समय ही समय का अनुभव करने वाले, काम को हल्के में लेने वाले, खुद को फ्री महसुस करने वाले होते है। टाइप बी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति निश्चिन्त होकर

आराम से कार्य करना पसन्द करते है जिसकी वजह से ऐसे लोग खुशमिजाज प्रकार के होते है एवं इनमें ह्दय रोग व रक्तदाब के होने की सम्भावना कम होती है। व्यक्तित्व के इस प्रारूप विज्ञान का अत्यंत महत्व है।

9.5. व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त (Trait Theory of Personality) –

शीलगुण व्यक्ति के व्यवहारों की एक ऐसी विशेषता है जो विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में प्रकट होती है। किसी व्यक्ति को ईमानदार, उत्साही, संवेदनशील आदि कहा जाता है। ये सभी शब्द विशे षण हैं, जिनके द्वारा व्यक्ति के प्रमुख लक्षणों को व्यक्त किया जा सकता है। इन्हीं लक्षणों को शीलगुण कहते हैं। सबसे पहले शीलगुण के द्वारा व्यक्तित्व को स्पष्ट करने के लिए आलपोर्ट एवं आडवर्ट ने 17953 अंग्रेजी शब्दों का चयन किया जिनके द्वारा किसी व्यक्ति की विशे षताओं को व्यक्त किया जा सकता है। आलपोर्ट (1937) के अनुसार 'प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न मात्रा ओं में अनेक शीलगुण होते हैं और इन शीलगुणों को संगठन एक निश्चित प्रकार का होता है।

शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्तित्व की रचना विभिन्न शीलगुणों से हुई है। व्यक्तित्व रूपी भवन की इकाई को शीलगुण कहते हैं। विभिन्न शीलगुणों के संगठन से व्यक्तित्व संरचित होता है। शीलगुण अपेक्षाकृत स्थिर होते हैं और विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार द्वारा प्रकट होते हैं। चैपलिन के अनुसार- 'शीलगुण अपेक्षाकृत स्थिर एवं संगत व्यवहार प्रतिरूप है जिनकी अभिव्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में होती है।' प्रत्येक शीलगुण की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। जैसे प्रभुत्व शीलगुण सभी व्यक्तियों में होता है, परन्तु किसी व्यक्ति में इसकी मात्रा कम होती है और किसी में अधिक। इसी कारण कुछ मनोवैज्ञानिकों ने शीलगुण के स्थान पर विमा या आयाम शब्द का प्रयोग किया है। विशे ष रूप से कैटेल और आइजेंक ने इस बात पर बल दिया है कि प्रत्येक शीलगुण व्यक्तित्व की एक विमा है, इस विमा के विभिन्न बिन्दुओं पर उस विशे ष शीलगुण की मात्रा ओं को अंकित किया जा सकता है। इस प्रकार विमा के निश्चित बिन्दु से शीलगुण की एक निश्चित मात्रा का बोध होता है।

शीलगुण सिद्धान्त की विशेषतायें (Characteristics of Trait Theory)-

इस सिद्धांत की विशेषतायें निम्नलिखित हैं-

1. इस सिद्धांत का सबसे बड़ा गुण यह है कि इससे व्यक्तित्व के आधार तत्वों को समझने में सहायता मिलती है।
2. शीलगुण सिद्धान्त के आधार पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बीच समानता की व्याख्या की जा सकती है।
3. यह सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति का व्यवहार स्थिर और संगतिपूर्ण होता है।
4. आइजेंक द्वारा प्रस्तुत द्विध्रुवीय विमाओं के आधार पर व्यक्तित्व की अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता, मनःस्नानुविकृति-स्थिरता तथा मनोविक्षिप्तता-यथार्थता प्रवृत्ति की व्याख्या सरल हो जाती है।

शीलगुण सिद्धान्त में मनोवैज्ञानिकों के विचार- इस तरह से शीलगुण में व्यक्तित्व के उन महत्वपूर्ण विमाओं की पहचान करने की कोशिश की जाती है जिनके आधार पर व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न समझे जाते हैं। इस उपागम की मान्यता यह है कि यदि एक बार यह जान लिया जाता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किस तरह से भिन्न है, फिर यह आसानी से मापा जा सकता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से कितना भिन्न है और तब अध्ययनकर्ता उन अन्तरों को विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति व्यवहार के अन्तरों के साथ संबंद्ध कर उसकी व्याख्या करता है। शीलगुण सिद्धान्त में मूल रूप से दो मनोवैज्ञानिकों के विचार का उल्लेख किया जाता है जो निम्नांकित है-

9.5.1 कैटेल का योगदान (Contribution of Cattell)- शीलगुण सिद्धान्त में आलपोर्ट के बाद कैटेल का नाम अधिक महत्व पूर्ण माना गया है। इन्होंने शीलगुण सिद्धान्त में आलपोर्ट के योगदान करके इस सिद्धान्त को व्यक्तित्व की व्याख्या करने में काफी प्रबल बनाया है।

कैटेल ने प्रमुख शीलगुणों की खोज की शुरूआत आलपोर्ट द्वारा बतलाये गए 18,000 शीलगुणों में से 4,500 शीलगुणों को चुनकर किया। बाद में, इनमें से समानार्थ शब्दों को एक साथ मिलाकर इसकी संख्या उन्होंने 200 कर दी और फिर बाद में विशेष सांख्यिकीय विधि (Statistical method) यानी कारक विश्लेषण (Factor analysis) के सहारे अन्तर सहसम्बन्ध (Interco relation) द्वारा की उसकी संख्या 35 कर दी।
कैटेल ने शीलगुणों को कई ढंग से विभाजित कर अध्ययन किया है। उनका सबसे मशहूर वह है जिसमें उन्होंने व्यक्तित्व के शीलगुणों को सतही शीलगुण (surface trait) तथा मूल या स्त्रोत शीलगुण (source trait) के रूप में विभाजन किया है। इन दोनों का वर्णन निम्नांकित है-
(1.) सतही शीलगुण - जैसा कि नाम से भी स्पष्ट है, इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व की ऊपरी सतह या परिधि पर होता है यानी, इस तरह के शीलगुण ऐसे होते हैं जो व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया (interaction) में आसानी में अभिव्यक्त हो जाते हैं। इसकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होती हे कि सम्बन्धित शीलगुण के बारे में व्यक्ति में कोई दो मत हो ही नहीं सकते हैं। जैसे-प्रसन्नता (cheerfulness), परोपकारिता (altruism), सत्यनिष्ठा (integrity) कुछ एसे शीलगुण हैं जो सतही शीलगुण के उदाहरण हैं जिनकी अभिव्यक्ति व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में स्पष्ट रूप से होती है।
(2.) स्त्रोत या मूल शीलगुण- कैटेल के अनुसार मूल शीलगुण व्यक्तिव की अधिक महत्व पूर्ण संरचना है तथा इसकी संख्या सतही शीलगुण की अपेक्षा कम होती है। मूल शीलगुण (source trait) सतही शीलगुण के समान, व्यक्ति के दिन-प्रतिदिन की अन्तःक्रिया में स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो पाते हैं। अतः इसका प्रेक्षण (observation) सीधे नहीं किया जा सकता है। कैटेल के अनुसार मूल शीलगुण व्यक्तित्व की भीतरी संरचना होती है जिसके बारे में हमें ज्ञान तब होता है जब हम उससे सम्बन्धित सतही शीलगुण (surface trait) को एक साथ मिलाने की कोशिश करते हैं। जैसे- सामुदायिकता (gregariousness), निस्वार्थ (unselfishness) तथा हास्य (humour) तीन ऐसे सतही शीलगुण हैं जिन्हें एक साथ मिलाने से एक नया मूल शीलगुण बनता है जिसे मित्रता (friendliness) की संज्ञा दी जाती है।
सामान्य रूप से मूल शीलगुण को कैटेल ने दो भागों में बाँटा है-
1. पर्यावरण-प्रभावित शीलगुण (environmental-mold traits) तथा
2. स्वाभाविक शीलगुण (constitutional traits)
3. पर्यावरण-प्रभावित शीलगुण- कुछ मूल शीलगुण ऐसे होते हैं जिनके विकास में आनुवंशिकता की अपेक्षा वातावरण-सम्बन्धी कारकों का अधिक प्रभाव पड़ता है। इन्हें पर्यावरण-प्रभावित शीलगुण कहा जाता है।
4. स्वाभाविक शीलगुण - कुछ ऐसे शीलगुण होते हैं जिनके विकास में वातावरण की अपेक्षा आनुवंशिकता का प्रभाव अधिक पड़ता है। इस तरह के शीलगुण को स्वाभाविक शीलगुण कहा जाता है।
कैटेल ने शीलगुणों का विभाजन उस व्यवहार पर भी किया है जिससे वे सम्बन्धि होते हैं। इस कसौटी के आधार पर शीलगुण के तीन प्रकार हैं-

1. गत्यात्मक शीलगुण (**dynamic trait**)
2. क्षमता शीलगुण (**ability traits**) तथा
3. चित्तप्रकृति शीलगुण (**temperament trait**)

4. गत्यात्मक शीलगुण - गत्यात्मक शीलगुा वैसे शीलगुण को कहा जाता है जिससे व्यक्ति का व्यवहार एक खास लक्ष्य की ओर अग्रसित होता है। मनोवृत्ति (attitude), अर्ग (erg) तथा मनोभाव (sentiments) गत्यात्मक शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं।
(1) मनोवृत्ति
(2) अर्ग
(3) मनोभाव

(1) मनोवृत्ति (attitude) - कैटेल के अनुसार मनोवृत्ति का अर्थ व्यक्ति का किसी क्ष्ेात्र , वस्तु या अन्य व्यक्ति में दिखलायी गयी अभिरुचि से होता है तथा इस तरह की अभिरुचि की अभिव्यक्ति प्रायः स्पष्ट व्यवहार के रूप में होती है। अतः कैटेल का मनोवृत्ति से तात्पर्य किसी वस्तु या घटना के प्रति व्यक्ति के संवेगों एवं क्रियाओं से था।

(2) अर्ग (erg) - अर्ग शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'अर्गोन' से हुई है जिसका अर्थ होता है- कार्य या ऊर्जा। कैटेल ने इस पद का प्रयोग मूलप्रवृत्ति या प्रणोद के स्थान पर किया है। उनके अनुसार अर्ग सभी तरह के व्यवहार का एक ऊर्जा स्रोत होता है। चूँकि अर्ग जन्मजात होता है, अतः यह एक तरह का शरीरगठनात्मक स्रोत शीलीगुण है। कैटेल का मत है कि अर्ग अभिप्रेरणा की मूल इकाई है और विशिष्ट लक्ष्यों की ओर निर्देशित होता है। कैटेल ने अपने कारक-विश्ले षिक अध्ययन के आधार पर 11 इस तरह के अर्ग की एक सूची दी है जो इस प्रकार है- (1) उत्सुकता, (2) यौन, (3) सामुदायिता, (4) बचाव, (5) आत्म-दृढ़कथन, (6) सुरक्षा, (7) भूख, (8) क्रोध, (9) विरक्ति, (10) आग्रह, (11) आत्म-विनम्रता।

(3) मनोभाव (sentiments) - मनोभाव एक तरह पर्यावरणी-परिवर्तित स्रोत शीलगुण है। अर्थात मनोभाव की उत्पत्ति बाह्य सामाजिक एवं भौतिक प्रभावों से काफी प्रभावित होती है। सचमुच में मनोभाव सीखी गयी मनोवृत्ति का एक पैटर्न होता है जिससे व्यक्ति जीवन के महत्वपूर्ण वस्तुओं जैसे- नौकरी, धर्म, शौक, पति-पत्नी आदि के प्रति एक खास तरह से व्यवहार कर पाता है।

यद्यपि ऊर्जा एक मनोभाव दोनों के ही द्वारा व्यक्ति का व्यवहार प्रेरित होता है फिर भी इन दोनों में एक महत्वपूर्ण अन्तर है। अर्ग का आधार चूँकि शरीरगठनात्मक तत्व होता है, अतः यह व्यक्ति का एक स्थायी संरचना होता है। यह कमजोर हो सकता है या पहले से और अधिक मजबूत हो सकता है परन्तु कभी इसका अस्तित्व समाप्त नहीं हो सकता है। दूसरी तरफ मनोभाव जिसकी उत्पत्ति मूलतः सीखने से होती है, को समय बीतने पर व्यक्ति भूल जा सकता है। अतः वह व्यक्ति की जीवन से पूर्णतः समाप्त हो सकता है अपितु महत्वहीन हो सकता है।

मनोवृत्ति, अर्ग तथा मनोभाव में संबंध - कैटेल ने अर्ग, मनोभाव तथा मनोवृत्ति के संबंधों पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने इन तीनों संबंधों का वर्णन एक विशे ष प्रक्रिया द्वारा किया है जिसे उन्होंने सहायिकी कहा है। सहायिकी एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें इन तीनों एक-दूसरे के सहायक के रूप में कार्य करते हैं अर्थात् एक-दूसरे की प्रबलता में सहायता देते हैं। जैसे- मनोवृत्ति, मनोभाव का सहायक होता है जो पुनः अर्ग के सहायक के रूप में कार्य करता है। एक चित्र के सहारे अर्ग, मनोभाव, मनोवृत्ति के आपसी संबंधों को दिखलाया जाता है। इसे कैटेल ने गत्यात्मक

जाल कहा है। कैटेल द्वारा बतलाये गये एक ऐसे ही गत्यात्मक जाल को चित्र में दिखलाया गया है। चित्र में अर्ग को दायें तरफ, मनोभाव को बीच में वृत्त में रखकर तथा मनोवृत्ति को बायें तरफ रखा गया है। चित्र से स्पष्ट है कि प्रत्येक मनोवृत्ति कोई-न-कोई मनोभाव की उत्पत्ति में सहायता प्रदान कर रही है तथा प्रत्येक मनोभाव एक या एक से अधिक अर्ग की उत्पत्ति में सहायता प्रदान कर रहे हैं। जैसे- बैंक ले खा के मनोभाव की अभिव्यक्ति दो तरह से अर्ग के रूप में हो रही है- आत्म-दृढ़ता तथा सुरक्षा। उसी तरह पत्नी के प्रति मनोभाव की अभिव्यक्ति चार प्रमुख अर्गों में हो रही है- यौन, सामुदायिकता, बचाव तथा आत्म-दृढ़ता। दूसरे शब्दों में, ये चारो अर्ग पत्नी के प्रति पति के मनोभाव को प्रबल बनाते हैं। कैटल ने अपने सिद्धान्त में यह भी स्पष्ट किया है कि प्रत्येक व्यक्ति में जो मनोभावों का सेट पाया जाता है, वह एक विशे ष मास्टर मनोभाव से सतत रूप से संगठित होते रहते हैं। इस दृढ़ मनोभाव को आत्म-मनोभाव कहा है। आत्म-मनोभाव से तात्पर्य व्यक्ति का अपने बारे में बनाये गये धारणा से होता है जो उनके सभी तरह की मनोवृत्तियों एवं आत्मप्रप्यय के रूप में अभिव्यक्ति होती है।

1. **क्षमता शीलगुण (ability traits)** - क्षमता शीलगुण से तात्पर्य कुछ वैसे शीलगुणों से होता है जो व्यक्ति को किसी लक्ष्य तक पहुँचाने में काफी प्रभावकारी सिद्ध होते हैं।

2. **चित्तप्रकृति शीलगुण (temperament trait)** - चित्तप्रकृति शीलगुण से तात्पर्य, वैसे शीलगुणों से होता है जो किसी लक्ष्य पर पहुँचने के प्रयास से उत्पन्न होता है तथा जिसका सम्बन्ध व्यक्ति की संवेगात्मक स्थिति अनुक्रिया करने की शक्ति (energy) तथा दर (rate) आदि से सम्बन्धित होता है। सांवेगिक स्थिरता (emotional stability), मस्तमौलापन (happy-go-luckiness) आदि चित्तप्रकृति शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं।

कैटेल ने यह भी बतलाया है कि व्यक्तित्व के शीलगुणों का अध्ययन करने के लिए मूलतः तीन स्त्रोत हैं-जीवन अभिलेख (life record), आत्म रेटिंग (self-rating) तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षण (objective test) पहले स्त्रोत से प्राप्त आँकड़ों को L-data, दूसरे स्त्रोत से प्राप्त आँकड़ों को Q-data तथा तीसरे स्त्रोत से प्राप्त आँकड़ों को L-data कहा जाता है।

कैटेल के व्यक्तित्व सिद्धांत का मुल्याकंन- कैटेल के व्यक्तित्व सिद्धांत के कुछ गुण एवं परिसीमाएँ हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं- सर्वप्रथम कैटेल ने ही सभी शीलगुणों को एक विशेष साणियकीय विधि द्वारा, सम्बन्धित शीलगुणों का गुच्छन कर उसे 16 व्यक्तित्व कारको में बाटा और इन्हीं कारको का स्पष्ट प्रभाव व्यक्तित्व का निर्धारण करता है।

(1) कैटेल का सिद्धांत काफी प्रभावशाली एवं महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इस सिद्धांत का आधार आनुभाविक आंकड़े हैं।

(2) कुछ मनोवैज्ञानिकों ने कैटेल के सिद्धान्त की प्रशंसा इसलिए भी किया है क्योंकि इन्होंने अपने सिद्धान्त में कारक विश्लेषण जैसे- महत्त्वपूर्ण सांख्यिकी प्रविधि का उपयोग किया है। जिससे कैटेल के सिद्धान्त में अधिक-से-अधिक वस्तुनिष्ठता आ पायी है।

(3) बेरोन (Baron 1982) का मत है कि कैटेल के सिद्धान्त का शोध मूल्य काफी अधिक है। इस सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित स्त्रोत शीलगुण के अध्ययनों ने कई तरह के शोधों को जन्म दिया है। अधिकतम ऐसे शोधों में कैटेल के प्राक्कल्पनाओं की संपुष्टि की गयी है।

इन गुणों के बावजूद कैटेल के व्यक्तित्व सिद्धान्त के कुछ अवगुण है जिनमें निम्नलिखित प्रमुख है -

(1) गोल्डवर्ग (Goldberg 1968) ने कैटेल के व्यक्तित्व सिद्धान्त की आलोचना करते हुये कहा है कि इन्होंने अपने सिद्धान्त में व्यक्तित्व संरचना के सम्पूर्ण क्षेत्र पर अपना ध्यान केन्द्रित करने की कोशिश की है। फलस्वरूप् इनके सिद्धान्त में विशिष्टता की कमी है तथा विश्वास के साथ व्यक्तित्व संरचनाओं के बारे में पूर्वानुसार नहीं लगाया जा सकता है।

(2) हॉल एवं उनके सहयोगियों (Hall et al 1985) का मत है कि कैटेल के व्यक्तित्व सिद्धान्त में सिद्धान्त एवं प्रयोग में अन्तर नहीं दीख पड़ता है।

(3) आलपोर्ट 1937, ने कैटेल के कारक-विश्लेषण विधि की आलोचना करते हुए कहा है कि यह एक ऐसी प्रविधि है जिससे मात्र एक औसत व्यक्तित्व जो एक पूर्णरूपेण अमूर्त्त वस्तु है, की व्याख्या होती है किसी खास व्यक्तित्व का गहन रूप से इसके द्वारा अध्ययन नहीं हो पाता है।

(4) आलपोर्ट 1937, ने कैटेल के व्यक्तित्व सिद्धांत की आलोचना एक-दूसरे मुद्दे के आधार पर भी किया है। कैटेल ने अपने सिद्धांत में यह सुझाव दिया है कि व्यक्तित्व के किसी भी पहलू की सैद्धान्तिक व्याख्या प्रदान करने का सबसे उत्तम तरीका यह है कि पहले उस पहलू के बारे में आँकड़े इकट्ठा कर लिये जाएं और किसी आनुभाविक विधि द्वारा उसकी जाँच कर ली जाय और तब उसके आधार पर कोई सिद्धान्त बनाया जाय।

(5) यद्यपि कारक-विश्लेषण की विधि अधिक वस्तुनिष्ठ एवं परिशुद्ध है, फिर भी कुछ न कुछ आत्मनिष्ठता आ ही जाती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद कैटेल का व्यक्तित्व सिद्धान्त एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। स्वयं कैटेल एवं उनके समर्थकों का यह विश्वास है कि एक दिन उनका सिद्धान्त अधिक परिशुद्धता के साथ मानव व्यवहार के विभिन्न पहलुओं के बारे में पूर्वकथन करने में समर्थ हो पायेगा।

9.5.2 **व्यक्तित्व के पाँच आयामी सिद्धान्त**- गत दो दशकों में किए गए महत्वपूर्ण शोधों के आधार पर मनोविज्ञानिकों में इस सिलसिले में कुछ खास विमाओं के बारे में सहमति होती नजर आती है। ऐसे प्रमख शोधकर्ता हैं- कोस्टा एवं मैकक्रे (Costa & MC Crae 1989), होगान (Hogan 1983), मैकक्रे (McCrae 1989) नौलर, ला एवं कोमरे (Noller, Law & Comrey 1987)। इन शोधकर्ताओं के बीच लगभग इन बात को सहमति है कि व्यक्तित्व के निम्नांकित पाँच महत्व पूर्ण तथा हृस्ट-पुष्ट (robust) विमाएँ हैं जो सभी द्विध्रुवीय (bipolar) हैं-

(1) **वहिर्मुखता (Extraversion or E)**- व्यक्तिव का यह एक ऐसा विमा है जिसमें एक परिस्थिति में व्यक्ति सामाजिक, मजाकिया, 'स्नेहपूर्ण', वातूनी (talkavtive) आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वह संयमी (sober), गम्भीर, रूखापन, शांत, सचेत रहने आदि का शीलगुण भी दिखता है। इस तरह से वहिर्मुखता को एक द्विध्रुवीय विमा (bipolar dimension) माना गया है।

(2) **सहमतिजन्यता (Agreeableness or As)**- इस विमा के भी दो छोर या ध्रुव बतलाये गए हैं। इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी, दूसरों पर विश्वास करने वाला, उदार, सीधा, सादा, उत्तम प्रकृति आदि से सम्बद्ध व्यवहार दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु, चिड़चिड़ा, जिद्दी, बेरहम आदि बनकर भी व्यवहार करता पाया जाता है।

(3) **कर्तव्यनिष्टता (Conscientiounsess or C)** - इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित, उत्तरदायी, सावधान एवं काफी सोच-विचार कर व्यवहार करने से सम्बद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति

में वही व्यक्ति बिना सोच-समझे, असावधानीपूर्वक, कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से सम्बद्ध शीलगुण दिखाता है।

(4) **स्नायुविकृति (Neuroticism or N)** - इस विमा में व्यक्ति एक ओर कभी-कभी तो सांवेगिक रूप से काफी शांत, संतुलित, रोगभ्रमी विचारों (hypochondriac thoughts) से अपने आप को मुक्त पाता है तो दूसरी आरे वह कभी-कभी अपने आप को सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से घिरा हुआ पाता है।

(5) **अनुभूतियों का खुलापान या संस्कृति (Openness to experiences or culture or O)**- इस विमा में कभी-कभी व्यक्ति एक तरह काफी संवेदनशील, काल्पनिक, बौद्धिक, भद्र आदि व्यवहार से सम्बद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी ओर वह काफी असंवेदनशील, रुखा, संकीर्ण, असभ्य एवं अशिष्ट व्यवहारों से सम्बद्ध शीलगुण भी दिखाता है।

उपर्युक्त पाँच शी लगुणों को नोरमैन (Norman 1963) ने 'दी विग फाइव' (The Big Five) कहा है जो आलपोर्ट, गोल्डवर्ग (Goldberg 1980) तथा कैटेल द्वारा किये गए शोधों पर आधृत है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इन पाँचों शीलगुणों को सबसे अधिक मान्यता दी जा रही है क्योंकि इन लोगों का मत है कि चाहे व्यक्ति किसी समाज या संस्कृति का हो, उसके बारे में इन पाँचों शीलगुणों के बारे में जानकर उसके व्यक्त्वि के बारे में सही-सही एवं वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उसके महत्व पर बहुत स्टीक टिप्पणी एक महिला व्यक्त्वि मनोवैज्ञानिक जिसका नाम हैम्पसन (Hampson 1988) द्वारा किया गया है जो इस प्रकार है-

''व्यक्तिव वर्णन के ये पाँच विस्तृत क्षेत्रों द्वारा उन सभी प्रमुख तरोकों को अभिग्रहित किया है जिसमें मानव एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। गोल्डवर्ग (1981) ने तो यहाँ तक सुझाव दिया है कि उसे सार्वनिक रूप से भाष्ज्ञा के रूप में उपयोग किया जा सकता है, क्योंकि इनके द्वारा उन सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों के पहचान होती है जिसे व्यक्ति सांस्कृतिक विभिन्नताओं के बावजूद एक-दूसरे के बारे में जानना चाहते हैं।''

उपर्युक्त पाँच विमाओं को याद रखने के खयाल से OCEAN के रूप में कूटसंकेतीकरण (coding) किया जा सकता है। इस विमाओं को माने के लिए कोस्टा तथा मैकक्रे (Costa & McCrae ,1992) ने एक प्रश्नावली भी विकसित किया है, जिसे एनईओ-व्यक्तित्व आविष्कारिका (संशोधित) (NEO-Personality Inventory/ NEO-PI-R) कहा गया है।

9.5.3- शीलगुण सिद्धान्त के मूल्यांकन –

यद्यपि शीलगुण सिद्धान्त प्रकार सिद्धान्त से अधिक वैज्ञानिक एवं पूर्ण लगता है, फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने इसकी भी कुछ आलोचनाएँ की हैं जो निम्नांकित हैं-

(1) शीलगुण सिद्धान्त में कारक विश्लेषण कर शीलगुण सिद्धान्तवादी (trait theorists) शीलगुणों की कोई एक निश्चित संख्या निर्धारित करने में अबतक असमर्थ रहे हैं।

(2) शीलगुण सिद्धान्तवादियों द्वारा बताये गये प्रमुख शीलगुण की संख्या के बारे में असहमति तो है ही, साथ-ही-साथ ऐसे शीलगुण एक-दूसरे से पूर्णतः स्पष्ट, भिन्न एवं स्वतंत्र नहीं है।

(3) शीलगुण सिद्धान्त में व्यक्तित्व की व्याख्या अलग-अलग शीलगुणों के रूप में की जाती है।

(4) शीलगुण सिद्धान्त में परिस्थितिजन्य कारकों (situational factors) के महत्व को स्वीकार नहीं किया गया है।

(5) शीलगुण उपागम का स्वरूप वर्णनात्मक (कमेबतपचजपअम) है। इसमें व्यक्तित्व के मौलिक एवं महत्व पूर्ण विमाओं का सिर्फ वर्णन किया जाता है, परंतु इस बात की व्याख्या नहीं की जाती है कि किस तरह से विभिन्न शीलगुणों का विकास होता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद व्यक्तित्व का शीलगुण उपागम एक महत्व पूर्ण उपागम है जिसके माध्यम से व्यक्तित्व के स्वरूप को समझने की कोशिश की गयी है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित में से कौन टाइप 'ए' व्यक्तित्व की विशेषता नहीं है-
  a. समय पर कार्य करने की अत्यधिक बाध्यता।
  b. समस्याओं का सतर्कपूर्ण विश्लेषण
  c. अनिद्रा
  d. हमेशा हड़बड़ी में रहना

2. आलपोर्ट ने व्यक्तित्व को निम्नांकित में से किस रूप में मानते हैं-
  a. मस्तिष्क में स्थित
  b. व्यक्तित्व के भीतर मनोदैहिक गुण
  c. सामाजिक भूमिका के समतुल्य
  d. काल्पनिक तत्व

3. व्यक्तित्व के पंच आयामी कारक .... होता है।

4. एन.ई.ओ. व्यक्तित्व आविष्कारिका मे .... कारक होता है।

9.6. सारांश

1. आलपोर्ट ने अपने व्यक्तित्व सिद्धांत में व्यक्तित्व का एक काफी विस्तृत परिभाषा दिया है जो आज भी लोगों को मान्य है।

2. आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व के अध्ययन की मौलिक इकाई शीलगुण है जिसे उन्होंने तीन भागों में बाँटकर अध्ययन किया है- कार्डीनल शीलगुण, केन्द्रीय शीलगुण तथा गौण शीलगुण।

3. प्रोप्रियम आलपोर्ट के सिद्धांत में व्यक्तित्व की एक प्रमुख संरचना है जो अहम या आत्मन के तुल्य होता है।

4. व्यक्तित्व की गतिकी का एक मुख्य अंश कार्यात्मक स्वायत्तता है जो यह बतलाता है कि एक सामान्य एवं परिपक्व वयस्क में कुछ अभिप्रेरक अपने गत अनुभूतियों से कार्यात्मक रूप से सम्बन्धित नहीं होते हैं जिनसे उनकी उत्पत्ति सम्भवतः हुई है।

5. व्यक्तित्व के वर्द्धन के लिए यह आवश्यक है कि बच्चे का अपनी माँ से उत्तर एवं सुखकर अन्तःक्रिया हो अन्यथा उसमें एक सामान्य व्यक्तित्व विकसित न होकर स्नायु विकृत व्यक्तित्व विकसित होता है।

6. व्यक्तित्व के टाइप 'ए' एवं टाइप 'बी' सिद्धांत द्वारा व्यक्तित्व का अध्ययन।

7. कैटेल द्वारा प्रस्तावित व्यक्तित्व सिद्धांत का आधार कारक विश्लेषण विधि है।

8. कैटेल ने कारक विश्लेषण विधि के आधार पर शीलगुणों को सामान्यतः तीन भागों में बाँटा है- क्षमता शीलगुण, चित्र प्रकृति शीलगुण तथा गत्यात्मक शीलगुण तत्पश्चात गत्यात्मक शीलगुण कई भागों में बाँटा है- अर्ग, मनोभाव एवं मनोवृत्ति।

9. कैटेल ने व्यक्तित्व शीलगुण को एक मान्य ढंग से विभाजित किया है- सतही शीलगुण तथा स्रोत शीलगुण।

9.7 शब्दावली

गत्यात्मक संगठन: गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य यह होता है कि मनौशरीरिक तंत्र के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे शीलगुण, आदत आदि एक-दूसरे से इस तरह संबंधित होकर संगठित है कि उन्हें एक-दूसरे से पर्णतः अलग नहीं किया जा सकता है।

सामान्य शीलगुण: सामान्य शीलगुण से आलपोर्ट का तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जो संस्कृति के कई लोगों में पाया जाता है।

प्रोप्रियम: आलपोर्ट का मत है कि व्यक्तित्व असंबंधित शीलगुणों का मात्र एक बंडल नहीं होता है बल्कि इसमें शीलगुणों की एक संगति, एकता एवं समन्वय पाया जाता है इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व में कुछ ऐसे नियम होते है जों शीलगुणों, मूल्यों, अभिप्रेरकों को संगठित करता है। इस नियम को आलपोर्ट ने प्रोप्रियम कहा है।

अर्ग: अर्ग शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'अर्गोन' से हुई है जिसका अर्थ होता है- कार्य या ऊर्जा।

त्रुटि कारकः सबसे निचले स्तर पर त्रुटि कारक पाया जाता है। यह सबसे कम महत्वपूर्ण होता है। इस कारक के फलस्वरूप व्यक्तित्व सम्बन्धी कुछ विशिष्ट अनुक्रियाएँ होती हैं जिनका कोई विशे ष महत्व नहीं होता।

9.8.अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. इ 2. इ 3. द्विध्रुविय 4. पाँच

9.9. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास
2. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल - बनारसी दास
3. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, सीताराम जायसवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मधु अस्थाना एवं किरण बाला वर्मा, मोतीलाल बनारसी दास
5. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, डी.एन. श्रीवास्तव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2
6. प्रतियोगिता मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास

9.10. निबन्धात्मक प्रश्न

1. आलपोर्ट के अनुसार व्यक्तित्व संरचना की व्याख्या कीजिए।
2. प्राकार्यात्मक स्वायत्तता के सिद्धांत की समीक्षा कीजिए।
3. ''आलापोर्ट ने अपने सिद्धांत में व्यक्ति की विशिष्टता पर विशे ष बल दिया है'' इस कथन की समीक्षा कीजिए।
4. व्यक्तित्व के टाइप 'ए' एवं टाइप 'बी' के सिद्धांत की व्याख्या कीजिए।

5. कैटेल के शीलगुण सिद्धांत का वर्णन कीजिए।

6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखए-

a. शीलगुण

b. कार्यात्मक स्वायत्तता

c. अर्ग

d. मनोभाव

e. व्यक्तित्व आयाम

इकाई 10. आइसेंक व्यक्तित्व सिद्धान्त एवं व्यक्तित्व के पाँच बड़े सिद्धान्त (Eysenck Personality Theory and Big Five Theory of Personality)

इकाई संरचना

10.1. प्रस्तावना:
10.2. उद्देश्य
10.3. आइजेंक व्यक्तित्व सिद्धांत
10.3.1. व्यक्तित्व का स्वरूप
10.3.2. व्यक्तित्व के संरचना और मापन
10.3.2.1. अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता
10.3.2.2-मनःस्ताप -स्थिरता
10.3.2.3- मनोविक्षिपतता -आवेग नियन्त्रण
10.3.3- व्यक्तित्व का पदानुक्रमिक स्वरूप
10.3.4- व्यक्तित्व का दैहिक आधार
10.3.5- आइजनेक के सिद्धान्त का मूल्यांकन
10.4. व्यक्तित्व के पंचआयामी कारक सिद्धांत
10.4.2. बिग फाइव के निर्धारक
10.4.2.1. वंशानुगतता
10.4.2.2. विकास
10.4.2.3. लिंग भेद
10.4.2.4. जन्म क्रम
10.4.3. आलोचनाएं
10.5. सारांश
10.6. शब्दावली
10.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.9. निबन्धात्मक प्रश्न

10.1. प्रस्तावना:

व्यक्तित्व मनोविज्ञान (Personality Psychology) मनोविज्ञान की वह शाखा है जो व्यक्तित्व एवं व्यक्तिगत अन्तरों का अध्ययन करती है। सामान्यतया व्यक्तित्व का अर्थ व्यक्ति के उपरि हाव भाव उसके पहनावे से लिया जात है परन्तु मनोविज्ञान मे व्यक्तित्व से आशय व्यक्ति के मनोभाओ से लिया जाता हैं। व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक संस्थानो का गत्यामक संघठन है जो वातावरण के प्रति व्यक्ति के अपुर्व समायोजन को निर्धारित करता

है। अर्थात व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक संस्थानो अथवा मानसिक एवं शारिरिक संसथानो का गत्यामक संगठन है क्योकि व्यक्ति का व्यक्तित्व बाल्यावस्था से लेकर जीवनपर्यन्त परिवर्तित होता रहता है और यहि व्यक्ति का जीवनपर्यन्त मार्गान्तिकरण करते है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्यक चित्रण करना तथा उसके व्यक्तित्व के प्रमुख प्रक्रमों का चित्रण व्यक्तिगत अन्तरों का अध्ययनय अर्थात लोग एक-दूसरे से किस प्रकार भिन्न होते हैं। मानव की प्रकृति का अध्ययन अर्थात किस प्रकार सभी लोगों की प्रकृति समान है। व्यक्तित्व सिद्धांतवादियो में यह पूर्णसहमती है कि शीलगुण व्यक्तित्व के मौलिक इकाई होते है जो व्यक्ति में एक खास ढंग से व्यवहार करने की पूर्वप्रवृत्ति उत्पन्न करता है।

10.2. उद्देश्य

1. आइजेंक के व्यक्तित्व सिद्धांत का अध्ययन
2. व्यक्तित्व की पंचआयामी सिद्धांत का अध्ययन

10.3. आइजेंक व्यक्तित्व सिद्धांत

आइजनेक (1916-1997) का जन्म जर्मनी में हुआ लेकिन उनकी पढ़ाइ्र-लिखाई लन्दन में हुई। आइजनेक सवयं को व्यकितत्व सिद्धान्तवादी नहीं मानते हैं। उन्होंने अपने को व्यक्तित्व सिद्धान्तवादी कहे जाने को उपयुक्त नहीं बताया है। इसके बाद भी उन्होंने व्यकितत्व के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध कार्य किए हैं, उनके यह शोध अध्ययन व्यक्तित्व की गइ्र विमाओं से सम्बन्धित हैं। आइजनेक ने व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो शोधकार्य किए हैं, उनमें तथ्यों का संकलन के लिए प्रश्नावली विधि वस्तुनिष्ठ परीक्षण शारीरिक गठन का मापन, देहशास्त्रीय मापन ऐतिहासिक और जीवन सम्बन्धी सूचना विधियाँ आदि का उपयोग किया है। आइजेंक ने अपने अध्ययन में गणितीय उपागम को अपनाया है। उन्होंने विज्ञान में मापन की आवश्यकता पर बल दिया है और अनेक मनोवैज्ञानिक परीक्षण निर्मित किए हैं। व्यक्तित्व सिद्धान्त के सम्बन्ध में उनका कहना है कि इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना शे ष है फिर भी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार प्रस्तुत किए हैं वे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती मनोवैज्ञानिकों के विचारों को ग्रहण करते हुए एक अत्यन्त तर्कसंगत व्यक्तित्व सिद्धांत की स्थापना की है।

आइजनेक के व्यक्तित्व को जैविक शीलगुण सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। हॉल और उनके साथियों ने भी आजनेक के व्यक्तित्व सिद्धान्त को जैविक शीलगुण सिद्धान्त के नाम से सम्बोधित किया है। आइजनेक ने सन् 1947 से व्यक्तित्व विमाओं के क्षेत्र में महत्वपूर्ण शोध कार्य किये इसके बाद निरन्तर इस क्षेत्र इस क्षेत्र में वह अपनी मृत्यु तक शोध कार्य किए। इसके बाद निरन्तर इस क्षेत्र में वह अपनी मृत्यु तक शोध कार्यरत रहे और व्यक्तित्व विमाओं में नई-नई खोजें करते रहे। उनके अनुसंधान के फलस्वरूप व्यक्तित्व विमाओं की संख्या में वृद्धि हुई। आइजनेक ने यह स्वीकार किया है कि व्यक्तित्व के अधिकांश शीलगुण जन्मजात होते हैं और उसने यह भी माना है कि सभी मानव व्यवहार अर्जित होता है इन्हीं कारणों से आइजनेक के शीलगुण सिद्धान्त को जैविक शीलगुण सिद्धान्त कहा गया है।

10.3.1. व्यक्तित्व का स्वरूप-

आइजेंक के अनुसार व्यक्तित्व के स्वरूप पर विचार करते समय उसके संज्ञानात्मक, चारित्रिक , भावनात्मक तथा शारीरिक पक्ष पर ध्यान देना आवश्यक है। आइजेंक ने व्यक्तित्व की परिभाषा करते हुए लिखा है-

''व्यक्तित्व प्राणी के वास्तविक एवं सम्भाव्य व्यवहार संरूप का वह समग्र है जिसका निर्धारण आनुवंशिकता और वातावरण करता है। इसका प्रारम्भ तथा गठन व्यवहार संरूप से सम्बन्धित अनुभागों के गठन तथा उनसे सम्बन्धित प्रकार्यात्मक अन्तर्क्रिया के द्वारा होता है।''

एक अन्य परिभाषा में आइजेंक ने व्यक्तित्व को व्यवहार बताया है- ''व्यक्तित्व व्यवहार है, बशर्ते व्यवहार में संगत वाचिक एवं स्वायत्त अनुक्रिया तथा प्रेक्षणीय निष्पादन सम्मिलित हो। यह केवल विशिष्ट उद्दीपक-अनुक्रिया यांत्रिकी का समुच्चय नहीं है।''

आलपोर्ट द्वारा प्रस्तुत व्यक्तित्व की परिभाषा को आइजेंक ने स्वीकार किया है। इस प्रकार आइजेंक के अनुसार व्यक्तित्व सभी संज्ञानात्मक, भावनात्मक, क्रियात्मक और शारीरिक लक्षणों का एक समग्र समुच्चय है।

10.3.2. व्यक्तित्व के संरचना और मापन (Structure and Measurement of Personality)-

आइजनेक ने व्यक्तित्व संरचना की व्याख्या जिन प्रत्ययों के आधार पर की है, वह हिप्पाक्रेट्स और युग के विचारों से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। आइजेंक ने कारक विश्लेषण के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्राथमिक आयाम बताए हैं-

1. अन्तर्मुखता - बहिर्मुखता (Introversion-Extroversion)
2. मनस्ताप- स्थिरता (Neuroticism- Stability)
3. मनोविक्षिपतता -आवेग नियन्त्रण (Psychoticism- Impulse Control)

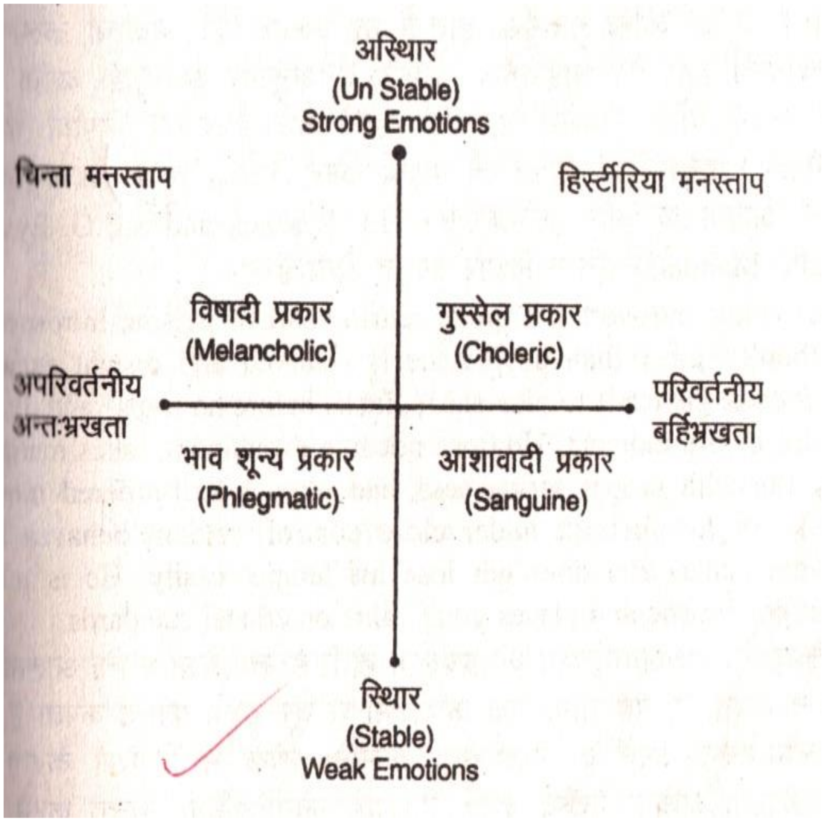

चित्र-आइजनेक (1985) द्वारा वर्णित विमा या प्रकार स्तर

10.3.2.1. अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता (Introversion-Extroversion)-

आइजनेक द्वारा अन्तर्मुखता के क्षेत्र में किये गये अध्ययनों के आधार पर यह स्पष्ट हुआ है कि जो व्यक्ति अन्तर्मुखी होते हैं, वह एकान्त प्रिय, संकोची, कल्पनाशील अन्तदर्शन करने वाला लज्जाशील, पीछे हटने वाला, आवेगी निर्णयों के प्रति अविश्वासी तथा अनुशासित जीवन को पसन्त करने वाला होता है।

व्यक्तित्व में जब अन्तर्मुखता की प्रबलता होती हे, तब ऐसा व्यक्ति आत्मकेन्द्रित रहना पसन्द करता है, वह सामाजिक कार्यक्रमों से दूर रहना पसन्द करता है, ऐसा दिवास्वप्न देखना अधिक पसन्द करते हैं। यह लोग अधिक चिन्ता करने वाले सिद्धान्तवादी प्रकृति के होते हैं, कार्य करने की अपेक्षा विचार करना अधिक पसन्द करते हैं, इन्हें किसी समस्या पर निर्णय करने में बहुत अधिक समय लगता है, यह अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित करते हैं, बहुधा यह योजनायें बनाने में या मनन करने में लगे रहते हैं। आइजनेक (1953) के अनुसा बहिर्मुखी व्यक्ति सामाजिक होता है, पार्टियां पसन्त करता है, उसके बहुत से मित्र होते हैं, उद्दीपन युक्त होता है, प्रोत्साहन पर क्रिया करता है और आतुरतायुक्त होता है, बहिर्मुखी व्यक्ति संकोचहीन, व्यावहारिक यथार्थवादी और अधिक बोलने वाले होते हैं।

इस प्रकार के व्यक्तियों की कुछ विशेषताओं निम्न प्रकार से होती हैं-

1. बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाला व्यक्ति सामाजिक होता है, सामाजिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेता है और सामाजिक पार्टियाँ पसन्द करता है, उसे दूसरे के घर आने-जाने और मिलने जुलने में बहुत आनन्द आता है, इनके मित्रों की अपेक्षाकृत अधिक होती है।
2. बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले व्यक्ति में क्रियाशीलता और प्रतिक्रियाशील अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पायी जाती है।
3. इस प्रकार के व्यक्ति दूसरे लोगों में जल्दी घुल-मिल जाते हैं, क्योंकि दूसरों से मिलने-जुलने में अच्छा लगता है, यह अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक बातूनी होते हैं।
4. बर्हिमुखी व्यक्तित्व वाले व्यकित में परिवर्तनशीलता बहुत अधिक मात्रा में पायी जाता है, वह भविष्य के प्रति आशावान रहते हैं, प्रोत्साहन पर तुरन्त कार्य करते हैं, यह अपने परिचितों के प्रति सजग रहते हैं।
5. बर्हिमुखी व्यक्ति दुसरों के साथ मिलकर अपनी ओर दूसरी की समस्याओं का समाधान करते हैं, इनमें चहलकदमी अधिक और भावुकता और संवेगात्मक ता कम मात्रा में पायी जाती है।

व्यक्तित्व के इस आयाम के सैद्धान्तिक पक्ष को स्पष्ट करते हुए आइजनेक (1972) ने लिखा है कि अन्तर्मुखी-बहिर्मुखी व्यक्तित्व में वैयक्तिक अन्तरों से न्यूरोफिजियोलॉजिकल प्रकार्यों में अन्तरों पर प्रकाश पड़ता है। मौलिक रूप से अन्तमुरखी लोगों को सरलता से उदीप्त किया जा सकता है तथा यह सामाजिक निषेधों को सरलता से सीख लते हैं। दूसरी ओर बहिर्मुखी लोगों को सरलता से उदीप्त नहीं किया जा सकता है। यह सामाजिक निषेधों को भी सरलता से नहीं सीखते हैं।

10.3.2.2-मनःस्ताप -स्थिरता (Neuroticism- Stability)-

मनःस्ताप एक द्विध्रुवीय विमा है। इस विमा के एक छोर पर स्थिरता का गुण पाया जाता है और दूसरे छोर पर स्थिरताका गुण पाया जाता है। विमा के जिस छोर पर स्थिरता का गुण पाया जाता है वह सामान्यता का प्रतीक या

सामान्यता का गुण है। इस विमा को उपरोक्त वृत्त चित्र द्वारा आइजनेक ने वृत में प्रदर्शित किया है। स्थिरता का प्रबलता जिन व्यक्तियों में होती है वह विषम परिस्थितियों में अपने को नियंत्रित रखते हैं और अपने दैनिक जीवन की समस्याओं का समाधान विश्वसनीय और वास्तविक ढंग से करते हैं जिन व्यक्तियों को व्यक्तित्व में स्थिरता पायी जाती है, उनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण विशेषतायें पायी जाती है-

1. स्थिरता व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों में उपयुक्त संवेगातमकता की अभिव्यक्ति होती है और इन व्यक्तियों का वास्तविकता से प्रभावपूर्ण सम्बन्ध होता है।
2. स्थिरता व्यक्तित्व वाले व्यक्ति उपयुक्त स्वयं का ज्ञान और उपयुक्त आत्म मूल्यांकन करने वाले होते हैं।
3. स्थिरता व्यक्तित्व वाले व्याक्तियों की उपयुक्त शारीरिक आवश्यकतायें होती हैं और वह इन शारीरिक आवश्यकताओं की मान्य ढंग से पूर्ति कर सकने की योग्यता भी रखते हैं। इन व्यक्तियो में परिवार और समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकने की योग्यता होती है।
4. स्थिरता व्यक्तित्व वाले व्यक्तियों के जीवन के वास्तविक उद्देश्य होते हैं। यह पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता रखते हैं और इनके व्यक्तित्व में स्थायित्व या संगति पायी जाती है।

मनःस्ताप विमा के दूसरे छोर पर स्थित व्यक्तियों के व्यक्तित्व में अस्थिरता का गुण पाया जाता है और अस्थिरता से सम्बन्धित व्यवहार विशेषतायें भी पायी जाती है। आइजनेक (1975) के अनुसार ऐसे व्यक्ति संवेदनशील, बेचैन, अक्रामक, जल्दी उद्दीप्त होने वाले, परिवर्तनशील, आवेगी और क्रियाशील होते हैं। इसी प्रकार से अस्थिरता व्यक्तित्व वाले लोगों का व्यवहार मूड़ी उत्सुकतापूर्ण, दृढ़ और असामान्यता दिखायी देती है, उनकी मानसिक योग्यतायें सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कम दिखायी देती हैं। इनके अप्रसन्नता, चिन्ता, तना, अन्तर्द्वन्द्व और नैराश्य जैस लक्षण दिखायी देते हैं। आइजनेक ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जिन व्यक्तियो का स्वतन्त्र-नाड़ी संस्थान अधिक क्रियाशील प्रकार का होता है। ऐसे व्यक्ति वातावरण की उत्तेजनाओं की प्रति अधिक प्रतिक्रियाओं करते हैं। इस प्रकार के लोगों में मनःस्ताप के रोग होने की सम्भावनायें अधिक होती हैं। इन व्यक्तियों में अकारण भय, चिन्ता, मनोग्रस्तता, बाह्यता, मनःस्ताप आदि मानसिक रोगों से पीड़ित होने की सम्भावना अधिक होती है।

10.3.2.3- मनोविक्षिपतता -आवेग नियन्त्रण (Psychoticism- Impulse Control)

आइजनेक ने अपने सन् 1970 के बाद के अध्ययनों पर व्यक्तित्व विमाओं में एक तीसरी विमा को और जोड़ दिया यह तीसरी विमा मनोविक्षिप्तता विमा कहलायी। यह एक द्विध्रुवीय विमा है। यह विमा आज मनोविक्षिप्तता-आवेग नियंत्रण विमा कहलाती हे। आइजनेक (1976) के अनुसार व्यकितत्व क्रूरता, अति संवेदनशीलता और अति चिन्ता की विशेषतायें पायी जाती है। व्यक्तित्व की इस विमा के पहले छोर पर स्थित व्यक्ति समाज विरोधी, क्रूर, शंकालु और विद्वेषी प्रकृति के होते हैं। इस विमा के दूसरी छोर पर परा अहं की क्रियायें होती हैं आइजनेक ने सन् 1970 में इस विमा को मनोविक्षिप्तता पराअहं क्रियायें विमा कहा परन्तु बाद में इस विमा का नाम आवेग नियंत्रण विमा पड़ा। मनोविक्षिप्तता विमा वाले छोर से जैसे आवेग नियंत्रण वाली विमा की ओर बढ़ेंगे वैसे-वैसे व्यक्ति के व्यक्तित्व में मनोविक्षिप्तता के उपरोक्त लक्षण कम होते जायेंगे और व्यक्ति में धीरे-धीरे आदर्श और नैतिकता की मात्रा बढ़ती जायेगी।

व्यक्तित्व की यह विमा मनोविक्षिप्तता, मानसिक रोग से भिन्न है। मनोविक्षिप्तता विमा वाले छोर के व्यक्तियों में कुछ अन्य विशेषतायें भी पायी जाती है। उदाहरण के लिए यह व्यक्ति खतरनाक परिस्थितियों में अपने को सुरक्षित रखने

में कठिनाइ्र का अनुभव करते हैं, बहुधा यह देखा गयाहै कि दूसरे व्यक्ति इन व्यक्तियों को कुछ विचित्र व्यवहार करने वाला ही समझते हैं।

10.3.3- व्यक्तित्व का पदानुक्रमिक स्वरूप –

आइजनेक (1985) ने व्यक्तित्व की संरचना की व्याख्या चार स्तरों के आधार पर की है, जिसे निम्नांकित चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। चित्र में वर्णित पहला स्तर विशिष्ट अनुक्रिया स्तर है। विशिष्ट अनुक्रिया स्तर का अर्थ है कि एक विशेष परिस्थितियों में व्यक्ति के द्वारा किया गया व्यवहार। उदाहरण के लिए कक्षा में अध्यापक का एक व्याख्यान देना, परिस्थिति विशेष में किया गया विशिट व्यवहार या अनुक्रिया है। चित्र में वर्णित दूसरा स्तर आदतजन्य अनुक्रिया स्तर है। आदतजन्य अनुक्रिया स्तर का अर्थ है कि

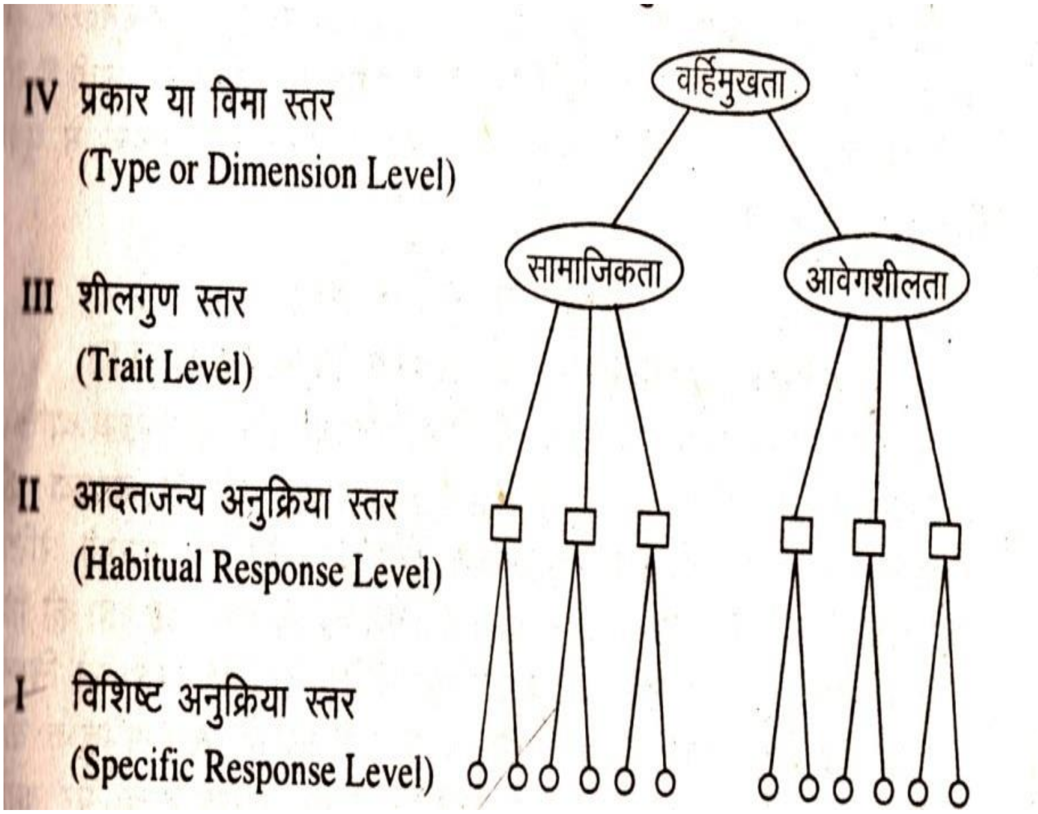

चित्र-आइजनेक (1985) द्वारा वर्णित शीलगुण और विमा या प्रकार स्तर

जब विशिष्ट अनुक्रियायें बार-बार दुहरायी जाती हैं, तब वह क्रियायें एक आदत बन जाती हैं, इन आदतों से सम्बन्धित व्यवहार दूसरे स्तर, आदतजन्य अनुक्रिया स्तर पर होता है। उदाहरण के लिए कक्षा में अध्यापक का बार-बार व्याख्यान देने से उसकी आदत बन जायेगी और अनेक बार व्याख्यान देने के बाद जो उसका व्यवहार या अनुक्रिया होगी वह आदतजन्य अनुक्रिया स्तर के अन्तर्गत आयेगी।

चित्र में वर्णित पदानुक्रम का तृतीय स्तर शीलगुण स्तर है। इन शीलगुणों को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि यह वह आदतजन्य अनुक्रिया स्तरों के सेट हैं जो आपस में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। उदाहरण के लिए

एक व्यक्ति जिसमें सामाजिकता का शीलगुण हैं वह यदि अध्यापक है, तो कक्षा में बातचीत करता है, अन्य लोगों के साथ बातचीत करता है, वह पाटियों में जाना पसन्द करता है आदि।

चित्र में वर्णित पदानुक्रम का चतुर्थ स्तर प्रकारया विमा स्तर है। इस प्रकार या विमा स्तर को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि एक प्रकार से शीलगुणों के सेट हैं जो आपसे में अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। यदि वह व्यक्ति मनोविक्षिप्तता प्रकार या आयाम से सम्बन्धित है, तो उस व्यक्ति में आवेगशीलता, अक्रामकता और समाज विरोधी शीलगुणों के अन्तर्सम्बन्धित सेट पाया जायेगा। आइजनेक ने इस चतुर्थ स्तर की प्रकार नहीं माना है बल्कि इसे व्यक्ति की एक विमा के रूप में स्वीकार किया है, आइजनेक ने इस विमा पर बहिर्मुखता को रखा है, जो मुख्यतः सामाजिकता और आवेगशीलता शीलगुणों के सेट के आधार पर बनी है।

इस प्रकार से आइजनेक ने पदानुक्रम मॉडल के आधार पर यह स्पष्ट किया है कि शीलगुण और विमा स्तर किस प्रकार से अलग-अलग है। आइजनेक ने यह भी बताया है कि जब व्यक्तित्व की एक विमा किसी व्यक्ति में पहचान ली जाती है तो उस विमा से सम्बन्धित शीलगुण कौन-कौन से पाये जायेंगे। इस सम्बन्ध में पूर्वकथन किया जा सकता है।

10.3.4- व्यक्तित्व का दैहिक आधार-

आइजनेक (1967) ने व्यक्तित्व की विमाओं के वर्णन के साथ-साथ व्यक्त्वि की इन विमाओं के दैहिक आधार की भी व्याख्या की है। उदाहरण के लिए अन्तमुरखता-बहिर्मुखता विमा मस्तिष्क के आरोही रेटिक्यूलर एक्टीवेटिंग तन्त की क्रियाओं से सम्बन्धित है। इस आरोही रेटिक्यूलर एक्टीवेटिंग तन्त्र को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इस ARAS का सक्रियकरण स्तर मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों के सक्रियककरण पर निर्भर करता है जो निम्न स्तरीय केन्द्रों पर कार्टिकल नियंत्रण को प्रभावित करता है। एक बहिर्मुखी व्यक्ति में कार्टिकल उत्तेजना स्तर निम्न रहता है, जबकि अन्तर्मुखी व्यक्ति में कार्टिकल उत्तेजना स्तर उच्च रहता है। परिणामस्वरूप सामान्य व्यक्ति की तुलना में बहिर्मुखी व्यक्ति को उत्तेजित करने में अतिरिक्त उत्तेजना की आवश्यकता होती है।

आइजनेक (1967) ने मनःस्ताप-स्थिरता विमा के दैहिक आधार को भी स्पष्ट किया है। इसविमा का स्म्बन्ध स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान की क्रियाओं से है। आइजनेक ने बताया कि जिन व्यक्तियों का स्वतन्त्र नाड़ी संस्थान अधिक सवेंदनशील होता है। वह व्यक्ति वातावरण के उद्दीपकों के प्रति अधिक तीव्र संवेगात्मक ढंग से अनुक्रिया करते हैं। ऐसे व्यक्तियों में मनःस्ताप रोगों के होने की सम्भावना अधिक होती है। सामान्य व्यक्तियों का स्वतन्त्रता नाड़ी संस्थान अपेक्षाकृत कम संवेदनशील होता है।

10.3.5- आइजनेक के सिद्धान्त का मूल्यांकन-

आइजनेक ने यद्यपि व्यक्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया है, फिर भी व्यक्तित्व पर इतने शोध कार्य वैज्ञानिक विधियों द्वारा किये हैं कि उनके द्वारा प्राप्त परिणामों ने स्वतः ही एक व्यक्तित्व सिद्धान्त का रूप ले लिया है। जो कुछ भी उसका व्यक्तित्व सिद्धान्त है उसमें व्यक्तित्व गतिकी और व्यक्तित्व विकास से सम्बन्धित अध्ययन नगण्य है, इन्हें व्यक्तित्व सिद्धान्त की सीमा इसलिए नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि आइजनेक व्यक्तित्व सिद्धान्त प्रतिपादन के विरोधी थे।

आइजनेक जीवनपर्यन्त व्यक्तित्व से सम्बन्धित शोध कार्यों में व्यस्त रहे। उन्होंने व्यक्तित्व से सम्बन्धित शोध अध्ययन वैज्ञानिक विधियों द्वारा किये और अध्ययनों में उच्च सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया। उन्होंने व्यक्तित्व की जिन तीन विमाओं को कारक विश्लेषण की विधि की सहायता से प्राप्त किया है, उनके मापन के लिए

एक परीक्षण (EPI) भी बनाया है। व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में आइजनेक के ये योगदान आगे आने वाले समय में शोधकर्ताओं के लिए प्रेरणा का स्रोत रहेंगे।

10.4. व्यक्तित्व के पंचआयामी कारक सिद्धांत-

समकालीन मनोविज्ञान में, व्यक्तित्व के 'बिग फाइव' कारक हैं व्यक्तित्व के पांच व्यापक डोमेन या आयाम, जिनका मानव व्यक्तित्व को वर्णित करने के लिए उपयोग किया जाता है।

बिग फाइव कारक हैं खुलापन (Openness), कर्तव्यनिष्ठा (Conscientiousness), बहिर्मुखता (Extraversion), सहमतता (Agreeableness) और मनोविक्षुब्धता (Neuroticism) (यदि पुनर्व्यवस्थित किया जाए तो OCEAN, या CANOE)। मनोविक्षुब्धता कारक को कभी-कभी भावनात्मक स्थिरता के रूप में भी संदर्भित किया जाता है. खुलेपन के घटक की व्याख्या के संबंध में कुछ असहमति अभी बाकी है, जिसे कभी-कभी 'समझ' कहा जाता है। प्रत्येक कारक के साथ अनेक विशिष्ट लक्षणों का समूह जुड़ा हुआ है जो एक साथ सह-संबद्ध हैं। उदाहरण के लिए, बहिर्मुखता में सामाजिकता, उत्साही, आवेग, और सकारात्मक भावनाएं जैसे संबंधित गुण शामिल हैं। पांच कारक मॉडल व्यक्तित्व का विशुद्ध व्याख्यात्मक मॉडल है, लेकिन मनोवैज्ञानिकों ने बिग फाइव (महान पांच) के लिए असंख्य सिद्धांत विकसित किए हैं। 10.4.1. बिग फाइव कारक - व्यक्तित्व के 'बिग फाइव' कारक और उनके अंशभूत लक्षण निम्नतः है-

- खुलापन - (कल्पनाशील/उत्सुक बनाम सतर्क/रूढ़िवादी)। कला, भावना, साहस, असामान्य विचार, जिज्ञासा, और विविध अनुभव के प्रशंसक।
- कर्तव्यनिष्ठा - (कुशल/संगठित बनाम आरामपसंद/लापरवाह)। अनुशासन, कर्तव्यपरायण, और कार्यसिद्धि का प्रयास, सहज के बजाय योजनाबद्ध व्यवहार की प्रवृत्ति।
- बहिर्मुखता - (मिलनसार/उत्साही बनाम शर्मीला/गुमसुम). ऊर्जा, सकारात्मक भावनाएं, सहमतता, और दूसरों के साथ उत्तेजना की तलाश करने की प्रवृत्ति।
- सहमतता - (मैत्रीपूर्ण/संवेदनशील बनाम प्रतिस्पर्धी/मुखर) दूसरों के प्रति शंकालु और विरोधी होने के बजाय दयालु और सहयोगी रहने की प्रवृत्ति।
- मनोविक्षुब्धता - (संवेदनशील/बेचौन बनाम निश्चिंत/आश्वस्त). क्रोध, चिंता, अवसाद या अतिसंवेदनशीलता जैसी अप्रिय भावनाओं को आसानी से अनुभव करने की प्रवृत्ति।

1. अनुभव के प्रति खुलापन-

खुलापन कला, भावना, साहस, असामान्य विचार, कल्पना, जिज्ञासा, और विविध अनुभव के प्रति सामान्य प्रशंसा है. यह लक्षण कल्पनाशील लोगों को व्यावहारिक, परंपरागत लोगों से अलग पहचानता है. लोग जो अनुभव के प्रति खुले हैं बौद्धिक रूप से उत्सुक, कला की सराहना करने वाले, और खूबसूरती के प्रति संवेदनशील होते हैं. उनकी तुलना परिपूर्ण, अधिक रचनात्मक और अपनी भावनाओं के बारे में जागरूक लोगों से की जाती है. उनके द्वारा अपरंपरागत विश्वास रखे जाने की ज्यादा संभावना है.

खुलेपन में कम अंक पाने वाले लोगों में अधिक परंपरागत, पारंपरिक दिलचस्पियां होने की संभावना है. वे जटिल, अस्पष्ट और गूढ़ की तुलना में अधिक सादे, ईमानदार, और स्पष्टता को पसंद करते हैं. वे कला और विज्ञान को

संदेह की दृष्टि से देख सकते हैं, जिन प्रयासों को वे अनाकर्षक मान सकते हैं. खुलेपन के कुछ स्व-कथनों में शामिल हैं-

नमूना खुलापन मदें--

a. मेरे पास समृद्ध शब्दावली है।
b. मैं सजीव कल्पना कर सकता हूं।
c. मैं चीजों पर चिंतन-मनन में समय बिताता हूं।
d. मैं कठिन शब्दों का प्रयोग करता हूं।
e. मुझे कपोल-कल्पना में दिलचस्पी नहीं है। (विपरीत)
f. मुझे अमूर्त विचारों को समझने में कठिनाई होती है। (विपरीत)

2.कर्तव्यनिष्ठा

कर्तव्यनिष्ठा स्व-अनुशासन दर्शाने, कर्तव्यपरायण रहने और कार्यसिद्धि को लक्ष्य बनाने की एक प्रवृत्ति है. यह विशेषता सहज व्यवहार के बजाय योजनाबद्धता के प्रति प्राथमिकता को दर्शाती है. यह हमारे आवेगों को नियंत्रित, विनियमित और संचालित करने के तरीके को प्रभावित करती है. कर्तव्यनिष्ठा में शामिल है कार्यसिद्धि की आवश्यकता (NAch) के रूप में ज्ञात कारक|

नमूना कर्तव्यनिष्ठा मदें--

1. मैं एक समय-सारणी का पालन करता हूँ।
2. मुझे व्यवस्था पसंद है।
3. मैं विवरणों पर ध्यान देता हूँ।
4. मैं अपनी चीजे चारों ओर बिखेरता हूँ।(विपरीत)
5. मैं अक्सर चीजों को उनके सही स्थान पर वापस रखना भूल जाता हूँ। (विपरीत)
6. मैं अपने कर्तव्यों से दूर भागता हूँ। (विपरीत)

3.बहिर्मुखता

बहिर्मुखता की विशेषताएं हैं सकारात्मक भावनाएं, मिलनसारिता, और उत्तेजना और दूसरों का साथ चाहने की प्रवृत्ति। इस विशेषता की खासियत है बाहरी दुनिया के साथ स्पष्ट तौर पर जुड़ना। बहिर्मुखियों को अन्य लोगों के साथ जुड़ने में मजा आता है, और अक्सर उत्साह से भरे माने जाते हैं। वे उत्साहित, कार्रवाई-उन्मुख व्यक्ति होते हैं, जिनके द्वारा उत्साहपूर्ण मौकों के लिए सदा 'हां!' या 'चलो!' कहने की संभावना रहती है। समूहों में वे बात करना, अपनी बात पर दृढ़ रहना, और खुद की ओर ध्यान आकर्षित करना पसंद करते हैं।

अंतर्मुखी लोगों में सामाजिक उल्लास और बहिर्मुखियों जैसी गतिविधि स्तर की कमी रहती है। वे शांत, संयत, सतर्क, और सामाजिक दुनिया में कम शामिल होते हैं। उनके द्वारा सामाजिक भागीदारी की कमी को शर्म या अवसाद के रूप में नहीं लेना चाहिए। अंतर्मुखी लोगों को बहिर्मुखियों की तुलना में कम उत्तेजना और अधिक अकेलेपन की जरूरत होती है। वे बहुत सक्रिय और ऊर्जावान हो सकते हैं, केवल सामाजिक रूप से नहीं।

नमूना बहिर्मुखता मदें--

1. मुझे सबके आकर्षण का केंद्र बनने से कोई आपत्ति नहीं है।
2. मुझे लोगों के आस-पास सुखद महसूस होता है।
3. मैं बातचीत शुरू करता हूं।
4. मैं अजनबियों के आस-पास चुप रहता हूँ। (विपरीत)
5. मुझे लोगों का ध्यान आकर्षित करना पसंद नहीं है। (विपरीत)
6. मैं कुछ नहीं कहना चाहता हूँ। (विपरीत)

4. सहमतता

सहमतता दूसरों के प्रति शंकालु और विरोधी होने के बजाय संवेदनशील और सहयोगशील होने की प्रवृत्ति है। यह विशेषता सामाजिक सद्भाव के लिए सामान्य चिंता में व्यक्तिगत मतभेदों को दर्शाता है। सहमत होने वाले व्यक्ति, अन्य लोगों के साथ चलने को महत्व देते हैं. वे आम तौर दूसरों का लिहाज करने वाले, मैत्रीपूर्ण, उदार, मददगार, और दूसरों के लिए अपने हितों से समझौता करने को तैयार होते हैं. सहमत लोगों का मानव स्वभाव के प्रति एक आशावादी दृष्टिकोण भी होता है. उनका मानना है कि लोग मूल रूप से ईमानदार, सभ्य, और विश्वसनीय होते हैं। असहमत लोग अपने स्वार्थ को दूसरों के साथ चलने से ज्यादा मान देते हैं। आम तौर पर वे दूसरों की भलाई के बारे में उदासीन रहते हैं, और अन्य लोगों के लिए उनके सामने आने की कम संभावना है कभी-कभी दूसरों के प्रयोजन के बारे में उनका संदेह उन्हें शंकालु, रूखा, और असहयोगी बनाता है।

नमूना सहमतता मदें--

1. मैं दूसरों की भावनाओं को महसूस करता हूँ।
2. मैं नरम दिल हूँ।
3. मैं लोगों को निश्चिंत करता हूँ।
4. मैं दूसरों के लिए समय निकालता हूँ।
5. मुझे दूसरे लोगों की समस्याओं में कोई दिलचस्पी नहीं है। (विपरीत)
6. मुझे दूसरों की बहुत कम चिंता रहती है। (विपरीत)
7. मुझे अलग रहना पसंद है। (विपरीत)

5.मनोविक्षुब्धता-

मनोविक्षुब्धता क्रोध, चिंता, या अवसाद जैसी नकारात्मक भावनाओं को अनुभव करने की प्रवृत्ति है। इसे कभी-कभी भावनात्मक अस्थिरता कहा जाता है. जो लोग मनोविक्षुब्धता में अधिक अंक पाते हैं वे भावनात्मक रूप से प्रतिक्रियाशील और तनाव के प्रति कमजोर होते हैं। उनके द्वारा आम हालातों को संकटपूर्ण और मामूली कुंठाओं को निराशाजनक रूप से मुश्किल मानने की संभावना ज्यादा है। उनकी नकारात्मक भावनात्मक प्रतिक्रियाएं असामान्य रूप से लंबे समय तक बने रहने की संभावना होती है, जिसका अर्थ है कि वे अक्सर खराब मूड में रहते हैं। मनोविक्षुब्धता में अधिक अंक पाने वाले व्यक्ति में भावनात्मक नियंत्रण की ये समस्याएं, उनकी स्पष्ट रूप से सोचने, निर्णय लेने और तनाव के साथ प्रभावी ढंग से जूझने की क्षमता को कम करती है।

पैमाने के दूसरे छोर पर, मनोविक्षुब्धता में कम अंक पाने वाले व्यक्ति, आसानी से परेशान नहीं होते और भावनात्मक रूप से कम प्रतिक्रियाशील होते हैं. वे शांत, भावनात्मक रूप से स्थिर, और सतत नकारात्मक भावनाओं से मुक्त

होते हैं. नकारात्मक भावनाओं से मुक्ति का मतलब यह नहीं है कि कम अंक पाने वाले अधिक सकारात्मक भावनाओं का अनुभव करते हैं।

नमूना मनोविक्षुब्धता मदें--

1. मैं आसानी से तनाव महसूस करने लगता हूँ।
2. मैं आसानी से परेशान हो जाता हूँ।
3. मेरी मनोदशा अक्सर बदलती रहती है।
4. मैं अक्सर उदास हो जाता हूँ।
5. मैं आम तौर पर आराम से रहता हूँ। (विपरीत)
6. मैं शायद ही कभी उदास होता हूँ। (विपरीत)

10.4.2. बिग फाइव के निर्धारक-

बिग फाइव के प्रमुख निर्धारक निम्न है .

10.4.2.1. वंशानुगतता-

सभी पांच कारक दोनों आनुवंशिकता और पर्यावरण से प्रभावित होते दिखते हैं। जुड़वे अध्ययन का सुझाव है कि ये प्रभाव मोटे तौर पर बराबर अनुपात में योगदान देते हैं। उपलब्ध अध्ययनों के विश्लेषण ने बिग फाइव लक्षणों के लिए समग्रतः वंशानुगतता को निम्नतः पाया-

खुलापन – 57%
कर्तव्यनिष्ठा – 49%
बहिर्मुखता – 54%
सहमतता – 42%
मनोविक्षुब्धता – 48%

10.4.2.2. विकास

अनुदैर्ध्य डेटा के कई अध्ययन, जो समय के साथ लोगों के परीक्षण प्राप्तांक, और प्रतिनिधिक-समूह डेटा को सहसंबंधित करते हैं, जो विभिन्न आयु समूहों के आर-पार व्यक्तित्व स्तरों की तुलना करते हैं, वयस्कता के दौरान व्यक्तित्व लक्षणों में उच्च स्तरीय स्थिरता दर्शाते हैं। हाल ही के अनुसंधान और पिछले अध्ययनों के मेटा-विश्लेषण, तथापि, सूचित करते हैं कि जीवन-काल के विभिन्न बिंदुओं में सभी पांच लक्षणों में परिवर्तन होता है। नया शोध परिपक्वता प्रभाव सबूत दर्शाता है। औसतन, सहमतता और कर्तव्यनिष्ठा स्तरों में आम तौर पर समय के साथ वृद्धि होती है, जबकि बहिर्मुखता, मनोविक्षुब्धता और खुलेपन में कमी आती है। इन सामूहिक प्रभावों के अतिरिक्त, व्यक्तिगत मतभेद भी रहे हैं। अलग-अलग लोग जीवन के सभी चरणों में अद्वितीय परिवर्तन पैटर्न प्रदर्शित करते हैं।

10.4.2.3. लिंग भेद-

26 देशों से अंतर-सांस्कृतिक अनुसंधान (छ = 23,031 अनुसंधानाधीन लोग) और फिर 55 देशों में (छ = 17,637 अनुसंधानाधीन लोग) ने बिग फाइव की सूची के प्रति प्रतिक्रियाओं में लिंग भेद के वैश्विक पैटर्न को दर्शाया है। महिलाएं लगातार उच्च मनोविक्षुब्धता और सहमतता रिपोर्ट करती हैं, और पुरुष अक्सर अधिक बहिर्मुखता और कर्तव्यनिष्ठा रिपोर्ट करते हैं। व्यक्तित्व लक्षणों में लिंग भेद समृद्ध, स्वस्थ, और समानतावादी संस्कृतियों में अधिक होते हैं, जहां महिलाओं को पुरुषों के समान अवसर मिलते हैं।

10.4.2.4. जन्म क्रम-

अक्सर यह सुझाव दिया गया है कि व्यक्ति अपने जन्म के क्रम से भिन्न होते हैं। फ्रैंक जे. सुलोवे का तर्क है कि जन्म क्रम व्यक्तित्व लक्षण के साथ सहसंबद्ध है। उनका दावा है कि बाद में पैदा होने वाले बच्चे की तुलना में पहलौठा अधिक कर्तव्यनिष्ठ, अधिक सामाजिक रूप से प्रभावी, कम सहमत, और नए विचारों के प्रति कम खुला होता है।

10.4.3. आलोचनाएं- बिग फाइव पर अधिक शोध किया गया है। इसके परिणामस्वरूप मॉडल के लिए दोनों आलोचना और समर्थन हासिल हुए हैं। आलोचकों का तर्क है कि एक व्याख्यात्मक या भविष्यसूचक सिद्धांत के रूप में बिग फाइव की गुंजाइश के लिए दायरे मौजूद हैं। यह बहस की जाती है कि बिग फाइव सभी मानव व्यक्तित्व की व्याख्या नहीं करते हैं। व्यक्तित्व लक्षण की आयामी संरचना को पहचानने के लिए प्रयुक्त कार्यप्रणाली, कारक विश्लेषण को अक्सर विभिन्न कारक सहित समाधानों के बीच चयन के लिए वैश्विक-मान्यता आधार न होने के कारण चुनौती दी गई है। एक और सतत आलोचना यह है कि बिग फाइव सिद्धांत से प्रेरित नहीं है। यह केवल कारक विश्लेषण के अधीन साथ एकत्रित होने की प्रवृत्ति वाले कतिपय विवरणकों की डेटा-संचालित जांच है। इसके अतिरिक्त पंच-आयामी मॉडल के कुछ लाभ (advantages) तथा अलाभ (disadvantages) बतलाए गए हैं।

पंच-आयामी मॉडल के कुछ लाभ -

1. पंच-आयामी मॉडल द्वारा व्यवसायिक अभिरुचि की पहचान करने में मदद मिलती है। इस मॉडल या सिद्धान्त के अनुसार जिन व्यक्तियों में बहिर्मुखता का आयाम ऊँचा होता है, वे सामाजिक एवं उद्यमशील पेशाओं में उन व्यक्तियों की तुलना में अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे जो अंतर्मुखता में अधिक होंगे। उसी तरह से जो व्यक्ति खुलापन के आयाम पर उच्च होंगे, वे कलात्मक तथा अन्वेषणात्मक पेशाओं में अधिक श्रेष्ठ होते पाये जाते हैं।
2. पंच-आयामी सिद्धान्त से कुछ व्यक्तित्व विकृतियों के स्वरूप को समझने में मदद मिलती है। इस सिलसिले में कोस्टा एवं विडिगर द्वारा किए गए शोधों से जो आश्चर्यचकित करने वाला तथ्य सामने आया है, वह यह है कि कुछ असामान्य व्यवहार व्यक्ति में सामान्य व्यक्तित्व शीलगुणों का अतिरंजित प्रारूप होता है न कि वह सामान्य शीलगुणों से विचलित अवस्था होता है। जैसे- इन लोगों के अनुसार जब कर्त्तव्यनिष्ठता के आयाम पर व्यक्ति ऊँचा होता है तो उसमें बाध्यकारी व्यक्तित्व विकसित हो जाता है तथा जब व्यक्ति सहमतिजन्यता आयाम पर अत्यधिक निम्न होता है, तो उसमें समाज-विरोधी व्यक्तित्व का विकास हो जाता है।
3. पंच-आयामीय सिद्धान्त मानसिक रूप से क्षुब्ध व्यक्तियों को सही मनोवैज्ञानिक उपचार प्रदान करने में भी सहायक सिद्ध हुआ है। मैककेनजी के अनुसार व्यक्तित्व के इन पाँच आयामों को जानकर व्यक्ति की समस्याओं को तथा उसके उपचार करने के बारे में ठीक ढंग से योजना बना सकने में चिकित्सक समर्थ हो पाता है। जैसे- जो व्यक्ति खुलापन के आयाम पर उच्च होगा, वे वैसे चिकत्साओं से अधिक लाभ उठा पायेंगे जिसमें अन्वेषण तथा कल्पना को प्रोत्साहन मिलता हो। अभी हाल में पंच कारकीय सिद्धान्त को वैवाहिक परामर्श के लिए भी उपयोगी बतलाया गया है।
4. इस सिद्धान्त द्वारा व्यक्तित्व की एक सार्वभौम व्याख्या होती है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के व्यवहारों के बारे में पूर्वकथन तथा उसे परिस्थिति के अनुसार नियंत्रित करना कापी आसान हो जाता है।

5. इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण उस पर आधारित NEO-PI-r test जैसे व्यक्तित्व प्रश्नावली का निर्माण है। इस प्रश्नावली की विश्वसनीयता तथा वैधता काफी अधिक है तथा कई अध्ययनों से यह साबित हो गया है कि यह एक काफी बहु उपयोगी प्रश्नावली है।
6. इस सिद्धान्त से एक महत्वपूर्ण प्राक्कल्पना सर्जित हुआ है जो मनोवैज्ञानिकों के लिए नये शोध का आकर्षण केन्द्र बना हुआ है। प्राक्कल्पना यह है कि व्यक्तित्व पर्यावरण में पारिवारिक पर्यावरण खासकर वैसा पारिवारिक पर्यावरण जिसकी साझेदारी सभी सदस्यों के लिए नहीं हो पाती है, (अर्थात् उस तरह का पारिवारिक अनुभव कुछ ही दस्यों को होता है) व्यक्तित्व निर्धारण के लिए महत्वपूर्ण होता है।

पंच-आयामी मॉडल के कुछ अलाभ -इन लाभों के बावजूद पंच-आयामीय सिद्धान्त की कुछ परिसीमाएँ है जिनके चलते उसकी आलोचना हुई है। ऐसी प्रमुख परिसीमाएँ निम्नांकित हैं-

1. पंच-आयामी सिद्धान्त व्यक्ति का एक नया सिद्धान्त है जिसपर अभी शोध जारी है। इस कारण अबतक यह स्पष्टनहीं हो पाया है इस सिद्धांत में जो पाँच कारक की बात कही गयी है, वह कहाँ तक विभिन्न व्यक्तित्वों के बीच अंतर करने में सक्षम होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि अमुक तरह का व्यक्तित्व अमुक तरह के मनश्चिकित्सा से अधिक लाभ उठा पायेगा।
2. मिलर (Miller 1991) के अनुसार यह सिद्धान्त सिर्फ विभिन्न तरह के मनोरोग (psychopathology) का वर्णन तो कर पाता है परंतु उसकी व्याख्या नहीं कर पाता है।
3. व्यक्तित्व के अन्य सिद्धान्तों के समान इस सिद्धान्त में कोई चिकित्सीय उपागम (therapeutic approach) की संकेत नहीं मिलता है।
4. पंच-आयामीय सिद्धान्त का आधार कारक विश्लेषण है तथा कोस्टा एवं मैकक्रे कोस्टा एवं मैकक्रे (Costa & McCrae ,1994) जो इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रवर्त्तक हैं, के अनुसार एक काफी वैज्ञानिक एवं वैध प्रविधि है। आलोचकों का मत है कि यदि यह बात सही है तथा व्यक्तित्व सिर्फ इन बड़े पाँच आयामों से ही बना होता है, तो क्यों आइजेंक (Eysenck, 1993) तथा जुकरमैन पाँच से कम आयाम से ही पूर्णतः संतुष्ट दीखते हैं। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों जिसमें पेरविन(Pervin, 1994) का नाम मुख्य है, ने इन पाँच आयामों के स्तर (status) पर अभी और अधिक विचार विमर्श करने की आवश्यकता महसूस किया है।
5. ब्लौक (Block, 1995), बस (Buss, 1988) तथा मैकएडैम्स (McAdams ,1992) ने इस सिद्धांत की आलोचना करते हुए कहा है कि इन बड़े पाँच आयामों के अतिरिक्त व्यक्तित्व में और भी कई चीजें हैं जिनकी चर्चा तक इस सिद्धान्त में नहीं की गयी है।जैसे- आत्म-संप्रत्यय (self-ceoncept), संज्ञानात्मक शैली (cognitive styles) तथा अचेतन (unconscious) कुछ ऐसे ही गुण हैं जिनपर सिद्धान्त में कोई चर्चा नहीं की गयी है।
6. हालाँकि अभी हाल में रोबिन्स तथा उनके सहयोगियों (Robins et al., 1996) ने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि ये बड़े पाँच कारक किस तरह से आपस में मिलकर व्यक्तित्व का एक प्रकार का निर्माण करते हैं, परंतु सच्चाई यह है कि इस सिद्धांत द्वारा व्यक्तित्व के संगठन (organization) की व्याख्या नहीं होती है। इस पर टिप्पणी करते हुए मैक ऐडम्स (McAdams ,1992) ने कुछ इस तरह कहा है, 'पंच-कारकीय मॉडल तत्त्वतः अजनबी का मनोविज्ञान है- किसी का द्रुत एवं साधारण प्रतिकृति है।'

7. पंच-आयामीय सिद्धान्त द्वारा व्यक्तित्व परिवर्तन (personality change) की व्याख्या नहीं होती है। इसके द्वारा इस तथ्य पर कहीं भी प्रकाश डाला गया है कि व्यक्तित्व में परिवर्तन किस प्रकार होता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद पंच-आयामीय सिद्धान्त व्यक्तित्व का एक नया एक उत्साहवर्धक सिद्धान्त है। इसे आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व का एक 'सहमतिजन्य मॉडल' (consensus model) कहा है क्योंकि इसके पाँचों आयामों एवं उनकी उपयोगिताओं पर मनोवज्ञानिकों के बीच बहुत हद तक सहमति है।

अभ्यास प्रश्न

1. आइजेंक के व्यक्तित्व सिद्धांत में किसे सुपर कारक कहा गया है।
a. अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता
b. ओ.टी. आकड़ा
c. समूहनिर्भर-आत्मनिर्भर
d. क्यू. आकड़ा
2. बड़े पाँच कारक कौन है-
a. स्नायु विकृति, बहिर्मुखता, सहमतिजन्यता, खुलापन तथा कर्तव्यनिष्ठता
b. स्नायुविकृति, अन्तर्मुखता, सहमतिजन्यता, मनोविक्षिप्तता तथा खुलापन
c. मनोविक्षिप्त, स्नायुविकृति, कर्तव्यनिष्ठता, खुलापन तथा अन्तर्मुखता
d. अन्तर्मुखता, स्नायुविकृति, सहमतिजन्यता, खुलापन तथा कर्तव्यनिष्ठता
3. आइजेंक के अनुसार मनस्ताप के दूसरे ध्रुव पर................ होता है।
4. एन.ई.ओ. व्यक्तित्व आविष्कारिका से .... मापन होता है।

10.5. सारांश

1. आइजेंक ने व्यक्तित्व की संरचना का वर्णन प्रकार उपागम से न करके विमीय उपागम से किया है इन्होंने व्यक्तित्व की संरचना की व्याख्या चार वीमाओं अर्थात् अन्तर्मुखता-बर्हिमुखता, स्नायु विकृति-स्थिरता, मनोविक्षीप्तता-पराहं तथा बुद्धि के आधार पर किया है इनमें से प्रथम तीन वीमाओं को मापने के लिए आइजेंक ने एक विशे ष प्रश्नावली का निर्माण किया है जिसे आइजेंक व्यक्तित्व प्रश्नावली कहा गया है।
2. व्यक्तित्व के पंचआयामी सिद्धांत की खास विशे षता यह है कि व्यक्तित्व की सम्पूर्ण व्याख्या व्यक्तित्व के पाँच प्रमुख आयामों- स्नायु विकृति, बहिर्मुखता, खुलापन, सहमति जन्यता तथा कर्तव्यनिष्ठा के रूप में की गयी है। इन आयामों को मापने के लिए एक विशेष प्रश्नावली जिसे (NEO-PI-R) कहा गया है जिसमें कुल 240 एकांश है।
3. व्यक्तित्व के विकास में 40 प्रतिशत आनुंवाशिक कारकों का 35प्रतिशत पारिवारिक पर्यावरण का 5प्रतिशत साझा पारिवारिक पर्यावरण का होता है। बाकी 20प्रतिशत में वैसे अनुभूतियों होती है जिसे व्यक्ति विद्यालय तथा साथियों से प्राप्त करता है।

10.6. शब्दावली

NEO-PI-R.(Neuroticism-Extraversion-Openness) व्यक्तित्व की सम्पूर्ण व्याख्या व्यक्तित्व के पाँच प्रमुख आयामों- स्नायु विकृति, बहिर्मुखता, खुलापन, सहमति जन्यता तथा कर्तव्यनिष्ठा के रूप में की गयी है। इन आयामों को मापने के लिए एक विशेष प्रश्नावली।
मनोविक्षप्त्ता . क्रोध, चिंता, या अवसाद जैसी नकारात्मक भावनाओं को अनुभव करने की प्रवृत्ति है।

अन्तर्मुखता. एकान्त प्रिय, संकोची, कल्पनाशील अन्तदर्शन करने वाला लज्जाशील, पीछे हटने वाला, आवेगी निर्णयों के प्रति अविश्वासी तथा अनुशासित जीवन को पसन्त करने वाला व्यक्ति।
बहिर्मुखता . सामाजिक, पार्टियां पसन्द करने वाला, मित्र बनाने वाला, उद्दीपन युक्त, प्रोत्साहन पर क्रिया करने वाला और आतुरतायुक्त व्यक्ति।

10.7. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1- a 2-a 3. स्थिरता 4. पंचआयामी कारक

10.8. संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास
2. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल - बनारसी दास
3. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, सीताराम जायसवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मधु अस्थाना एवं किरण बाला वर्मा, मोतीलाल बनारसी दास
5. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, डी.एन. श्रीवास्तव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2
6. प्रतियोगिता मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास

10.9. निबन्धात्मक प्रश्न-

1. आइजेंक के व्यक्तित्व सिद्धांत का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।
2. आइजेंक के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना और मापन पर प्रकाश डालिये।
3. व्यक्तित्व के पंचकारकीय सिद्धांत की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखिए-

a. सुपरकारक
b. अन्तर्मुखता-बहिर्मुखता
c. स्नायुविकृति-स्थिरता
d. मनोविक्षिप्तता
e. एन.ई.ओ. व्यक्तित्व आविष्कारिका
f. सहमति जन्यता

इकाई 11. व्यक्तित्व मूल्यांकन के उपागम (आत्म-विवरण, प्रक्षेपी एवं व्यवहार मूल्यांकन) और इनकी प्रतिक्रियाओं की समस्या (Approaches of Personality Assessment (Self-Report, Problems of response Projective and Behavioral Assessment)

इकाई संरचना

11.1. प्रस्तावना

11.2. उद्देश्य

11.3. व्यक्तित्व मापन के उपागम

11.4. व्यक्तित्व मापन की विधियाँ

11.4.1. आत्म रिपोर्ट अविष्कारिका

11.4.1.1. मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची

11.4.1.2 सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली

11.4.1.3. कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण

11.4.1.4. माडसेल व्यक्तित्व अनुसूची

11.4.1.5. बेल समायोजन अविष्कारिका

11.5. प्रक्षेपी विधियाँ

11.5.5. अभिव्यंजक परीक्षण

11.5.1. साहचर्य परीक्षण

11.5.1.1. शब्द साहचर्य परीक्षण

11.5.1.2. रोशार्क परीक्षण

11.5.2. संरचना परीक्षण

11.5.2.1. विषय आत्मबोध परीक्षण

11.5.2.2. रोजेनविग तस्वीर-कुंठा अध्ययन

11.5.2.3. बाल आत्मबोधन परीक्षण

11.5.2.4. रोवर्टस आत्मबोधन परीक्षण

11.5.3. पूर्त्ति परीक्षण

11.5.4. चयन या क्रम परीक्षण

11.5.5. अभिव्यंजक परीक्षण

11.6. सारांश

11.7. शब्दावली-

11.8. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

11.10. निबन्धात्मक प्रश्न-

11.1. प्रस्तावना:

व्यक्तित्व व्यक्ति के उन गुणों से सम्बन्धित होता है जिसके आधार पर एक व्यक्ति कों दूसरें व्यक्ति सें अलग किया जा सकता है। व्यक्तित्व का महत्व दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। सामाजिक जीवन जैसे-जैसे जटिल हो रहा है, प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है, साथ-साथ व्यक्तित्व का महत्व भी बढ़ रहा है। किशोरावस्था से युवास्था तक के व्यक्तियों में अपने व्यक्तित्व को उन्नत करने की बहुत चाह होती है सभी लोग यह मानते है कि व्यक्तित्व का एक उपलब्धि मूल्य भी होता है एवं यह भी मानते है कि अच्छे और प्रभावशाली व्यक्तित्व होने पर व्यक्ति अनेक उपलब्धियॉ प्राप्त कर सकता है। उनकी उपलब्धियों के पीछे उनके व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव और कार्य होता है। वह व्यक्ति जो व्यक्तित्व के उपलब्धि मूल्य को जानते है वह अनेक व्यक्तिव को और अधिक उन्नत करना चाहते है जिससे उनके व्यक्तित्व का उपलब्धि मूल्य और अधिक बढ़ जाय, लोग यह भी विश्वास करते है कि आज उनका जो व्यक्तित्व है उसकों और व्यक्तित्व के मापन की व्यक्तित्व के मापन के लिए व्यक्तित्व मनोविज्ञान में अनेक विधियॉ प्रचलित हैं।

प्रस्तुत इकाई में व्यक्तित्व मापन की विधियों एवं मापन में होने वाली समस्याओं के बारे में आप जान सकेंगे।

11.2. उद्देश्यः

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे की आप -

1. व्यक्तित्व मापन को भली-भाति समझ सकेंगे।
2. व्यक्तित्व मापन के विभिन्न तकनीकों से अवगत हो सकें।
3. व्यक्तित्व मापन के उद्देश्य को समझ सकें।
4. प्रक्षेपीय मापन तकनीक में अनुक्रिया के समस्या को समझ सकें।
5. व्यवहारिक मापन तकनीक के अनुक्रिया के समस्या से अवगत हो सकें।

11.3. व्यक्तित्व मापन:

व्यक्तित्व की माप से तात्पर्य व्यक्तित्व के शीलगुणों के बारे में पता लगाकर यह निश्चित करना होता है कि कहाँ तक वे संगठित है। किसी भी व्यक्ति के भिन्न-भिन्न शीलगुण जब आपस में संगठित होते है, तो इससे व्यक्ति का व्यवहार सामान्य होता है। परन्तु यदि उसके शीलगुण विसंगठित होते है तो व्यक्ति का व्यवहार असामान्य हो जाता है। व्यक्तित्व का मापन मनोवैज्ञानिक इसलियें भी करते है कि मापन के आधार पर व्यक्तित्व सिद्धान्तों और नियमों का प्रतिपादन करते है। दूसरे मापन का उद्देश्य व्यवहारिक होता है जिसके द्वारा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि एक व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन-कौन सी विशेषतायें होती है, शीलगुण की कमी से व्यक्ति को समायोजन करने में कठिनाई होती है। अतः व्यक्तित्व मापने के द्वारा इन कठिनाईयों को दूर करने में मदद की जाती है।

11.4. व्यक्तित्व मापन की विधियाँ:

मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व मापन की बहुत सी विधियों या परीक्षणों का प्रतिपादन किया है। ऐसी प्रमुख विधियों या परीक्षणों को निम्नांकित तीन भागों में बाटकर अध्ययन किया गया है-

1. आत्म रिर्पोट आविष्कारिका (Self Report Inventory)
2. प्रक्षेपीय विधियाँ (Projective Techniques)

3. व्यवहारिक विधियाँ (Behavioural Techniques)

11.4.1. **आत्म रिर्पोट अविष्कारिका** (Self Report Inventory)- व्यक्तित्व मापने की यह विधि काफी प्रचलित है। इस विधि में व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण शीलगुणों से संबंधित कुछ प्रश्न बने होते है जिनका उत्तर प्रायः 'हा-नहीं, सही-गलत' आदि में दिया रहता है। व्यक्ति इन प्रश्नों को एक-एक करकें पढ़ता है और उनका उत्तर दिये गये विकल्पों में से चुनकर देता है। एक ही प्रश्न का सही एवं उचित उत्तर अलग-अलग व्यक्तियों के लिए अलग-अलग हो सकता है। इस तरह की आवितकारिका को व्यक्ति स्वयं पढ़ता है एवं उसका उत्तर देता है। इस कारण इसे व्यक्तित्व अविष्कारिका अथवा मनोमिति विधियाँ या मनोमिति परीक्षण कहते हैं ।

सर्वप्रथम फ्रान्सिस गाल्टन ने व्यक्तित्व मापने के लिए सन् 1880 में एक सूची तैयार की थी। इसके बाद वुडवर्थ (R. S. Woodworth, 1918) ने एक व्यक्तित्व अनुसूची बनाई जिसका नाम था वुडवर्थ पर्सनल डेटा इन्वेन्ट्री वुडवर्थ की इस व्यक्तित्व सूची में 116 प्रश्न जिनका उत्तर दो विकल्पों ' हाँ ' अथवा ' नहीं ' में देना था। इसके बाद अनेक व्यक्तित्व सूचियों का निर्माण और मीनकीकरण किया है। इनमें से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार से है - थर्स्टन और थर्स्टन (1930), रोजर्स (1931), बर्नीस्टर (1933) आदि ने भी व्यक्तित्व सूचियों का निर्माण किया है। थोर्पे और क्लार्क 1939 ने कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण की रचना की है। हाथवे और मैककिन्ले (1940) ने मिनिसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची की रचना की है। डार्ले और मेकनामरा ;1942द्ध मिनिसोटा व्यक्तित्व मापनी की रचना की है।यह वास्तव में दो मापनियॉ है एक पुरुषों के लिए और दूसरी महिलाओं के लिए। इसके द्वारा नैतिकता सामाजिक समायोजन, पारिवारिक सम्बन्ध, संवेगात्मक स्थिरता और आर्थिक दृढ़ता जैसे व्यक्तित्व के पॉच पहलुओं का मापन किया जाता है। गिलफोर्ड और जियरमैन (1949) एवं थर्स्टन (1949) ने कारक विश्लेषण की विधि के आधार पर स्वभाव अनुसूची की रचना की है। आर. बी. कैटिल (1950) ने व्यक्तित्व मापन के क्षेत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने व्यक्तित्व के मापन के लिए सूचियों का निर्माण और मानकीकरण भी किया हैं। व्यक्तित्व मापन के लिए आजकल जितनी भी विश्वसनीयता, वैधता और मानक ज्ञात होते है। कुछ प्रमुख व्यक्तित्व सूचियों का विवरण निम्न प्रकार से है -

11.4.1.1. मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची (Minesota Multiphasic Personality Inventory, MMPI) का निर्माण मूलतः हाथावें एवं मैककिनले (1940) में किया गया जिसमें 550 एकांश थे और प्रत्येक एकांश के तीन उत्तर थे – (True), (False) तथा (Can't say)| इस मौलिक प्राध्प के दो प्रतिरूप हैं - वैयक्तिक कार्ड उद्देश्य व्यक्तित्व के रोगात्मक शीलगुणों को मापना है। इस सूची में दस नैदानिक मापनियाँ और चार वैधता मापनियाँ है। नैदानिक मापनी द्वारा 10 रोगात्मक शीलगुणों का मापन होता है, तथा वैधता मापनी पर के प्राप्तांकों द्वारा व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तरों की विश्वसनियता तथा वैधता का पता चलता है।

MMPI के कई संशोधित प्रारूप तैयार किए गए है जिसमें सबसे नवीनतम संशोधन को MMPI- 2 के नाम से जाना जाता है। यह संशोधन वुचर, डाहस्ट्रोम, ग्राहम, टेलेगन तथा केमर (1989) द्वारा किया गया। MMPI-2 में 10 नैदानिक मापनी तथा तीन मुख्य वैधता मापनी है। इन तीन वैधता मापनी के अतिरिक्त एक और वैधता मापनी है जिसे '?"(Can't Say)से संकेतिक किया जाता है तथा इसमें उन एकांशो को रखा जाता है जिसका उत्तर व्यक्ति नहीं दे पाता है। इन वैधता मापीनयों का सम्बन्ध अविष्कारिका के वैधता से कुछ भी नहीं है बल्कि इनके द्वारा विभिन्न तरह के वैसे मनोवृत्तियों का पता चलता है जिससे परीक्षण पर की अनुक्रियाएँ विकृत हो जाती हैं ।

इन सभी मापनी में कुल मिलाकर 641 एकांश हैं परन्तु 74 एकांश एक मापनी से दूसरे में सामान्य होने से MMPI-2 के कुल 567 एकांश बच जाते है। इन सभी 10 नैदानिक मापनी एवं वैधता मापनी का वर्णन इस प्रकार से हैं -

नैदानिक मापनी (Clinical Scale)-

1. **रोगभ्रम (Hypochondriasis or HS)**- इस मापनी के कुल 32 एकांश है और इसके द्वारा उस प्रवृत्ति की माप होती है जिसमें व्यक्ति अपने शारीरिक स्वास्थ्य एवं शारीरिक कार्य के बारे में जƒरत से ज्यादा चिंता दिखलाता है।

2. **विषाद (Depression)** - इस मापनी में 57 प्रश्न या पद है जो उदासी क्षमता में हास, ऊर्जा में कमी, अभिƒचि में कमी आदि से सम्बन्धित है।

3. **रूपान्तर हिस्ट्रीया (Conversion Hysteria or Hy)**- इस मापनी के 60 एकांश है। इसके द्वारा ऐसे स्नायुविकृत प्रवृत्ति का मापन होता है जिसमें रोगी मानसिक संघर्ष एवं चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए कोई न कोई शारीरिक लक्षण विकसित कर लेता है।

4. **मनोविकृत विचलन (Psychopathic Deviate or Pd)**- इस मापनी में 50 एकांश है तथा इसके द्वारा व्यक्ति में सामाजिक एवं नैतिक मानकों को अवहेलना करने वाली प्रवृतियों तथा दडात्मक अनुभूतियों से भी कुछ न सीखने की प्रवृति का मापन होता है।

5. **पुरूषत्व नारीत्व (Masculinity – Feminity M-F)** - इस मापनी में 56 एकांश हैं तथा इसके द्वारा व्यक्ति के सीमांतीय यौन भूमिका (Extreme sex role) की प्रवृत्ति का माप होती है।

6. **स्थिर व्यामोह (Paranoia or Pa)** - इस मापनी में 40 एकांश है जिनके द्वारा व्यक्ति में असामान्य शक करने की प्रवृत्ति तथा दंडात्मक एवं उत्कृष्ठता से संबंध गलत विश्वास या भ्रान्ति का मापन होता है।

7. **मनोदौर्वल्यता (Psychethrnia or Pt)** - इस मापनी में कुल 48 एकांश हैं जिसके द्वारा व्यक्ति में मनोग्रस्ति (Obsession), बाध्यता (Compulsion), असामान्य डर आदि का मापन होता है।

8. **मनोविदलता (Schizophrenia or Sc)**- इस मापनी से 78 एकांश हैं इसके द्वारा व्यक्ति में असामान्य चिन्तन या व्यवहार करने की प्रवृत्ति का मापन होता है।

9. **अल्पोन्मान (Hypomania or Ma)** - इस मापनी में 46 एकांश है तथा इसके द्वारा व्यक्ति के सांवेगिक उत्तेजन, अतिक्रिया तथा विचारों का विखराव का मापन होता है।

10. **सामाजिक अन्तर्मुखता (Social Introversion or SI)** - इस मापनी में 69 पद या प्रश्न है यह सभी प्रश्न सामाजिक अन्तर्मुखता से सम्बन्धित है।

वैधता मापनियॉं (Validity Scales)-

L (Lie) - इस मापनी में 15 प्रश्न हैं, जिनकी सहायता से झूठ बोलने से सम्बन्धित प्रश्न हैं।

F (Frequency or Infrequency)- इस मापनी में 60 पद हैं। इन सभी पदों से प्रयोज्य की लापरवाही का मापन होता है इस मापन से यह मालूम हो जाता है कि एक व्यक्ति अपने रोगात्मक लक्षणों को कैसे बढ़ा कर व्यक्त करता है।

K (Correction)-इस मापनी में 30 प्रश्न हैं। इस मापनी व्यक्ति की अत्यधिक सुरक्षात्मक दृष्टिकोण का मापन होता है।

? (Can't Say) - इस प्रश्न में वह प्रश्न या पद सम्मिलित किये जाते हैं, जिनका प्रयोज्य उत्तर नहीं दे पता है।

इस तरह से यह स्पष्ट हुआ है कि MMPI.2 में मैलिक MMPI के सभी मापनियों को बरकरार रखते हुए उनके एकांशों को संशोधित किया गया है। MMPI.2 की फिर भी कुछ अपनी और विशेषताएं है जो इस प्रकार हैं -

1. MMPI.2 के एकांशो को समूहन करके 15 नये अन्तर्वस्तु मापनी (Content Scale) बनाए गए हैं जिसके द्वारा व्यक्तित्व के 15 ऐसे कारक (डर, क्रोध, टाईप ए व्यक्तिव इत्यादि) को मापना संभव हो पाया है जिसे पहले के 10 नैदानिक मापनियों द्वारा मापना संभव नही था।

2. MMPI.2 में दो और नये वैधता मापनियों को जोड़ा गया है जिसका उपयोग उपर्युक्त चार वैधता मापनी के साथ-साथ करना होता है। ये दो वैधता मापनी है - भ्रिन (Vrin) तथा ट्रिन (Trin) इन दोनों मापनियों द्वारा पराक्षण एकाशों के प्रति असंगत (Inconsistant) ढंग से उत्तर देने की प्रवृति का मापन होता है।

MMPI की उपयोगिता बहुत अधिक है। इसका उपयोग व्यक्तित्व असामायोजन, मानसिक विकारों व सामान्य व्यक्तिययों के अध्ययन में किया जाता है। सन् 1950 में हाथवे और मीहल ने इसके नैदानिक उपयोग के लिए एक एटलस का प्रकाशन करवाया है।

मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची के लाभ –

(1) MMPI से यह मालूम पड़ जाता है कि प्रयोज्य उत्तर देने के कितनी लापरवाही बरत रहा है अथवा तथ्यों को कितना बढ़ा कर बोल रहा है।

(2) इस मापनी के द्वारा नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में एक ही समय में यह ज्ञात हो जाता है कि व्यक्ति किन-किन मानसिक रोगों से पीड़ित है।

(3) इस मापन में मूल्यांकन की वस्तुनिष्ठता की विशेषता है।

मिनेसोटा बहुपक्षीय व्यक्तित्व सूची के प्रमुख दोष-

(1) MMPI की सहायता से व्यक्तित्व विकृति और मनस्थिति विकृति के कुछ प्रकारों का मापन नहीं होता है।

(2) MMPI के सभी पद शब्दिक है इसलिये इसके द्वारा कम पढ़े-लिखे लोगों और बुद्धि की दृष्टि से दुर्बल लोगों का मापन सही ढंग से नहीं किया जा सकता है।

(3) MMPI.2 का एक दोष यह भी है कि इसमें 74 प्रश्न ऐसे है जिसका उपयोग इस परीक्षण की एक से अधिक मापनियों में किया गया है।

आइकेन (1989) ने अपने अध्ययनों के आधार पर इस मापनी के सम्बन्ध में यह कहा है कि MMPI.2 को 90 प्रतिशत नैदानिक मनोवैज्ञानिक द्वारा पसन्द किया जाता है।

11.4.1.2 सोलह व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली (ixteen Personalty Factor Inventory)- इस व्यक्तित्व सूची का निर्माण और मानकीकरण कैटेल एवं इबर (R. B. Cattell & H. W. Eber 1950, 1956, 1970) ने किया, इस प्रश्नावली के । A, B, C, D, E तथा F प्रारूप उपलब्ध है। प्रारूप A और Bकॉलेज पढने वाले छात्रों के लिए है, तथा E और Fकम पढे लिखे व्यस्कों के लिए है जिनके द्वारा 17 वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों के 16 शीलगुणों को मापा जाता है। इस प्रश्नावली में सम्मिलित किये गये सभी 16 शीलगुण द्धिध्रवीय है। 16 शीलगुणों को मापने के लिये बिने 16 यापनी पर उच्च प्राप्तांक तथा कम प्राप्त के कुछ खास अर्थ होते है, जो इस प्रकार से है-

उच्च प्राप्तांक	अक्षर चिन्ह	निम्न प्राप्तांक

(1) Outgoing	A	Reserved
(2) More Intelligent	B	Less Intelligent
(3) Stable	C	Emotional
(4) Assertive	E	Humble
(5) Happy- go Lucky	F	Sober
(6) Conspicuous	G	Expedient
(7) Bold	H	Shy
(8) Thunder minded	I	Though mined
(9) Suspicious	L	Trusting
(10) Imaginative	M	Practical
(11) Shrewd	N	Forthright
(12) Apprehensive	O	Placid
(13) Experimenting	Q_1	Traditional
(14) Self- Sufficient	Q_2	Group - Tied
(15) Controlled	Q_3	Casual
(16) Tense	Q_4	Relaxed

वर्तमान में 16 PF के सिर्फ (Q) कारक के पूरक के ६प में इसके सात नये कारकों को जोड़ा गया है जिनके संकेत D, J, K, P तथा Q_5, Q_6 तथा Q_7 है। जिसमें उत्तेजनशीलता के लिए D, उत्साहपूर्णता बनाम वैयक्तित्वता के लिए J अशिष्टता बनाम परिपक्व समाजीकरण के लिए K प्रसन्नचित आकस्मिकता के लिए P सामूहिक समर्पक के लिए Q_5, सामाजिक कलगी के लिए Q_6 तथा स्पष्ट आत्म अभिव्यक्ति के लिए Q_7 का उपयोग किया गया। मैलिक 16 कारकों के आधार पर कैटेल द्वितीय क्रम के कारक तथा 23 शीलगुणों के विस्तरित सेट से 12 द्वितीय के क्रम के कारकों की पहचान किया है। ड्रेगर (1977) के अनुसार 16 PF के कुछ ऐसे प्रारूप भी तैयार किये गये है जिसके द्वारा प्राक स्कुली बच्चों से लेकर किशोरों तक के व्यक्तित्व संरचनाओं का भी मापन सम्भव है।

11.4.1.3. कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण (Callifornia Psychological Inventory, CPI) - इस परीक्षण का निर्माण और मानकीकरण गफ (Gough 1957 and 1987) द्वारा किया गया। इस परीक्षण के निर्माण कर्त्ता चूँकि कैलीफोर्निया विश्वविद्य्नालय से सम्बद्ध थे अतः यह कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण के नाम से जाना जाता है। यह परीक्षण 5 प्रकार के लोगों के लिए है- प्राइमरी के बच्चों के लिए, एलीमेन्ट्री के बच्चों के लिए, सैकेण्ड्री के बालकों के लिए, इण्टरमीडिट के किशोरों के लिए एवं व्यस्को के लिए प्रत्येक पॉचों स्तरों के लिए अलग-अलग प्रारूप है। कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण की सहायता से व्यक्तित्व और सामाजिक समायोजन से सम्बन्धि शीलगुणों का मापन किया जाता है।

इस परीक्षण की सहायता से आत्म समायोजन से सम्बन्धित (1) आत्म निर्भरता (2) व्यक्तिगत कार्य (3) व्यक्तित्व स्वतंत्र ता (4) सम्बन्ध रखने की भावना (5) हटने की प्रवृत्ति की स्वतंत्र ता (6) नर्वसनेस से स्वतंत्र ता एवं सामाजिक समायोजन से सम्बन्धित (1) सामाजिक मानक (2) समाजिक कौशल (3) समाज विरोधी प्रवृत्तियों से स्वतंत्र ता (4) पारिवारिक (5) विद्य्नालय सम्बन्धी एवं (6) सम्प्रदायिक सम्बन्ध से सम्बन्धित प्रश्न है।

इस व्यक्तित्व परीक्षण के पदों का उत्तर देने के लिए ' हॉ ' और ' नहीं ' दो विकल्प है। इस परीक्षण की विश्वसनीयता और वैधता उच्च है और इसके मानक भी उपलब्ध है। इस परीक्षण से व्यक्तित्व मापन के बाद प्राप्त प्राप्तांक से यक्तित्व आंकलन की सरलता के लिए पार्श्वचित्र बनाया जाता है। जिससे आसानी से यह मालूम हो जाता है कि किस क्षेत्र में व्यक्ति मानकों से विचलित है अर्थात असमायोजित है ताकि उसके उपचार की व्यवस्था की जा सकें।

11.4.1.4. माडसेल व्यक्तित्व अनुसूची. (**Maudsley Personality Inventory- MPI**) - इस अनुसूची की रचना आइजेन्क (H. J. Eysenk 1940) ने की है। इस मापनी में मनोस्नायु दौर्बल्य स्थिरता एवं अर्न्तमुखता बहिर्मुखता एवं अर्न्तमुखता बहिर्मुखता दो मापनियाँ है। प्रत्येक मापनी में 24 पद है अर्थात पूरी मापनी में 48 पद है। इस मापनी के मनोस्नायु दौर्बस्य स्थिरता विमा के मापन से यह ज्ञात होता है कि एक व्यक्ति में मनोस्नायु दुर्बलता है या स्थिरता है। सभी प्रकार से दूसरी विमा अन्तर्मुखता बहिर्मुखता के मापन से यह ज्ञात होता है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व में अन्तर्मुखता का गुण है या बहिर्मुखता का गुण है।

इस मापनी का एक छोटा प्रारुप भी है जिसमें प्रत्येक विमा में 12-12 पद है अर्थात कुल 24 पद है। छोटी मापनी से व्यक्तित्व का मापन शीघ्र हो जाता है किन्तु गहन मापन के लिए 48 प्रश्नों वाली मापनी ही अधिक उपयुक्त है। इस पूरी मापनी को भरने में लगभग 20 मिनट का समय लगता है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देने के लिए तीन विकल्प 'हा', '?' (ज्ञात नहीं) तथा 'नहीं' है।

इस मापनी की अर्द्ध-विच्छेद विधि से प्राप्त विश्वसनीयता उच्च है एवं परीक्षण निर्मित वैधता भी उच्च है। इस सूची का उपयोग 15 वर्ष से अधिक आयु वाले लोगों पर किया जाता है। इस सूची का उपयोग निर्देशन और नैदानिक क्षेत्र के साथ-साथ शिक्षा व उद्योग के क्षेत्र में भी किया जाता है। जैनसन (1965) ने इस मापनी की उपयोगिता को बताते हुए कहा है कि "परीक्षण विकास में सभी उत्कृष्ट कसौटियों पर माडसले व्यक्तित्व सूची एक प्रभावशाली उपलब्धि है।" भारत में जलोटा और कपूर ने इस सूची हिन्दी और पंजाबी भाषा में अनुकूलन किया है।

11.4.1.5. बेल समायोजन अविष्कारिका (**Bell Adjustment Inventory**) - इस आविष्कारिका का निर्माण बेल (Bell) ने 1934 में किया इस आविष्कारिका का उद्देश्य व्यक्ति में समायोजन सम्बन्धी कठिनाइयों का पता लगाना होता है। इस आविष्कारिका के दो फार्म है- विद्य्नार्थी फार्म तथा व्यवसायिक फार्म विद्य्नार्थी फार्म में कुल 140 एकांश है जो चार भिन्न-भिन्न क्षेत्र जैसे - गृह, स्वास्थ , सामाजिक तथा सांवेगिक अवस्था से सम्बन्धित समायोजन समस्याओं का पता लगाता है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 'हा', 'नहीं' एवं '?' में से किसी एक चिन्ह खीचकर दिया जाता है। व्यवसायिक फार्म में इन 140 एकांशों में 20 एकांश और जोड़ दिया गया है कि इस फार्म के कुल पॉच क्षेत्र हो जाते है जो व्यस्कों के समायोजन की ओर इंगित करते है। इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 0.75 से 0.89 तक है, वैधता गुणांक .58 से .89 तक पाया गया। इस आविश्कारिका का अनुकूलन भारतीय भाषाओं में जैसे हिन्दी तथा मलयालम में भी किया गया है।

इसके अलावा भी बहुत से व्यक्तित्व आविष्कारिका जैसे - आइजेन्क व्यक्तित्व प्रश्नावली (आइजेनक एवं आइजेन्क, 1975), एडवार्डस परसनल प्रेफरेन्स (एडवार्डस, 1959), परसनालिटी रिसर्च फार्म (जैक्सन, 1984) आदि है, जिनका प्रयोग व्यक्तित्व मापन में काफी किया गया है। भारत में भी बहुत सारे व्यक्तित्व आविष्कारिका भेददर्शी व्यक्तित्व मापनी (एल. एन. के सिन्हा एवं ए. के. सिंह), समायोजन सूचि कुन्दु और टी के सेन, 1959) भी है।

आत्म रिर्पोट अविष्कारिका के लाभ - आत्म रिपोर्ट आविष्कारिका में प्रमुख लाभ निम्न प्रकार से है-

1. व्यक्तित्व सूचियों की सहायता से व्यक्तित्व शीलगुणों का मापन बहुत सरलता से किया जा सकता है।
2. व्यक्तित्व सूचियों की सहायता से व्यक्तित्व शीलगुणों का मापन एक ही समय में अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन भी सम्भव है।
3. व्यक्तित्व आविष्कारिका का प्रयोग नैदानिक परिस्थिति तथा सामान्य परिस्थिति दोनों में ही होता है।
4. व्यक्तित्व मापन की सहायता से व्यक्ति के व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन सरलता से किया जा सकता है।

आत्म रिर्पोट अविष्कारिका के दोष - आत्मरिर्पोट आविष्कारिका के कुछ प्रमुख दोष निम्न प्रकार से है-

1. फ्रीमैन (1962) का विचार है कि व्यक्तित्व सूचियों द्वारा व्यक्तित्व की अलग-अलग विशेषताओं का मापन होता है। अतः व्यक्तित्व का मापन सम्पूर्ण ६प में नहीं होता है। अतः व्यक्तित्व मापन का यह तरीका बहुत वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता है।
2. व्यक्तित्व सूचियों विश्वसनीय तो होती है लकिन इनकी वैधता ज्ञात करने के लिये कोई मान्य कसौटी साधारण तथा उपलब्ध नहीं होती है।
3. व्यक्तित्व सूचियों में व्यक्तित्व का मापन एकांशों या पदो या प्रश्नों की सहायता से किया जाता है। इन प्रश्नों का उत्तर देते समय यह देखा गया है कि प्रयोज्य प्रश्नों का उत्तर कई बार सही न देकर बनावटी या नकली उत्तर देते है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी व्यक्तित्व आविष्कारिका का प्रयोग व्यक्तित्व के मापन तथा उससे सम्बन्धित शोधो में काफी किया जा रहा है।

11.5. प्रक्षेपीय विधियॉं (Projective Method)- प्रक्षेपीय विधि द्वारा व्यक्ति के माप परोक्ष रूप से होती है। इस परीक्षण में व्यक्ति के कुछ अस्पष्ट असंगठित उद्दीपक या परिस्थिति दिया जाता है। ऐसे उद्दीपकों एवं परिस्थितियों के प्रति कुछ अनुक्रिया करता है। इन अनुक्रियाओं के सहारे व्यक्ति अचेतन रूप् से अपनी इच्छाओं, त्रुटियों एवं मानसिक संघर्षो को प्रक्षेपित करता है। इस तरह से प्रक्षेपीय परीक्षण वैसे परीक्षण को कहा जाता है जिसके एकांश स्पष्ट एवं असंगठित होते है और जिसके प्रति अनुक्रिया करके व्यक्ति अपने भिन्न भिन्न प्रकार के शीलगुणों की अभिव्यक्ति परोक्ष रूप से करता है।

यदि हम ध्यानपूर्वक देखे तो यह स्पष्ट होगा कि प्रक्षेपीय विधि का अपना एक संक्षिप्त इतिहास है। 1400 ।क्‍ में लियोनार्डो डा विनसी (**Leonardo da Vinci**) ने उन बच्चों का चयन किया जिन्होंने कुछ अस्पष्ट प्रारूप (**ambiguous forms**) में विशेष आकार तथा पैटर्न को खोजकर अपने व्यक्तित्व में सर्जनात्मकता को दिखलाया था। फिर 1800 के उत्तरार्द्ध में जब बिने ने ब्लोटो (**Blotto**) जो एक तरह का खेल है, के माध्यम से बच्चों के निष्क्रिय कल्पना (**Passive Imagination**) के मापने की कोशिश किया। इस खेल में बच्चों को कुछ स्याही के

धब्बे दिए जाते थे जिसे देखकर उन्हें बताना होता था कि उसमें वे क्या देखते है। 1879 में फिर गाल्टन ने शब्द साहचर्य परीक्षण का निर्माण किया। 1910 में युंग ने इसी तरह के परीक्षण का उपयोग नैदानिक मूल्यांकन के लिए किया। ये सभी अनौपचारिक प्रक्षेपीय प्रविधियों ने अन्ततोगत्वा औपचारिक प्रक्षेपीय परीक्षण का जन्म दिया जिसके एकांश अधिक माननीकृत हुए तथा जिनका क्रियान्वयन प्रत्येक व्यक्ति पर समान ढंग से किया जाना संभव हो सका।

इन प्रक्षेपण विधियों के सम्बन्ध के सम्बन्ध में मरे (**Murray, H. A.** 1951) का विचार है कि प्रक्षेपण प्रविधियों द्वारा प्रयोज्य जो भी प्रक्षेपण करता है। वह दमित नहीं होता है, वह सामग्री चेतन स्वीकार करने योग्य होती है। वह सामग्री कभी-कभी प्रशंसनीय होती है। आवश्यक नहीं है कि प्रयोज्य द्वारा प्रक्षेपण सामग्री चिन्ता परिहार या फ्रीमैन (**F. S. Freeman** 1972) के अनुसार प्रक्षेपी प्रविधि में सामान्य रूप से व्यक्ति के सामने जो उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है इस तरह उसे ऐसा अवसर दिया जाता है कि वह अपने व्यक्तिगत जीवन के छुपे हुए तथ्यों को इन उद्दीपक स्थितियों को माध्यम से अभिव्यक्त करे।

प्रक्षेपण प्रविधियों में सामग्री असंरचित (**Unstructured**)या अर्द्धसंरचित (**Semi-Structured**) होती है। इस प्रकार की परीक्षण सामग्री कुछ चित्र, स्याही धब्बे, अधूरे वाक्य आदि के प्रति प्रयोज्य को अपना प्रत्युत्तर देना होता है। प्रत्युत्तर स्वरूप् प्रयोज्य अपनी इच्छाएँ , भवनाएँ , संवेग, आवश्यकताएँ आदि को प्रक्षेपित करता है।

प्रक्षेपण प्रविधियों की विशेषताएँ-

प्रक्षेपण प्रविधियों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्न प्रकार से है-

1. इन विधियों में प्रयुक्त परीक्षण सामग्री पूर्णतः असंरचित या अर्द्धसंरचित होती है। यह सामग्री व्यक्ति की चेतन और अचेतन इच्छाओं को अभिव्यक्त कराने में पूर्ण रूप से सक्षम होती है।
2. प्रक्षेपण प्रविधियों की सामग्री अनेक अर्थ वाली होती है, इसलिए प्रयोज्य यह समझ नहीं पाता है कि उसका कौन-सा प्रत्युत्तर सही है और कौन-सा प्रत्युत्तर गलत है।
3. इन प्रविधियों का प्रशासन प्रयोज्य पर व्यक्तिगत रूप से होता है फिर भी परीक्षणकर्त्ता का प्रभाव प्रयोज्य पर नहीं के बराबर पड़ता है।
4. इन प्रविधियों द्वारा सामान्य और असामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।
5. प्रक्षेपी प्रविधियों की सहायता से व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चित्र स्पष्ट होता है।
6. इन विधियों के द्वारा चेतन तथा अचेतन स्तर की अभिप्रेरणाओं तथा व्यक्तित्व संरचना का अध्ययन किया जा सकता है।

7. इन अध्ययन विधियों के द्वारा व्यक्ति के संवेगों, अभिप्ररणाओं, अनुभवों, विचारों और अभिवृत्तियों का अध्ययन विश्वसनीय ढंग से किया जा सकता है।
8. इन विधियों की सहायता से चेतन और अचेतन स्तर तथा आन्तरिक विचारों, भावनाओं और ग्रन्थियों का अध्ययन किया जा सकता है।
9. इन विधियों द्वारा प्राप्त परिणाम और निष्कर्ष विश्वसनीय और वैध होते है।
10. इन विधियों की सहायता से व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को सामान्य विश्वसनीयता के साथ समझा जा सकता है।

प्रक्षेपण विधि की उपयुस्त विशेषताओं और उपयोगिताओं के अतिरिक्त इन विधियों के कुछ दोष भी है।

प्रक्षेपण प्रविधियों की सीमाएँ और दोष -

1. इन विधियों की रचना तथा मानकीकरण एक कठिन कार्य है।
2. इन विधियों के प्रशासन, गणना तथा विवेचना के लिए परीक्षणकर्ता का प्रशिक्षित होना आवश्यक है।
3. परीक्षार्थी और प्रशिक्षणकर्ता में जब तक रेपापोर्ट फॉरमेशन (**Rapport formation**) ठीक प्रकार से स्थापित नहीं होता है तब तक विश्वसनीय ऑकड़ों के प्राप्त होने की सम्भावना कम रहती है।
4. इन विधियों द्वारा ऑकड़ों के संकलन में समय अधिक लगने से थकान तथा अरोचकता जैसे कारक ऑकड़ों को प्रभावित करते है।
5. इन विधियों द्वारा प्राप्त ऑकड़ों की विश्वसनीयता एवं वैधता बहुत अधिक नहीं होती है।
6. इन विधियों का उपयोग अन्य अनुसंधानों की अपेक्षा चिकित्सा के क्षेत्र में अधिक होता है।
7. प्रक्षेपण विधियों के प्रशासन, मूल्यांकन एवं गणना के लिए अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है।
8. इन प्रविधियों से व्यक्तित्व मापन में समय व्यय होता है।
9. प्रक्षेपण परीक्षणों की रचना और मानकीकरण करना एक कठिन कार्य है।
10. इनकी विश्वसनीयता एवं वैधता की गणना करना कठिन है।
11. मनोविज्ञान की अन्य शाखाओं की अपेक्षा नैदानिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनुसन्धान कार्यों में इनका उपयोग अधिक किया जाता है।
12. बहुधा इनका उपयोग सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा असामान्य और असमायोजित व्यक्तियों पर किया जाता है।

प्रक्षेपीय परीक्षण प्रकार - व्यक्तित्व मापन के लिए मनोविज्ञानिकों ने कई तरह के प्रक्षेपीय परीक्षण का वर्णन किया है। इसमें लिण्डजे (Lindzey 1961) ने जो वर्गीकरण अनुक्रिया की कसौटी के आधार पर किया है, वह आज भी बहुत लोकप्रिय है। इनके अनुसार प्रक्षेपीय परीक्षण को निम्नाकिंत पॉच भाग में बॉटा गया है-

11.5.1. साहचर्य परीक्षण (Association Test)

11.5.2. संरचना परीक्षण (Constrution Test)

11.5.3. पूत्ति परीक्षण (Complition Test)

11.5.4. चयन या क्रम परीक्षण (Choice or Orderning Test)

11.5.5. अभिव्यंजक परीक्षण (Experssive Test)

11.5.1. साहचर्य परीक्षण -ऐसे परीक्षण में व्यक्ति अस्पष्ट उद्दीपकों को देखता है और यह बतलाता है कि उसमें वह क्या देख रहा है या फिर उससे वह किस चीज को साहचर्यित कर रहा है। रोर्शाक परीक्षण (Rorschach Test)तथा शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association Test)श्रेणी के दो प्रमुख प्रकार है जिनका वर्णन निम्नांकित है-

11.5.1.1. शब्द साहचर्य परीक्षण -इस परीक्षण में कुछ पूर्व निश्चित उद्दीपक शब्दों को एक-एक करके व्यक्ति के सामने उपस्थित किया जाता है। और व्यक्ति को शब्द सुनने के बाद उसके मन में जो सबसे पहला शब्द आता है, उसे बतलाना होता है। सबसे पुरानी प्रक्षेपण प्रविधि शब्द साहचर्य विधि है। सर्वप्रथम गाल्टन 1879 ने शब्द साहचर्य सूची का उपयोग किया, उसने 75 शब्दों की एक सूची का निर्माण एवं प्रकाशन करवाया। विलियम वुण्ट

(Wilhelm Wundt 1879) ने भी शब्द साहचर्य विधि का उपयोग किया, वुण्ट ने गाल्टन की शब्द साहचर्य सूची के असम्बद्ध शब्दों को क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया गया। इस सूची के उद्दीपक शब्दों को प्रयोज्य के सामने एक-एक करके प्रस्तत किया गया। प्रयोज्य किसी भी उद्दीपकशब्द को सूनते ही अपना प्रति उत्तर देता था। फ्रायड ने स्वप्नों की व्याख्या के लिए और मनोविश्लेषण के लिए शब्द साहचर्य विधि का उपयोग किया।

व्यक्ति मापन के रूप में इस परीक्षण का उपयोग फ्रायड तथा शिष्य विशेषकर युंग द्वारा प्रारंभ किया गया। युंग ने 1904 में 100 शब्दों की एक मानक सूची तैयार की और उपयुक्त विधि द्वारा व्यक्ति की अनुक्रियाओं को प्राप्त किया। उसके बाद उसका विश्लेषण करके विशेषकर प्रत्येक अनुक्रिया शब्द का सांकेतिक अर्थ (Symbolic Meaning) ज्ञात करके तथा प्रतिक्रिया समय (Reaction Time) के आधार पर व्यक्ति के सांवेगिक संघर्षों का पता युंग ने सफलतापूर्वक लगाया। इसकी सफलता देखकर अमेरिका में केन्ट तथा रोजेन्फ ने 1910 में तथा रैपापोर्ट ने 1946 में अन्य शब्द साहचर्य परीक्षण का निमार्ण किया जिसका प्रयोग व्यक्तित्व मापन में विशेषकर साधारण मानसिक रोग(mild mental deases)से ग्रसित व्यक्तियों के व्यक्तित्व के मापन में सुचारु रूप से किया गया।

मरे एवं मार्गन (Murray , Morgan 1935) ने शब्द साहचर्य परीक्षण का उपयोग व्यक्तित्व अध्ययनों में किया है। इसी प्रकार से रसेल जेनकिन्स (Rusel and Jenakins 1954) ने निदान के क्षेत्र में शब्द साहचर्य परीक्षणों का सफल उपयोग किया है। रेपापोर्ट (Rappaport 1968) ने शब्द साहचर्य परीक्षण की उपयोगिता का वर्णन करते हुए कहा है कि, इस परीक्षण के द्वारा व्यक्ति के साहचर्यत्मक विचारों का सफलतापर्वक अध्ययन किया जा सकता है। इसके साथ-साथ व्यक्ति के मनोभावों और अन्तर्द्वन्द्वों आदि का अध्ययन इस परीक्षण के द्वारा सफलतापूर्वक किया जाता है।

आज उपचार तथा निदान के क्षेत्र में उस विधि का उपयेग अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। अनेक अध्ययनों (Conklin1927, Wells1927)के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया हैं कि भावना ग्रन्थियों को उद्दीप्त करने वाले शब्द प्रत्येक व्यक्तित्व अध्ययन में सम्बन्धित भिन्न-भिन्न होते है फिर भी यह उद्दीपक शब्द जीवन के कुछ विशेष पहलुओं से सम्बन्धित होते है जैसे प्रेम, विवाह, मित्रता, लड़ाई, क्रोध, अन्याय मृत्यु आदि। जब भी किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व या भावना ग्रन्थियों का अध्ययन करना होता है तब विभिन्न पहलूओं से सम्बन्धित कुछ उद्दीपक शब्दों को चुना जाता है फिर इन उद्दीपक शब्दों को सामान्य उद्दीपक शब्दों में मिलाकर प्रयोज्य के सामने एक-एक करके प्रस्तुत किया जाता है। प्रयोज्य को किसी भी उद्दीपक शब्द को सुनकर जो भी मानस-पटल पर आये उसकों प्रतिउत्तर के रूप् में तुरन्त बोलना पड़ता है। इस तरह से प्राप्त प्रयोज्य के प्रतिउत्तरों का विश्लेषण करके व्यक्ति की भावना ग्रन्थियों का पता लगाया जाता है।

रोर्शा और टी. ए. टी. परीक्षणों की तुलना में शब्द साहचर्य परीक्षण विधि अपेक्षाकृत अधिक वस्तुनिष्ठ विधि है फिर भी यह इन परीक्षणों की तुलना में अधिक प्रचलित नहीं है। इसके प्रचलित न होने का मुख्य कारण यह है कि परीक्षणकर्त्ता को व्यक्तित्व अध्ययन में शब्द साहयर्च परीक्षण सूची स्वयं तैयार करनी होती है। यह तैयार की गई सूची की प्रामाणिकता कभी-कभी सन्देहपूर्ण होती है।

11.5.1.2. रोशार्क परीक्षण (Rorchach Test)- प्रक्षेपण परीक्षण में सबसे प्रचलित एवं प्रमुख परीक्षण रोशोर्क परीक्षण है जिसका प्रतिपादन स्विटजरलैंड के मनोरोगविज्ञानी हरमान रोशार्क (Herman Rorschach) ने 1921 में किया। इस परीक्षण में 10 कार्ड होते है जिसपर स्याही के धब्बे के समान चित्र बने होते ;चित्र-1द्ध है। इसमें 5

कार्ड पर स्याही के धब्बे जैसी आकृति पूर्णतः काला-उजला (black and white)में छपे होते है और 5 कार्ड पर स्याही के धब्बे जैसी आकृति रंगों में होती है। प्रत्येक कार्ड एक-एक करके उस व्यक्ति का दे दिया जाता है जिसका व्यक्तित्व मापना होता है। कार्ड को वह जैसे चाहे घुमा फिरा सकता है और ऐसा करके उसे बताना होता है कि उसे उस कार्ड में क्या दिखलाई दे रहा है या धब्बे का कोई अंश या पूरा भाग उसे किसी चीज के समान दिखलाई पड़ रहा है। व्यक्ति द्वारा दी गयी अनुक्रियाओं को लिख लिया जाता है और बाद में उसका विश्लेषण कुछ खास-खास अक्षर संकेतों (letter symbol)के सहारे निन्नांकित चार भागों में बॉट कर किया जाता है-

चित्र-1

(a) **स्थल-निरूपण (Location**)- इन श्रेणी में इस बात का निर्णय किया जाता है कि व्यक्ति की अनुक्रिया का संबंध स्याही के पूरे धब्बे से है या उसके कुछ अंश से। अगर अनुक्रिया का आधार पूरा धब्बा होता है, तो उसे एक खास अक्षर संकेत, यानी W से अंकित करते है। यदि अनुक्रिया का आधार धब्बे का बड़ा एवं सामान्य अंश (common detail) होता है तो उसके लिये D तथा असामान्य एंव छोटे अंश के आधार पर अनुक्रिया होने से उसके लिए Dd का प्रयोग किया जाता है। सिर्फ उजले स्थानों या जगहों के आधार पर अनुक्रिया देने से उसके लिए S का प्रयोग किया जाता है।

(b) **निर्धारक (Determinants)**-. इस श्रेणी में इस बात का निर्णय किया जाता है कि धब्बे के किस गुण ;मिंजनतमद्ध के कारण व्यक्ति ने अमुक अनुक्रिया की है। इस अनुक्रिया के निर्धारण श्रेणी में इस बात का निर्णय किया जायेगा कि व्यक्ति ने धब्बे के किस गुण अर्थात आकार, रंग, गति आदि में से किसके आधार पर ऐसी अनुक्रिया की है। इस श्रेणी के लिए लगभग 24 अक्षर संकेतों का प्रतिपादन किया गया जिसमें कुछ इस प्रकार है- आकार (form) के लिए f . रंग (colour)के लिए c, मानव गति अनुक्रिया (human movement response) के लिए FM, पशु गति अनुक्रिया (animal movement response)के लिए m आदि।

(c) विषय-वस्तु (Content). इस श्रेणी में यह देखा जाता है कि व्यक्ति द्वारा दी गयी अनुक्रिया की विषय-वस्तु क्या है। विषय-वस्तु मनुष्य होने पर उसके लिए भ् तथा पशु होने पर उसके लिए । के संकेत का प्रयोग किया जाता है। मानव के किसी अंग के विवरण (human detail) होन पर hd तथा पशु के किसी अंग के विवरण (animal detail)के लिए d,आग के लिए Fi तथा घरेलू वस्तुओं के लिए Hh का प्रयोग किया जाता है।

(d) मौलिक अनुक्रिया एवं संगठन (Original response and Organisation). मौलिक अनुक्रिया से तात्पर्य उस अनुक्रिया से होता है जो अनेकों व्यक्तियों द्वारा किसी कार्ड के प्रति अक्सर दिये जाते है। इसलिए इसे लोकप्रिय अनुक्रिया भी कहा जाता है जिसका संकेत च् है। जैसे, प्रथम कार्ड में पूरे धब्बे को चमगादड़ या 'तितली' के रूप में देखना एक लोकप्रिय अनुक्रिया का उदाहरण है। इसी तरह से प्रत्येक कार्ड के लिए कुछ अनुक्रियाओं को लोकप्रिय अनुक्रिया की श्रेणी में रखा गया है। कभी-कभी वह कुछ अनुक्रियाओं को एक साथ संगठित कर लेता है जिसका संकेत Z है।

रोशार्क परीक्षण पर दिये गये अनुक्रियाओं को उपर्युक्त चार भागों में विश्लेषण करने के बाद उसकी व्याख्या की जाती है। उदाहणार्थ, यदि किसी व्यक्ति द्वारा अधिक संख्या में W की अनुक्रिया की गयी है, तो इससे तीव्र बुद्धि तथा अमूर्त चिन्तन (abstract reasoning) की क्षमता का बोध होता है। D अनुक्रियाओं से व्यक्ति में किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से देखने तथा समझने की क्षमता का बोध होता है। Dd अनुक्रिया जो एक सामानय व्यस्क द्धारा दी गयी कुल अनुक्रियाओं का 5: से अधिक नहीं होता है, द्वारा व्यक्ति के चिन्तन में अस्पष्टता को दिखलाता है। परन्तु यदि ऐसी अनुक्रिया 5: से अधिक हो जाती है, तो इससे व्यक्ति में मनोविदालिता (Schizophrenia) जो एक प्रकार का मानसिक रोग है, का संकेत मिलता है। S अनुक्रिया की अधिकता से व्यक्ति में नकारात्मक प्रवृति (negativistic tendency) तथा आत्म-हठधर्मी (self – assertive) होने का संकेत मिलता है। Fअनुक्रिया की अधिकता से चिन्तन करते समय एकाग्रता (concentration) की क्षमता का बोध होता है। रंग-संबंधी अनुक्रिया की अधिकता से व्यक्ति की संवेगशीलता या व्यक्तित्व के भावात्मक शीलगुणों का पता चलता है। रंग-संबंधी अनुक्रिया का बहुत ही कम होना या न होने पर व्यक्ति में मनोविदलता के लक्षण, जैसे- सामान्य वातावरण से अपने आपको अलग करके रखना, भ्रम तथा विभ्रम अिधक होना आदि गुण पाये जाते है। गति अनुक्रियाओं (F, FM, m) की अधिकता से व्यक्ति में काल्पनिक क्रियाओं तथा उसकी कल्पना शक्ति का बोध होता है। A तथा Ad अनुक्रियाओं को मिलाकर A प्रतिशत तथा H और Hd अनुक्रियाओं को मिलाकर H प्रतिशत ज्ञात किया जाता है। । प्रतिशत अधिक होने से बौद्धिक संकीर्णता (Intellectual constriction) तथा सांवेगिक असंतुलन (Emotional disturbance) ज्ञात होता है तथा H प्रतिशत अधिक होने से उपयुक्त संज्ञानात्मक विकास होने का संकेत मिलता है। P अनुक्रिया की अधिकता से रूढ़िगत चिन्तन (conventional thinking) तथा इसकी कमी से व्यक्ति में सामाजिक अनुरूपता (social confermity) के शीलगुण की कमी होने का अंदाज मिलता है। एक्सनर (Exner 1974) के अनुसार P अनुक्रियाओं से व्यक्ति में सर्जानात्मक का भी बोध होता है। अनुक्रियाओं से व्यक्ति में उच्च बुद्धिए सर्जनात्मक तथा निपूणता आदि का बोध होता है।

रोशार्क के समान ही एक स्याही-धब्बा परीक्षण है जिसका प्रतिपादन होल्जमैन (Holtzman)ने 1961 में किया था जिसे होल्जमैन स्याही-धब्बा परीक्षण (Holtzman Ink- blot test) कहा जाता है। इसके दो फार्म है और प्रत्येक फार्म में 45 कार्ड है जिसपर स्याही के धब्बे बने होते है। प्रत्येक कार्ड के प्रति अधिक-से अधिक एक अनुक्रिया व्यक्ति को करनी होती है परन्तु व्यक्तित्व मापन में इसकी लोकप्रियता उतनी नहीं है जितनी की परीक्षण का है।

11.5.2. संरचना परीक्षण (Contruction test)-. इस श्रेणी में वैसे प्रक्षेपीय परीक्षणों को रखा जाता है जिसमें परीक्षण उद्दीपकों के आधार पर व्यक्ति को एक कहानी या अन्य समान चीजों की संरचना करनी होती है।

11.5.2.1. विषय आत्मबोध परीक्षण (**Thematic Appercepcotion Test or TAT**). इस श्रेणी का सबसे प्रमुख परीक्षण विषय आत्मबोध परीक्षण है। इस परीक्षण का निर्माण मरे ; (Murray 1935) ने हारर्वड विश्वविद्यालय में किया। बाद में यानी, 1938 में मार्गन Morgan)के साथ मिलकर इन्होंने इस परीक्षण का संशोधन किया। इस परीक्षण में कुल 31 कार्ड होते है जिसमें से 30 कार्ड पर चित्र बने होते है तथा 1 कार्ड सादा होता है। जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व को मापना होता है, उसके यौन (sex) एवं उम्र के अनुसार इस 31 कार्ड में से 20 कार्ड का चयन कर लिया जाता है। इस 20 कार्ड में 19 कार्ड पर चित्र अंकित होते है और एक कार्ड सादा होता है। किसी एक व्यक्ति पर 20 कार्ड से अधिक नहीं दिया जाता है। प्रत्येक कार्ड के चित्र के आधार पर व्यक्ति जिसका व्यक्तित्व मापन किया जाता है, एक कहानी तैयार करता है जिसमें चित्र से संबंधित घटना के भूत, वर्तमान तथा भविष्य तीनों का वर्णन होता है। इस परीक्षण का क्रियान्वयन दो सत्रों (session)में होता है- पहले सत्र मे 10 कार्ड फिर दूसरे सत्र में अन्तिम 10 कार्ड व्यक्ति को देकर उसके आधार पर कहानी लिखने को कहा जाता है। सबसे अन्त में सादा कार्ड दिया जाता है। जिसपर अपने मन से किसी चित्र को मानकर उसके आधार पर कहानी लिखने के लिए कहा जाता है। मर्रे ने उपर्युक्त दो सत्रों के बीच कम-से- कम 24 घंटों का अन्तर देने की सिफारिश की है। सभी कार्ड के आधार पर कहानी-लेखन का कार्य समाप्त होने पर एक साक्षात्कार किया जाता है जिसका उद्देश्य यह जानना होता है कि कहानी लिखने में व्यक्ति की कल्पना-शक्ति का स्त्रोत मात्र चित्र या चित्र से बाहर की कोई घटना भी रही है। कहानी-लेखन का कार्य समाप्त होने पर उसका विश्लेषण कर व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं (dominant needs) का पता लगाया जाता है मर्रे के अनुसार इस परीक्षण का विश्लेषण निम्नांकित प्रसंगों में किया जाता है।

1. नायक (**Hero**)- प्रत्येक कहानी में नायक या नायिका का पता लगाया जाता है। ऐसा समझा जाता है कि व्यक्ति इस नायक या नायिका के साथ आत्मीकरण (identification) स्थापित कर अपने व्यक्तित्व के शीलगुणों विशेषकर अपनी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताओं को दिखलाता है।

2. आवश्यकता (**Needs**) **-** प्रत्येक कहानी में नायक या नायिका की मुख्य आवश्यकताएँ क्या-क्या है, इसका पता लगाया जाता है। मर्रे के अनुसार TAT द्वारा 28 मानव आवश्यकताओं का मापन होता है। कुछ ऐसी आवश्यकताएँ है- उपलब्धि आवश्यकता (need for achievement), संबंध आवश्यकता (need for affiliation), प्रभुत्व आवश्यता (need for domaince) आदि।

3. प्रेस (**Press**) **-** प्रेस से तात्पर्य कहानी के उस वातावरण संबंधी बलों से होता है जिनसे कहानी के नायक की आवश्यकता या तो पूरी होती है या पूरी होने से वंचित रह जाती है। मर्रे के अनुसार इस तरह के वातावरण संबंधी बल (environment force) 30 से अधिक है। आक्रामकता या आक्रमण तथा शारीरिक खतरा दो महत्वपूर्ण प्रेस है जिनका वर्णन अधिकांश कहानियों में मिलता है।

4. थीमा Thema)-. प्रत्येक कहानी में थीमा का निर्धारण किया जाता है। थीमा से तात्पर्य नायक की आवश्यकता तथा प्रेस अर्थात वातावरण संबंधी बल में हुई अन्तः क्रिया (interaction) से उन्पन्न घटना से होता है। थीमा द्वारा व्यक्तित्व में निरन्तरता (continuity) का ज्ञान होता है।

5. परिणाम (**Outcome**)-. परिणाम से तात्पर्य इस बात से होता है कि कहानी को किस तरह से समाप्त किया गया है। कहानी का निष्कर्ष निश्चित है या अनिश्चित है। निश्चित एवं स्पष्ट निष्कर्ष होने से व्यक्ति में परिपक्ता (maturity), वास्तविकता (reality) का ज्ञान होने का बोध होता है।

TAT का भारतीय अनुकूलन कलकत्ता के प्रो. उमा चौधरी ने किया है जिसका उपयोग भारतीय संदर्भ में अधिक किया जा रहा है।

इस श्रेणी में TAT के समान अन्य कुछ परीक्षणों का भी निर्माण किया गया है जिसका संक्षिप्त वर्णन यहॉ अपेक्षित है जो इस प्रकार है-

11.5.2.2. रोजेनविग तस्वीर-कुंठा अध्ययन (Rosenwig Picture Frustration Study)-. इस परीक्षण का निर्माण रोजनविग (Rosenwig 1949) द्वारा किया गया। इसमें 24 कार्टून होते है जिसमें एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के साथ इस ढ़ग से व्यवहार करते दिखलाया जाता है कि दूसरे व्यक्ति में उसके व्यवहार से निश्चित रूप से कुंठा उत्पन्न हो। यहॉ व्यक्ति को प्रत्येक कार्टून देखकर यह बतलाना होता है कि ऐसी परिस्थिति में कुंठित व्यक्ति की अनुक्रिया क्या होगी।

इस परीक्षण के द्वारा कुण्ठा (frustration)और आक्रामक प्रवृत्तियों का मापन किया जाता है। इस परीक्षण के दो प्रारूप् है- एक प्रारूप 4 वर्ष से लेकर 13 वर्ष तक के बच्चों के लिए है और दूसरा प्रारूप् 14 वर्ष से अधिक आयु के लोगों के लिए है। इस परीक्षण में 24 कार्टून चित्रों में से प्रत्येक चित्र में कम से कम दो कार्टून दो चित्र है। दो चित्रों में से एक चित्र में कुछ कथन है और चित्र में कथन के लिए स्थान रिक्त छोड़ गया है।

रोजेनविग पी. एफ. स्टडी का निमार्ण कुण्ठा या नैराश्य औश्र दबाव के सिद्धान्त के आधार पर किया गया है। कार्टून चित्र के एक चित्र में जो रिक्त स्थान कथनों के लिए छोड़े गए है उनकी पूर्ति प्रयोज्य अपनी भाषा में करता है। यह कार्टून चित्र ऐसे बनाये गए है कि प्रत्येक कार्टून चित्र में कुण्ठा परिस्थिति में दो व्यक्ति दिखाये गए है। इन दो व्यक्तियों में से एक व्यक्ति दूसरे से कुछ कहता है, पहले व्यक्ति द्वारा जो कुछ कहा जाता है प्रयोज्य प्रति उत्तर के रूप् में खाली स्थान को भरता है। इस परीक्षण का प्रशासन व्यक्तिगत स्तर और सामूहिक स्तर पर किया जाता है। जब प्रयोज्य कुण्ठा परिस्थिति के साथ तादात्म्य (identification)स्थापित कर लेता है तब व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया का प्रक्षेपण करता है।

11**.5.2.3. बाल आत्मबोधन परीक्षण (Children's Apperception Test or CAT)-**. इस परीक्षण का विकास बेल्लाक (Bellak 1954) द्वारा किया गया है तथा इसके कार्ड में पशु पात्र है न कि मानव पात्र। TAT के समान ही इसमें बच्चों के व्यक्तित्व की आवश्यकता का मापन प्रत्येक कार्ड के आधार पर लिखी गयी कहानी के माध्यम से होता है।

11.5.2.4. रोवर्टस आत्मबोधन परीक्षण: बच्चों के लिए (**Roberts Apperception Test for children or RATC)-**. इस परीक्षण का निमार्ण मैकअर्थर तथा रोवर्टस (Mcarthur and Roberts 1982) द्वारा किया गया। इसमें 27 कार्ड होते है और प्रत्येक कार्ड में कुछ बच्चों को अन्य बच्चों या कारकों के साथ अन्तः क्रिया करते हुए दिखलाया जाता है। बच्चों को प्रत्येक कार्ड के आधार पर यह बतलाना होता है कि उसमें दिखाए गए पात्र क्या कर रहे है और क्या करेगें।

11.5.3. पूर्त्ति परीक्षण (Completion Test)-. पूर्ति परीक्षणों या वाक्यपूर्ति परीक्षणों की सहायता से भी व्यक्तित्व का अध्ययन किया जाता है। इन वाक्यपूर्ति परीक्षणों में चित्रों और शब्दों के रूप् में उद्दीपक नहीं होते है बल्कि उद्दीपक अपूर्ण वाक्यों के रूप् में होते है। परीक्षण के सभी अपूर्ण वाक्य व्यक्तित्व से सम्बन्धित होते है। प्रयोज्य को इन अपूर्ण वाक्यों को पूरा करना होता है। इस परीक्षण विधि में यह माना जाता है कि जब एक प्रयोज्य अपूर्ण वाक्यों को पूर्ण करता है तो वह इस प्रकार वाक्यों को पूरा करने में अपनी इच्छाओं, भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्वों,

मनोवृत्तियों और ग्रन्थियों आदि का प्रक्षेपण करता है। प्रयोज्य को अपूर्ण वाक्यों को देखकर अथवा सुनकर पूर्ण करना होता है। इन वाक्यपूर्ति परीक्षणों के द्वारा व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वों और साहचर्यत्मक विकारों (associative disorder)का अध्ययन किया जाता है| वाक्यपूर्ति परीक्षण के कुछ नमूने के पद या प्रश्न निम्न प्रकार से है-

1. मेरे पिता ने ....
2. असफलता से मुझे ....
3. पत्नी के साथ मुझे ....
4. सामाजिक कार्यक्रम मुझे ....
5. अच्छी वेशभूषा मुझे ....

वाक्यपूर्ति परीक्षणों में 30 अपूर्ण वाक्यों से लेकर 100 अपूर्ण वाक्यों तक आवश्यकतानुसार कितने भी अपूर्ण वाक्य हो सकते है। रोटर्स वाक्यपूर्ति परीक्षण में 40 अपूर्ण वाक्य थे। एल. एन. दुबे और अर्चना देबे 1987 द्वारा निर्मित वाक्य पूर्ति परीक्षण में 50 अपूर्ण वाक्य है। व्यक्तित्व का मापन करने के लिए परीक्षणकर्त्ता या अनुसन्धानकर्त्ता को आवश्यकतानुसार एक अलग वाक्यपूर्ति परीक्षण का निर्माण और मानवीकरण करना होता है। ऐसा करने से परीक्षणकर्त्ता को व्यक्तित्व मापन के लिए एक विश्वसनीय परीक्षण मिल जाता है और व्यक्तित्व के उन शीलगुणों का मापन हो जाता है जिनका वह मापन करना चाहता है। इन परीक्षण का उपयोग करते समय प्रयोज्य को सोच-विचार का अधिक समय नहीं दिया जाना चाहिए। ऐसा करने से प्रयोज्यों की चेतन भावनाओं के साथ-साथ अचेतन भावनाओं की पूर्ति भी वाक्य पूर्ति में हो जाती है। इस प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग वैयक्तिक व सामूहिक दोनों स्तरों पर किया जाता है।

1940 में राहड़े तथा हाइड्रेथ (Rohde and Hidreth) ने एक ऐसा परीक्षण बनाया जिसका प्रयोग व्यक्तित्व मापन में काफी किया गया है। रौट्टर (Rotter 1950) नें एक व्यक्ति पूर्त्ति परीक्षण विकसित किया जिसमें 40 अधूरे वाक्य होते है और व्यक्ति उन्हें अपने ओर से पूरा करता है। भारत में विश्वनाथ मुखर्जी ने भी इस तरह के परीक्षण का निर्माण किया है।

वाक्यपूर्ति परीक्षण के वाक्य 'मैं', 'मुझे' अथवा 'वह' 'उसे' से प्रारम्भ होते है। इस दिशा में हुए अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि 'मैं', 'मुझे' से प्रारम्भ होने वाले अपूर्ण वाक्य अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त होते है क्योंकि इन अपूर्ण वाक्यों से आन्तरिक भावनाओं की संलग्ता का अधिक करता है। इस प्रकार के वाक्यपूर्ति परीक्षणों की एक मुख्य सीमा यह है कि इनका उपयोग शिक्षित वर्ग तक ही सीमित है। जब व्यक्तित्व के सम्बन्ध में प्राप्त निष्कर्ष सन्देहपूर्ण होते है। इतना होते हुए भी इन परीक्षणों की विश्वसनीयता को राटर और विलरमैन 1947 ने तथा लेजरस और इरिक्सन 1951 ने उच्च बताया है क्योकि व्यक्ति द्वारा दिये गये उत्तरों का विश्लेषण कर शीलगुणों के बारे में अंदाज लगाया जाता है।

11.5.4. चयन या क्रम परीक्षण (Choice and Ordering Test). इस श्रेणी के परीक्षण में व्यक्ति परीक्षण उद्दीपकों को एक विशेष क्रम में सुव्यवस्थित करता है या अपनी पसंद या आकर्षकता या अन्य कोई बिमा के आधार दिए गए परीक्षण उद्दीपकों में से कुछ को चुनना होता है। पूर्वकल्पना यहॉं यह होती है कि व्यक्ति द्वारा चुने गए उद्दीपकों या उनके एक खास व्यवस्थित क्रम से उसके व्यक्तित्व के शीलगुणों का अंदाज होता है। जोन्डी परीक्षण (Szondi Test)जिसका निर्माण जोन्डी (Szondi 1947) द्वारा किया गया था, इस श्रेणी का एक प्रमुख

परीक्षण है। इस परीक्षण में व्यक्ति को कोई फोटोग्राफ के छह समुहों को एक-एक करके दिखलाया जाता है जिसमें से उसे दो ऐसे तस्वीर को चुनना होता है जिसे वह अधिक पंसद करता है तथा दो ऐसे तस्वीर भी चुनना होता है जिसे वह सबसे अधिक नापसंद करता है। ऐसे चयन से व्यक्तित्व के शीलगुणों के बारे में अनुमान लगाया जाता है।

इस श्रेणी का दूसरा महत्वपूर्ण परीक्षण 'काहन टेस्ट ऑफ सिम्बोल ऐरेजमेन्ट (Kahn Test of Symbol Arrangement)है जिसका निर्माण काहन (Kahn 1955) द्वारा किया गया। इसमें व्यक्ति को प्लासटिक के बने 16 विभिन्न आकारी वस्तुओं जैसे, पशु, तारा, क्रास आदि को दिखलाया जाता है। और उन्हें विभिन्न श्रेणियों जैसे 'घृणा', 'प्यार', 'बुरा', 'अच्छा', 'जीवित', 'मृत' आदि छॉटना होता है। इसके बाद व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु को देखकर मन में आए साहचर्यों को बिना हिचक के बताना होता है ताकि उसके सांकेतिक अर्थ को समझा जा सके। इसके बाद छाँटे गए वस्तुओं की व्याख्या प्रत्येक संकेत के अर्थ के संदर्भ में लगाया जाता है और उसके आधार पर व्यक्ति के अचेतन प्रक्रियाओं के बारे में अनुमान लगा पाना संभव हो पाता है।

11.5.5. अभिव्यंजक परीक्षण (Expressive Test)- इस श्रेणी के प्रक्षेपीय परीक्षण में व्यक्ति को अपने आप को अभिव्यक्त करने का मौका दिया जाता है। प्रायः यह अभिव्यक्ति उसे एक तस्वीर का आरेखण (drawing) करके करना होता है। किए गए आरेखण के विश्लेषण के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व के शीलगुणों का अनुमान लगाया जाता है। इस श्रेणी के मुख्य दो परीक्षण है- ड्रा-ए-परसन परीक्षण (Draw- a- Person Test or DAP) तथा घर पेड़ व्यक्ति परीक्षण (House Tree Person Test or H-T-P)। DAP का निर्माण मैकोवर (Machovar 1949)द्वारा किया गया जिसमें व्यक्ति को एक व्यकित के चित्र का आरेखण करना होता है। कभी-कभी इसके बाद उसके विपरित लिंग के व्यक्ति, आत्मन, मॉं, परिवार के चित्र का भी आरेखण करने के लिए कहा जाता है। मैकोवर का मत है कि शरीर के प्रत्येक अंग के आरेखण में दिखाए गए अंतर्वेशन (inclusion), बहिष्करण (exclusion), आकार, संगठन, सममिति (symmentry) आदि से व्यक्ति की आत्म-प्रतिमा (self image) मानसिक संघर्ष, प्रत्यक्षण, चिंतन आदि के बारे में एक स्पष्ट अंदाज लगाना संभव हो पाता है।

घर-पेड़-व्यक्ति परीक्षण(H-T-P Test) का निर्माण बक (Buck 1948) द्वारा किया गया। व्यक्ति को इससे एक पेड़ तथा एक व्यक्ति के चित्र का आरेखण करना होता है और फिर उसकी विवेचना एक साक्षात्कार में करनी होती है। इस विवेचन के आधार पर उस व्यक्ति के व्यक्तित्व के बारे में महत्वपूर्ण सूचनाएँ मिलती है।

इन दो प्रमुख परीक्षणों के अतिरिक्त वेण्डर-गेस्टाल्ट परीक्षण (Bender Gestalt Test) को भी इस श्रेणी का ही एक प्रक्षेपीय विधि कुछ लोगों द्वारा माना गया है। इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति के बौद्धिक ह्रास (Intellectual deterioration) की मात्रा का पता चलता है। इस परीक्षण का निर्माण लिउरेटा वेण्डर (Lauretta Bender) 1938,द्वारा किया गया। इस परीक्षण में 9 अति साधारण चित्र होते है जिसे देखकर पहले व्यक्ति उसका नकल उतारता है, उसके बाद उसके सामने से डिजाइन हटा लिया जाता है और उसे स्मृति से ही उस डिजाइन का आरेखण करना होता है। इस आरेखण में वह कई तरह की त्रुटियॉं करता है जिसमें चित्र घूर्णन (figure rotation), पुनरावृत्ति (repetition) तथा समन्वय में कमी आदि प्रधान है। इन त्रुटियों की गंभीरता एवं वारबंरता के आधार पर व्यक्ति का अंदाज लगाया जाता है।

यद्यपि प्रक्षेपीय परीक्षण व्यक्तित्व को मापने की एक महत्वपूर्ण विधि है, फिर भी मनोवैज्ञानिकों ने इसकी आलोचना की है। आइजेत्क (Eysenck 1959)द्वारा प्रक्षेपण परीक्षण की प्रमुख ओलोचनाएँ इस प्रकार की गयी-

1. प्रक्षेपीय परीक्षण का आधार कोई अर्थपूर्ण तथा परीक्षणीय सिद्धान्त नहीं है। फलतः इसके द्वारा किये गये व्यक्तित्व मापन से कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकालता है।

2. प्रक्षेपीय परीक्षण का प्राप्तांक - लेखन (scoring) तथा व्याख्या (interpretation) काफी आत्मनिष्ठ (subjective) है। यह अलोचना विशेषकर RT यानी रोशार्क परीक्षण तथा TAT के लिए और भी ज्यादा सही है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ही व्यक्तित्व का मापन करके भिन्न-भिन्न लोग भिन्न-भिन्न तरह के निष्कर्ष पर पहुंचते है जो सर्वथा अर्थहीन ही होता है।

3. प्रक्षेपीय परीक्षण की वैधता अधिक नहीं होती है। प्रायः इस परीक्षण की वैधता के आधार पर व्यक्ति का केस इतिहास (case history) आदि तैयार किया जाता है जिसे मनोवैज्ञानिकों ने एक वैज्ञानिक कसौटी (Scientific criteria) नहीं माना है। फलतः इन परीक्षणों की वैधता पर अधिक विश्वास नहीं किया जाता है।

अधिकतर मनोरोगविज्ञानियों (Psychiatrists) का ऐसा विश्वास है कि प्रक्षेपीय परीक्षण के सूचकों (indicators) तथा शीलगुणों के बीच प्रत्याशित संबंध (expexted relationship) होने का कोई वैज्ञानिक सबूत नहीं है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी प्रक्षेपीय परीक्षण का प्रयोग व्यक्तित्व मापन में काफी होता है और मनोचिकित्सा में तो इस परीक्षण को एक अभिन्न अंग माना गया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. रोशार्क परीक्षण की .... अनुक्रिया वर्ग से बुद्धि परावर्तित होती है।
2. एम.एम.पी.आई. का निर्माण ...... द्वारा किया गया था।
3. शब्द साहचर्य परीक्षण एक तरह का .... है।
4. 16 पीएफ व्यक्तित्व प्रश्नावली में Bold-Shy का .... संकेत है।
5. टीएटी का किसी भी एक व्यक्ति पर उसके उम्र तथा यौन के आधार पर अधिक .... कार्ड का क्रियान्वयन किया जा सकता है।
6. बेल समायोजन आविष्कारिका में दो फार्म .... तथा .... है।

11.6. सारांश

1. व्यक्ति मापन के लिए तीन तरह की प्रविधियों व्यक्तित्व आविष्कारिका, प्रक्षेपी विधि तथा व्यवहारिक विधिवर्णन किया गया है।

2. व्यक्तित्व आविष्कारिका में व्यक्ति के खास-खास शीलगुणों को मापन के लिए शाब्दिक एकांश होते है जिन्हें व्यक्ति स्वयं पढ़ते है तथा उसका उत्तर दिए उत्तरों के सेट में से चुनकर करता है। एक ऐसा महत्वपूर्ण परीक्षण है। इसके अलावा भी कई व्यक्तित्व आविष्कारिकाओं का वर्णन किया गया है।

3. सबसे महत्वपूर्ण व्यक्तित्व अविष्कारिका का निर्माण 1943 में एस.आर. हाथवे जो मनोवैज्ञानिक थे तथा जे.सी. मैककिनली जो एक मेडिकल डॉक्टर थे द्वारा किया गया।

4. व्यक्तित्व परीक्षण को मापने के लिये दूसरा महत्वपूर्ण परीक्षण प्रक्षेपीय परीक्षण है जो प्रक्षेपण प्राक्कल्पना पर आधारित है। इसमें व्यक्ति के सामने असंरचित कार्य दिया जाता है जिसे देख कर व्यक्ति असीमित प्रकार की अनुक्रियाएँ कर सकता है अर्थात कुछ अस्पष्ट उद्दीपकों के प्रति व्यक्तित्व अपनी अनुक्रिया करके अपने व्यक्तित्व

के गुणों का प्रक्षेपण करता है। प्रक्षेपीय परीक्षण ग्लोबल उपागम पर आधारित है और इसे व्यक्तित्व का छिपा हुआ एवं अचेतन पहलू को मापने के लिये महत्वपूर्ण माना जाता है।

5. प्रक्षेपीय परीक्षण कई प्रकार के हैं जैसे- स्याही धब्बा परीक्षण, चित्रिय परीक्षण, शाब्दिक परीक्षण, क्रियात्मक परीक्षण तथा आत्मचरितात्मक स्मृतियों का परीक्षण जिसमें रोशार्क परीक्षण, विषय-आत्मबोध परीक्षण, झ-ए-पटसन परीक्षण आदि प्रक्षेपीय विधि के प्रमुख उदाहरण है। इसके अतिरिक्त प्रक्षेपीय परीक्षण के कुछ शाब्दिक प्रविधियाँ भी हैं। जिनमें शब्द साहचर्य परीक्षण तथा वाक्यपूर्ति परीक्षण प्रमुख है।

11.7. शब्दावली-

व्यक्तित्व आविष्कारिका- व्यक्तित्व आविष्कारिका में खास-खास शील गुणों से सम्बन्धित कुछ प्रश्न बने होते हैं जिनका उत्तर हॉ-नहीं, सही-गलत आदि में दिया रहता है।

प्रक्षेपीय विधि- इस विधि द्वारा व्यक्तित्व की माप परोक्ष रूप से होती है।

साहचर्य परीक्षण- ऐसे परीक्षण में व्यक्ति अस्पष्ट उद्दीपकों को देखता है और यह बतलाता है कि उसमें वह क्या देख रहा है या फिर उससे वह किस चीज को साहचर्यित कर रहा है।

स्थानीयकरण- इसमें यह तय किया जाता है कि अनुक्रिया वस्तु को कहॉ देखा गया था।

प्रेस- प्रेस से तात्पर्य कहानी के उस वातावरण सम्बन्धित बलों से होता है जिनसे कहानी के नायक की आवश्यकता या तो पूरी होती है या पूरी होने से वंचित रह जाती है।

11.8. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. W 2. हाथवे एवं मैक्कीनले 3. प्रक्षेपीय विधि 4. H 5. 20 6. विद्यार्थी फार्म, व्यावसायिक फार्म।

11.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल - बनारसी दास
2. व्यक्तित्व मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह - मोतीलाल बनारसी दास
3. प्रतियोगिता मनोविज्ञान - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल बनारसी दास
4. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान - सीताराम जायसवाल - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. व्यक्तित्व मनोविज्ञान - मधु अस्थाना एवं किरण बाला वर्मा - मोतीलाल बनारसी दास
6. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान - डी.एन. श्रीवास्तव - विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2
7. मनोविज्ञान के संप्रदाय एंव इतिहास - अरूण कुमार सिंह - मोतीलाल - बनारसी दास

11.10. निबन्धात्मक प्रश्न-

1. व्यक्तित्व मापन में व्यवहत प्रमुख आविष्कारिकाओं का वर्णन करते हुए उसके गुण एवं दोषों पर प्रकाश डालें।
2. प्रक्षेपी तकनीकों के गुण-दोष का वर्णन कीजिए।
3. व्यक्तित्व मापन की तकनीक के रूप में टी0 ए0 टी0 का वर्णन कीजिए।
4. रोशार्क ब्लाट टेस्ट द्वारा व्यक्तित्व मापन किस प्रकार किया जाता है?
5. व्यक्तित्व मापने में एम.एम.पी.आई. के उपयोग का वर्णन करें तथा उसके लाभ एवं दोषों पर प्रकाश डालें।

इकाई 12. व्यवहार मूल्यांकन और व्यक्तित्व के अन्य माप (क्यु -सार्ट प्रविधि) (Behavioral Assessment and Other Measures of Personality (Q-Sort Techniques)

इकाई संरचना

12.1. प्रस्तावना

12.2. उद्देश्य

12.3. व्यक्तित्व मापन की व्यावहारिक

12.3.1. साक्षात्कार विधि

12.3.1.1. साक्षात्कार प्रक्रिया के पद

12.3.1.2. साक्षात्कार के प्रकार

12.3.2. अर्थ विभेदक प्रविधि

12.3.3. क्यू-शार्ट प्रविधि

12.3.3.1. क्यू शार्ट प्रविधि के प्रकार

12.3.4. निरीक्षण विधि

12.3.5. श्रेणी मूल्यांकन मापनियाँ

12.3.5.1 श्रेणी मूल्यांकन मापनी की विशेषताएं

12.3.5.2 श्रेणी मूल्यांकन मापनी के प्रकार

12.3.6 वैयक्तित्व विषय अध्ययन विधि

12.4. सारांश

12.5. शब्दावली

12.6. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.7 संदर्भ ग्रंथ

12.8. निबन्धात्मक प्रश्न

12.1. प्रस्तावना

व्यक्तित्व मापन (Personality measurement) के सिद्धान्तिक (theoretical) तथा व्यावहारिक (practical) उद्देश्य है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्तित्व-मापन से व्यक्तित्व के विकास तथा उसके स्वरूप (nature) से संबंधित बहुत से ज्ञान प्राप्त होते है जिससे इस क्षेत्र में शोध करने तथा नये-नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने में मदद मिलती है। इस सैद्धान्तिक उद्देश्य के अलावा व्यक्तित्व मापन के कुछ व्यावहारिक उद्देश्य भी हैं। जैसे- व्यक्ति मापन से यह पता चलता है कि व्यक्तित्व के किस-किस शीलगुण की शक्ति (strength)कितनी है और किस शीलगुण की कमी से व्यक्ति को समायोजन (adjustment) करने में दिक्कत होती है। अतः व्यक्तित्व मापन करके वैसे व्यक्तियों जिन्हें समायोजन में व्यक्तिगत कठिनाई होती है, की कठिनाईयों को दूर करने में मदद की जाती है। व्यक्तित्व मापन का दूसरा प्रमुख अनुप्रयोग नेता का चयन तथा उत्तरदायी (responsible) पदों के लिए सही व्यक्तियों का चयन करने में है।

12.2. उद्देश्य (Aim)-

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें की आय-

1. व्यक्तित्व मापन के व्यवहारिक विधियों को समझ सकें।
2. व्यवहारिक विधियों के महत्व को समझ समझ सकें।
3. व्यवहारिक मापन के कमियों को समझ सकें।
4. व्यवहारिक मापन के प्रयोग के कारणों को समझ सकें।

12.3. व्यक्तित्व मापन की व्यावहारिक विधियाँ (Behavioural Method of Personality Measurement)-

व्यक्तित्व मापन की जितनी भी विधियॉ है उनमें से कोई भी विधि न बहुत अधिक उपयुक्त है और न ही एक पूर्ण विधि है। व्यक्तित्व मापन की व्यावहारिक विधियों में से कुछ विधियॉ व्यक्तित्व का मापन प्रत्यक्ष रूप से करती है और कुछ विधियॉ परोक्ष रूप से व्यक्तित्व का मापन करती है। व्यक्तित्व का मापन किसी विधि से अधिक उपयुक्त होगा यह इस बात पर निर्भर करता है कि मापनकर्त्ता व्यक्तित्व की किन विशेषताओं का मापन करना चाहता है अथवा वह व्यक्तित्व के किन शीलगुणों का मापन करना चाहता है। इसी प्रकार से क्या वह सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मापन करना चाहता है। मापनकर्त्ता अपने-अपने व्यक्तित्व मापन के उद्देश्य या उद्देश्यों के अनुसार व्यक्तित्व मापन की, एक समय में एक विधि का या एक से अधिक विधियों का उपयोग करेगा, यह उसके उद्देश्यों पर निर्भर करता है। प्रमुख व्यवहारिक विधियॉ निम्न है-

12.3.1. साक्षात्कार विधि (Interview Method). व्यक्तित्व की परीक्षा हेतु सबसे उपयोगी और महत्वपूर्ण विधि साक्षात्कार है। साक्षात्कार अंग्रजी शब्द Interview दो शब्दों से मिलकर बना है- Inter + View= Interview। अंग्रेजी शब्द प्दजमत का अर्थ है अन्दर और टपमू का अर्थ है देखना अर्थात अन्दर देखना ही साक्षात्कार है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता और उत्तरदाता किसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर आपने-सामने (Face to face) होकर परस्पर वार्तालाप करते है। साक्षात्कार उत्तरदाता से प्राप्त प्रश्नों के उत्तरों, हाव-भाव एवं व्यवहार से उसके व्यक्तित्व का आकलन करता है। साक्षात्कार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा हम व्यक्ति के उन अनुभवों और विचारों आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकते है जिसके सम्बन्ध मे हमको कुछ भी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं पड़ रहा है। साक्षात्कार के महत्व के सम्बन्ध में ऑलपोर्ट (G.W. Allport, 1954) का कहना है कि, ''यदि हम यह जानना चाहते है कि लोग किस प्रकार अनुभव करते है या क्या अनुभव करते है, क्या याद रखते है, उनके संवेग और अभिप्रेरणायें किस प्रकार की है, उनके कार्य करने के कारण क्या है तो हम उनसे पूछ ही क्यों न लें।''

करलिंगर 1986 के अनुसार, ''साक्षात्कार अन्तर-वैयक्तिक भूमिका की एक ऐसी स्थिति है, जिसमें एक व्यक्ति, साक्षात्कारकर्त्ता, एक-दूसरे व्यक्ति, जिसका साक्षात्कार किया जा रहा है या उत्तरदाता से उन प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना चाहता है, जिसकी रचना सम्बन्धित अनुसंधान समस्या के लक्ष्य की पूर्ति के लिए की गई है।

डी. एन. श्रीवास्तव 1990 ने साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''साक्षात्कार वह क्रमबद्ध प्रविधि या विधि है जो अन्तरवैयक्तिक भूमिका की स्थिति से सम्बन्धित है। इसमें साक्षात्कारकर्त्ता और साक्षात्कारदार्त्ता आमने-सामने मौखिक विचारों आदान-प्रदान करते है और साक्षातकारकर्त्ता विचारों के इस आदान-प्रदान में

कल्पनात्मक रूप् से साक्षात्कारकदाता के मन मे प्रवेश करके अपनी अनुसन्धान समस्या के सम्बन्ध में सूचनाएँ प्राप्त करता है।''

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि साक्षात्कार विधि में भेदनशीलता (Probing) की विशेषता पायी जाती है। यह विशेषता उस समय और अधिक उपयोगी हो जाती है जब साक्षात्कारकर्त्ता उत्तरदाता के साथ आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करके उसकी आन्तरिक भावनाओं, इच्छाओं, संवेगों, कुण्ठाओं और अन्तर्द्वन्द्व के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करता है। सही-सही जानकारी एक साक्षात्कारकर्त्ता तभी प्राप्त कर सकता है जब वह उत्तरदाता के साथ अधिक से अधिक आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) के क्षेत्र में साक्षात्कार विधि के द्वारा विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगियों के रोगों का निदान किया जाता है, उनके रोग से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान किया जाता है। दूसरे शब्दों में साक्षात्कार रोगों के कारणों का पता लगाने और उनके उपचार में बहुत उपयोगी विधि है।

आधुनिक व्यक्तित्व मनोविज्ञान में इस विधि का उपयोग ऑकड़ों क संकलन के एक यन्त्र के रूप में किया जाता है। व्यक्तित्व मनोविज्ञान की अनेक समस्याएँ जिनका निरीक्षण सम्भव नहीं है उन समस्याओं में इस विधि का उपयोग किया जाता है। बहुधा इसका प्रयोग किसी अन्य विधि या विधियों के साथ एक सहयोगी विधि के रूप में किया जाता है। इस विधि की सहायता से किसी-किसी समस्या के सम्बन्ध में परिकल्पना तैयार करने और समस्या की विषय-परिधि (frame of reference) को जानने में सहायक है। ऑकड़ों के संकलन में इस विधि की उपयोगिता उस समय और बढ़ जाती है जब उत्तरदाता के उत्तरों की Recording अक्षरशः (Verbatim) होती है। अक्षरशः त्मबवतकपदह के लिए टैप रिकार्डर आदि का उपयोग किया जाता है।

12.3.1.1. साक्षात्कार प्रक्रिया के पद (Steps)-. साक्षात्कार प्रक्रिया के कुछ प्रमुख पद निम्न प्रकार से हैं -

1.**पूर्व प्रतिबन्ध** (**Preperation for** Interview)-. जब भी किसी समस्या के सम्बन्ध में इस विधि द्वारा ऑकड़ों का संकलन करना होता है तो सर्वप्रथम अध्ययनकर्त्ता अध्ययन समस्या का स्पष्ट व निश्चित ज्ञान प्राप्त करता है फिर वह उस सम्पूर्ण जनसंख्या का अध्ययन करता है जिसे ऑकड़ों का संकलन करना कहा जाता है। सम्पूर्ण जनसंख्या से जितनी संख्या का प्रतिदर्श प्रतिचयन के आधार पर चुनता है इसका भी निर्णय अध्ययनकर्त्ता साक्षात्कार प्रारम्भ करने से पहले ही कर लेता है। अध्ययनकर्त्ता साक्षात्कार के समय व स्थान का निश्चय भी साक्षात्कार की तैयारी के अन्तर्गत ही करता है। इस सब बातों का निश्चय कर लेने के बाद वह साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule) की रचना करता है। साक्षात्कार अनुसूची एक प्रकार की प्रश्नावली होती है। इस प्रश्नावली को बनाते समय साक्षात्कार कर्त्ता को निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए-

i.अनुसूची में अधिक लम्बें प्रश्न नहीं रखने चाहिए। लम्बें प्रश्नों का उत्तर देने में सूचनादाताओं को कठिनाई होती है।

ii.अनुसूची के प्रश्न द्विअर्थक और भ्रमपूर्ण नहीं होने चाहिए।

iii.अनुसूची में प्रश्नों की भाषा सरल होनी चाहिए जिससे सूचनादाता को प्रश्नों के अर्थ समझने में कठिनाई न हो।

iv. अनुसूची में उत्तेजक, ठेस लगने वाले व संवेदनशील प्रश्न नहीं होने चाहिए।

v. अनुसूची के प्रश्न प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रकार के हो सकते हैं। कैम्पबैल (Campbell 1950) का विचार है कि साक्षात्कार अनुसूची में यदि प्रत्यक्ष प्रश्न रखे जाते हैं तो उनकी विश्वसनीयता अधिक होती है, परन्तु जब ऐसी समस्याओं का अध्ययन करना हो जहाँ सामाजिक दबाव की परिस्थिति हो तो प्रत्यक्ष प्रश्नों की अपेक्षा परोक्ष

अधिक उपयोगी होते हैं। कुछ अध्ययनों में (Gatzels, 1950; Sandfard & Rosenstock, 1952) यह पाया गया कि परोक्ष प्रश्न उस समय अधिक उपयोगी होते है जब प्रतिदर्श का आकार छोटा होता है।

vi.साक्षात्कार अनुसूची में प्रश्नों का स्वरूप खुली (open) और बन्द (closed) प्रकार का भी हो सकता है। उदाहरण के लिए साक्षात्कार अनुसूची का यह प्रश्न, ''परिवार नियोजन के सम्बन्ध में आपके क्या विचार है।'' Open प्रकार का है क्योंकि इसमें सूचनादाता उत्तर देने के लिए मुक्त है। वह इसमें परिवार नियोजन के सम्बन्ध में कुछ भी उत्तर दे सकता है। अध्ययनों में देखा गया है कि मुक्त प्रकार के प्रश्न जब साक्षात्कार अनुसूची में होते है तब सूचनादाना में वार्तालाप के कारण सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध शीघ्र स्थापित हो जाते हैं।

दूसरे प्रकार के प्रश्न का उदाहरण है, ''क्या आप परिवार नियोजन के पक्ष में है ? हॉं नहीं।'' यह एक closed प्रकार का प्रश्न है।

2. साक्षात्कार का संचालन (Conducting the Interview)- साक्षात्कार की तैयारी हो जोने पर साक्षात्कारकर्त्ता सर्वप्रथम सूचनादाताओं से बारी-बारी से सम्पर्क करता है अथवा उन्हें निश्चित समय व स्थान पर बुलाता है। किसी भी सूचनादाता से साक्षात्कार करने से पूर्व आवश्यक है कि उसके साथ सर्वप्रथम सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए जायें, उसे साक्षात्कार के मुख्य उद्देश्य भी बताये जाएँ जिससे उसका सहयोग अधिक से अधिक प्राप्त हो सकें। सहयोग प्राप्ति के लिए साक्षात्कारकर्त्ता सूचनादाता से अनुरोध भी कर सकता है। जब साक्षात्कारकर्त्ता को यह विश्वास हो जाए कि सूचनादाता से सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए है तो उसे प्रश्न पूछने प्रारम्भ करने चाहिए। प्रश्न पूछते समय साक्षात्काकर्त्ता को चाहिए कि वह सूचनादाता को समय-समय पर प्रेरित करता रहे। सूचनादाता के उत्तरों को साक्षात्कारकर्त्ता को सहानुभूतिपूर्वक सुनना चाहिए। साक्षात्कारकर्त्ता की भूमिका इस यन्त्र के द्वारा तथ्यों के संकलन में बहुत महत्वपूर्ण होती है। उसे चाहिए कि साक्षात्कार से पूर्व साक्षात्कार की सभी Techniques का गहन अध्ययन कर ले।

3. अभिलेखन (Recording)-. साक्षात्कारकर्त्ता को चाहिए कि वह सूचनादाता की सभी सूचनाओं को अक्षरशः नोट करे। आवश्यकतानुसार यान्त्रिक अभिलेखन ;डमबींदपबंस त्मबवतकपदहद्ध करना सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। स्मृति के आधार पर सूचनादाताओं की सूचनाओं को लिखना त्रुटिपूर्ण रहता है।

4. **साक्षात्कार का समापन (Closing the Interview)**- साक्षात्कार के समापन में पहले साक्षात्कारकर्त्ता को चाहिए कि वह साक्षात्कार अनुसूची की अन्तिम जॉंच कर ले कि कहीं कोई प्रश्न का उत्तर अधूरा या छूट तो नहीं गया है। यह चैकिंग कर लेने के बाद उसे सूचनादाता से आभार प्रदर्शित करना चाहिए और धन्यवाद देकर साक्षात्कार का समापन करना चाहिए।

5. **विश्लेषण और प्रतिवेदन (Analysis & Report)** - साक्षात्कार अनुसूचियों द्वारा प्राप्त ऑंकड़ों का विश्लेषण करने के लिए आवश्यकतानुसार सारणीयन करना चाहिए फिर, यदि सम्भव हो तो प्रत्युत्तरों को अंकों में बदल कर सांख्यिकीय विश्लेषण करना चाहिए और यदि प्रत्युत्तरों को अंकों में बदला नहीं जा सकता तो अन्तर्वस्तु विश्लेषण (Content Analysis)की सहायता से तथ्यों का विश्लेषण करना चाहिए। इस प्रकार से प्राप्त परिणामों की उचित सैद्धान्तिक व्याख्या करनी चाहिए और फिर रिपोर्ट तैयार करनी चाहिए।

12.3.1.2. साक्षात्कार के प्रकार (Types of Interview)-

साक्षात्कार के जिन प्रकारों का उपयोग बहुधा समाज मनोविज्ञान के अध्ययनों में होता है उनमें से कुछ प्रमुख प्रकारों का वर्णन निम्न प्रकार से हैं -

1. औपचारिकता के आधार पर- औपचारिकता के आधार पर साक्षात्कार के दो प्रकार हैं -

a. संरचित अथवा प्रमाणिक साक्षात्कार (Structured or Standardized Interview)

b. असंरचित अथवा अप्रमाणितक साक्षात्कार (Unstructured Interview)

a. **संरचित अथवा प्रमाणिक साक्षात्कार -**साक्षात्कार की यह वह विधि है जिसमें अध्ययनकर्त्ता अध्ययन करने से पहले अध्ययन समस्या के सम्बन्ध में अध्ययन अनुसूची तैयार कर लेता है। इस विधि में सभी उत्तरदाताओं से वही प्रश्न पूछे जाते है जो पहले से तैयार किये गये है, कोई नया प्रश्न नहीं पूछा जाता है। साक्षात्कारकर्त्ता प्रश्नों का क्रम, भाषा और प्रश्नों की संख्या नहीं बदलता है।

संरचित अथवा प्रमाणिक साक्षात्कार के लाभ- इस साक्षात्कार विधि के अनेक लाभ है जो निम्न हैं -

i.पक्षपात का प्रभाव कम से कम पड़ता है।

ii.वस्तुनिष्ठ परिणाम प्राप्त होते हैं।

iii.तथ्यों का संकल्न शुद्ध रूप में होता है।

iv. परिणाम विश्वसनीय प्राप्त होते हैं।

v. इस विधि द्वारा तुल्नात्मक अध्ययन भी किये जाते हैं।

संरचित अथवा प्रमाणिक साक्षात्कार के दोष- संरचित साक्षात्कार साक्षात्कार विधि के कुछ दोष भी है जिन्मे से प्रमुख दोष निम्न प्रकार से हैं -

i.इसमें अध्ययनकर्त्ता Recording Instrument की तरह कार्य करता है। वह निष्क्रिय रहता है इसलिए परिपूर्णता नहीं आ पाती है।

ii.वस्तुनिष्ठ साक्षात्कार अनुसूची की रचना में कठिनाई होती है।

iii.इस प्रकार के साक्षात्कार में सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने में कठिनाई होती है।

iv. साक्षात्कारकर्त्ता को सूचनादाता से कृत्रिम और उपरी (Superficial) उत्तर प्राप्त होते हैं जिससे परिणाम दोषपूर्ण हो जाते हैं।

v.यह साक्षात्कार जीवन की वास्तविक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं होता अतः परिणाम वैधता कम होती है।

b.असंरचित अथवा अप्रमाणितक साक्षात्कार - साक्षात्कार की इस विधि में साक्षात्कारकर्त्ता को पहले से कोई साक्षात्कार अनुसूची तैयार नहीं करनी होती है वह सूचनादाता से कोई भी, कितने भी, कैसे भी अध्ययन समस्या के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने के लिए स्वतन्त्र होता है।

इस प्रकार की साक्षाकार विधि के कुछ प्रमुख **लाभ** निम्न प्रकार से हैं -

i. इस विधि में साक्षात्कारकर्त्ता को चूँकि प्रश्न पूछने की स्वतन्त्रता होती है अतः अध्ययन में नम्यता रहती है।

ii. इस साक्षात्कार विधि का स्वरूप ऐसा होता है कि सूचनादाता की अनेक शुद्ध भावनाओं का ज्ञान हो जाता है अतः प्राप्त परिणाम अधिक वैध होते हैं।

iii. इसके द्वारा गहन अध्ययन सम्भव है।

iv. इस विधि के द्वारा वास्तविक मनोदशाओं का भी अध्ययन सम्भव है।

v. जब किसी अध्ययनकर्त्ता की अध्ययन समस्या के सम्बन्ध में उपकल्पना निर्माण करना हो तो उसे इस विधि से समस्या का अध्ययन करके उपकल्पना निर्माण करना चाहिए।

इस विधि के कुछ प्रमुख **दोष** निम्न प्रकार से हैं-

i.इस विधि द्वारा संकलित सामग्री में वस्तुनिष्ठता का अभाव होता है।

ii. इस विधि द्वारा अनावश्यक सामग्री का संकलन होता है।

iii. चूँकि अध्ययनकर्त्ता को प्रश्न करने छूट होती है अतः समस्या के कुछ पहलूओं पर तथ्यों का संकलन कुछ अधिक और कुछ पर कम हो पाता है। अतः असन्तुलित परिणाम प्राप्त होते है।

2. **उत्तरदाता की संख्याओं के आधार पर -** उत्तरदाता की संख्याओं के आधार पर दो प्रकार के साक्षात्कार हो सकते हैं-

a. वैयक्तिक साक्षात्कार (Individual Interview) और

b. सामूहिक साक्षात्कार (Group Interview)

a.वैयक्तिक साक्षात्कार -वैयक्तिक साक्षात्कार वह साक्षात्कार विधि है जिसमें साक्षात्कारकर्त्ता एक बार में एक ही व्यक्ति का साक्षात्कार करता है। यह साक्षात्कार संरचित या असंरचित किसी भी प्रकार का हो सकता है।

b. सामूहिक साक्षात्कार - सामूहिक साक्षात्कार वह साक्षात्कार होता जिसमें साक्षात्कारकर्त्ता एक बार में एक से अधिक व्यक्तियों का अर्थात समूह का साक्षात्कार करता है। यह साक्षात्कार भी संरचित या असंरचित किसी भी प्रकार का हो सकता है।

3. प्रशासन के आधार पर साक्षात्कार - प्रशासन के आधार पर साक्षात्कार के दो प्रकार हो सकते है-

a. निदेशात्मक (Directive)

b.अनिदेशात्मक (Non – directive)

a. निदेशात्मक - निदेशात्मक साक्षात्कार को नियन्त्रित साक्षात्कार भी कहते है। इसमें नियन्त्रित परिस्थिति में उत्तरदाता से पूर्व निर्धारित प्रश्न पूछे जाते है।

b. अनिदेशात्मक - अनिदेशात्मक साक्षात्कार को स्वतन्त्र साक्षात्कार भी कहा जाता है। इसमें अनियन्त्रित परिस्थिति में उत्तरदाता को अपने विचारों, संवेगों तथा प्रवृत्तियों को व्यक्त करने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है।

4. **गहन साक्षात्कार (Depth Interview)-** इस प्रकार के साक्षात्कार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि अनिर्देशित और असंरचित प्रकार का वह साक्षात्कार है जिसके द्वारा किसी व्यक्तिगत समस्या अथवा किसी सामाजिक समस्या की गहराई में जाकर उसका गहन अध्ययन किया जाता है। बहुधा इस साक्षात्कार के द्वारा जिन सामाजिक या व्यक्तिगत समस्याओं का अध्ययन किया जाता है वह गम्भीर स्वभाव वाली होती है।उदाहरण के लिए यदि कोई साक्षात्कारकर्त्ता भ्रष्टाचार के मूल कारणों का अध्ययन करना चाहता है तो वह गहन साक्षात्कार के द्वारा इस प्रकार की समस्या का अध्ययन कर सकता है। इसी प्रकार से यदि कोई साक्षात्कारकर्त्ता हिस्टीरिया रोग से ग्रस्त मानसिक रोग के मूल कारणों की खोज करना चाहता है तो वह गहन साक्षात्कार के आधार पर कर सकता है। तात्पर्य यह है कि गहन साक्षात्कार के द्वारा केवल सामूहिक समस्या का ही अध्ययन नहीं किया जाता है, बल्कि व्यक्तिगत समस्याओं से ग्रस्त व्यक्तियों के अध्ययन में यह विधि अधिक उपयोगी है। कुछ व्यक्तिगत समस्याएँ सामूहिक प्रकार की भी होती है। जैसे - हिस्टीरिया से ग्रस्त मानसिक रोगी के कारणों की खोज में यह विधि उपयोगी तो है ही इसके अलावा उस समय भी यह विधि उपयोगी है जब साक्षात्कारकर्त्ता यह अध्ययन करना चाहे कि हिस्टीरिया रोग के सामाजिक और मानसिक कारण क्या-क्या है। इस प्रकार के साक्षात्कार के गुण-दोष असंरचित साक्षात्कार के गुण-दोषों से मिलते-जुलते है।

5. नैदानिक साक्षात्कार (Clinical Interview)-. इस प्रकार के साक्षात्कार बहुधा चिकित्सा के क्षेत्र में किए जाते है और यह साक्षात्कार गहन साक्षात्कार तथा अनिर्देशित साक्षात्कार से मिलते-जुलते हैं। इस प्रकार के साक्षात्कार का उद्देश्य मुख्यतः चिकित्सा के क्षेत्र में यह है कि इस प्रकार के साक्षात्कार के द्वारा किसी सामाजिक समस्या, किसी सामाजिक बीमारी अथवा किसी मानसिक बीमारी के कारणों के प्रभावों को कम करना और इस प्रकार के कारणों को दूर करके बीमारी या समस्या का समाधान या निदान करना है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि किसी सामाजिक समस्या, किसी मानसिक बीमारी अथवा सामाजिक बीमारी के कारणों की खोज निदानात्मक साक्षात्कार और गहन साक्षात्कार के द्वारा की जाती है, बल्कि वास्तविकता यह है कि नैदानिक साक्षात्कार के द्वारा मानसिक बीमारी, मानसिक व्याधि और मानसिक रोग के कारणों की भी खोज की जाती है तथा कारणों को मक या दूर करके समस्या या बीमारी का उपयार या निदान भी किया जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार के गुण-दोष असंरचित साक्षात्कार के गुण-दोषों से मिलते-जुलते हैं।

6. पुनरावृत्ति साक्षात्कार (Repetitive Interview) -यह वह साक्षात्कार है जिनके द्वारा ऐसी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जो समय के साथ-साथ परिवर्तित होने वाली होती है। इस प्रकार के साक्षात्कार कुछ समय अन्तराल के बाद पुनः अथवा बार-बार किये जाते है। साक्षात्कार की पुनरावृत्ति के कारण ही यह पुनरावृत्ति साक्षात्कार कहलाते है। यदि कोई साक्षात्कारकर्त्ता समाजीकरण के प्रभाव, औद्योगिकरण के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है तो वह पुनरावृत्ति साक्षात्कार के द्वारा कर सकता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के साक्षात्कार में समय, धन और श्रम अधिक व्यय होता है क्योंकि यह लम्बे समय तक चलने वाले साक्षात्कार है।

साक्षात्कार की विश्वसनीयता बढ़ाने के उपाय. साक्षात्कार की विश्वसनीयता बढ़ाने के प्रमुख उपाय निम्नलिखित है-

1. साक्षात्कार अनुसूची और निर्धारण मापनी (Rating Scale) का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।
2. साक्षात्कार का संचालन मानक परिस्थितियों में करना चाहिए।
3. प्रामाणित साक्षात्कार विधि का उपयोग करना चाहिए।
4. सूचचनादाता की सूचनाओं को अक्षरशः नोट करना चाहिए।
5. संकेतों (Coding) का प्रयोग करना चाहिए।
6. साक्षात्कारकर्त्ता को इस विधि का उपयोग करने से पहले प्रशिक्षण लेना चाहिए।

साक्षात्कार विधि की वैधता बढ़ाने के उपाय .सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययनों में साक्षात्कार विधि की वैधता बढ़ाने के प्रमुख उपाय निम्नलिखित है-

1. सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करके शुद्ध से शुद्ध उत्तर प्राप्त करने चाहिए।
2. समय-समय पर साक्षात्कारकर्त्ता को चाहिए कि सूचनादाता को प्रेरित करता रहे और साक्षात्कार का वातावरण प्रेरणादायक बनाना चाहिए।
3. ऑकड़ों का संकलन निष्पक्ष और पक्षपातरहित हो। साक्षात्कारकर्त्ता के मनोभावों के प्रभाव से संकलित तथ्य मुक्त होने चाहिए।
4. सूचनादाता से प्राप्त उत्तरों की पुष्टि अन्य साधनों से करनी चाहिए।
5. उन उत्तरों की विशेष रूप से जॉच करनी चाहिए जिसमें कार्य-कारण का सम्बन्ध हो।
6. आवश्यकतानुसार एक अध्ययन में एक से अधिक साक्षात्कारकर्त्ता होने चाहिए।

साक्षात्कार विधि के लाभ ((Advantage)-सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययनों से इस विधि के कुछ प्रमुख लाभ निम्न प्रकार से है-

1. इस विधि द्वारा सामाजिक मनोविज्ञान की अमूर्त तथा न दिखाई देने वाली घटनाओं का अध्ययन भी सम्भव है, जैसे - अभिवृत्ति, मूल्य, विचार और पारस्परिक सम्बन्धों से समस्याएँ।

2. सामाजिक मनोविज्ञान की जो घटनाएँ घटित हो चुकी है अर्थात अतीत की घटनाओ का अध्ययन भी इस विधि से सम्भव है।

3. सामाजिक मनोविज्ञान विषयक घटनाओं, जैसे - गरीबी, भ्रष्टाचार आदि का अध्ययन इसके द्वारा सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

4. साक्षात्कार विधि के द्वारा गोपनीय अनुभवों और घटनाओं का अध्ययन सरलता से किया जाता है।

5. इस विधि के द्वारा गहन अध्ययन होता है।

6. प्रामाणित साक्षात्कार द्वारा अध्ययन होता है।

7. बच्चों वे अशिक्षित व्यक्तियों का भी अध्ययन किया जा सकता है।

8. इस विधि द्वारा अध्ययन के प्रक्रम को विशेष रूप से अनियन्त्रित साक्षात्कार विधि में, आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जा सकता है।

साक्षात्कार विधि की सीमाएँ ((Disadvantage)- सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययनों में साक्षात्कार विधि की कुछ सीमाएँ निम्न प्रकार से है-

1. इस विधि द्वारा जो तथ्यों का संग्रह होता है उसकी विश्वसनीयता व वस्तुनिष्ठता संदेहपूर्ण होती है क्योंकि आवश्यक नहीं है कि सूचनादाता अपने आन्तरिक विचारों को प्रत्येक साक्षात्कारकर्त्ता के सामने व्यक्त कर दे।

2. इस विधि में सूचनादाताओं से सहयोग मिलने में कठिनाई होती है।

3. कई बार साक्षात्कार करते समय सूचनादाता संवेगात्मक हो जाता है जिसके कारण उसके उत्तर प्रभावित होते है।

4. अधिकांश साक्षात्कार अध्ययनों में अध्ययन परिस्थितियॉ अनियन्त्रित और अमानवीकृत होती है फलस्वरूप शुद्ध परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं।

5. बहुधा यह देखा गया है कि अधिकांश सूचनादाता कृत्रिम उत्तर देते है।

साक्षात्कार विधि के गुण और दोषों की तुलना करने पर यह माना जा सकता है कि यह विधि जहॉं व्यक्ति के सम्बन्ध में तथ्यपरक तथा वास्तविक सूचनाओं को एकत्रित करने में महत्वपूर्ण है वही सामाजिक, नैदानिक, व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में भी महत्वपूर्ण है, तथा यदि साक्षात्कार विश्वसनीय, वैध अनुसूची की सहायता से लिया जाय तो व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विश्वसनीय और स्वाभाविक जानकारी प्राप्त हो सकती है। आलपोर्ट (Allport,1954) ने साक्षात्कार के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, ''यदि हम जानना चाहते है कि व्यक्ति कैसा अनुभव करते है, उनकी अनुभूतियॉ क्या है, उनके संवेग एवं अभिप्रेरणायें क्या है, तो प्रत्यक्ष रूप से उन्हीं से पूछना चाहिए।''

12.3.2. अर्थ विभेदक प्रविधि (Semantic Differential Technique)-

अर्थ विभेदक प्रविधि को विकसित करने का श्रेय आसगुड और उनके साथियों (Osgood, Suci & Tannenbaum 1975) को है। व्यक्तित्व मापन की इस प्रविधि में दो छोर वाले विशेषण मापनियों (Bipolar

Active Scales) की सहायता से अभिवृत्ति विशेषताओं का मापन किया जाता है। यह दो छोर शब्द तीन तत्वों से सम्बन्धित होते है-

1. मूल्यांकन (Evaluation)
2. क्षमता (Potency) और
3. सक्रियता (Activity)।

इन तीन तत्वों से सम्बन्धित कुछ दो छोर वाले विश्लेषण निम्न प्रकार से है-

मूल्यांकन तत्व - सुन्दर-असुन्दर, अच्छा-बुरा, सभ्य-असभ्य, व्यावहारिक-अव्यावहारिक आदि।

क्षमता तत्व- मोटा-पतला, शक्तिशाली-शक्तिहीन, लम्बा-छोटा, भारी-हल्का आदि।

सक्रियता तत्व -तेज-धीमी, शान्त-उद्दीप्त, सक्रीय-निष्क्रिय आदि।

उपर्युक्त दो छोर वाले तीन तत्वों से सम्बन्धित सभी दो विशेषणों को देखने से स्पष्ट है कि एक छोर का धनात्मक मूल्य है तथा दूसरे पक्ष का ऋणात्मक मूल्य है अथवा एक छोर पक्ष में है तथा दूसरा विपक्ष में होता है।

इस विधि द्वारा जिस अभिवृत्ति का मापन करना होता है उससे सम्बन्धित ये दो छोर वाले विशेषण सर्वप्रथम एकत्र किऐ जाते है। प्रत्येक दो छोर वाले विशेषण का प्रत्युत्तर सात बिन्दु मापनी (Seven Point Scale) की सहायता से दिया जा सकता है। इसके उहारण निम्न प्रकार है-

	7	6	5	4	3	2	1	
सुन्दर	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	असुन्दर
अच्छा	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	बुरा
सभ्य	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	असभ्य
व्यावहारिक	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	अव्यावहारिक
मोटा	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	पतला
शक्तिशाली	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	शक्तिहीन
लम्बा	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	छोटा
भारी	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	हल्का
तेज	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	धीमा
शान्त	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	उद्दीप्त
सक्रिय	--|	--|	--|	--|	--|	--|	-	निष्क्रिय

उपर्युक्त उदाहरण में प्रत्येक दो छोर वाले विशेषण में सात बिन्दु मापनी लगी है सिसमें चौथा बिन्दु तटस्थ अभिवृति को व्यक्त करता है। चाथे बिन्दु कें तीन बिन्दु दायी ओर है तथा तीन बिन्दु बायी ओर है।

प्रविधि में प्राप्त प्राप्तांकों के मध्यमान के आधार पर पार्श्व चित्र (Profile) भी बनाई जा सकती है।

आसगुड और उनके साथियों का विचार है कि इस विधि की सहायता से अभिवृत्ति के संज्ञात्मक और भावात्मक पक्षों का सफलतापूर्वक मापन किया जा सकता है। इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 97 तक प्राप्त हुआ है। आसगुड (1957) को परीक्षण-पुनरीक्षण विधि से विश्वसनीयता गुणांक का मान .83 से .91 तक प्राप्त हुआ। थर्स्टन मापनी के साथ वैधता गुणांक का मान .74 से .82 तक प्राप्त हुआ।

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि इस विधि की सहायता से व्यक्तित्व विशेषताओं या व्यक्तित्व लक्षणों का मापन सरलता से किया जा सकता है। इस विधि में जब कोई मापनकर्त्ता पार्श्व चित्र बनाकर व्यक्तित्व का मापन और अध्ययन करता है तब इस पार्श्व चित्र के आधार पर व्यक्तित्व का तुलनात्मक अध्ययन और भी सरल हो जाता है। इस विधि की सहायता से व्यक्तित्व की अनेक विमाओं का मापन भी सरलता से किया जा सकता है यह विधि एक विश्वसनीय और वस्तुनिष्ठ वैज्ञानिक विधि है जिससे व्यक्तित्व मापन से आंकिक ऑकड़े भी प्राप्त किए जा सकते है। मनोविज्ञान की यह अर्थ विभेदक प्रविधि से व्यक्तित्व मापन अपेक्षाकृत अधिक शुद्ध ढंग से किया जा सकता है।

12.3.3. क्यू-शार्ट प्रविधि (Q – sort Technique)-

क्यू-शार्ट प्रविधि कोटि अन्तर विधि (Rank Difference Method) द्वारा सह-सम्बन्ध ज्ञात करने की विधि का ही एक परिष्कृत (Refined) रूप है। इस तकनीक को विलियम स्टिफेन्सन (William Stephenson 1953) ने विकसित किया है। कोटि अन्तर विधि द्वारा जिन प्राप्तांको का सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है। वह प्राप्तांक संख्या में कम होते है। व्यवहारपरक विज्ञानों में जो अनुसन्धान होते है, उनमें प्रदत्तों की संख्या बहुत अधिक होती है। इन अधिक संख्या वाले प्रदत्तों का विश्लेषण इस क्यू-शार्ट विधि द्वारा सरलता के किया जा सकता है। क्यू-शार्ट प्रविधि में सह-सम्बन्ध की गणना व्यक्तियों में नहीं की जाती हैं यह गणना व्यक्तियों की अनुक्रियाओं के वर्गीकृत क्यू वरणों (Q – Sort) की सहायता से की जाती है। इस प्रविधि में व्यक्तियों की अनुक्रियाओं का श्रेणीकरण (Sorting) करके क्यू वरणों में वर्गीकृत किया जाता है और फिर इन्हीं क्यू वरणों का सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है।

क्यू शार्ट प्रविधि में शोध अध्ययन से प्राप्त गुणात्मक प्रदत्तों (Qualitative Data) को पूर्ण निर्धारित कसौटी के आधार पर क्यू शार्ट या श्रेणियों या उप-भागों या वरणों में बॉटकर प्राप्त ढेरियों (Piles) से सह-सम्बन्ध मैट्रिक्स बनाई जाती है।

जब इस विधि की सहायता से व्यक्तित्व मापन करना होता है तब उस व्यक्ति को जिसके व्यक्तित्व का मापन करना होता है, उसे लगभग 100 कार्ड दिए जाते है। इन सभी कार्डों पर अलग-अलग प्रकार के व्यक्तित्व विशेषताओं से सम्बन्धित कथन लिखे हुए होते है। एक कार्ड पर एक कथन और दूसरे पर दूसरा कथन तथा इसी प्रकार से सभी कार्डों पर कथन लिखे हुए होते है। प्रयोज्य को यह निर्देश दिये जाते है कि वह इन कार्डो को अलग-अलग संवर्ग या ढेरियों में रखे। उसे एक ढेरी या संवर्ग में वह कार्ड रखने होते है, जो उसके व्यक्तित्व विशेषताओं से मेल खाते हुए होते है और उसे दूसरी ढेरी या संवर्ग में वह कार्ड रखने होते है जो उसकी व्यक्तित्व विशेषताओं के विपरीत विशेषताओं वाले होते है। प्रयोज्य को इस प्रकार की उसे पॉच, सात, नौ या ग्यारह ढेरियॉ बनानी होती है।

12.3.3.1. क्यू शार्ट प्रविधि के प्रकार - क्यू शार्ट प्रविधि के दो मुख्य प्रकार है-

1. असंरचित प्रकार (**Unstructured Type**)- यह वह क्यू शार्ट प्रविधि होती है, जिसमें कार्डों पर ऐसे कथन होते है जिसमें किसी कसौटी को आधार नहीं बनाया जाता है।

2. संरचित प्रकार (**Structured Type**)- यह वह क्यू शार्ट प्रविधि होती है, जिसमें कार्डों पर ऐसे कथन होते है, जिसमें व्यक्तित्व के शीलगुण निश्चित होते है अथवा कार्ड के कथन व्यक्तित्व के एक क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित होते है, इसके पुनः दो प्रकार होते है-

a.. एक पक्षीय संरचित क्यू शार्ट प्रविधि (**One- way Structured Q- Sort Technique**)- जैसा इसके नाम से स्पष्ट है इसमें संरचना का आधार एकपक्षीय होता है। इसमें कार्ड के कथन या पदों के श्रेणीकरण का एक कसौटी का मापण्ड या आधार होता है।

इ. द्विपक्षीय संरचित क्यू शार्ट प्रविधि (**Two- way STructured Q- Sort Technique**)- इसमें संरचना का आधार द्विपक्षीय होता है। इसमें कार्ड के कथन के श्रेणीकरण का दो कसौटियों का मापण्ड होता है।

क्यू-शार्ट प्रविधि के गुण (**Merits**)-

1. क्यू-शार्ट प्रविधि एक सिद्धान्त उन्मुख (Theory Oriented) तकनीक है।
2. यह व्यक्तित्व के अध्ययन के एक वस्तुपरक (Objective) और आनुभविक (Emperical) प्रविधि है। यह प्रविधि आनुभविक इसलिए है कि इसमें कार्डों की ढेरियॅा पसन्द या व्यक्तित्व निर्णय के आधार पर बनाई जाती है। यह प्रविधि वस्तुपरक इसलिए है कि इसमें सह-सम्बन्ध और कारक विश्लेषण किया जाता है।
3. इसमें सह-सम्बन्ध, कारक विश्लेषण (Factor Analysis) और प्रसरण विश्लेषण जैसी उच्च सांख्यिकीय विधियों का उपयोग किया जाता है।
4. इस प्रविधि का उपयोग वहॉं किया जाता है, जहॉं प्रदत्त संख्या या मात्रा में व्यक्त नहीं होते है। यह व्यक्तित्व का विभिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन क्यू संवर्गों के आधार पर होता है।
5. इस विधि का उपयोग बहुत बड़े प्रतिदर्श (Sample) पर उपयुक्त नहीं होता है। छोटे प्रतिदर्श के अध्ययन इस विधि द्वारा अधिक सफलतापूर्वक हो जाते है।
6. इस विधि की एक सीमा यह है कि व्यक्ति के सामने अनेक विकल्प न होकर केवल बाधित पसन्द (Forced Choice) ही होती है। प्रयोज्य एक निश्चित प्रकार के कार्डों को छॉंटने के लिए विवश होता है।
7. यह प्रविधि केवल क्यू श्रेणियों या वरणों के आधार पर व्यक्तित्व का मापन करती है।

क्यू सार्ट प्रविधि के दोष (Demerits)-

इस विधि का उपयोग सामान्यतः छोटे प्रतिदशों के लिये अधिक उपयुक्त रहता है, बड़े प्रतिदशों के अध्ययन के लिये यह विधि उपयुक्त नहीं होती। इसके अतिरिक्त इस विधि में व्यक्ति को अपनी अनुक्रिया व्यक्त करने के लिये एक प्रकार से विवश होना पड़ता है, क्योंकि अनुक्रिया का आधार प्रायः बाधितवरण (Forced Choice) ही होता है। यह विधि केवल सम्बन्धित क्यू-वरणों के अध्ययन को ही महत्व देती है, इसमें व्यक्तियों की अनुक्रियाओं के विचलन की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है

12.3.4. निरीक्षण विधि (Observation Method)- निरीक्षण विधि प्रत्यक्ष व्यवहर तकनीक (Direct Behaviour Technique) भी कहलाती है। उपरोक्त बताई गई तीन विधियों में प्रयोज्य के वाचिक व्यवहार (Verbal Behaviour)के आधार पर उसके व्यक्ति का निर्धारण किया जाता है। स्वाभाविक परिस्थितियों में घटित होने वाले व्यवहार और व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए प्रत्यक्ष व्यवहार नकनीक सबसे उत्तम है। इस तकनीक में प्रयोज्य या प्रयोज्यों के व्यवहार का प्रत्यक्ष निरीक्षण स्वाभाविक परिस्थितियों में किया जाता है। व्यवहार का निरीक्षण करने के लिए विशेष रूप से रिकार्डिग व्यवस्था की आवश्यकता होती है, प्रयोज्यों को यह न मालूम हो कि उनके व्यवहार का निरीक्षण किया जा रहा है। इसके लिए प्रयोगशाला में विशेष प्रकार की व्यवस्था की जाती है, प्रयोगशाला में एकपक्षीय पर्दे (One side screen) का उपयोग किया जाता है। इस पर्दे की यह विशेषता होती

है कि निरीक्षणकर्त्ता प्रयोज्य या प्रयोज्यों का तो निरीक्षण कर सकते है लेकिन प्रयोज्य निरीक्षकर्त्ताओं को नहीं देख पाते है। व्यक्ति के व्यक्तित्व और वैयक्तिक समस्याओं के अध्ययन में यह विधि अनेक मनोवैज्ञानिकों के द्वारा विशेष उपयोगी बताई गई है (Thorenson and Mohoney, 1974; Weiss, 1975)।

यंग 1956 के अनुसार, ''निरीक्षण नेत्रों द्वारा सावधानी से किया गया अध्ययन है। सामूहिक व्यवहार, जटिल सामाजिक संस्थाओं और किसी पूर्ण वस्तु को बनाने वाली पृथक इकाइयों का निरीक्षण करने लिए एक विधि के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है।

निरीक्षण विधि वह विधि है जिसमें अध्ययन सावधानी से किया जाता है, नेत्रों का पूरी तरह से उपयोग होता है और अध्ययन करने वाला प्रत्यक्ष रूप से भाग लेता है। इस विधि की सहायता से व्यक्तित्व के अध्ययन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण ऑंकड़े पाप्त होते है। व्यक्तित्व अध्ययनों में इस विधि का उपयोग एक अकेली स्वतन्त्र विधि के रूप में भी किया जाता है और सहायक विधि के रूप में भी किया जाता है। निरीक्षण विधि के अनेक प्रकार है। इन प्रकारों में बहुधा प्रकृतिक निरीक्षण विधि (Natural Observation Method) का ही व्यक्तित्व अध्ययनों में उपयोग होता है।

निरीक्षण विधि का महत्व या गुण. निरीक्षण विधि के लाभ या गुण अनेक है इनमें से कुछ प्रमुख निम्न प्रकार से है-

1. व्यक्तित्व अध्ययनों में यह विधि उस समय बहुत उपयोगी है जब अध्ययनकर्त्ता को उपकल्पना या उपकल्पनाएँ बनानी होती है।

2. इस विधि द्वारा परिणाम विश्वसंनीय, शुद्ध, वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ होते है। इस प्रकार के परिणाम तभी प्राप्त होते है जब व्यवहार का निरीक्षण वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है।

3. वैज्ञानिक निरीक्षणों की एक यह भी विशेषता होती है कि प्राप्त परिणामों में प्रामाणिकता और सार्वभौमिकता का गुण पाया जाता है।

4. प्रत्यक्ष व्यवहार तकनीक अन्य तकनीकों की अपेक्षा एक सरल तकनीक है।

निरीक्षण विधि सीमाएँ या दोष. निरीक्षण विधि की कुछ प्रमुख सीमाएँ या दोष निम्न प्रकार से है-

1. निरीक्षणकर्त्ता के संवेगों, मनोभावों, अभिवृत्तियों, पक्षपातों आदि का प्रभाव जब निरीक्षणों पर पड़ता है तब इस विधि से प्राप्त परिणाम दूषित हो जाते हैं।

2. निरीक्षण विधि का एक यह भी दोष है कि निरीक्षणकर्त्ता जब प्रयोज्यों के साथ बहुत घुल-मिल जाता है, उनके साथ बहुत मधुर और घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो जाते है तब निरीक्षणकर्त्ता को प्रयोज्यों के व्यक्तित्व की ऋणात्मक विशेषताएँ त्रुटिपूर्ण नहीं दिखाई देती है।

3. व्यक्तित्व से सम्बन्धि अनेक समस्यायें ऐसी है जिनका अध्ययन जब इस विधि द्वारा किया जाता है तब प्रयोज्य अपना व्यवहार प्राकृतिक नहीं रखते है, बदल लेते है।

12.3.5. श्रेणी मूल्यांकन मापनियाँ (Rating Scales)

आइजेन्क और उनके साथीयों H. J. Eyseneck 1972)के अनुसार, ''श्रेणी मूल्याकंन मापनी वह बहुस्तर वाली मापनी है जिस पर श्रेणी मूल्याकंन करने वाला व्यक्ति एक विशेषता के अंशों को आत्मगत रूप में व्यवस्थित करता है। बहुधा इस प्रकार की मापनीयों में पॉच, छः या सात अवस्थाएँ होती है जो प्रयोज्य को मौलिक रूप से बताई

जाती है या लिखित रूप होती है अर्थात रेटिंग मापनी एक ऐसा मापनी है जिसके सहारे वयक्तित्व के शीलगुणो के बारे लिये गये निर्णय को कुछ श्रेणियो में रेकार्ड किया जाता है। इस मापनी में कुछ संख्यात्मक श्रेणियॉ 'जैसे-3, 2, 1, 0, -1, -2, -3' बनी होती है या फिर कुछ आलेखीय श्रेणियॉ बनी होती है। इन श्रेणियों के शीलगुणों के बारे में निर्णय कर अपनी प्रतिक्रिया इन श्रेणियों के माध्यम से व्यक्त करता है। बाद में ऐसे किये गये निर्णयों का सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है तथा फिर व्यक्तित्व के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है। वान डैलेन (Von Dallen 1954) के अनुसार, ''श्रेणी मूल्यांकन मापनी एक चर की आवृत्ति, गहनता और अंशों (Degree)को नियंन्त्रित करती है।''

श्रेणी मूल्यांकन मापनियों का उपयोग अनेक प्रकार के व्यक्तित्व के गुणों (Trait) के मापन और अध्ययन में किया जाता है जैसे- कौशल (Talent), उदारता, ईमानदारी, संवेगात्मक नियन्त्रण, पढ़ाई की आदतें, व्यक्तिगत आकर्षण, सहयोगिता, समय-पाबन्दी (Puncuality) तथा नेतृत्व आदि। गिलफोर्ड 1954 के अनुसार वह सभी रेटिंग विधियॉ जिनमें वर्ग निर्णय (Categorial Judgement) होते है, सैद्धान्तिक रूप से (Method of Successive Categories) के अन्तर्गत आते है।

12.3.5.1 श्रेणी मूल्यांकन मापनी की विशेषताएं (Characteristics)-. फ्रीमैन (F.S. Freeman, 1965) के अनुसार, श्रेणी मूल्यांकन मापनियों को बनाने और उपयोग में निम्नलिखित मुख्य पहलुओं या विशेषताओं को ध्यान में रखना चाहिए-

1. प्रत्येक शीलगुण स्पष्ट रूप से परिभाषित होना चाहिए ;(**Each trait should be clearly defined)-** यह इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक निर्णयकर्त्ता को समान और स्पषट रूप से ज्ञात हो। शीलगुणों करके इस लक्ष्य को पूरा किया जा सकता है।

2. शीलगुण के अंशों की परिभाषा आवश्यक है (**The degree of the trait should be defined)-** बहुधा शीलगुण का श्रेणी मूल्यांकन पॉच या सात अन्तरालों (Interval)की सहायता से किया जाता है। इससे अधिक अन्तरालों का उपयोग अधिक उपयुक्त नहीं होता है। मापनी का प्रत्येक अन्तराल परिभाषित होना चाहिए और उसी प्रकार स्पष्ट होना चाहिए जैसे कि शीलगुण।

3. विश्वसनीयता निर्णायकों के विचलन विस्तार पर निर्भर होती है (**Reliability depends upon extent of variation of judge's rating) -** अतः आवश्यक है कि निर्णायकों के निर्णयों का मध्यांक या मध्यमान ज्ञात करना चाहिए। निर्णायकों के निर्णयों में अधिक विचलन नहीं होना चाहिए। अधिक विचलन का अर्थ है कि रेटिंग की विश्वसनीयता कम है और विचलन यदि कम है तो इसका अभिप्राय है कि विश्वसनीयता अधिक है।

4. रेटिंग की वैधता का निर्धारण कठिन होता है (**Determination of validity is difficult)-** केवल कुछ ही वैधता की ऐसी कसौटियॉ है जिनमें रेटिंग स्केल की वैधता का निर्धारण किया जा सकता है। वास्तव में रेटिंग स्केल की वैधता इसके वास्तविक उपयोग के उपर निर्णायको के निर्णय के आधार पर कल्पित कर ली जाती है।

5. प्रत्यक्ष शीलगुणों का अप्रत्यक्ष शीलगुणों की अपेक्षा अधिक विश्वसीय रूप् से रेटिंग की जा सकती है (**Overt traits are more reliably rated than covert traits)-** अप्रत्यक्ष शीलगुणों की अपेक्षा शीलगुणों की रेटिंग अधिक विश्वसनीय इसलिए होती है कि प्रत्यक्ष शीलगुणों से सम्बन्धित वर्तमान तथा भूत व्यवहार तथा वस्तुनिष्ठ क्रियाएँ निर्णायकों को ज्ञात होती है। उदाहरण के लिए संवेगात्मक अभिव्यक्ति, व्यक्त भय और चिन्ता तथा आक्रामक क्रियाओं आदि की रेटिंग अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय ढंग से की जा सकती है क्योंकि यह सभी

व्यवहार व्यक्त है। दूसरी ओर व्यक्ति के आन्तरिक जीवन और अनुभवों की रेटिंग इतने विश्वसनीय ढंग से सम्भव नहीं है।

6. रेटिंग के निश्चितता अंशों को लिखना चाहिए (**Degree of certainty of rating should be stated)-** प्रत्येक रेटिंग के साथ प्रत्युत्तरकर्त्ता को रेटिंग के निश्चितता अंशों को लिखना आवश्यक है 'अर्थात अत्यधिक अधिक, सामान्य आदि'

7. अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा कुछ व्यक्ति अधिक शुद्धता से रेटिंग करते है (**Some persons are more accurately rated than others)-** कुछ अध्ययनों में यह देखा गया है कि बहिर्मुखी व्यक्तित्व वाले लोगों को अन्तर्मुखी व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय ढंग से जज किया जा सकता है। निर्णायकों के लिए भी देखा गया है कि निर्णायकों से मेल खाती हुई होती है।

8. शीलगुणों के अनुमान की विश्वसनीयता पर शीलगुण की वांछनीयता और अवांछनीयता का प्रभाव पड़ता है **(Reliability of trait estimates is affected by desirability of the trait)-** सामाजिक रूप से वांछित या उपयुक्त शीलगुण के सम्बन्ध में यदि किसी व्यक्ति को स्वयं रेटिंग करनी है तो वह अपने आपको अधिक रेट करेगा। इसी प्रकार से जब निर्णायक किसी अन्य व्यक्ति को रेट करते है और परिचित या मित्र है तो उसमें अधिक रेट करने की प्रवृत्ति देखी जाती है।

12.3.5.2 श्रेणी मूल्यांकन मापनी के प्रकार - श्रेणी मूल्यांकन मापनी के केवल दो प्रमुख प्रकारों का वर्णन निम्न है-

1. आंकिक रेटिंग स्केल (Numerical Rating Scales)- इस प्रकार की मापनी में प्रयोज्य के सामने पूर्व विश्लेषित अंकों की तालिका प्रस्तुत कर उससे कहा जाता है कि वह अपने निर्णय को इस प्रस्तुत अंक तालिका के आधार पर उचित अंक प्रदान करे। यहाँ अंक तालिका से अभिप्राय पॉइण्ट स्केल से है। यह पॉच पॉइन्ट स्केल, सात पॉइन्ट स्केल, नौ पॉइन्ट स्केल तथा ग्यारह पॉइन्ट स्केल आदि कुछ भी हो सकता है। अध्ययनों में बहुधा पॉच या सात पॉइन्ट स्केल का उपयोग होता है नीचे पॉच बिन्दु मापनी का एक उदाहरण दिया हुआ है अतः किसी समस्या के सम्बन्ध में संक्षिप्त किन्तु ठोस उत्तर प्राप्त होता है। अतः विश्वसनीय परिणाम ही नहीं प्राप्त होते है अपितु तुलनात्मक अध्ययन भी सरल हो जाता है। माइकेल तथा हेलसन (Michel & Helson, 1946) के अनुसार रेशियों स्केल तथा इन्टरवल स्केल दोनों के गुण इस मापनी में होते है। चूँकि यह मापनी दो ध्रुवीय सातत्य (Continuum)पर आधारित होते है अत ऋणात्मक निर्धारक पर अंक नहीं देने चाहिए। उदाहरण में दिये हुये पॉच बिन्दु मापनी में मापनी के निचे दिये हुए सभी अंक धनात्मक है। बहुधा यह देखा गया है कि जब अध्ययन कर्ता ग्यारह बिन्दु मापनी का उपयोग करता है तो निर्णयकर्त्ता या प्रयोज्य मापनी के अन्तिम छोरों के बिन्दुओं का उपयोग बहुत कम करता है।

अधिक पसन्द	पसन्द	उदासिन	नापसन्द	अधिक नापसन्द
5	4	3	2	1

2. **ग्राफ मापनी(Graphic Rating Scale)-** इस प्रकार की रेटिंग स्केल का उपयोग ही अधिक नहीं होता बल्कि यह लोकप्रिय भी अधिक है। इसके विभिन्न स्वरूपों में भिन्नता बहुत है। इसकी पंक्ति खड़ी अथवा पड़ी

किसी प्रकार की हो सकती है। इसी प्रकार खण्डित या निरन्तर किसी प्रकार की हो सकती है। इस प्रकार की मापनी में प्रत्येक बिन्दु पर संक्षिप्त निर्देशित कथन होते है, अतः प्रयोज्य निर्णय सरलता से ले सकता है तथा अपने निर्णय को मापनी बिन्दु पर निशान लगाकर व्यक्त कर सकता है। इस प्रकार की मापनी और आंकिक मापनी में अन्तर यह है कि इसमें पॉइन्ट स्केल की व्याख्या की गयी होती है परन्तु आंकिक मापनी में केवल पॉइन्ट स्केल होता है उसकी व्याख्या नहीं होती है। इसका एक उदाहरण निम्न है-

उसका चिन्तन कैसा है ?- बहुत धीरे-धीरे, सामान्य, तीव्र, अति तीव्र।

गिलफोर्ड 1954 ने इस प्रकार की मापनी के निर्माण के अग्रलिखित कई आवश्यक सुझाव दिए है-

1. प्रत्येक शीलगुण के लिए अलग पृष्ठ होना चाहिए।
2. मापनी की रेखा पॉच इंच लम्बी होनी चाहिए।
3. मापनी की लाइन में कोई खण्ड नहीं होने चाहिए। परन्तु इस सम्बन्ध में लोगों में मतैक्य नहीं है, खण्डित अथवा निरन्तर किसी प्रकार की लाइनों का उपयोग होता है।
4. अच्छा अथवा उच्च खड़े स्केल में उपर की ओर हो तथा क्षैतिज मापनी में यह दाहिनी ओर होने चाहिए।
5. कम उपयोग में ओने वाले संकेतों से बचना चाहिए।
6. अंक देने के लिए इस प्रकार की मापनी स्टेन्सिल का उपयोग करना चाहिए।

रेटिंग स्केल के लाभ- रेटिंग स्केल के कुछ प्रमुख लाभ निम्न प्रकार से है-

1. इनका निर्माण, विकास तथा प्रशासन सरल होता है।
2. इनकी सहायता से निर्णायकों को निर्णय देना सरल होता है।
3. कई बार निर्णायकों को भी इसलिए लाभ होता है कि एक शीलगुण के सम्बन्ध में उन्हें भी जानने का अवसर मिलता है।
4. छात्र, प्रदेश तथा व्यावसायिक चयन में सहायक होता है।
5. व्यक्तित्व तथा अन्य अध्ययनों में यह एक पूरक विधि भी है।

12.3.6 वैयक्तित्व विषय अध्ययन विधि (Case Study Method)-

यह वह पद्धति है जिसके द्वारा एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण स्वरूप का गहन अध्ययन किया जाता है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तित्व की गुणात्मक व्याख्या की जाती है, लेकिन यह अध्यन अनि सावधानी से अनेक स्त्रोतों से प्राप्त ऑकड़ों के विश्लेषण के आधार पर किया जाता है। बहुधा इस विधि का प्रयोग नैदानिक मनोविज्ञान (Clinical Psychology) के क्षेत्र में किया जाता है। इस विधि की सहायता से असामान्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व की विस्तृत जॉच की जाती है।

इस विधि द्वारा अध्ययन करते समय सूचना एकत्र करने कि लिए निम्नलिखित साधनों में से जिन साधनों से भी सूचना मिलती है। उनसे सूचना एकत्र की जाती है। सूचना के कुछ प्रमुख साधन हैं-

डायरी, पत्र, लेख, प्रलेख (Documents), आत्मकथा, जीवनी, सम्बन्धित व्यक्तियों के विचार, संस्मरण, जीवन की घटनाओं की सूची, प्रशंसा-पत्र, सर्टीफिकेट आदि स्त्रोतों से तो सूचनायें एकत्र ही की जाती है। साथ-साथ एक केस स्टडी अनुसूची (Case Study schdule)की रचना भी की जाती है जिसकी सहायता से व्यक्ति से उसके व्यक्ति के सम्बन्ध में पूछताछ करके जानकारी एकत्रित की जाती है। इसके अलावा उसके परिजनों, पड़ोसियों और

मित्रों से भी तथ्य एकत्रित किये जाते है और फिर इस प्रकार एकत्रित तथ्यों और सूचनाओं का विश्लेषण करके प्रयोज्य के सम्बन्ध में निष्कर्ष प्राप्त करते हैं।

वैयक्तिक विषयक अध्ययन विधि के उपयोग - व्यक्तित्व मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस विधि का उपयोग बहुधा उपकल्पनाओं के निर्माण में किया जाता है। गहन अध्ययन के आधार पर प्रयोज्य के सम्बन्ध में तथ्यों की एक विस्तृत रिपोर्ट प्राप्त होती है। इस अध्ययन विधि के द्वारा विभिन्न प्रकार के मानसिक रोगियों के व्यक्तित्व का अध्ययन तो किया जाता है साथ-साथ उनके विशिष्ट व्यवहारों का भी अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति के तनाव और अन्तर्द्वन्द्वों का अध्ययन करने के लिए भी यह विधि उपयोगी है। इस विधि की सहायता से व्यक्तिकी व्यावहारिक समस्याओं के मूल कारणों का अध्ययन करना सबसे लाभदायक रहता है क्योंकि यह एक गहन अध्ययन विधि है।

वैयक्ति विषय अध्ययन विधि की सीमायें - इस अध्ययन विधि की उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त अनेक दोष या सीमायें भी है। इस विधि की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इस विधि द्वारा किसी समस्या का अध्ययन करने में श्रम और समय अधिक खर्च होता है चूँकि यह एक गहन अध्ययन विधि है इसलिए इस विधि द्वारा अध्ययन करने में अधिक समय लगना स्वाभाविक है। अधिक समय लगने के कारण यह विधि एक खर्चीली विधि भी है। इस विधि द्वारा अध्यन करते समय अध्ययनकर्त्ता यदि सावधानी से अध्ययन नहीं करता है और अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं अपनाता है तब इस विधि से प्राप्त परीणामों की विश्वसनीयता सन्देह पूर्ण होती है। इस विधि की एक सीमा यह भी मानी जाती है कि इस विधि द्वारा प्राप्त परिणामों पर अध्ययनकर्त्ता के पक्षपातों और मनोवृत्तियों आदि का प्रभाव पड़ता है।

अभ्यास प्रश्न

1. रेटिंग मापनी एक तरह का .... विधि है।
2. अर्थविभेदक प्रविधि में दो छोर वाले विशेषण शब्द तीन तथ्यों ....,.........., तथा .... से सम्बन्धित होते हैं।
3. नैदानिक साक्षात्कार का प्रयोग .... के क्षेत्र में किया जाता है।
4. क्यू शार्ट प्रविधि को .... ने विकसित किया है।
5. नियंत्रित परिस्थितियों व्यवहार और व्यक्तित्व को देखना निरीक्षण है। सत्य/असत्य
6. व्यक्ति के व्यक्तित्व के किसी एक विशेष चरों का अध्ययन व्यक्तिक विषयक अध्ययन विधि है। सत्य/असत्य

12.4. सारांश

1. व्यवहारिक विधि व्यक्तित्व मापन की वह विधि है जिसमें व्यक्तित्व के एक पक्ष या अनेक पक्षों या सम्पूर्ण व्यक्तित्व का मापन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया जाता है।

2. व्यक्तित्व मापन में साक्षात्कार का प्रयोग सर्वाधिक होता है। साक्षात्कार में भेंटकर्ता व्यक्ति के आमने-सामने की परिस्थति में कुछ प्रश्नों को पूछकर उनके द्वारा की गयी प्रतिक्रियाओं का प्रेक्षण करता है और इसके आधार पर व्यक्तित्व के बारे में आकलन करता है। साक्षात्कार की कई विधियाँ प्रचलन में है।

3. अर्द्धविभेदक प्रविधि में दो छोर वाले विश्लेषण मापनियों की सहायता से अभिवृत्ति विशेषताओं का मापन किया जाता है।
4. क्यू शार्ट प्रविधि के द्वारा व्यक्तियों के अन्य क्रियाओं के वर्गीकृत क्यू वर्णों के मध्य सह-सम्बन्ध ज्ञात किया जाता है।
5. निरीक्षण विधि वह विधि है जहाँ एक प्रेक्षक व्यक्तियों की क्रियाओं का ध्यानपूर्वक प्रेक्षण एक नियंत्रित परिस्थिति या एक वास्तविक परिस्थिति में करता है तथा फिर उनकी क्रियाओं के लेखाजोखा का विश्लेषण कर उसके व्यक्तित्व के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है।
6. रेटिंग मापनी एक ऐसा मापनी है जिसके सहारे व्यक्तित्व के शीलगुणों के बारे मे लिये गये निर्णय को कुछ श्रेणियों में रिकार्ड किया जाता है।
7. व्यक्तिक विषय अध्ययन विधि के द्वारा व्यक्तित्व का गुणात्मक अध्ययन विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर किया जाता है।

12.5. शब्दावली

साक्षात्कार- यह एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा आमने-सामने की प्रक्रियाओं के आधार पर अनुभवों और विचारों आदि का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।
असंरचित प्रकार- यह ऐसी प्रविधि है जिसमें कथनों को किसी कसौटी के आधार पर नहीं बनाया जाता है।
निरीक्षण विधि- स्वभावित परिस्थितियों में घटित होने वाली व्यवहार और व्यक्तित्व के अध्ययन की प्रत्यक्ष तकनीक।
केस स्टडी अनुसूची- व्यक्ति के सम्बन्ध में उसके परिजनों, पड़ोसियों और मित्रों से एकत्रित तथ्य और सूचना।

12.6. अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. व्यावहारिक 2. मूल्यांकन, क्षमता, सक्रियता 3. चिकित्सा 4. विलियम स्टीफेन्स 5. सत्य 6. असत्य

12.7 संदर्भ ग्रंथ

1. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल - बनारसी दास
2. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास
3. प्रतियोगिता मनोविज्ञान, अरूण कुमार सिंह, एवं आशीष कुमार सिंह, मोतीलाल बनारसी दास
4. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, सीताराम जायसवाल, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
5. व्यक्तित्व मनोविज्ञान, मधु अस्थाना एवं किरण बाला वर्मा, मोतीलाल बनारसी दास
6. व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, डी.एन. श्रीवास्तव, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-2

12.8. निबन्धात्मक प्रश्न

1. साक्षात्कार विधि की सहायता से व्यक्तित्व का मापन कैसे करते हैं?
2. साक्षात्कार विधि क्या है? इसकी मनोविज्ञान में क्या उपयोगिता है?
3. व्यक्तित्व मापन की प्रविधि के रूप में क्यू शार्ट प्रविधि का वर्णन कीजिए।

4. व्यक्तित्व मापन की विधि के रूप में श्रेणी मूल्यांकन मापनियों का वर्णन कीजिए।
5. व्यक्तित्व के मापन की विधि के रूप में अर्थविभेदक विधि का वर्णन कीजिए।
6. **निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-**
    1. व्यक्तिक विषय अध्ययन विधि।
    2. नैदानिक साक्षात्कार।
    3. गहन साक्षात्कार।
    4. साक्षात्कार विधि की सीमाएं।

इकाई 13. सीमान्तरेखीय व्यक्तित्व विकृति, आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति, अंतराबंध विकृति एवं स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृतियों का परिचय परिचय (Introduction to Borderline Personality Disorder, Narcissistic Personality Disorder, Schizoid and Paranoid Personality Disorder)

इकाई संरचना

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 व्यक्तित्व विकार
13.3.1 व्यक्तित्व विकार का अर्थ
13.3.2 व्यक्तित्व विकृति के मापदण्ड
13.3.3 व्यक्तित्व विकास का वर्गीकरण
13.3.4 व्यक्तित्व विकास की हेतुकी
13.3.5 व्यक्तित्व विकृति के प्रकार
13.4 व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार
13.4.1 नैदानिक मापदण्ड
13.4.2 लक्षण
13.4.3 उपचार
13.5 मनोविदलित व्यक्तित्व विकार
13.5.1 नैदानिक मापदण्ड
13.5.2 लक्षण
13.5.3 उपचार
13.6 सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार
13.6.1 नैदानिक मापदण्ड
13.6.2 लक्षण
13.6.3 उपचार
13.7 आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति
13.7.1 नैदानिक लक्षण
13.7.2 उपचार
13.8 सारांश
13.9 शब्दावली
13.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.12 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व में भिन्न-भिन्न शीलगुणों व प्रकारों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अर्थात अपूर्व होता है। सामाजिक जीवन के विकास, जटिलताओं एवं प्रतिस्पर्धाओं के साथ-साथ व्यक्तित्व का महत्व काफी बढ़ गया है। व्यक्तित्व शब्द एक व्यक्ति के स्थायी गुणों को इंगित करता है जो विभिन्न परिस्थितियों में उसके व्यवहार से परिलक्षित होती है। व्यक्तित्व की विशेषतायें प्रतिबलक घटनाओं का अनुभव करने वाले कुछ लोगों को सांवेगिक विकारों के लिये अधिक संवेदनशील बना सकती है। इस प्रकार ऐसे लोग जो छोटी-छोटी बातों पर भी चिन्ता करते हैं, में दुश्चिन्ता विकार उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना होती है, चिन्ता करने वाले लोगों में प्रतिबलक घटनाओं की अनुक्रिया में असामान्य व्यवहार उत्पन्न होते हैं। जो लोग अत्यधिक असामान्य व्यक्तित्व वाले होते हैं, उनमें प्रतिबलक घटनायें न होने पर भी आसमान्य व्यवहार उत्पन्न होते हैं।

13.2 उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-
- व्यक्तित्व विकृति को भली-भांति समझ सकें।
- व्यक्तित्व विकृति की पहचान के मापदण्डों से अवगत हो सकें।
- ICD-10 तथा DSM-IV द्वारा रेखांकित व्यक्तित्व विकास के वर्गीकरण को भली-भांति समझ सकें।
- व्यक्तित्व विकृति के प्रकार, उनके नैदानिक मापदण्ड, लक्षण, उपचार को भली-भांति समझ सकें।

13.3 व्यक्तित्व विकार (PERSONALITY DISORDER)

व्यक्तित्व विकास और मानसिक विकास में अन्तर अति आवश्यक है परन्तु अन्तर करना बहुत आसान कार्य भी नहीं है। अगर एक व्यक्ति पहले सामान्य व्यवहार करता था और अब असामान्य व्यवहार करने लगा है तो उसको मानसिक विकार होगा। अगर एक व्यक्ति हमेशा ही असामान्य रूप से व्यवहार करता है तब कहेंगे कि उसे व्यक्तित्व विकार है।

13.3.1 व्यक्तित्व विकृति का अर्थ (Meaning of Personality Disorder):

व्यक्तित्व विकृति का तात्पर्य व्यक्ति के सामाजिक तथा व्यावसायिक व्यवहारों की गड़बड़ी है। व्यक्ति में कुछ ऐसे कुसामायोजी शीलगुण होते हैं जिनके कारण उसके सामाजिक व्यवहार तथा/अथवा व्यवासायिक व्यवहार असमायोजित हो जाते हैं।

सरासन तथा सरासन (Sarason and Sarason, 2003) के शब्दों में-''व्यक्तित्व विकृतियों का तात्पर्य अत्यधिक गहरे, दृढ़, कुअनुकूलित विचार एवं व्यवहार प्रतिरूपों से है जो व्यक्ति के जीवन में शुरू से अन्त तक बने रहते हैं।''

कारसन (Carson 2000) के अनुसार -''व्यक्तित्व विकृतियों का आशय ऐसे अमन्य एवं विकृत व्यक्तित्व एवं व्यवहार प्रतिमानों के विकास से है, जिनके कारण प्रत्यक्षण, चिन्तन सम्बन्धी कुसमायोजित प्रतिमान सदैव प्रदर्शित होते हैं।

DSM-IV 2000 के अनुसार, -''व्यक्तित्व विकारी स्थायी व्यापक वैयक्तिक अनुभव एवं व्यवहार है जो सांस्कृतिक मानकों से विचलित होते हैं, तथा जिसका प्रारम्भ किशोरावस्था या आरम्भिक वयस्कावस्था में होता है जो पूरे समय स्थिर रहता है और जिससे दुःख तथा हानि होती है।'' (Personality disorder is enduring subjective experiences and behavior that deviate from cultural standards, are stable through time and lead to unhappiness and impairment. -DSM-IV ^{TR} 2000)

13.3.2. व्यक्तित्व विकृति के मापदण्ड (Cirteria of Personality Disorder) - मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व विकृति की पहचान (identification) के लिए कई तरह के मापदण्डों का उल्लेख किया है, जो निम्नलिखित हैं:-

(1) पहला मापदण्ड यह है कि व्यक्तित्व विकृति वास्तव में कोई गम्भीर मानसिक विकृति नहीं है। यहाँ अन्य विकृतियों की अपेक्षा बहुत कम विचलन (deviation) देखा जाता है।

(2) दूसरी पहचान या कसौटी यह है कि व्यक्तित्व विकृति वाले व्यक्ति के शीलगुण (traits) इस हद तक कुसमायोजित बन जाते हैं, जिसके कारण व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार तथा व्यवसायिक व्यवहार असमायोजित हो जाते हैं।

(3) तीसरी पहचान यह है कि व्यक्ति के कुसमायोजनात्मक शीलगुण (Maladaptive traits) अपेक्षाकृत स्थाई तथा स्थिर बन जाते हैं।

(4) चौथी पहचान यह है कि व्यक्तित्व विकृति के अन्तर्गत असामाजिक व्यक्तित्व (antisocial personality), मनोग्रस्ती-बाध्यता व्यक्तित्व (obsessive compulsive personality), आत्ममोही व्यक्तित्व (narcissistic personality), स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व (paranoid personality), आदि की गणना की जाती है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मानसिक विकारों की वर्गीकृत योजना Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorder (DSM) सर्वाधिक प्रचलित है जिसका प्रथम संस्करण 1952 में उसका संशोधन 1994 में DSM-IV^{TR} के रूप में हुआ। तथा इसके अतिरिक्त World Health Organization द्वारा International Classification of Diseases (ICD-9)प्रकाशित हुआ जिसमें समस्त शारीरिक एवं मानसिक रागों एवं विकारों का वर्णन है। इसी प्रकार ICD-9 का संशोधन भी ICD-10 के रूप में हुआ। ICD-10 तथा DSM-IV द्वारा रेखांकित व्यक्तित्व विकास के वर्गीकरण कुछ अन्तरों के साथ लगभग समान हैं। ICD-10 में असामाजिक (Dissocial) शब्द का प्रयोग जिस व्यक्तित्व विकार की व्याख्या के लिये किया गया है, उसे DSM-IV में समाज-विरोधी (antisocial) कहा गया है। ICD-10 में Anankastic शब्द का प्रयोग DSM-IV के मनोग्रस्तता-बाध्यता (Obsessive-compulsive) के लिये किया गया हैं इसी प्रकार ICD-10 में दुश्चिन्ता (anxious) का प्रयोग DSM-IV के परिवर्जित (avoidant) के लिये किया गया है। ICD-10 में अस्थिर भावना आवेगात्मक प्रकार (emotionally unstable impulsive type) की व्याख्या की गई है, जबकि DSM-IV में आत्मप्रेमी (narcissistic) तथा निष्क्रिय-आक्रामक (passive-aggressive) प्रकार की व्याख्या की गई है।

13.3.3 व्यक्तित्व विकास का वर्गीकरण (Classification of Personality Disorder) -

ICD-10	DSM-IV
1. व्यामोहिक (Paranoid) 2. मनोविदलित (Schizoid) 3. असामाजिक (Dissocial) 4. अस्थिर भावना (Emotionally instable) 5. आवेगी प्रकार (Impulsive type) 6. सीमान्त रेखीय (Border line) 5. हिस्ट्रीओनिक (Histrionic) 7. मनोग्रस्तता-बाध्यता (Anankastic) 8. दुश्चिन्ता (Anxious) 9. निर्भर (Dependent) 10. 9. अन्य (Other)	1. व्यामोहिक (Paranoid) 2. मनोविदलित (Schizoid) 3.समाजविरोधी (Antisocial) 4. सीमान्त रेखीय (Border Line) 5.हिस्ट्रीओनिक (Histrionic) 6.आत्मप्रेही/आत्मप्रेमी (Narcissistic) 7.मनोग्रस्तताबाध्यता (Obsessivcompulsive) 8.परिवर्जित (Avoidant) 9.निर्भर (Dependent) 10.निष्क्रिय-आक्रामक (Passive aggressive)

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में मानसिक विकारों की वर्गीकृत योजना Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorder (DSM) के अन्तिम संशोधन DSM-IV TR 2000 में 10 व्यक्तित्व विकारों को तीन गुच्छों (clusters)में वर्गीकृत किया गया है, जो निम्न हैं -

The Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders (currently the DSM-IV TR, 2000) lists ten personality disorders, grouped into three clusters in Axis II.

Cluster A (odd or eccentric disorders)

- **Paranoid personality disorder:** characterized by irrational suspicions and mistrust of others.
- **Schizoid personality disorder:** lack of interest in social relationships, seeing no point in sharing time with others, anhedonia, introspection.

- **Schizotypal personality disorder:** characterized by odd behavior or thinking.

Cluster B (dramatic, emotional or erratic disorders)

- **Antisocial personality disorder:** a pervasive disregard for the rights of others, lack of empathy, and (generally) a pattern of regular criminal activity.
- **Borderline personality disorder:** extreme "black and white" thinking, instability in relationships, self-image, identity and behavior often leading to self-harm and impulsivity.
- **Histrionic personality disorder:** pervasive attention-seeking behavior including inappropriately seductive behavior
- **Narcissistic personality disorder:** a pervasive pattern of grandiosity, admiration, characterized by self-importance

Cluster C (anxious or fearful disorders)

- **Avoidant personality disorder:** pervasive feelings of social inhibition and social inadequacy, extreme sensitivity to negative evaluation and avoidance of social interaction.
- **Dependent personality disorder:** pervasive psychological dependence on other people.
- **Obsessive-compulsive personality disorder (not the same as obsessive-compulsive disorder):** characterized by rigid conformity to rules, moral codes and excessive orderliness.

13.3.4 हेतुकी (Etiology)-

व्यक्तित्व विकार के कारणों के ज्ञान का विकास बहुत नहीं हो पाया है, कारण कि काफी समय तक तो इन्हें विकारों के वर्गीकरण में शामिल ही नहीं किया गया था। हम यहॉ मुख्य रूप से जैविक, मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारकों पर ही अपने को यहाँ पर केन्द्रित करेंगे।

1. जैविक कारक- व्यक्तित्व विकार में जैविक कारकों के योगदान के विषय में अमेरिका में 1500 जुड़वाँ व्यक्ति के जोड़ों पर किये गये अध्ययन में अच्छा साक्ष्य मिलता है। अध्ययन में पाया गया कि एक युग्मज (Monozygotic) वाले जुड़वाँ में बहुयुग्मज (Polyzygotic) की अपेक्षा व्यक्तित्व विकार की सम्भावना काफी अधिक होती है। जिन परिवारों में मनोविदलता की घटना का इतिहास पाया जाता है, उन परिवारों में व्यक्तित्व विकार होने की सम्भावना अधिक होती है। मनोविदलता तथा व्यामोहिक या मनोविदलित

व्यक्तित्व विकार के बीच सहसम्बन्ध कम पाया गया। सीमावर्ती (border line) व्यक्तित्व विकार के परिवार में विषाद की घटना सामान्य रूप से अधिक पाई गई तथा प्राय: विषाद तथा सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार साथ-साथ पाये जाते हैं। एक युग्मज वाले जुड़वाँ में मनोग्रस्तता-बाध्यता के शीलगुण सामान्य रूप से अधिक पाये जाते हैं।

2. मनोवैज्ञानिक कारक- मनोवैज्ञानिक कारकों में फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धान्त की भूमिका महत्व पूर्ण है। फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व शीलगुण का सम्बन्ध मनोलौंगिक अवस्थाओं के विकास के एक अवस्था में स्थिरता से है जो व्यक्ति के वातावरण के साथ परस्पर क्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्तित्व के गुणों में प्रकट होती है। फ्रायड ने इसके लिए स्वभाव (Character) शब्द का प्रयोग किया है, उनके अनुसार मुखीय स्वभाव वाले व्यक्ति निष्क्रिय तथा निर्भर होते हैं, क्योंकि उनकी स्थिरता मुखीय अवस्था में होती है, गुदीय स्वभाव वाले व्यक्ति के आन्तरिक आवेगों वाले तथा जिद्दी होते हैं। विलहेम रीश (Wilhelm Reich) ने व्यक्ति के आन्तरिक आवेगों तथा सम्बन्धों में अन्तर्वैयक्तिक दुश्चिन्ता से अपनी सुरक्षा के लिए प्रयोग किये गये विशेष प्रतिरक्षा को स्वभाव कवच (Character armor) के रूप में व्याख्या किया है।

मानव व्यवहार विभिन्नता के साथ-साथ जटिल भी लिए है, जिससे व्यक्तित्व विकार के रोगियों में अन्तर्निहित कारणों को समझने तथा उनकी चिकित्सा करने के लिये यह आवश्यक है कि उनकी मनोरचनाओं को समझा जाये। व्यक्ति अपने जीवन में मनोरचनाओं का प्रयोग विशेष अन्तर्द्वन्द्वों को सुलझाने के लिये करता है। जब मनोरचनायें व्यक्तित्व विकास वाले व्यक्तियों में प्रभावी रूप से कार्य करती हैं तब वे दुश्चिन्ता, विषाद, क्रोध, शर्म, अपराध भावना तथा अन्य भावव्रृत्ति यों को समाप्त करने में सहायकता प्रदान करती हैं। व्यक्तित्व विकार के रोगी विभिन्न स्थितियों में अलग-अलग मनोरचनाओं का प्रयोग करते हैं। एक रोगी कई मनोरचनायें एक साथ प्रयोग करता है। इन्हीं कारणों से व्यक्तित्व विकार के रोगियों द्वारा प्रयोग की जा रही मनोरचनाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।

3. सामाजिक-सांस्कृतिक कारक- व्यक्तित्व विकास में सामाजिक-सांस्कृतिक कारकों की भूमिका बहुत स्पष्ट न होते हुये भी महत्व पूर्ण है। बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के दौरान उनके पालन-पोषण में एकरूपता में कमी वयस्कावस्था में विकार उत्पन्न करती है। एक चिन्ताग्रस्त बच्चे का पालन अगर चिन्ताग्रस्त माँ के द्वारा किया जाता है तो, अपेक्षाकृत उस बच्चे के जिसका पालन एक शान्त और सौम्य माँ के द्वारा किया गया है, उनमें व्यक्तित्व विकार के लिए अति संवेदनशील होता है। ऐसी संस्कृति, जिसमें आक्रामकता होती हैं, बच्चे में परोक्ष रूप से व्यक्तित्व विकार उत्पन्न करने में योगदान करती है सामाजिक वातावरण की भूमिका भी इस प्रकार के विकारों में महत्व पूर्ण स्थान रखती है।

13.3.5 व्यक्तित्व विकृति के प्रकार (Type of Personality Disorder):

व्यक्तित्व विकृति के कई प्रकार हैं, जिनमें से हम जिन व्यक्तित्व विकृति का वर्णन विस्तार से करेंगे, वे है - स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति (paranoid personality disorder), स्कीजोआइड व्यक्तित्व विकृति (schizoid personality disorder), सीमान्त रेखीय (Border Line), तथा आत्मप्रेही/आत्मप्रेमी (Narcissistic)।

13.4. **व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार (PARANOID PERSONALITY DISORDER)-**

व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार की विशेषता यह होती है कि इसमें व्यक्ति लम्बे समय से दूसरे लोगों के प्रति संदेही एवं अविश्वासी होता है। वे सोचते है कि दूसरे लोग इन्हें हानि पहुँचा सकते हैं। वे अपनी भावनाओं के उत्तरदायित्व को अस्वीकर कर दूसरों पर थोप देते हैं। अक्सर वे आक्रोशित, चिड़चिड़े एवं नाराज़ दिखते हैं। जनसंख्या में व्यामोहिक व्यक्तित्व विकास की व्यापकता 0.5 से 2.5 प्रतिशत है। मनोविदलता के रोगियों के सम्बन्धियों में इसकी घटना काफ़ी अधिक पाई जाती है। DSM-IV में नैदानिक मापदण्ड निम्न प्रकार दिया गया है-

व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार का नैदानिक मापदण्ड (DSM-IV Diagnostic Criteria for Paranoid Personality Disorder):

(अ) दूसरों के लिये व्यापक अविश्वास एवं संदेह होता है, जैसे कि उनके उद्देश्यों को द्वेषपूर्ण/अहितकर रूप में प्रस्तुत करते हैं, शुरूआत आरम्भिक व्यस्कावस्था से होती है और कई संदर्भों में उपस्थित होती है जो निम्न में से कम से कम चार या अधिक होना चाहिये-

1. बिना समुचित आधार के यह संदेह कि दूसरी लोग उनका शोषण, हानि या धोखा कर रहे हैं।
2. मित्रों या सहयोगियों के विश्वास या भक्ति के बारे में अनुचित संदेह में विचार-मग्न।
3. अनावश्यक डर के कारण दूसरों पर विश्वास में अनिच्छा, कि सूचनाओं का उसके विरूद्ध द्वेषपूर्ण प्रयोग किया जायेगा।
4. सौम्य (Benign) टिप्पणियों या घटनाओं में छुपे हुये अर्थ या आशंकित अर्थ खोजना/पढ़ना।
5. दुराग्रही दुर्भाव रखना।
6. अपने चरित्र अथवा सम्मान पर हमला देखना जो अन्य को स्पष्ट नहीं होते हैं और तुरन्त ही गुस्से में प्रतिक्रिया या प्रत्याक्रमण करते हैं।
7. अपने जीवन साथी के चरित्र के लिये बिना किसी औचित्य के अथवा अविवेकपूर्ण शंका का भाव।

13.4.2 लक्षण(Symptoms):

व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार के व्यक्तियों में व्यापक एवं अनावश्यक रूप से दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं को खतरनाक समझने की प्रव्रृत्ति होती है। यह आरम्भिक वयस्कावस्था में प्रारम्भ होता है तथा विभिन्न सन्दर्भाें में परिलक्षित होते हैं। वे अपने मित्रों या सहयोगियों के विश्वसनीयता या भक्ति को बिना किसी समुचित औचित्य के विवादित बना देते हैं। ऐसे व्यक्ति विकृत रूप से विद्वेषपूर्ण होते हैं तथा अकारण ही अपने जीवनसाथी की वफादारी पर शक करने लगते हैं। इस विकार के व्यक्ति अपनी भावनाओं को प्रदर्शित करने हेतु प्रक्षेपण (projection) मनोरचना का प्रयोग करते हैं। संदर्भ (reference) के विचार इनके सामान्य लक्षण हैं। इस विकार के व्यक्ति की भावनायें बाधित होती हैं तथा ये असांवेगिक प्रतीत होते हैं।

सामाजिक स्थितियों में व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार के व्यक्ति व्यवसायिक जैसे एवं कुशल प्रतीत होते हैं, परन्तु अक्सर वे दूसरों में डर या अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न कर देते हैं।

अन्तरीय निदान (**Differential Diagnosis**) - व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार का विभेद किसी स्थिर व्यामोह की अनुपस्थिति में व्यामोहिक विकार से किया जा सकता है। व्यामोहिक मनोविदलता विकार के व्यक्ति के विपरीत व्यक्तित्व विकार के व्यक्ति में आकारगत विचार विकृति नहीं पायी जाती है।

13.4.3 उपचार (Treatment):

a) **मनोउपचार** (**Psychotherapy**)- इस विकार के उपचार के लिए मनोउपचार सबसे अधिक उपयुक्त है। इस विकार के उपचार में चिकित्सक को यह ध्यान रखना चाहिये कि घनिष्ठता का विश्वास एवं सहनशीलता ही इस विकार के रोगियों में विशेष परेशानी का कारण होता है। व्यक्तिगत मनोउपचार में चिकित्सकों को पूरी तरह पेशेवर (professional) होने की आवश्यकता है। व्यामोहिक रोगियों में समूह मनोउपचार बहुत लाभदायक नहीं होता है। समूह मनोउपचार का प्रयोग उनमें सामाजिक निपुणता बढ़ाने तथा उनके संदेहात्मक व्यवहार को कम करने के लिये किया जा सकता है।

कभी-कभी व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार के रोगी काफ़ी खतरनाक हो जाते हैं, जिससे चिकित्सक को अपनी क्रियाओं में काफी सतर्क एवं नियन्त्रित रहने की आवश्यकता होती है। व्यामोहिक आरोपों को वास्तविक परन्तु सौम्य/नम्र तरीके से सुलझाना होता है।

b) औषधि उपचार (**Drug therapy**) - औषधि उपचार रोगी की चिन्ता तथा अशान्ति कम करने के लिए किया जाता है। अधिकतर घटनाओं में डायजिपाम(Dizepam)से ही काम चल जाता है। गम्भीर अशान्ति एवं व्यामोहिक चिन्तन की दशा में हेलोपेरिडाल (Heloperidol) जैसे एन्टीसाइकोटिक औषधि का प्रयोग कम मात्रा में करना होता है।

13.5. मनोविदलित व्यक्तित्व विकार (SCHIZOID PERSONALITY DISORDER)-

मनोविदलित व्यक्तित्व विकार का निदान उन व्यक्तियों में किया जाता है, जिनमें लम्बे समय से सामाजिक प्रत्याहार के लक्षण मिलते हैं। ये व्यक्ति आपसी सम्बन्धों में भावनाओं की सीमित अभिव्यक्ति करते हैं तथा समाज में अलग-थलग रहते हैं ये उद्देशहीन जीवन व्यतीत करते हैं। मनोविदलित व्यक्तित्व विकार की व्यापकता बहुत स्पष्ट नहीं है, परन्तु अनुमानतः लगभग 7.5 प्रतिशत व्यापकता मिलती है। इस विकार का अनुपात महिला एवं पुरुष के लिये 1 से 2 का होता है। DSM-IV^{TR} के अनुसार मनोविदलित व्यक्तित्व विकार के नैदानिक मापदण्ड निम्न है-

13.5.1 मनोविदलित व्यक्तित्व विकार के नैदानिक मापदण्ड (DSM-IV TR Diagnostic Personality Disorder)-

(अ) सामाजिक सम्बन्धों से व्यापक तटस्थता तथा अन्तर्वैयक्तिक विन्यासों (interpersonal setting) में भावों की अभिव्यक्ति बाधित होती है, आरम्भिक वयस्कावस्था में प्रारम्भ होती हैं तथा विभिन्न सन्दर्भों में उपस्थित होती है जैसा कि निम्न में से कम से कम चार या अधिक होना चाहिये-

1. अन्तरंग सम्बन्धों की न तो इच्छा होती है और न तो आनन्द ही ले पाते हैं, इसमें परिवार का अंग होना भी सम्मिलित है।
2. लगभग हमेशा एकान्त के कार्यों का चुनाव करते हैं।
3. किसी दूसरे के साथ यौन सम्बन्धों का अनुभव करने में बहुत कम रुचि लेते हैं।
4. कुछ क्रियाओं में ही आनन्द अनुभव करते हैं।
5. निकट सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्तरंग मित्रों या विश्वासपात्रों की कमी होती है।
6. दूसरों की प्रशंसा या आलोचना में उदासीन दिखते हैं।
7. भावात्मक उदासीनता, तटस्थता या कुण्ठित भाववृत्ति प्रदर्शित करते हैं।

(ब) मनोविदलता, मनोविक्षिप्तता के लक्षणों के साथ मनोदशा विकार या अन्य मनोविक्षिप्तता विकार के दौरान अलग से उत्पन्न नहीं होते तथा समान्य चिकित्सकीय स्थितियों के प्रभावों से होते हैं सीधे दैहिक कारणों से नहीं होते।

13.5.2 लक्षण (Symptom)-

मनोविदलित व्यक्तित्व विकार वाले व्यक्ति उदासीन और एकान्तप्रिय होते हैं तथा जीवन की दैनिक घटनाओ में कोई रुचि नहीं लेते हैं। वे शान्त, उदासीन, एकान्तप्रिय तथा असामाजिक दिखाई देते हैं। अपने जीवन को वे कम से कम आवश्यकताओं में चलाते हैं। उनका यौन जीवन कल्पनाओं में होता है। पुरुष विवाह नहीं करते हैं क्योंकि वे अन्तरंगता प्राप्त करने में अक्षम होते हैं, महिलायें निष्क्रिय रूप से आक्रामक पुरुष जो विवाह करना चाहते हैं, से विवाह को राज़ी हो सकती हैं। मनोविदलित व्यक्तित्व विकार के व्यक्ति सामान्यतः सीधे अपने क्रोध को अभिव्यक्त करने में अक्षम होते हैं। यद्यपि ये व्यक्ति अपने में उलझे तथा दिवास्वप्न में खोये होते हैं फिर भी उनमें वास्तविकता पहचानने की सामान्य क्षमता होती है, उनके अकेले होने के कारण ये लोग वास्तव में मूल तथा रचनात्मक विचार दे सकते हैं।

अन्तरीय निदान(Differential Diagnosis)- मनोविदलता के रोगियों तथा मनोविदलता जैसा व्यक्तित्व विकार के विपरीत मनोविदलित व्यक्तित्व विकार के रोगियों के सम्बन्धों में मनोविदलता नहीं पायी जाती है। मनोविदलता के रोगियों की भाँति इनमें चिन्तन विकार या व्यामोहिक चिन्तन नहीं पाया जाता है। मनोविदलता जैसे व्यक्तित्व विकार तथा मनोविदलित व्यक्तित्व विकार में मुख्य अन्तर यह है कि मनोविदलता जैसे रोगी में मनोविदलिता के रोगियों के समान ही प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन, व्यवहार तथा सम्प्रेषण की विचित्रता पाई जाती है।

13.5.3 उपचार (Treatment)-

a) **मनोउपचार (Psychotherapy)-** मनोविदलित व्यक्तित्व विकार के रोगियों की चिकित्सा भी व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार के समान ही है। इन प्रकार के व्यक्तित्व विकार के रोगियों की आत्मविश्लेषण की प्रव्रृत्ति मनोचिकित्सक की अपेक्षाओं के समान होती है। जैसे ही रोगी में मनोचिकित्सक के प्रति विश्वास उत्पन्न होता है रोगी अपनी कल्पनाओं, काल्पनिक मित्रों तथा डर के विषय में चिकित्सक को बता देता है।

समूह मनोउपचार के दौरान इस विकार का रोगी लम्बे समय तक चुप रहता है। चिकित्सक को समूह के अन्य सदस्यों के द्वारा रोगी के चुप रहने की प्रव्रृत्ति के लिए उस पर किये गये आक्रमण से उसे बचाना होता है।

b) **औषधि उपचार (Drug therapy)-** मनोविदलित व्यक्तित्व विकार के कुछ रोगियों को मनोविक्षिप्तता रोधी (antipsychotic) तथा मनोउत्तेजक (psychostimulants) औषधि से लाभ होता है। अन्तर्वैयक्तिक दुश्चिन्ता को कम करने के लिये बेन्जीडाजिपिन (benzodiazepines) का प्रयोग करते है।

13.6. **सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार (BORDERLINE PERSONALITY DISORDER)-**

सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार के रोगी मनःस्ताप एवं मनोविक्षिप्तता के बीच के सीमान्त (border) पर होते हैं तथा उनकी विशेषता सामान्यतः अस्थिर भावव्रृत्ति , मनोदशा, व्यवहार, पदार्थ सम्बन्ध (object relation) तथा आत्म-धारणा होती है। ICD-10 में इस विकार के लिए अस्थिर भावना व्यक्तित्व विकार (emotionally unstable personality disorder) नाम का प्रयोग किया गया है। DSM-IV TR के अनुसार यह विकार प्रारम्भिक व्यस्कावस्था में आरम्भ होता है तथा निम्न मापदण्डों में से कम से कम पाँच उपस्थित होनें चाहिये-

13.6.1 सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार के नैदानिक मापदण्ड (DSM-IV TR Diagnostic Criteria for Borderline Personality Criteria)

(अ) अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों, आत्म-धारणा तथा भाववृत्ति में व्यापक अस्थिरता का प्रतिमान तथा आरम्भिक वयस्कावस्था से प्रारम्भ स्पष्ट आवेगता (impulsivity) तथा विभिन्न सन्दर्भों में उपस्थित होता है जैसा कि निम्न में से कम से कम पाँच या अधिक होना चाहिये-

1. वास्तविक या काल्पनिक अकेलापन से बचने के लिए उग्र प्रयास (आत्मघातकता या आत्म-विकृत व्यवहार को सम्मिलित न किया जाये)।

2. अस्थिर तथा तीव्र अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध जिसकी विशेषता आदर्शीकरण (idealization) तथा अवमूल्यन के बीच एकान्तरण (alternating) होती है।

3. अभिज्ञान बाधा स्पष्टतः तथा निरन्तर अस्थिर आत्म-धारणा।

4. कम से कम दो क्षेत्रों में आवेगता जो सम्भवतः आत्म-क्षति वाले होते हैं उदाहरण-खर्चीलापन, यौन, द्रव्य दुरुपयोग (drug abuse) आदि।

5. बार-बार आत्मघाती व्यवहार, मुद्रा या धमकी या आत्म विकृत व्यवहार।

6. मनोदशा की स्पष्ट प्रतिक्रिया के कारण भावात्मक अस्थिरता (तीव्र-डिस्फोरिया की घटना, चिड़चिड़ापन या दुश्चिन्ता, सामान्यतः कुछ घण्टे का होता है)।

7. खालीपन की चिरकालिक अनुभूति।

8. असंगत, तीव्र क्रोध नियन्त्रण में कठिनाई (बार-बार मिजाज़ दिखाना, बराबर क्रोध, बार बार झगड़ा)।

9. क्षणिक, प्रतिबल सम्बन्धी व्यामोहिक विचारधारा या गम्भीर वियोजनात्मक लक्षण।

13.6.2 लक्षण (Symptom)-

सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार के व्यक्ति अधिकतर हमेशा ही संकट की स्थिति में दिखते हैं। उद्वेलित मनोदशा सामान्य रूप से पायी जाती है। एक समय पर रोगी विवाद प्रिय (argumentative) हो सकते हैं दूसरे समय विषादी तथा बाद में कोई अनुभूति न होने की शिकायत कर सकते हैं। रोगी में पूर्ण मनोविक्षिप्तता के स्थान पर कम अवधि की मनोविक्षिप्तता की घटनायें हो सकती है तथा इन रोगियों के मनोविक्षिप्तता के लक्षण अधिकतर हमेशा सीमाबद्ध, क्षणिक या संदेहास्पद होते हैं। सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार वाले व्यक्तियों के व्यवहार काफी अननुमेय (unpredictable) और उनकी उपलब्धि शायद ही उनकी क्षमताओं के अनुसार होती है।

इस प्रकार के व्यक्तित्व विकार के रोगियों का अन्वैयक्तिक सम्बन्ध उलझा हुआ होता है क्योंकि वे निर्भर तथा शत्रुता अनुभव करते हैं। ये रोगी कभी अपनी कलाई काट लेते हैं या दूसरों से सहायता प्राप्त करने के लिए अन्य प्रकार की आत्म-विकृति उत्पन्न कर लेते हैं, वे जिससे काफी अन्तरंग होते हैं उन पर ही निर्भर करते हैं तथा जब कुण्ठित होते हैं तो वे अपने मित्र के प्रति बहुत क्रोध अभिव्यक्त करते हैं। इस विकार के व्यक्ति अकेला होना सहन नहीं कर सकते। वे अक्सर खालीपन का चिरकालिक अनुभूति की शिकायत करते हैं।

अधिकांश मनोचिकित्सक इस बात से सहमत होते हैं कि ये रोगी तार्किक, क्षमताओं से सामान्य होते हैं। इस प्रकार के रोगी अपने अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों को बिगाड़ लेते हैं।

अन्तरीय निदान (Differential Diagnosis)- सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार के रोगी में लम्बे मनोविक्षिप्तता की घटना, चिन्तन विकार एवं मनोविदलता के अन्य लक्षण की कमी के आधार पर मनोविदलता से अन्तर किया जा सकता है। इस विकार के रोगी में प्रायः खालीपन की अनुभूति और कम समय की मनोविक्षिप्तता की घटनायें होती हैं।

13.6.3 उपचार (Treatment):

a) **मनोउपचार** (**Psycho therapy**)- -सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार के रोगियों के उपचार के लिए मनोउपचार चिकित्सकों के पसन्दीदा उपचार है। जिसमें औषधि उपचार जोड़ देने पर काफी अच्छे परिणाम मिलते हैं। मनोउपचार में रोगी काफी आसानी से प्रतिगमन करते है, आवेगों को निकालते हैं, अस्थिरता या स्थिर नकारात्मक या सकारात्मक अन्यारोपण (transference) दिखाते हैं। जब चिकित्सक इस बात से अनभिज्ञ होता है कि रोगी अचेतन स्तर पर उन्हें एक विशेष व्यवहार करने के लिए बाध्य करने का प्रयास कर रहा है उस समय प्रक्षेपण तादात्मीकरण (projection identification) प्रतिअन्यारोपण (countertransference) उत्पन्न करता है। विखण्डित रोगी में विखण्डित मनोरचनायें मनोचिकित्सक और अन्य लोगों के लिए कभी प्रेम या घृणा उत्पन्न करती हैं। रोगी में आवेगों, क्रोध तथा आलोचना (criticism) और बहिष्करण (rejection) के प्रति संवेदनशीलता में कमी को नियन्त्रित करने के लिये चिकित्सक व्यवहार चिकित्सा का प्रयोग करते हैं। सामाजिक निपुणता प्रशिक्षण के लिये वीडियों टेप आदि का प्रयोग करते हैं जो रोगी को इस बात के लिए सक्षम बनाता है कि वह देखें कि उसकी क्रियायें किस प्रकार दूसरों को प्रभावित करती है और इस प्रकार अपने अन्तवैंयक्तिक व्यवहार में सुधार लाये।

इस विकार के रोगी अक्सर चिकित्सालय में अधिक ठीक होते हैं क्योंकि वहॉ व्यक्तिगत तथा समूह मनोउपचार के साथ व्यावसायिक तथा मनोरंजन चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त उनके चिकित्सा उपचार के लिए प्रशिक्षित स्टाफ भी उपलब्ध रहता है।

2. औषधि उपचार (**Drug therapy**) - औषधि उपचार व्यक्तित्व के विशेष लक्षणों के लिए काफी उपयोगी होता है। एन्टीसाइकोटिक रोगी की शत्रुता और अल्पकालीन मनोविक्षिप्तता की घटना में प्रयोग करते है। विषादरोधी औषधियाँ विवादी मनोदशा में सुधार लाती है। बेन्जोडाय -जिपिन विशेष रूप से दुश्चिन्ता और विषाद में मदद करती है।

13.7. **आत्ममोही व्यक्तित्व विकार** (**NARCISSISTIC PERSONALITY DISORDER**)-

आत्मोही व्यक्तित्व विकृति से ग्रस्त व्यक्ति में आत्म-महत्व, तथा श्रेष्ठता की प्रबल भावना होती है। इनमें महानता, उपलब्धियों का अतिरंजन, तथा श्रेष्ठता की प्रबल भावना होती है। ये अत्यधिक उदण्ड व महत्वाकांक्षी होते हैं। स्वयं में मौजूद विकृतियों को स्वीकार नहीं करते, इसलिए वे उपचार के लिए तैयार भी नहीं होते हैं। नीचें प्रस्तुत लक्षणों में से यदि उनमें न्यूनतम पांच विशेषताएं हैं तो उन्हें इस विकृति में रखा जायेगा।

13.7.1 आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति के नैदनिक लक्षण (DSM-IV TR Clinical Features of Narcissistic Personality Disorder)

1. आत्म-महत्व, तथा श्रेष्ठता की प्रबल भावना।
2. महानता, उपलब्धियों का अतिरंजन।
3. शक्ति, सफलता एवं सौन्दर्य के दिवा स्वप्न में खोये रहते हैं।

4. दूसरों से प्रशंसा, धन तथा लाभ (favour) अधिक चाहते हैं।
5. उपलब्धि से ओतप्रोत भावना, दूसरों से अपने लिये विशेष व्यवहार व अनुपालन (compliance) की उम्मीद करना।
6. दूसरों से ईर्ष्या करते हैं, उनका फायदा उठाते है।
7. अन्य लोगों के साथ सहानुभूति की कमी होती है।
8. अत्यधिक महत्वाकांक्षी होते हैं।
9. उदण्डता (Arrogance) भी अधिक पाई जाती ।

13.7.2 उपचार (Therapy)-

विशेषज्ञों का मत है कि आत्मोही व्यक्तित्व का स्वरूप ऐसा होता है कि वह अपने आप में किसी भी तरह की चिकित्सा का विरोधी करता है। ऐसे लोग यह मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं कि उनमें कुछ असामान्यताएँ हैं जिनका उपचार करना आवश्यक है। यही कारण है कि भाईलैन्ट (Whilent) ने यह सुझाव दिया है कि ऐसे लोगों का उपचार बाहरी रोगी के रूप में नहीं करना चाहिए बल्कि इनका उपचार कुछ खास-खास परिस्थिति जैसे सुधारगृह आदि में रखकर करना चाहिए जहॉ ऐसे लोगों के व्यवहारों में उदंडता कम हो जाती है और वे चिकित्सा के साथ बहुत हद तक सहयोग भी करते हैं। लीमैन तथा मुलभे (Liman & Mulbhe) ने परावलम्बी व्यक्तित्व का वर्णन किया है जिसमें उन्होंने दो तरह की बातों को ऐसे रोगी के उपचार में महत्वपूर्ण बतलाया है। पहली बात तो यह है कि रोगियों को प्रारंभ में ही बतला देना चाहिए कि चिकित्सा की अवधि थोड़ी होगी तथा दूसरी बात यह है कि वे उनकी जिन्दगी चलाने का उत्तदायित्व नहीं लेने जा रहे है। इन बातों को बतलाकर यदि उन्हें चिकित्सीय सत्र दिया जाता है, तो यह काफी लाभकर सिद्ध होता है।

13.8. सारांश

-व्यक्तित्व विकार स्थायी वैयक्तिक अनुभव एवं व्यवहार है जो सांस्कृतिक मानकों से विचलित होते हैं, कठोरता से व्यापक होता है, जिसका प्रारम्भ किशोरावस्था या आरम्भिक वयस्कावस्था में होता है जो पूरे समय स्थिर रहता है और जिससे दुःख तथा हानि होती है।

-ICD-10 तथा DSM-IV द्वारा रेखांकित व्यक्तित्व विकास के वर्गीकरण कुछ अन्तरों के साथ लगभग समान हैं। ICD-10 में असामाजिक (Disocial) शब्द का प्रयोग जिस व्यक्तित्व विकार की व्याख्या के लिये किया गया है, उसे DSM-IV में समाज-विरोधी कहा गया है। ICD-10 में anxious शब्द का प्रयोग DSM-IV के मनोग्रस्तता-बाध्यता के लिये किया गया हैं इसी प्रकार ICD-10 में दुश्चिन्ता (anxious) का प्रयोग DSM-IV के परिवर्जित के लिये किया गया है। ICD-10 में अस्थिर भावना आवेगात्मक प्रकार व्याख्या की गई है, जबकि DSM-IV में आत्मप्रेमी तथा निष्क्रिय-आक्रामक प्रकार की व्याख्या की गई है।

-व्यक्तित्व विकृति के कई प्रकार हैं, वे हैं- स्थिर व्यामोही व्यक्तित्व विकृति, स्कीजोआइड व्यक्तित्व विकृति, सीमान्त रेखीय, तथा आत्मप्रेही/आत्मप्रेमी ।

-व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार में व्यक्ति लम्बे समय से दूसरे लोगों के प्रति संदेही एवं अविश्वासी होता है। वे सोचते हैं कि दूसरे लोग इन्हें हानि पहुँचा सकते हैं। वे अपनी भावनाओं के उत्तर दायित्व को अस्वीकर कर दूसरों पर थोप देते हैं। वे अपनी भावनाओं के उत्तर दायित्व को अस्वीकार कर दूसरों पर थोप देते हैं।

- मनोविदलित व्यक्तित्व विकार में लम्बे समय से सामाजिक प्रत्याहार के लक्षण मिलते है। ये व्यक्ति आपसी सम्बन्धों में भावनाओं की सीमित अभिव्यक्ति करते हैं तथा समाज में अलग-थलग रहते हैं ये उद्देश्यहीन जीवन व्यतीत करते हैं।

-सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार के रोगी मनःस्ताप एवं मनोविक्षिप्तता के बीच के सीमान्त पर हाते है तथा उनकी विशेषता सामान्यतः अस्थिर भाववृत्ति, मनोदशा, व्यवहार, पदार्थ सम्बन्ध तथा आत्म-धारणा होती है।

-आत्मोही व्यक्तित्व विकृति से ग्रस्त व्यक्ति में आत्म-महत्व, तथा श्रेष्ठता की प्रबल भावना होती है। इनमें महानता, उपलब्धियों का अतिरंजन, तथा श्रेष्ठता की प्रबल भावना होती है। ये अत्यधिक उदण्ड व महत्वाकांक्षी होते हैं। स्वयं में मौजूद विकृतियों को स्वीकार नहीं करते, इसलिए वे उपचार के लिए तैयार भी नहीं होते हैं।

13.9. शब्दावली

स्थिर व्यामोह - बिना समुचित आधार के दूसरे लोगों के प्रति संदेही एवं अविश्वास रखना।

मनोविदलित व्यक्तित्व - सामाजिक सम्बन्धों से व्यापक तटस्थता तथा अन्तर्वैयक्तिक विन्यासों में भावों की अभिव्यक्ति।

आत्मोही व्यक्तित्व - आत्म-महत्व, महानता, उपलब्धियों तथा श्रेष्ठता की प्रबल भावना से ग्रस्त व्यक्ति।

व्यक्तित्व विकृति -का तात्पर्य व्यक्ति के सामाजिक तथा व्यावसायिक व्यवहारों की गड़बड़ी है। व्यक्ति में कुछ ऐसे कुसामायोजी शीलगुण का होना जिनके कारण उसके सामाजिक व्यवहार तथा/अथवा व्यवासायिक व्यवहार गड़बड़ बन जाते हैं।

सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार - रोगी मनःस्ताप एवं मनोविक्षिप्तता के बीच के सीमान्त पर हाते है।

13.10. अभ्यास प्रश्न -

1.भिन्न-भिन्न शीलगुणों व प्रकारों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अर्थात अपूर्व होता है .... कहलाता है।

2........................ का तात्पर्य अत्यधिक गहरे, दृढ़, अपअनुकूलित विचार एवं व्यवहार प्रतिरूपों से है जो व्यक्ति के जीवन में शुरू से अन्त तक बने रहते हैं।

3. ICD-10 में .... शब्द का प्रयोग DSM-IV के मनोग्रस्तता-बाध्यता के लिये किया गया हैं।

4. .... व्यक्तित्व विकार के विशेषता होती है कि इसमें व्यक्ति लम्बे समय से दूसरे लोगों के प्रति संदेही एवं अविश्वासी होता है।

5. ....व्यक्तित्व विकार के रोगी मनःस्ताप एवं मनोविक्षिप्तता के बीच के सीमान्त पर होते है।

उत्तर-

1. व्यक्तित्व 2. व्यक्तित्व विकृति 3.anankastik
4. व्यामोहिक व्यक्तित्व 5. सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार

13.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, पटना
2. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

3. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान आर एन सिंह, अंजुम कुरेशी, शुभा् भारद्वाज, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
4. मनोविकृति विज्ञान-विनती आनन्द एवं श्रीवास्तव- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
5. मनोविकृति विज्ञान-अजय कुमार श्रीवास्तव-विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

13.12. निबंधात्मक प्रश्न -

1. व्यक्तित्व विकार से आप क्या समझते हैं? व्यक्तित्व विकृति के मापदण्डों का वर्णन करें।
2. व्यक्तित्व विकार का वर्गीकरण एवं हेतुकी पर प्रकाश डालिए।
3. मनोविदलित व्यक्तित्व विकार के नैदानिक मापदण्ड तथा लक्षणों का वर्णन करें।
4. व्यामोहिक व्यक्तित्व विकार के नैदानिक मापदण्ड तथा उपचार का वर्णन करें।
5. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें:
   (अ) सीमावर्ती व्यक्तित्व विकार (ब) आत्ममोही व्यक्तित्व विकृति

इकाई14. मनोस्नायु विकृति के कारण एवं उपचार: चिंता, दुर्भीति, मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति, रूपांतर हिस्ट्रिया एवं मनोविच्छेदी विकृति (Causes & Treatment of Psychoneuroses: Anxiety, Phobia, Obsessive Compulsive Disorder, Conversion Hysteria and Dissociative Disorder)

इकाई संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 मनस्ताप

14.3.1 मनस्ताप का नवीन वर्गीकरण

14.4 सामान्यीकृत चिन्ता विकृति

14.4.1 अर्थ

14.4.2 लक्षण

14.4.3 कारण

14.4.4 उपचार

14.5 दुर्भीति मनस्ताप

14.5.1 अर्थ

14.5.2 लक्षण

14.5.3 प्रकार

14.5.4 कारण

14.5.5 उपचार

14.6 मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति

14.6.1 अर्थ

14.6.2 प्रकार

14.6.2.1 मनोग्रस्तता

14.6.2.2 बाध्यता

14.6.3 नैदानिक लक्षण

14.6.4 कारण

14.6.5 उपचार

14.7 रूपान्तर विकृति

14.7.1 अर्थ

14.7.2 लक्षण

14.7.3कारण

14.7.4 उपचार
14.8 मनोविच्छेदी विकृति
14.8.1 अर्थ
14.8.2 प्रकार
14.8.2.1 मनोविच्छेदी स्मृतिलोप
14.8.2.2 मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति
14.8..2.3 मनोविच्छेदी पहचान विकृति
14.8.2.4 व्यक्तित्व लोप विकृति
14.8.2.5 अन्यत्र न वर्णित मनोविच्छेदी विकृति
14.8.3 कारण
14.8.4 उपचार
14.9 सारांश
14.10 शब्दावली
14.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.13 निबन्धात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

मनस्ताप एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग उन व्यवहार वर्गों के लिये किया जाता है जो अनुक्रिया प्रकट करने के पारम्परिक तरीकों से विचलित होते हैं। जब यही विचलन अधिक तीव्र हो जाता है तो मनोविक्षिप्ति (psychotic) शब्द का प्रयोग किया जाता है। DSM.IV^{TR} में 'मनस्ताप'(neuroses)नामक नैदानिक वर्ग (diagnostic class)का प्रयोग नहीं किया गया है , न लक्षणों के किसी समूह को 'मनस्ताप' नाम नैदानिक वर्ग का नाम दिया गया है। परन्तु अनेक मनोचिकित्सकों ने अनेक विचलित व्यवहार के नैदानिक वर्गों (diagnostic categories) को मनस्ताप ही की संज्ञा देते हैं।

14.2 उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप.
- मनस्ताप को भली.भांति समझ सकें।
- ICD.10 तथा DSM.IVTR द्वारा रेखांकित मनस्ताप के वर्गीकरण को भली.भांति समझ सकें।
- सामान्यीकृत चिन्ताविकृति, दुर्भीति, मनोग्रस्ति.बाध्यता विकृति, रूपान्तर विकृति एवं मनोविच्छेदी विकृति का अर्थ, प्रकार, उनके नैदानिक मापदण्ड, लक्षण, कारण व उपचार को भली.भांति समझ सकें।

14.3 **मनस्ताप (Neuroses)**

DSM.IVTR में 'मनस्ताप'(neuroses)नामक नैदानिक वर्ग (diagnostic class)का प्रयोग नहीं किया गया है और न लक्षणों के किसी समूह को 'मनस्ताप' नाम नैदानिक वर्ग का नाम दिया गया है। परन्तु अनेक मनोचिकित्सकों ने अनेक नैदानिक वर्गों (diagnostic categories)को मनस्ताप ही की संज्ञा देते हैं यथा दुश्चिन्ता विकृतियाँ

(anxiety disorders)देहरूपी विकृतियाँ (somatoform disorders)वियोजी विकृतियाँ (dissociative disorders) लैंगिक विकृतियाँ (sexual disorders)एवं कुमानोदशा विकृतियाँ (dysthmic disorders) उत्पन्न होते हैं।

14.3.1 मनस्ताप का नवीन वर्गीकरण (New classification of Neurosis)

मानसिक रोगों एवं विकारों के वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण ICD.10 से ICD.9 के 'मनस्ताप' शब्द को हटा कर उसके स्थान पर मुख्य वर्ग 'मनस्ताप', बलाघात सम्बन्धित एवं देह रूप विकार (**neurotic, stress related and somatoform disorder)** रखा गया है जिसका वर्गीकरण अधोप्रस्तुत हैः.

1.भीतिक दुश्चिन्ता विकार (Phobic anxiety disorders ICD.F40)

2.अन्य दुश्चिन्ता विकार (Other anxiety disorders ICD.F41)

3.मनोग्रस्ति.बाध्यता विकार (Obsessive.compulsive disorders ICD.F42)

4.तीव्र बलाघात प्रतिक्रियाएँ एवं समायोजन विकार (Reaction to severe stress and adjustment disorder.ICD.F435)

5.वियोजनात्मक (संपरिवर्तन) विकार (Dissociative conversion disorders ICD.F44)

6.देहरूपी विकार (Somatoform disorders.ICD F45)

7.अन्य मनस्तापी विकार (Other neurotic disorders.ICD.F48)

मुख्य मनस्तापी विकारों का वर्णन अधोलिखित हैः.

14.4 सामान्यीकृत चिन्ताविकृति (Generalized Anxiety Disorder)

14**.4.1 सामान्यीकृत चिन्ता विकृति का अर्थः** सामान्यीकृत चिन्ता विकृति वास्तव में चिन्ता विकृति (anxiety disorder)का एक प्रकार है। इस मानसिक विकृति को स्वतंत्र प्रवाही विकृति (free.floating disorder) भी कहते है। इस विकृति में चिन्ता इतना अधिक चिरकालिक (chronic and persistent) तथा व्यापक (pervasive)हो जाती है कि यह स्वतन्त्र प्रवाही लगने लगती है। इस मानसिक विकृति को चिन्ता.प्रतिक्रिया (anxiety reaction) भी कहते है।

सरासन तथा सरासन (Sarason and Sarason, 2003)ने इस मानसिक विकृति की एक समग्र परिभाषा दी है। उनके अनुसार. सामान्यीकृत चिन्ता विकृति का तात्पर्य (persistent)चिन्ता से है जो कम से कम एक महीना तक बनी रहती है और जिसमें कई लक्षण सम्मिलित होते है. गति तनाव, स्वचालित अतिक्रिया, आशंकित प्रत्याशा, सतर्कता तथा अवलोकन। इस परिभाषा के विश्लेषण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती है.

1. सामान्यीकृत चिन्ता विकृति एक मानसिक रोग है जिसमें (persistent)चिन्ता पायी जाती है।
2. यह रोग कम से कम एक माह तक ठहर सकता है।
3. इसमें गति तथा लक्षण पाया जाता है।
5. इसमें आशंकित प्रत्याशा की विशेषता पायी जाती है।

14.4.2 लक्षण (symptoms)

सामान्यीकृत चिन्ता के लक्षणों को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैः.

1.गति.तनाव (Motor tension) .सामान्यीकृत चिंता विकृति (GAD) के रोगी में गति.तनाव देखा जाता है। इस लक्षण से पीड़ित व्यक्ति उत्तेजित, खींचा (tense) तथा प्रत्यक्षतः कंपायमान (visibly shaky)होता है और

वह शिथिल रहने या विश्राम करने में असमर्थ होता है। रोगी की मुखाकृति (facial expression) खाँसेदार भौंह (turrowed brows) तथा गम्भीर आहों (deep sighs) से परिपूर्ण प्रायः तनी हुई होती है।

2. स्वायत्त प्रतिक्रिया क्षमता (autonomic reactivity). इस मानसिक रोग का एक लक्षण स्वायत्त प्रतिक्रिया क्षमता जिसमें सहानुभूतिक (sympathetic) तथा उपसहानुभूतिक स्नायु मंडल (para sympathetic nervous system) अधिक क्रियाशील रहते है। परिणामतः रोगी में पसीना बहनाए चक्कर, धड़कता हुआ हृदयए सर्द एवं चिपचिपा हाथ, गड़बड़ पेटए बार.बार पेशाब या पाखाना होना, गले में सूजन तथा नाड़ीस्पंदं तथा श्वसन गति में तेजी आदि लक्षण पाए जाते है।

3. भविष्य के प्रति आशंक्ति भाव (Apprehensive feelings about the future). सामान्यीकृत चिन्ता विकृति (GAD) का एक लक्षण यह है कि इस विकृति से पीड़ित रोगी अपने भविष्य के संबंध में चिंतित तथा सशंकित रहता है। वह यह सोच.सोच कर सशंकित रहता है कि उसका भविष्य असुरक्षित और उसका भविष्य उसके लिए दुर्भाग्यपूर्ण सि) हो सकता है। इसके साथ.साथ रोगी अपने सम्बंधियों, मित्रों अथवा अपनी मूल्यवान सम्पत्तियों के सम्बन्ध में सशंकित तथा चिंतित रह सकता है।

4. अति सतर्कता (Hypervigilance). सामान्यीकृत चिन्ता विकृति से पीड़ित रोगी अपने जीवन के प्रति संतरी जैसी उपागम (sentry approach) रखता है। वह अपने जीवन के प्रति अतिसतर्कता की नीति रखता है। वह निरन्तर वातावरण को खतरों से परिपूर्ण समझता है, यद्यपि वह खतरों को अलग.अलग बतलाने में प्रायः सफल नहीं होता है। इस अतिसतर्कता का बाधक प्रभाव रोगी की निद्रा पर पड़ता है।

5. सहज ध्यानभंग (Easy distraction). अतिसतर्कता तथा अतिसंवेदनशीलता के कारण रोगी का ध्यान आसानी से भंग होता रहता है। ध्यान भंग के कारण रोगी किसी एक विषय या वस्तु पर अपने ध्यान को केंद्रित नही कर पाता है।

6.**चिड़चिड़ापन एवं अतिसंवेदनशीलता (Irritability and sensitivity)** .सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के रोगी प्रायः चिड़चिड़ा बना रहता है और साधारण बात पर भी अति उत्तेजन एवं अतिसंवेदनशीलता व्यक्त करता है।

7. स्वतन्त्र प्रवाही चिन्ता (Free floating anxiety) . इस मानसिक रोग का सबसे प्रमुख तथा प्रभेदक लक्षण (distinguishing symptom) स्वतंत्र प्रवाही चिंता है। यह लक्षण मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त पर आधारित प्रवाही भाव (floating affect) के जैसा है, जिसका तात्पर्य ऐसी संवेगात्मक अवस्थाओं से है जो किसी खास वस्तु या घटना से सम्ब) नहीं होती है। इसी पृष्ठभूमि में स्वतंत्र प्रवाही चिन्ता का तात्पर्य व्यथा के सामान्यीकृत भावों से है, जो मौलिक कारणात्मक परिस्थितियों से स्वतंत्र हो गए हों। ऐसी स्थिति में स्वतंत्र प्रवाही चिंता असपष्ट, अवास्तविक, चिरकालिक, (persistent)तथा व्यापक होती है। आपको स्पष्ट हुआ होगा कि सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के उपर्युक्त कई लक्षण होते है।

14.4.3 कारण (Etiology or causes).सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के निम्नलिखित कारण हैः.

1.मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological factors).मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति के विकास में मनोवैज्ञानिक कारकों का हाथ होता है। सिगमण्ड फ्रॉयड के अनुसार इस रोग का कारण इड (id) तथा (ego) (ego) के आवेगों (impulses)के बीच अचेतन द्वन्द्व (unconscious conflicts) है। इड की कामुक (sexual) अथवा आक्रमणशील (aggressive) जब चेतन रूप से संतुष्ट नहीं हो जाती है तो वे अचेतन

में दमित हो जाती है। किन्तु ये दमित या अचेतन इच्छाएँ अपनी अभिव्यक्ति एवं संतुष्टि के लिए हमेशा प्रयत्यशीलता रहती हैं, किन्तु (ego) इस पर रोक लगाए रहता है क्योंकि इसे दण्ड का भय लगा रहता है। इस प्रकार इड तथा (ego) के विरोधी आवेगों से उत्पन्न द्वन्द्व व संघर्ष के कारण व्यक्ति चिन्ता का शिकार बन जाता है। यह चिन्ता शुरू में विशिष्ट स्वरूप की होती है किन्तु बाद में स्वतंत्र प्रवाही बन जाती है।

2.अधिगम कारण (Learning factors).अधिगम मॉडल (Learning) अथवा व्यवहारवादी मॉडल के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति के विकास में बाह्य कारकों (external factors) का हाथ होता है। दूसरे शब्दों में यह चिंता विकृति का स्रोत (source)वास्तव में वातावरणीय कारक हैं। उल्पे (Wolpe) 1958 के अध्ययन से इस विचार का समर्थन होता है।

3.व्यवहारवादी मॉडल(Behavioural model). व्यवहारवादी मॉडल के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति भी क्लासिकी अनुकूलन (classical conditioning)पर आधारित होती है। बारलो (Barlow 1988) के अनुसार अनिवार्य घातक घटना के लगातार प्रभावन (exposure) के कारण यह विकृति विकसित होती है। चूहे व मनुष्य पर किए गए अध्ययन से प्राप्त परिणाम इस दृष्टिकोण के पक्ष में है (Mowrer and Viek)

4.संज्ञानात्मक कारक (Cognitive (factors).संज्ञानात्मक दृष्टिकोण के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति का आधार व्यक्ति का विकृत संज्ञान (distorted cognition) है। संज्ञान का अर्थ है प्रत्यक्षण, चिंतन, विवेक इत्यादि। व्यक्ति किसी उत्तेजना से उत्तेजित होते समय क्या प्रत्यक्षण करता है, कैसे प्रत्यक्षण करता, वह क्या सोचता है, कैसे सोचता है आदि का गहरा प्रभाव जिस रूप में उसकी मानसिकता पर पड़ता है उसी के अनुकूल परिणाम घटित होते हैं। इसीलिए एक घटना से भिन्न.भिन्न लोगों में भिन्न.भिन्न प्रभाव देखे जाते हैं। विशेष रूप से अस्पष्ट घटनाओं या परिस्थितियों के प्रति व्यक्ति घातक या संभावित शकुनात्मक परिणामों को आरोपित करके चिंता का शिकार बन जाता है।

5.जैविक कारक (Biological factors).जननिक दृष्टिकोण के अनुसार सामान्यीकृत चिंता विकृति वंशागत होती है। जो माता.पिता या पूर्वज इस रोग से पीड़ित होते है, उनके बिच्चे भी इस रोग से पीड़ित हो जाते है। स्लेटर तथा शिल्ड्स (Slater and Shields 1969) ने समान जुड़वाँ बच्चों के 17 जोडों तथा असमान जुड़वाँ बच्चों (Fraternal twins) के 18 जोड़ों का अध्ययन किया, प्रत्येक जोड़े का एक बच्चा चिन्ता स्नायुविकृति से पीड़ित था। देखा गया कि समान जुडवाँ बच्चों के 49% तथा असमान जुडवॉं बच्चों के 4% सह.जुडवाँ बच्चे (co.twins) भी चिंता स्नायु.विकृति से पीड़ित थे। टोरगरसेन (Torgersen,1983)ने यही सामंजस्य (concordance) सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के लिए समान जुड़वाँ तथा असमान जुड़वाँ बच्चों के जोड़े में भी पाया। लेकिन, वंशानुक्रम को इस रोग के लिए अपवर्जक (predisposing) कारक नहीं माना जा सकता है। कारण, इस रोग से पीड़ित सभी पूर्वज या माता.पिता के बच्चे इस रोगी से पीड़ित नहीं होते हैं। दूसरी ओर सामान्य माता.पिता के बच्चे भी इस रोग से पीड़ित हो जाते है। अतः निश्चित रूप से इसके अन्य कारण भी हैं।

14.4.4 उपचार (Treatment).

सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के उपचार के लिए निम्नलिखित चिकित्सा विधियों का उपयोग आवश्यकता के अनुसार किया जा सकता हैः.

1. मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychoanalytic therapy). मनोविश्लेषण के अनुसार इस मानसिक रोग का कारण (ego) (महव) की दुर्बलता से उत्पन्न अचेतन में दमित इड (id) की लैंगिक इच्छा के चेतन में उपस्थित

होने की धमकी है। अतः इसके उपचार के लिए (ego) को पुर्नसंरचित करना तथा सबल बनाना आवश्यक है। अतः (ego) को सबल बनाकर इस रोग का उपचार किया जा सकता है।

2.व्यवहार चिकित्सा (Behaviour therapy).व्यवहारवादी विचारधारा के अनुसार इस रोग का कारण रोगी में आत्मक्षमता तथा आत्मविश्वास की कमी है। अतः मॉडलिंग (Modeling),मौखिक निर्देश, प्रवर्तन अनुकूलन आदि के माध्यम से रागी के आत्मविश्वास तथा आत्मक्षमता को बढ़ाकर उसे रोगमुक्त किया जा सकता है।

3.संज्ञानात्मक चिकित्सा (Cognitive therapy).संज्ञानात्मक उपागम (Cognitive approach) के अनुसार इस रोग का कारण दोषपूर्ण संज्ञान (faulty cognition) है। अतः रोगी के प्रत्यक्षीकरण, विश्वास तथा चिंतन करने के ढंग में परिवर्तन लाकर इस रोग का उपचार किया जा सकता है।

4.मेडिकल चिकित्सा (Medical (therapy).सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के उपचार लिए चिन्ता विरोधी औषधों (anti.anxiety drugs) का उपयोग काफी प्रभावी (effective) होता है।

अतः आप द्वारा सामान्यीकृत चिन्ता विकृति के रोगी के उपचार के लिए उपर्युक्त चिकित्सा प्रविधियों में से एक अथवा एक से अधिक प्रविधियों का उपयोग किया जा सकता है।

14.5 दुर्भीति मनस्ताप (Phobia).

14.5.1 दुर्भीति विकृति का अर्थ. दुर्भीति एक बहुत ही सामान्य चिन्ता विकृति है जिसमें व्यक्ति किसी ऐसे विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति से सतत् एवं असंतुलित मात्रा में डरता है जो वास्तव में व्यक्ति के लिए कोई खतरा या न के बराबर खतरा उत्पन्न करता है। 'सेलिगमैन एवं रोजेनहान' ने दुर्भीति को इस प्रकार परिभाषित किया है. ''दुर्भीति एक सत्त डर प्रतिक्रिया है जो खतरे के वास्तविकता के अनुपात से परे होता है।'' डेविसन एवं नील'ने दुर्भीति को कुछ और स्पष्ट ढंग से इस तरह परिभाषित किया है, ''मनोरोगविज्ञानियों द्वारा दुर्भीति को एक विघटनकारी, डर.व्यवहत परिहार जो किसी खास वस्तु या परिस्थिति से उत्पन्न खतरा के अनुपात से अधिक होता है तथा जिसे प्रभावित व्यक्ति द्वारा आधारहीन समझा जाता है, के रूप में परिभाषित किया गया है।''

14.5.2 लक्षण (**Symptom**).

अमेरीकन मनश्चिकित्सक संघ के अनुसार दुर्भीति के निम्नांकित लक्षण होते हैं.

1. किसी विशिष्ट परिस्थिति या वस्तु से इतना अधिक सत्त डर जो वास्तविक खतरा के अनुपात से कहीं अधिक होता है।
2. व्यक्ति को उस विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति से सामना होने पर अत्यधिक चिंता या विभीषिका दौरा भी उत्पन्न हो जाता है।
3. व्यक्ति या रोगी यह समझता है कि उसका डर अत्यधिक या अवास्तविक है।
4. व्यक्ति दुर्भीति उत्पन्न करने वाली परिस्थिति या वस्तु से दूर रहना पसंद करता है।
5. अगर उपर्युक्त लक्षणों कोई और विशेष रोग से उत्पन्न न हुए हों।
6. दुर्भीति के अनेक प्रकार हैं।

14.5.3 दुर्भीतियों के प्रकार. सभी दुर्भीतियों के तीन सामान्य प्रकार इस प्रकार बतलाये गये हैं

अ. विशिष्ट दुर्भीति

ब. एगोरा दुर्भीति

स. सामाजिक दुर्भीति, इन तीनों का वर्णन इस प्रकार है.

1.विशिष्ट दुर्भीति (Specific Phobia) .एक ऐसा असंगत डर होता है जो विशिष्ट वस्तु या परिस्थिति की उपस्थिति या उसके अनुमान मात्र से ही उत्पन्न होता है। जैसे, बिल्ली से डरना या मकड़ा से डरना विशिष्ट दुर्भीति का उदाहरण है। संपूर्ण दुर्भीति का करीब 3 प्रतिशत ही विशिष्ट दुर्भीति होता है।

2.'एगोराफोबिया' (Agor Phobia).'एगोराफोबिया' का शब्दिक अर्थ भीड़.भाड़ या बाजार स्थलों से डर होता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि एगोराफोबिया में कई तरह के डर सम्मिलित होते हैं जिसका केन्द्र बिन्दु सार्वजनिक या आम स्थान ही होता है जहॉं से व्यक्ति को ऐसा विश्वास होता है कि किसी तरह की घटना या दुर्घटना होने पर न तो कोई बचाव संभव है और न कोई बचाने के लिए ही आ सकता है। खरीदारी करने के लिए जाने से डर, भीड़.भाड़ वाले स्थानों में प्रवेश से डर, यात्रा करने से डर आदि एगोराफोबिया के सामान्य अंश है।

3.सामाजिक दुर्भीति (Social Phobia). सामाजिक दुर्भीति वैसे दुर्भीति को कहा जाता है जिसमें व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति का सामना करना पड़ता है। व्यक्ति को ऐसी परिस्थिति में यह डर बना रहता है कि उसका मूल्यांकन लोग करेंगे। फलतः वह ऐसी परिस्थितियों से दूर हटना चाहता है, चिंतित तथा काफ़ी घबड़ाया हुआ दिखता है।

14.5.3 (Etiology or causes). अन्य असमानताओं की ही भांति दुर्भीति में भी पूर्वनिहित कारण विद्यमान होते है। दुर्भीति सम्बन्धी स्थितियों का वर्णन कोलमैन ने इस प्रकार किया है.

1.चिन्ता का विस्थापन (Displacement of anxiety). दुर्भीति में प्रतिबल या दबावपूर्ण स्थिति से उत्पन्न चिन्ता का विस्थापन किसी अन्य वस्तु या स्थिति में हो जाता है। व्यक्ति में अर्न्तनिहित अचेतन चिन्ता का रूप केवल विस्थापित ही नहीं होता बल्कि कभी कभी प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त भी होता है, अचेतन चिन्ता को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त करने में अह्म को अपनी वास्तविकता का आभास नहीं हो पाता तथा वह अवमूल्यन से बच जाता है।

2.खतरनाक आवेगों के प्रति सुरक्षाः आन्तरिक धमकी (Defence against dangerous impulses: internal threats) .फोबिया का कारण व्यक्ति की दमित आक्रामकता या लैंगिक आवेगों (aggressive or sexual impulses) को भी माना जाता है। इस तरह का आवेग व्यक्ति को खतरनाक स्थिति में ला सकता है। व्यक्ति इस खतरनाक स्थिति से बचने के लिए फोबिया की प्रतिक्रियाओं का सहारा ले लेता है। यहॉं भी चिन्ता विस्थापित हो जाती है जिससे व्यक्ति भयतीत होता है। जैसे.एक पति के अचेतन मन में अपनी पत्नी को पानी में गिराकर मारने की इच्छा उठती है तो उसमें पानी से भय (water phobia)उत्पन्न हो सकता है।

3.सम्बन्ध प्रत्यावर्त्तन (Conditioning).एक सरल भय प्रतिक्रिया के संबंध होने से कारण भी फोबिया का विकास होता है। यहॉं व्यक्ति संबंध प्रत्यावर्तन के कारण फोबिया की भय.परिस्थिति से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। अनेक प्रयोगों के आधार पर यह देखा गया है कि भयावह उत्तेजक के साथ सामान्य उत्तेजक को भी प्रस्तुत किया जाए तो आगे चलकर सामान्य उत्तेजक ही भयावह उत्तेजक का रूप ले लेता है। इसका सुन्दर उदाहरण वाटसन के मशहूर प्रयोग में देखा होगा जिसमें अलवर्ट नामक बच्चा आवाज से डरते.डरते रोयेदार खिलौने से भी डरने लगा।

14.5.4 दुर्भीति मनस्ताप का उपचार (Treatment of Phobia Neurosis).

दुर्भीति के रोगियों के उपचार के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है। उपचार की विधि का निर्धारण करने के पूर्व इसके मुख्य कारण का ज्ञान आवश्यक है उचार हेतु मनोचिकित्सा से लेकर व्यवहार रूपान्तरण तथा

विद्युत आघात तक की चिकित्सा की आवश्यकता पड़ सकती है। मनोचिकित्सक को रोगी के साथ इतनी घनिष्ठता स्थापित करने की आवश्यकता होती है ताकि रोगी अपने प्रेम, घृणा, कुण्ठा अपराध व पाप भावनाओं को खुलकर अभिव्यक्त कर सकें। इससे रोग के मूल स्रोत को समझने में आसानी होती है। फोबिया के रोगियों के उपचार के लिए विभिन्न प्रकार की विधियों का सहारा लिया जाता है। इसका उपचार किस प्रकार किया जाए यह इसके उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का स्वरूप क्या है इस पर निर्भर करता है। सारी बातों का पता लगाकर क्रमश: विसम्बन्ध प्रत्यावर्तन (systematic deconditioning),तनावहीनता (relaxation) आदि के प्रयोग द्वारा रोगी को स्वस्थ किया जाता है। चिन्ता के मूल स्रोत की जानकारी के पश्चात् रोगी को धैर्यपूर्वक तथा विश्वास के साथ ऐसी चिन्ता का सामना करने के लिए उसके व्यवहार को धीरे-धीरे परिवर्तित करना होता है। व्यवहार के ऐसे रूपान्तरण की दो मुख्य विधियाँ है.

(1) असम्बद्धता (systematic deconditioning). इस विधि द्वारा व्यक्ति के गलत परिवेश से अधिगमित भय एवं चिन्ता को दण्ड या अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के सहयोग से समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। इस विधि के उपयोग में यह उद्देश्य रहता है कि व्यक्ति अपने अतार्किक पूर्व अनुभवों को भूल जाय तथा पुनः उसका तार्किक अधिगम कर सके।

(2) असंवेदनशीलता (Desensitization). इसका अर्थ है भय की स्थिति में वस्तु के प्रति व्यक्ति को असंवेदनशील बनाना। उदाहारणार्थ यदि एक व्यक्ति को तिलचट्टा से डर लगता है, तो पहले उसके समक्ष प्लास्टिक का तिलचट्टा लाया जाय, फिर धीरे.धीरे इस तिलचट्टे को इतना निकट तक लाते रहना चाहिए जब तक वह इस विषय के प्रति असंवेदनशील न हो जाय।

(3) विद्युत आघात (Shock Therapy) .यदि दुर्भीति ग्रस्त व्यक्ति को उपरोक्त विधियों से लाभ नहीं मिल पाता है तब रोगी को विद्युत आघात मिलने पर रोगी में सुधार दिखाई देने लगता है। किन्तु इस उपचार विधि के उपयोग में पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि कभी.कभी विद्युत आघात से रोग और भी उग्र और तीव्र होने की आंशका रहती हैं।

14.5.2 मनोग्रस्ति.बाध्यता विकृति (Obsessive.Compulsive Disorder) O.C.D.

मनोग्रस्ति.बाध्यता विकृति का अर्थ . मनोविकृति के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अवलोकन से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि प्रारम्भिक काल में मनोवैज्ञानिक मनोग्रस्ता (obsession) और बाध्यता (compulsion) को दो अलग.अलग मानसिक रोग मानते थे। मनोग्रस्तता का तात्पर्य मस्तिष्क में बार.बार घटित होने वाले चिन्तन, कल्पना, प्रतिमा आदि से सम्बन्धित उन प्रक्रियाओं को लिया जा सकता है जो चेतना में स्वैच्छिक रूप से प्रवेश करती हैं जिनका स्वरूप असंगत, अर्थहीन और अतार्किक होता है तथा उन पर नियन्त्रण प्राप्त करना कठिन होता है इसी प्रकार बाध्यता का तात्पर्य व्यवहार पुनरावृति (behaviour repetition) से लिया जाता है जिसमें व्यक्ति एक ही कार्य को बार.बार करता है अपनी व्यथा को कम करने के लिए अथवा किसी विपत्ति को रोकने के लिए वह ऐसा करता है। यद्यपि वह इसे निरर्थक समझता है (Fisher, 1958; Page 1960; Kisker, 1985; Seligman & Rosenhan, 1998; Davison & Neale, 1996)। परन्तु बाद में अनुसंधानकर्ताओं ने इसे एक ही मनस्ताप के दो रूप माना क्योंकि वे इन दोनों के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं मानते हैं।

Cameron (1978) के अनुसार‘‘मनोग्रस्तता बाध्यता प्रतिक्रियाओं से तात्पर्य उन बाह्य रूप से व्यर्थ किन्तु अदम्भ पुर्नरावृत्यात्मक कार्यो, शब्दों, विचारों से लिया जाता है जिनका उद्देश्य तनाव अथवा चिन्ता को कम

करने के लिये कुछ निषेधात्मक कार्य में आसक्त होकर अथवा ऐसे आसक्तता को अस्वीकार करके अथवा उसके प्रति सावधान रहकर अथवा आवेग के प्रति वशीभूत होकर अपने को दण्डित करता है।

DSM.IV (1995) में इस मनोविकृति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है.''मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति का वर्णन पुनरावर्ती मनोग्रस्ति अथवा बाध्यता के रूप में किया जाता है, जो तीव्र होता है तथा अधिक अवधि के लिये होता है, जो महत्वपूर्ण व्यथा अथवा क्षति का कारण होता है।'' मनोग्रस्ति.बाध्यता विकृति में पुनरावर्ती (Recurrent) मनोग्रस्तताएँ अथवा बाध्यताएँ पाई जाती हैं (प्रथम कसौटी), जो दीर्घावधि तक तीव्र होता है (द्वितीय कसौटी) अथवा तीव्र निराशा उत्पन्न करता है अथवा महत्वपूर्ण ढंग से क्षति करता है (तृतीय कसौटी), तथा यह क्षुब्धता (disturbance) औषधियों के प्रत्यक्ष शारीरिक प्रभाव अथवा सामान्य चिकित्सकीय दशाओं (general medical conditions) के कारण नहीं पाई जाती है (DSM IV 1995)।

14.6.2 मनोग्रस्तता बाध्यता विकृति के प्रकार .

14.6.2.1 मनोग्रस्तता (Obsession): (1958) के अनुसार. ''मनोग्रस्तता की परिभाषा एक ऐसे विशिष्ट मानसिक अथवा अव्यक्त क्रिया के रूप में किया जा सकता है जिसे व्यक्ति अतार्किक समझता है तथा उस पर व्यक्ति का नियंत्रण नहीं होता है।'' Seligman & Rosenhan (1988) के अनुसार. ''ऐसी पुनरावर्ती प्रतिमाओं और आवेगों को मनोग्रस्तता की संज्ञा दी जाती है, जो चेतन में प्रवेश करते हैं तथा उन्हें नियंत्रित करना अथवा समाप्त करना कठिन होता है।''

मनोग्रस्तताएँ स्थाई विचारों (ideas), चिन्तनों (thoughts), आवेगों (impules) अथवा प्रतिमाओं (image) के रूप में होती हैं, जिनका अनुभव अनाधिकृत प्रवेश (intrusive) एवं अनुपयुक्तता (inappropriateness) के रूप में किया जाता है, जो व्यक्ति में सुस्पष्ट (marked) चिन्ता अथवा व्यथा (distress) के कारण होता है।

14.6.2.2 बाध्यता (Compulsion): बाध्यता एक ऐसा व्यवहारपरक लक्षण है, जिसमें रोगी में अपनी इच्छा के विरू) किसी कार्य को करने की प्रबल प्रेरणा पाई जाती है। व्यक्ति का यह व्यवहार अवांछित अतार्किक एवं असंगत होता है जैसे रुपये को बार.बार गिनना, हाथ धोना, कन्धे उचकाना, ताला बन्द करके बार.बार खींचना, चोरी करना, आग लगाना, रुपये को धुल लेना, किसी विशेष ब्रांड के साबुन से कपड़े धुलना आदि। इन सब क्रियाओं को व्यक्ति अपने सामान्य जीवन में करता है, लेकिन जब इन क्रियाओं में अतिरंजन (magnification) पाया जाता है तो व्यक्ति का व्यवहार मनोविकृतिजन्य हो जाता है। Davison & Neale (1986) के अनुसार. ''बाध्यता एक पुनरावर्ती व्यवहार है जिसे सम्पादित करके व्यक्ति अपनी व्यथा को काम करने अथवा किसी संकट को रोकने के लिए करता है।''बाध्यता के दो प्रकार. अनुवर्ती बाध्यता (yieding compulsion) एवं नियन्त्रण बाध्यता (controlling compulsion) होते हैं। अनुवर्ती बाध्यता में रोगी किसी क्रिया को करने का प्रबल दबाव अनुभव करता है, जैसे.बार.बार जेब में हाथ डलकर देखना कि कोई महत्वपूर्ण कागज तो नहीं रह गया है, जबकि नियन्त्रित बाध्यता में रोगी किसी क्रिया को नियन्त्रित करने का प्रयास करता है, जैसे.किसी अनैच्छिक इच्छा के मन में आने पर किसी दूसरे कार्य में अपने को लीन करना।

14.6.3 नैदानिक लक्षण.

DSM.IVTR में बाध्यता के सन्दर्भ में निम्नलिखित नैदानिक लक्षणों का वर्णन किया गया है.बाध्यता वह मनोविकृतिजन्य व्यवहार है जिसमें.

1. पुनरावृत्तिक क व्यवहार (हाथ धोना, वस्तुओं को क्रमब) करना, जाँच करना, अथवा मानसिक क्रियाएँ (प्रार्थना करना, गिनना, शान्ति से शब्दों को दुहराना) पाई जाती है। व्यक्ति इन क्रियाओं को बाध्यता के प्रतिक्रियास्वरूप करता है अथवा किसी नियम का दृढ़ता से पालन करता है।

2. व्यवहारों और मानसिक कार्यों का उद्देश्य कुछ भयानक घटनाओं अथवा परिस्थितियों से सम्बन्धित व्यथा को कम करना अथवा रोकना होता है। यद्यपि इन व्यवहारों और मानसिक कार्यों का सम्बन्ध यथार्थता से नहीं होता है जिनकी अत्यधिक मात्रा को वह तटस्थ करने अथवा रोकने का प्रयास करता है।

3. विकृति की अवधि में रोगी यह जानता है कि उसकी मनोग्रस्तता अथवा बाध्यता अयथार्थपरक तथा अतिशय है।

4. मनोगस्तता अथवा बाध्यता व्यक्ति में स्पष्ट व्यथा के कारण होते हैं, समय व्यथित होते हैं (जो दिन में एक घण्टे से अधिक समय ले सकता है) अथवा व्यक्ति के दैनिक दिनचर्या, व्यवसायपरक अथवा शैक्षणिक प्रकार्यों अथवा सामाजिक क्रिया कलापों अथवा सम्बन्धों में समस्या उत्पन्न करते हैं। यदि प्रथम आयाम की विकृतियाँ रोगी में पाई जाती है तो विषय.वस्तु मनोग्रस्तता अथवा बाध्यता तक ही प्रतिबन्धित नहीं होता।

14.6.4 कारण (etiology).

1. जैविक कारक (Biological Factors):अनेक चिकित्सकीय अध्ययनों से यह परिणाम प्राप्त किया गया है कि (Serotonin) में अनियमितता के पाये जाने पर मनोग्रस्ति.बाध्यता विकृति के लक्षण उत्पन्न होते हैं। प्रदत्त यह प्रदर्शित करते है कि (Serotonin) उत्पन्न करने वाली औषधियाँ तन्त्रिका.प्रेषण प्रणाली को प्रभावित करने वाली औषधियों की तुलना में अधिक प्रभावित करती है, परन्तु मनोग्रस्ति बाध्यता विकृति का कारण (Serotonin) है या नहीं, यह चित्र स्पष्ट नहीं है। रोगी के अग्र प्रखण्ड (frontal lobes), बेसल गैंगलिया (basal ganglia) तथा सिंगुलम (cingulum) की क्रियाशीलता में वृद्धि होने से मनोग्रस्तता.बाध्यता विकृति के उत्पत्ति में सहायक होते हैं। प्रकार्यात्मक मस्तिष्क.कल्प अध्ययनों से प्राप्त प्रदत्त संरचनात्मक मस्तिष्क कल्प अध्ययनों से प्राप्त प्रदत्त का समर्थन करते हैं। उपलब्ध आनुवांशिकी (genetics) प्रदत्त यह प्रदर्शित करते है कि मनोग्रस्ति.बाध्यता विकृति के उत्पत्ति में आनुवांशिकी कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विद्युतीय.दैहिक निद्रा विद्युत मस्तिष्कीय आरेख तथा तन्त्रिका अंतस्रावी अध्ययनों से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि अवसाद विकृति एवं मनोग्रस्ति.बाध्यता में अनेक उभयनिष्ठताएँ पायी जाती है।

Lenane et. al (1990) ने यह परिणाम प्राप्त किया है कि रोगी के 30 प्रतिशत सम्बन्धी भी मनोग्रस्ति.बाध्यता विकृति से ग्रस्त थे। इसी प्रकार कुछ अध्ययनो में यह परिणाम भी प्राप्त किया गया है कि **Encephalitis** होने पर, मस्तिष्क में चोट लगने पर, मस्तिष्क में ट्यूमर होने पर भी मनोग्रस्ति .बाध्यता विकृति के लक्षण पाये जाते हैं।

2.**मनोविश्लेषणात्मक कारक (Psychoanalytical factors):** मनोविश्लेषणवाद के समर्थकों का यह विश्वास है कि मूलप्रवृत्यात्मक शक्तियों के कारण मनोग्रस्तता.बाध्यता पाई जाती है। यह मूल प्रवृत्तियाँ आक्रामक होती है। इनके अनुसार सुरक्षात्मक उपायों के ढूँढ़ने के प्रयास में OCD का शिकार हो जाता है। व्यक्ति में उत्पन्न लक्षण इड तथा सुरक्षात्मक मनोरचनाओं के परस्पर संघर्ष का परिणाम होता है। इस संघर्ष में कभी इड और कभी सुरक्षात्मक मनोरचनाएँ प्रबल होती हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संघर्ष उत्पन्न करने वाली चिन्ता व्यक्ति में OCD को उत्पन्न करने में सहायक होती है, उदाहरणार्थ. यदि व्यक्ति में किसी को जान से मार देने का विचार

उत्पन्न होता है तो इसका अर्थ यह होगा कि उसमें इड की शक्तियाँ अधिक प्रबल हैं, जो लक्षण अधिकांशतः उत्पन्न होते हैं, वे किसी एक सुरक्षात्मक मनोरचना की आंशिक सफलता को व्यक्त करते हैं।

3. **व्यवहारपरक कारक (Behavioral Factors):** व्यवहारवादी सिद्धान्तवेत्ता Meyar & Chesser (1970) तथा Hogson & Rachman (1972) का मत है कि OCD एक अधिगमित व्यवहार है, जिसका पुनर्बलन उनके परिणामों के द्वारा होता है। इन परिणामों में एक परिणाम भय में कमी का होना है। जैसे.बार.बार हाथ धोने, रात में सोने से पहले सारे बर्तनों को उलट कर रख देना की बाध्यता Shakespear के प्रसि) नाटक Macbeth में भी Lady Macbeth king Duncan की हत्या के बाद बार.बार हाथ धोने की बाध्यता एक नैमित्तक पलायनवादी अनुक्रिया है जो कीटाणुओं अथवा गन्दगी के संदूषण की मनोग्रस्तता को कम करता है. (cleaning compulsion)। जाँच बाध्यता (cheking compulsion) भी इसका एक उपयुक्त उदाहरण है, जिसमें रोगी बार.बार ताले को खींच कर यह देखता है कि खुला तो नहीं रह गया है।

4. मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Factors): मनोग्रस्तता.बाध्यता विकृति के कारणों के सन्दर्भ में मनोवैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है, क्योंकि OCD के उत्पन्न होने का केवल एक कारण नहीं है, वरन् अनेक कारण है, जिनका वर्णन अधोप्रस्तुत है:.

1.**विचारों और क्रियाओं को स्थानापन्न करना (Substiutive thought and activities)**. इस रोग में असुखद और खतरनाक विचार और क्रियाएँ असुरक्षित विचारों में प्रतिस्थापित हो जाते हैं। जैसे. अंधेरे में जा रहे व्यक्ति के मन में यह विचार आये कि ‘‘मैं डर नहीं रहा हूँ।’’ इस प्रकार वह अपने भय को कम करता है तथा असुखद और खतरनाक विचारों को सुरक्षित मनोग्रस्तता विचारों से प्रतिस्थापित करता है। इसी प्रकार एक नये अनुसंधान कार्य में लगकर या किसी बड़े उपन्यास को लिखकर बाध्यात्मक क्रियाओं को प्रतिस्थापित करता है। उसके यह कार्य पूर्ण नहीं होते, किन्तु उन कार्यों में अपने को व्यस्त रखकर असुखद समस्याओं तथा विकारों को कम करता है।

2.**दमित काम सम्बन्धी आवेगों का प्रबल तनाव (Intense tension of sexual impulses)**. मनोग्रस्तता से ग्रस्त रोगी अपने अचेतन में दमित काम सम्बन्धी आवेगों के भयवाह तनाव से अत्यधिक पीड़ित रहता है। दोषपूर्ण दमन के कारण दमित आवेग अभिव्यक्ति के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं, जिससे व्यक्ति में प्रबल तनाव बना रहता है। यह क्रियाएँ अचेतन रूप से सम्पन्न होती है। अतः रोगी अपने चिन्ता के वास्तविक स्रोत का नहीं जान पाता और उसमें अत्यधिक शंकाएँ उत्पन्न होती रहती है। ऐसे तनाव से मुक्ति पाने के लिए एक विशेष निरर्थक क्रिया बार.बार करते देखा जाता है।

3.**अपराध भावना और दण्ड का भय (Guilt and fear of punishment)**. मनोग्रस्तता.बाध्यता के लक्षण उत्पन्न होने में रोगी में अपराध भावना तथा आत्म अवमूल्यन भी एक कारण है। इन भावनाओं की उत्पत्ति घृणित और अनैतिक इच्छाओं के कारण उत्पन्न होती है। सफाई पसंद होने के कारण एक व्यक्ति अनेक बार हाथ धोता था तथा अनेक बार स्नान करता था। मनोविश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि वह किसी आवांछित कार्य को करता था, जिसको उसके माता.पिता ने घृणित बताया था। इस आदत के कारण उसे बार.बार दण्डित भी किया जाता था, इसलिए उसमें OCD के लक्षण उत्पन्न हो गये थे।

4.**कर्मकाण्डी व्यवहार तथा रूढ़िपालन (Ritualisitc behaviour and support of convention)**. OCD से ग्रस्त रोगी कर्मकाण्डों, क्रियाओं तथा रूढ़िगत व्यवहारों को सम्पादित करके जीवन में आने वाली

अचानक दुर्घटनाओं, विपत्तियों तथा कष्टों के बचाव के लिए प्रयास करता है। इन कार्यों की पुनरवृत्तिक से व्यक्ति का विश्वास इन कार्यों में उत्पन्न हो जाता है।

5.**व्यवस्थता तथा व्यवहार की निश्चयात्मकता की कठोरता** (**Rigidity of order and predictability of behaviour**). इसमें रोगी संसार की अनिश्चित एवं भयावह परिस्थितियों से घबड़ा कर उनके प्रति एक प्रकार की व्यवस्था तथा व्यवहार की निश्चयात्मकता स्थापित करने का अत्यधिक प्रयास करते देखा जाता है। वह कट्टर नियम पालक बनकर अपनी दिनचर्या को सीमित तथा सुनिश्चित कर देना चाहता है। ऐसा करके वह अपने अहं की सुरक्षा करता है।

6.**अन्तर्मुखी व्यक्तित्व** (**Introvert personality**). अन्तर्मुखी व्यक्ति अधिक भावुक तथा संवेदनशील होते हैं। इनमें असुरक्षा की भावना पायी जाती है। ऐसे व्यक्ति कठोर शासक बनकर रहते हें। किसी विशेष क्रिया के प्रति अत्यधिक जागरूकता आगे चलकर OCD का रूप ले लेती है।

4.**मनो.सामाजिक कारक** (**Psycho.Social Factors**): Kaplan & Sadock (1997) ने OCD के उत्पत्ति के लिए अनेक मनोसामाजिक कारकों को उत्तरदायी ठहराया है, जिनमें व्यक्तित्व कारकों तथा मनोगतिक कारकों को अत्यधिक प्रमुखता दी है। बहुत से OCD के ऐसे रोगी होते हैं, जिनमें पूर्वग्रस्त (premorbid) मनोग्रस्तता के लक्षण नहीं पाये जाते हैं तथा ऐसे लक्षण OCD के विकास के लिए न तो आवश्यक होते हैं और न पर्याप्त ही। मनोगतिक कारकों में अलगाव (isolation), विनाश (undoing), प्रतिक्रया निर्माण (reaction formation), द्वैधवृत्तिक (ambivalance) ,ऐन्द्रजालिक चिन्तन (magical thinking) आदि को लिया जा सकता है।

14.6.5 उपचार (**Treatment**).OCD के उपचार के लिये अनेक चिकित्सकीय प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है:

1.**औषधि.उपचार** (**Pharmacotherapy**). OCD के उपचार में अनेक अध्ययनों में औषधि.उपचार की प्रभावोत्पादकता को प्राप्त किया गया है। ऐसे विकृतियों में अवसादरोधी (antidepressants½) और चिन्ताहारक (anxiolytic) औषधियों का प्रयोग किया जाता है, उनका प्रयोग उपयुक्त मात्रा में उपचार हेतु किया जा सकता है। यद्यपि अवसादरोधी के बन्द कर देने पर OCD के लक्षणों के प्रकट होने की सम्भावना पुनः बढ़ जाती है। Kaplan & Sadock (1997) का मत है OCD के उपचार का प्रारम्भ (Serotonin Serotonin specific Reputake Inhibitor (SSRI) या Clomipramine (anafranil) से करना चाहिए। यदि SSRI औषधि प्रभावशील न हो, तो अन्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। प्रत्येक SSRI उदाहरणार्थ. Fluoxetine, Fluvoxamine, Paroxetine rFkk Sertraline का प्रयोग करके OCD का उपचार किया जा सकता है। इनकी उच्च मात्रा अधिक प्रभावशाली होती है। यद्यपि SSRI से निद्रा क्षुब्धता (sleep disturbance), वमन (nausea), दस्त, सिरदर्द चिन्ता, बेचैनी (restlessness) आदि अनेक प्रकार के कुलक्षणों के पाये जाने की सम्भावना पायी जाती है। Clomipramine को सर्वप्रथम Food & Drug Association (FDA) ने OCD के उपचार के लिये अनुमोदित किया। OCD के उपचार के लिए इन औषधियों के अतिरिक्त Venlafaxine, Phenelzine, Buspirone, L.tryptophan एवं Clonazepam का भी प्रयोग किया जा सकता है। (Foa & Kozak 1993)।

2.**व्यवहार चिकित्सा** (**Behaviour Therapy**).OCD के उपचार में व्यवहार चिकित्सा का भी काफी योगदान रहा है। व्यवहार चिकित्सा के लिए सामान्यतया तीन प्राविधियों.मॉडलिंग , फ्लडिंग एवं अनुक्रिया निवारण (response prevention) का प्रयोग किया जाता है। इन विधियों का प्रयोग Rachman, Marks & Hodgson

1973; Roper, Rachman & Marks 1975; Marks & Rachman 1978; Saltzman & Thaler 1981 ने अपने अध्ययनों में किया है। इन अनुसंधानकर्ताओं ने अपने अध्ययन में इन तीनों विधियों का संयुक्त उपयोग करके बार.बार हाथ धोने के OCD के उपचार में सफलता प्राप्त की है (Modelling), चिकित्सक जब हाथ धोने के OCD को दूर करने के लिए खूब रगड़ कर हाथ धोने का निर्देश देता है (Flooding), तथा जब रोगी बिना हाथ धोये कुछ घंटों तक अपने हाथ को उसी प्रकार रखता है (Response prevention)। इन कार्यों की पुनरावृत्तिक करने OCD का उपचार किया जा सकता है।

3.**मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychoanalytic Therapy)**. इन प)ति का उपयोग करने से रोग के लक्षणों को स्थायी रूप से दूर किया जा सकता है, किन्तु यह प)ति उसी समय सफल होगी, जब चिकित्सक को रोगी का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो। इस विधि में चिकित्सक रोगी के दमित मानसिक संघर्ष के बारे में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। यद्यपि यह विधि अधिक प्रभावशाली नहीं सि) हुई है (Laughlin 1976)।

4.**टोपेक्टोमी (Topectomy)**. जब अन्य चिकित्सा प)तियों द्वारा रोगी को लाभ नहीं पहुँचता है, तब इस विधि के द्वारा चिकित्सा की जाती है। इस चिकित्सा प)ति में ऑपरेशन द्वारा cerebral cortex के कुछ भागों को ऑपरेशन द्वारा निकाल दिया जाता है, जिससे रोगी के चिन्तन शक्ति को क्षति पहुँचती है और वह रोगमुक्त हो जाता है।

14.7 रूपान्तर विकृति या उन्माद (Conversion Disorder or Conversion Hysteria)

14.7.1. अर्थ तथा स्वरूप (Meaning and Nature).

DSM.IVTR (1994) के पहले रूपान्तर.उन्माद को स्नायुविकृति अथवा मनोस्नायुविकृति का एक प्रकार माना जाता था। लेकिन DSM.IVTR में दो तरह के परिवर्तन किए गए। पहला परिवर्तन यह किया गया कि स्नायुविकृति या मनोसनायुविकृति के स्थान पर चिन्ता विकृति (anxiety disorder)शब्द का उपयोग किया गया। दूसरा परिवर्तन यह किया गया कि रूपान्तर उन्माद के स्थान पर रूपान्तर विकृति शब्द का उपयोग किया गया तथा इसे कायप्रारूप विकृति का एक प्रकार माना। अतः यह बात स्मरण रखना चाहिए कि रूपान्तर विकृति तथा रूपान्तर उन्माद समानअर्थी शब्द हैं।

सरासन तथा सरासन (Sarason and sarason2003) ने रूपान्तर विकृति (रूपान्तर उन्माद) के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा कि ‘‘रूपान्तर विकृति कायप्रारूप विकृतियों का एक प्रकार है जिसमें शारीरिक कार्यो में क्षति या परिवर्तन होते है, जिनसे शारीरिक रोग का संकेत मिलता है, परन्तु वे मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति प्रतीत होते है।

रेबर तथा रेबर (Reber and Reber2001) ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ‘‘रूपान्तर विकृति एक कायप्रारूप विकृति है, जिसमें मानसिक द्वन्द्वो का रूपान्तरण दैहिक लक्षणों के रूप में हो जाता है। उन्होंने यह भी कहा है कि रूपान्तर विकृति को रूपान्तर प्रतिक्रिया (conversion reaction)) रूपान्तर उन्माद (conversion hysteria) या उन्माद स्नायुविकृति (hysteria neurosis) भी कहते है।

14.7.1 लक्षण (Clinical Features).

रूपान्तर उन्माद, उन्माद स्नायुविकृति तथा रूपान्तर विकृति समान अर्थ वाले मानसिक रोग है। इस बात को ध्यान में रखते हुए इसके लक्षणों को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैः.

1.**पेशीय या शारीरिक लक्षण (Motor symptoms)**.पेशीय लक्षणों में शारीरिक रोग देखे जाते है। रोगी स्नायु.प्रकम्पन (neural tremors),एस्टासिया.एबास्यिा(astasia.abasia),एफोनिया(aphonia),गूँगापन (mutism), उन्मादी ऐंठन (hysterical convulsion), मिरगी (epilepsy), मूर्छा (Faint), आदि लक्षण देखे जाते है।

पेशीय लक्षणों अथवा शारीरिक लक्षणों लकवा सबसे अधिक प्रमुख तथा स्पष्ट है। रोगी के अंगविशेष में लकवा मार देता है। कभी किसी एक अंग में और कभी किसी दूसरे अंग में लकवा मार देता है। जैसे.जाँघ, हाथ आदि अंगों में लकवा का लक्षण विकसित हो जाता है। लेकिन, लकवा का कोई शारीरिक या दैहिक आधार नही होता है। सामान्य अंगों की तरह लकवाग्रस्त अंग में भी सहजक्रियाएँ होती रहती है। जाँघ में लकवाग्रस्त होने पर रोगी चलने.फिरने में असमर्थ हो जाता है, किन्तु बिछावन पर पड़े.पडे अपने को हिलाने में असमर्थ होता है। इसी तरह विश्व युद्ध के समय कुछ सैनिकों के पैर तथा हाथ लकवाग्रस्त हो गयें। वे चलने.फिरने तथा बन्दूक हाथ से पकड़ने में असमर्थ पाए गए। लेकिन मेडिकल जाँच से उन अंगो में कोई शारीरिक या दैहिक दोष नही पाया गया।

2.**संवेदी लक्षण (sensory symptoms)**. संवेदी लक्षण का तात्पर्य ऐसे लक्षणों से है जिनका सम्बन्ध ज्ञानेन्द्रियों के कार्यो की विकृतियों से है, हालाँकि इन ज्ञानेनिद्रयों में कोई शारीरिक या दैहिक दोष नहीं होता है। रूपान्तर उन्माद या रूपान्तर विकृति के रोगी में पाये जाने वाले मुख्य लक्षण है.

(क) **दृष्टि विकृति (visual disorder)**. उन्माद या रूपान्तर विकृति के रोगी में पूर्ण या आंशिक या कार्यात्मक अंधापन (functional blindness) पाया जाता है। आँखो की शारीरिक रचना में कोई दोष नही होता है। रोगी एक वस्तु या व्यक्ति को देख सकता है जबकि विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति को देखने में असमर्थ होता है।

(ख) **श्रवण विकृति (Auditory disorder)**. रोगी में श्रवण में पूर्ण या आंशिक बहरापन देखा जाता है। दृष्टि संवेदना के साथ.साथ श्रवण संवेदना के क्षेत्र में भी विशिष्ठ बहरापन देखा जा सकता है। रोगी को कोई आवाज सुनाई पड़ती है और कोई दूसरी आवाज सुनाई नही पड़ती है।

(ग) **संवेदनशीलता विकृति (Sensitivity disorder)**. इस विकृति के अन्तर्गत एनेस्थेसिया (anesthesia), हाइपेस्थेसिया (hypesthesia), हाइपेरेस्थेसिया (hyperes.thesia), एनलगेसिया (analgesia), पारेस्थेसिया (paresthesia) आदि शामिल होते है। एनेस्थेसिया का अर्थ यह है कि रोगी के किसी अंग से संवेदनशीलता समाप्त हो जाती है। जब शरीर के ऊपरी अंगों जैसे हाथ या कलाई में संवेदनशीलता की क्षति होती है तो इसे गलोव एनस्थेसिया (glove anasthesia) कहते है और जब शरीर के निचले अंग जैसे. पैर में यह क्षति होती है तो इसे पैर.एनस्थेसिया (foot anasthesia) तथा स्टॉकिंग एनस्थेसिया (stocking anasthesia) कहते है।

3. उन्माद एटैकसिया (Hysterical ataxia). रूपान्तर उन्माद अथवा रूपान्तर विकृति में ऐच्छिक पेशीय गतियों में आंशिक अथवा पूर्ण क्षति देखी जाती है, जिसका आधार तंत्रिकीय (neural) नहीं होता है। इसे ही उन्माद एटैक्सिया कहा जाता है। इसका प्रमाण ऊपर के विवरण से मिलता है।

अतः अब आप उपर्युक्त लक्षणों के आलोक में रूपान्तर उन्माद अथवा रूपान्तर विकृति के रोगी की पहचान करा सकतें हैं।

1**. अचेतन लैंगिक इच्छाएं (Etiology or causes)**. मनोविश्लेषणात्मक सिद्वान्त के अनुसार रूपान्तर उन्माद या रूपान्तर विकृति के विकास में अचेतन इच्छाओं और विशेष रूप से दमित लैंगिक इच्छाओं का हाथ होता है। सिगमण्ड फ्रायड के अनुसार जिन लैंगिक इच्छाओं की संतुष्टि चेतन स्तर पर नहीं होती है उनका दमन

(repression) या दलन (suppression) अचेतन में हो जाता है। लेकिन, अचेतन स्तर पर भी वे सक्रिय रहती है, जिससे अचेतन द्वन्द्वो (बवदसिपबजे) की उत्पत्ति होती है। इन्ही द्वन्द्वों का समाधान शारीरिक लक्षणों के रूप में होती है।

2. गुप्त आक्रमणशील आवेग (hidden aggressive urge). रूपान्तर विकृति अथवा उन्माद के विकास में निषिद्व या वर्जित आक्रमणशील आवेग का हाथ होता है। जैसे.एक अनुभवी तथा सफल सर्जन का दाहिना हाथ अचानक लकवाग्रस्त हो गया। मेडिकल जॉच से उसके हाथ में कोई कायिक दोष (somatic defect) नही पाया गया। मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा से ज्ञात हुआ कि सर्जन अपनी बहू के प्रति लैंगिक इच्छा रखता था, जिसकी संतुष्टि के लिए उसके पति अर्थात् अपने बेटे को ठिकाना लगाना जरूरी था। एक दिन उसने अपने बेटे का अपने हाथों से हत्या करने का निश्चय किया। उसका यही आक्रमणशील आवेग आत्म दण्ड के उद्देश्य से हाथ के लकवा के रूप में रूपान्तरित हो गया और उसे अपने द्वन्द्वों से मुक्ति मिल गयी।

3**. भयानक तथा संकटमय परिस्थितियॉ (Dreadful and threatening situation)** .अध्ययनों तथा निरीक्षणों से पता चलता है कि उन्माद अथवा रूपान्तर विकृति के विकास में भयानक तथा संकटमय परिस्थितियों का हाथ होता है। डेविसन तथा नील (1996) ने दस संदर्भ में कहा है कि युद्ध या लड़ाई से भयानक तथा संकटमय परिस्थिति से बचाव के लिए सैनिक में उन्माद के लक्षण जैसे.लकवा, अंधापन, बहरापन, प्रकम्पन आदि विकसित होते है।

4**. आयु एवं यौन भिन्नता (Age and sex difference).** अध्ययनों से पता चलता है कि उन्माद या रूपान्तर विकृति के विकास पर आयु तथा यौन.भिन्नता का प्रभाव पड़ता है। इस रोग का आक्रमण सामान्यतः किशोर अवस्था अर्थात 13 से 19 वर्ष की आयु में अधिक होता है। संभवतः इसका कारण यह है कि इस आयु में किशोरी तथा किशोरियों को गंभीर समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसी कारण इसे ऑधी.तूफान की अवस्था) कहा गया है। इसी तरह अध्ययनों से पता चलता है कि पुरूषों में यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा कम होता है।

5. वयक्तित्व शीलगुण (personality traits).अध्ययनों तथा दैनिक जीवन के निरीक्षणों से पता चलता है कि कुछ खास तरह के शीलगुल वाले व्यक्ति में रूपान्तर उन्माद या रूपान्तर विकृति के लक्षणों के विकसित होने की संभावना अधिक रहती है। जबकि कुछ अन्य तरह के शीलगुण वाले व्यक्ति में इसकी संभावना कम होती है। जिन लोगों में अति.संवेदनशीलता (hypersensitivity) अधिक संकेतशीलता (high suggestibility) अधिक संवेगशीलता (high emotionality) तथा आवेगशीलता (impulsiveness) के शीलगुण होते है, उनमें इस रोग के विकसित होने की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है।

6**. दोषपूर्ण अनुशासन (Faulty discipline**). कई मनोवैज्ञानिकों ने दोषपूर्ण अनुशासन को उन्माद या रूपान्तर विकृति का कारण माना है। दोषपूर्ण अनुशासन का अर्थ है वह अनुशासन जो अत्यधिक ढीला.ढाला अथवा अत्यधिक कठोर होता है। इस तरह के अनुशासन से बच्चों में आत्मनियंत्रण की योग्यता का विकास समुचित रूप से नहीं हो जाता है, जिससे उनमें आगे चलकर उन्माद के लक्षणों के विकसित होने की पृष्ठभूमि बन जाती है।

7. सामाजिक.सांस्कृतिक कारक (socio.cultural factors). परिवार की सामाजिक आर्थिक स्थिति ,सामाजिक मानक के स्वरूप, सामाजिक स्तरीकरण के स्वरूप, देहाती.शहरी क्षेत्र आदि का प्रभाव भी इस मानसिक रोग के विकास पर पड़ता है। उच्च सामाजिक आर्थित स्थिति की अपेक्षा निम्न सामाजिक.आर्थिक स्थिति के लोगों में यह रोग अधिक पाया जाता है। इसी प्रकार विभिन्न संस्कृतियों में इस मानसिक रोग के होने की संभावना

अलग.अलग होती है। मीड (Mead, 1935,1953) के द्वारा किए गए क्रॉस सांस्कृतिक अध्ययनों (cross cultural studies) से इस विचार का समर्थन होता है।

14.7.4 उपचार (Therapy).

उन्माद अथवा रूपान्तर विकृति के उपचार के लिए कई तरह की चिकित्सा विधियों का उपयोग किया जा सकता है। इनमें मुख्य निम्नलिखित हैः.

1. मनोविश्लेषण चिकित्सा. इस चिकित्सा विधि में मनोचिकित्सक विभिन्न चरणों में रोगी के अचेतन में दमित ऐसे द्वन्द्वों का पता लगाता है जो रोगी के लक्षणों के मौलिक कारण होते हैं। फिर, भी रोगी के (ego) को पुर्नसंचारित करके उसे सबल बनाने का प्रयास करता है ताकि वह उन द्वन्द्वों का समाधान कर सके। जब (ego) सबल बन जाता है तो रोगी का लक्षण दूर हो जाता है। लेकिन कुशल चिकित्सक के अभाव में यह चिकित्सा प्रभावी नहीं हो पाती है।

2. व्यवहार चिकित्सा (Behaviour therapy). रूपान्तर विकृति (उन्माद) के रोगी के उपचार में व्यवहार चिकित्सा एक उपयोगी चिकित्सा है। विशेष रूप से टोकेन एकॉनोमी (जवामद बमबवदवउल) तथा मॉडलिंग (उवकमसपदह) के उपयोग से रोगी के उपचार में काफी लाभ होती है।

3. परिवार चिकित्सा. इस मानसिक रोग के विकास में पारिवारिक कलह का बहुत बड़ा हाथ होता है। अतः पारिवारिक वातावरण को अनुकूल तथा स्वस्थ बनाकर इस मानसिक रोग का उपचार करना काफी प्रभावी होता है।

4. समुदाय.चिकित्सा (Community therapy). वर्तमान समय में सामुदायिक चिकित्सा की उपयोगिता काफी बढ़ती जा रही है। उन्माद अथवा रूपान्तर विकृति से पीड़ित व्यक्ति को इस चिचित्सा स ते उपचार करने में काफी लाभ हो सकता है।

5. विवाह चिकित्सा (Marital therapy). बढ़ते हुए तनाव के कारण वर्तमान समय में बढ़ती हुई वैवाहिक समयाओं के कारण स्त्रियों के साथ.साथ पुरूष भी रूपान्तर विकृति अर्थात् उन्माद के लक्षणों से पीड़ित पाये जाते है। इनकी चिकित्सा के लिए विवाह चिकित्सा का उपयोग बहुत कारगर सिद्ध हो सकता है।

अतः आवश्यकता के अनुसार उपर्युक्त चिकित्सा विधियों का उपयोग रूपान्तर उन्माद अथवा रूपान्तर विकृति के रोगी के उपचार के लिए किया जा सकता है।

14.8 मनोविच्छेदी विकृति (Dissociative Disorder)

14.8.1 मनोविच्छेदी विकृति का अर्थ. मनोविच्छेदी विकृति एक मानसिक रोग है जिमें व्यक्तित्व का सामान्य समाकलन अकस्मात तथा अस्थायी रूप में विघटित (कपेपदजमहतंजमक) हो जाता है। फलतः व्यक्ति में कई तरह के लक्षण जैसे स्मृति विलोप, आत्मविस्मृति, व्यक्तित्वलोप आदि लक्षण विकसित हो जाते है।

रेबर तथा रेबर (Reber and Reber2001) ने इस मानसिक रोग को परिभाषित करते हुए कहा है कि.‘‘मनोविच्छेदी विकृति ऐसी मनोवैज्ञानिक विकृतियों के लिए एक आवरण शब्द है, जिनकी विशेषताएं है चेतना के सामान्य समाकलित कार्यो, स्व.प्रत्यक्षीकरण तथा संवेदी गति व्यवहार में विघटन, जैसे व्यक्तित्वलोप, बहुव्यक्तित्व, स्मृतिलोप तथा आत्मविस्मृति’।

14.8.2. मनोविच्छेदी विकृतियॉ के प्रकार DSMIV के अनुसार मनोविच्छेदी विकृतियॉ पॉच प्रकार की होती हैः.

(1) मनोविच्छेदी समृतिलोप (Dissociative amnesia)

(2) मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति (Dissociative fuge)

(3) मनोविच्छेदी पहचान विकृति (Dissociative identity disorder)

(4) व्यक्तित्तव लोप विकृति (Dissociative disorder)

(5) अन्यत्र न वर्णित मनोविच्छेदी विकृति (Dissociative disorder not otherwise specified)

ICD.10 में मनोविच्छेदी विकृतियों के निम्न प्रकार बताये गये हैं.

(1) मनोविच्छेदी स्मृतिलोप (Dissociative amnesia)

(2) मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति (Dissociative fuge)

(3) मनोविच्छेदी भावशून्यता (Dissociative stupor)

(4) भाव.समाधि एवं आवेश विकृति (Trance and possession disorder)

(5) मनोविच्छेदी प्रेरक विकृति (Dissociative motor disorder)

(6) मनोविच्छेदी आक्षेप (एंठन) (Dissociative convulsions)

(7) मनोविच्छेदी संज्ञाहीनता एवं सांवेदिक क्षति (Dissociative anesthesia and sensory loss)

(8) मिश्रित मनोविच्छेदी विकृतियॉ (Mixed Dissociative disorders)

(9) अन्य मनोविच्छेदी विकृतियॉ (Other Dissociative disorders)

अब हम DSM.IVTR में वर्णित मनोविच्छेदी विकृति के पॉच प्रकारों का वर्णन करेगें .

14.8.2.1 मनोविच्छेदी स्मृतिलोप (Dissociative amnesia). इस विकृति को पहले मनोजनित स्मृतिलोप (psychogenic amnesia) कहा गया। स्मृतिलोप के लक्षण सामान्यतया मनोविच्छेदी विकृति के अनेक प्रकारों यथा मनाविच्छेदी स्मृतिलोप, मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति तथा मनोविच्छेदी पहचान विकृति में भी पाये जाते है। मनोविच्छेदी स्मृति लोप का उपयुक्त निदान उस समय किया जा सकता है जब मनोविच्छेदी गोचर केवल स्मृतिलोप तक ही सीमित रहता है।

मनोविच्छेदी स्मृति लोप (Dissociative amnesia) के नैदानिक लक्षण .

(1) इसमे रोगी महत्वपूर्ण वैयक्तिक सूचनाओं, जो सामान्यतया संत्रासपूर्ण अथवा बलाघातपूर्ण , इतने विस्तृत होते है कि उनमें सामान्य विस्मरण पाया जाता है, का पुनस्मरण करने में अयोग्य होता है।

(2) इस विकृति में उत्क्रमणशील स्मृति दुर्बलता पाया जाता है जिसमें व्यक्ति अपने व्यक्तिगत की पुनप्राप्ति करने में असमर्थ रहता है।

(3) इन लक्षणों से व्यक्ति में नैदानिक व्यथा अथवा सामाजिक, व्यवसायिक तथा प्रकार्यता के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में दुर्बलता उत्पन्न करते है।

14.8.2.2 मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति (Dissociative Amnesia).

मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति के रोगी में सामान्यतया स्मृतिलोप के लक्षण तो पाये जाते ही है परन्तु वह मनाविच्छेदी स्मृतिलिोप से भिन्न होते हैं। इसलिए इस मनोजनित आत्मस्मृति भी कहते हैं। जिन रोगियों में मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति पाया जाता है, वे अपने घर या निवास स्थान को अचानक छोड़कर दूर चला जाता है और वहॉ नये नाम और नये काम से अपने जिन्दगी की शुरूआत करता है। महीनों और सालों के बीत जाने के बाद रोगी अपने को अचानक नये स्थान में पाकर आश्चर्य करता है। उसे अपना पुराना जीवन याद आ जाता है और वह अपने नये जीवन को बिल्कुल भूल जाता है। उसे यह भी याद नही रहता है, कि वह इस नये स्थान पर कैसे आया ?

यह विस्मृति अचानक तथा अप्रत्याशित ढंग से घटित होती है। इसमें व्यक्ति अपनी वैयक्तिक पहचान भूल जाता है। यह विस्मरण दीर्घकालिक भी होता है, और अल्पकालिक भी इस विकृति के पाये जाने का मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक ही होता है परन्तु अत्यधिक अलकोहल प्रयोग के कारण भी आत्मविस्मृति पायी जाती है।

14.8.2.3 मनोविच्छेदी पहचान विकृति (Dissociative Identity Disorder)- इस विकृति को पहले बहुत व्यक्तित्व विकृति भी कहा जाता था। (DSM-IV) में इसे मनोविच्छेदी पहचान विकृति की संज्ञा दी गई है।

मनोविच्छेदी पहचान विकृति के नैदानिक लक्षण.

(1) इसमें दो या दो से अधिक भिन्न पहचान/तादात्मय अथवा व्यक्तित्व दशाएँपायी जाती हैं।

(2) इसमें निरन्तर रूप से व्यवहार नियन्त्रण पाया जाता है।

(3) इसमें महत्वपूर्ण वैयक्तिक सूचनाओं के पुनःस्मरण में असमर्थता पायी जाती है।

(4) यह क्षुब्धता न तो किसी पदार्थ के कारण न किसी प्रत्यक्ष शारीरिक प्रभाव के रूप में होता है और न ही सामान्य चिकित्सकीय दशाओं के कारण।

(5) इसमें रोगी में पहचान के विभिन्न पक्षों को संगठित करने की असफलता पायी जाती है।

(6) प्रत्येक व्यक्तित्व दशा का अनुभव इस प्रकार किया जाता है कि जैसे उसका अपना व्यक्तिगत इतिहास तादात्मय एवं अलग नाम हो।

(7) इसमें व्यक्ति के वैयक्तिक इतिहास में अक्सर रिक्ति पायी जाती है।

(8) आक्रामक तादात्मय के कारण व्यक्ति की क्रियाओं में अवरोध पाया जाता है अथवा दूसरे व्यक्तियों को असुविधा होती है।

14.8.2.4 व्यक्तित्व लोप व्यक्तित्व लोप (Depersonalisation Disorder)-

DSM.IVTR के अनुसार व्यक्तित्व लोप एक ऐसी विकृति है जिसमें व्यक्ति के स्व प्रत्यक्षीकरण में निरन्तर परिवर्तन उस सीमा तक पाया जाता है जिस सीमा तक व्यक्ति के यथार्थता में अस्थाई ह्रास पाया जाता है।

व्यक्तित्व लोप विकृति के नैदानिक लक्षण DSM.IVTR के अनुसार इसके निम्नलिखित लक्षण हैः.

(1) इसमें व्यक्ति में अपने स्व के प्रति पृथक्करण अथवा विरक्ति का भाव अनुभव करता है।

(2) यह एक सामान्य अनुभव है। यह विकृति उस समय ही निदान योग्य हो सकता है जब वह अत्यधिक तीव्र होगी अथवा प्रकार्यता में क्षीणता पायी जायेगी।

(3) इस विकृति का निदान उस समय अलग से सम्भव नहीं है जब यह अन्य विकृतियों जैसे मनोविदलता ,आतंक विकृति ,तीव्र बलाघात विकृति अथवा अन्य मनोविच्छेदी विकृतियों के साथ घटित होता है।

(4) यह क्षुब्धता किसी पदार्थ के प्रत्यक्ष शारीरिक प्रभाव अथवा सामान्य चिकित्सकीय दशाओं के कारण नहीं उत्पन्न होता है।

14.8.2.5 अन्यत्र न वर्णित मनोविच्छेदी विकृति-

इस वर्ग में इन विकृतियों को सम्मिलित किया जाता है जिनका प्रमुख लक्षण मनोविच्छेदी विकृति के लक्षण के समान होता है अर्थात् उसके चेतना, स्मृति, पहचान अथवा वातावरण के प्रत्यक्षीकरण में विघटन पाया जाता है, तथा यह लक्षण मनोविच्छेदी विकृति के विशिष्ट प्रकार के नैदानिक लक्षण के समान होते है।

14.8.3 मनोविच्छेदी विकृति के कारण. अध्ययनों से पता चलता है कि मनोविच्छेदी विकृति के निम्नलिखित कारण है.

(1) बाल्यावस्था के दुर्व्यवहार-मनोविच्छेदी विकृति और खासकर मनोविच्छेदी पहचान विकृति की स्थापना बचपन में अत्यधिक विक्षुब्ध घटनाओं (disturbed events) का सामना करने हेतु आत्म.सम्मोहन द्वारा हो जाता है। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि इस विकृति से पीड़ित रोगियों के उपचार के दौरान इस बात का पता चला कि 80% रोगी बाल्यावस्था शारीरिक दुव्यवहार (physical abuse) तथा 80 रोगी बाल्यावस्था व्यभिचार (incest) के शिकार थे। बचपन में शारीरिक एवं लैंगिक दुर्व्यवहार वाले रोगियों का प्रतिशत और भी अधिक होता है

(2) मातृप्रेम अवस्था की लैंगिक इच्छाओं का दमन (repression of unacceptable infantile sexual wishes of oedipal stage). मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के अनुसार मनोविच्छेदी विकृति या मनोविच्छेदी उन्माद का मुख्य कारण मातृप्रेम अवस्था की अस्वीकृति लैंगिक इच्छाओं का दमन है। वयस्कावस्था में ये दमित इच्छाए छद्म रूप से विखंडित व्यक्तित्व के रूप में अपनी संतुष्टि करती हैं।

(3) मन्द बुद्धि(Low intelligence)- हॉलिंगवर्थ (Hollingworth)का कहना है कि कम बुद्धिवाला व्यक्ति ही इस रोग का शिकार होता है। अपने इस कथन की पुष्टि उसने सैनिक रोगियों के अध्ययन के आधार पर की है। उसने अपने अध्ययन में देखा कि ऊँचे पद वाले रोगी इस रोग से पीड़ित नहीं। अतः कहा जा सकता है कि कम बुद्धि वाले व्यक्ति ही इसके शिकार होते है।

(4) त्रुटिपूर्ण अनुशासन (Defective discipline)- कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि इस रोग का त्रुटिपूर्ण अनुशासन है। स्वस्थ तथा समुचित अनुशासन में रहने से बच्चों में आत्यनियंत्रण की योग्यता का विकास होता है। परन्तु अत्यधिक कठोर या अत्यधिक शिथिल अनुशासन से आत्म.नियंत्रण की योग्यता का समुचित विकास नहीं हो पाता है, जिससे व्यक्तित्व विच्छिन्न हो जाता है। इस तरह आगे चलकर वह उन्माद का शिकार हो जाता है।

(5) **व्यक्तित्व प्रकार (Type of personality**)-कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि उन्माद का रोग अधिकतर बहिर्मखी व्यक्ति को होता है। अध्ययनों से पता चलता है कि अन्तर्मुखी की अपेक्षा बहिर्मुखी व्यक्ति में मनोविच्छेदी विकृति अथवा मनोविच्छेदी उन्माद के लक्षणों के विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

(6) मानसिक आघात (Mental trauma)-उन्माद का एक कारण मानसिक आधात या धक्का है। कुछ लोग अपने जीवन में ऐसी संवेगात्मक परिस्थितियों में फॅस जाते है कि उनसे निकलना मुश्किल हो जाता है और अन्त में पछार खा जाते है। व्यक्ति सहसा दुःखद समाचार सुनता है, प्रेम में निराश होता है, व्यवसाय में असफल होता है

तथा वैवाहिक जीवन से असन्तुष्ट रहता है। वह इन सभी विफलताओं को सहन नहीं कर सकता है जिससे उसमें संवेगात्म तनाव उत्पन्न हो जाता जीवन और व्यक्तित्व को छिन्न कर देता है और वह मनोविच्छेद उन्माद या मनोविच्छेद विकृति का शिकार हो जाता है।

14.8.4 उपचार (Treatment)-

(1) मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychoanalytical therapy)- इस चिकित्सा विधि को सिगमण्ड फ्रॉयड ने विकसित किया। इसमें रोगी के (ego) को पुनर्सरचित करके इतना सबल बना दिया जाता है कि वह अचेतन द्वन्द्वों को नियंत्रित करने में सक्षम हो सके। (ego) के सबल होते ही रोगी के लक्षण कमजोर होकर समाप्त हो जाते है।

(2) सम्मोहन चिकित्सा (Hypnotherapy)- इससे पीड़ित रोगी के उपचार के लिए सम्मोहन का उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग सामान्यतः आदेश चिकित्सा में करना अधिक प्रभावी होता है क्योंकि सम्मोहन के उपयोग से रोगी निष्क्रिय बन जाता है।

(3) संज्ञानात्क चिकित्सा (Cognitive therapy)- संज्ञानात्क चिकित्सा से भी मनोविच्छेदी विकृति के उपचार में मदद मिलती है। इस चिकित्सा में चिकित्सक रोगी के विवेक को जगाने का प्रयास करता है। उसके सोच.विचार करने के ढ़ग में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। यह चिकित्सा तीव्र बुद्धि के रोगी के उपचार में अधिक प्रभावी होती है।

अतः उपर्युक्त चिकित्सा विधियों का उपयोग मनोविच्छेदी उन्माद के रोगी के उपचार के लिए आवश्यकता अनुसार किया जा सकता है।

14.8 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित कथनों के सही विकल्प छाँटिये-

(1) कालमैन के अनुसार मनःस्नायुविकृति में कौन.सा लक्षण नहीं पाया जाता है-

(अ) समायोजन (ब) उत्साह में कमी

(स) एकाग्रता की अयोग्यता (द) अत्यधिक संवेदनशीलता।

(2) क्या बाध्यता से सम्बन्धित नहीं है-

(अ) विचारों पर नियन्त्रण (ब) सहयोग

(स) क्रियाओं पर नियन्त्रण (द) चिन्तन।

(3) फ्यूग का क्या अर्थ है-

(अ) सामना करना। (ब) पलायन।

(स) देखना। (द) भूल जाना।

(4) निद्रा भ्रमण से क्या तात्पर्य है-

(अ) भ्रमण। (ब) स्मृति ह्रास।

(स) चेतनता। (द) सोते में चलना।

(5) निम्नलिखित कथनों के उत्तर 'हाँ या नहीं' में दीजिए-

(अ) रूपान्तरित हिस्टीरिया में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व शारीरिक लक्षणों के रूप में प्रस्तुत होते है। (हाँ/नहीं)

(ब) रूपान्तरित हिस्टीरिया का मूल कारण असुरक्षा की भावना है। (हाँ/नहीं)

(स) दुर्भीति भय निराधार होते हैं। (हाँ/नहीं)

(द) फ्यूग में स्मृति ह्रास अल्पकालिक होता है। (हाँ/नहीं)

14.9 सारांश

1. भीतिक दुश्चिन्ता विकार से पीड़ित व्यक्ति को कुछ विशिष्ट परिस्थितियों, पदार्थों तथा वस्तुओं से भय एवं आशंका होती है। इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों में अतार्किक, असंगत एवं अतिरंजित भय पाया जाता है। इन भीतियों के कारण व्यक्ति में सिरदर्द, सिर चकराना, पेट में गड़बड़ी, पीठ का दर्द, हीनता की भावना आदि लक्षण परिलक्षित होते है। इस वर्ग में खुली जगह का भय तथा सामाजिक भीतियों को सम्मिलित किया जाता है।

2. सामान्यीकृत दुश्चिन्ता विकार प्रतिष्ठा अथवा लक्ष्य पर आँच, खतरनाक इच्छाओं के प्रकट हो जाने की आशंका, दुश्चिन्ता जगाने वाले निर्णय, आघातों की पुनः क्रियाशीलता तथा ग्लानि एवं दण्ड का भय आदि कारणों से इन विकारों की उत्पत्ति होती है।

3. मनोग्रस्ति.बाध्यता विकार बार.बार उत्पन्न होने वाला विकार है जिसके विषय में यह जानते हुए कि वे निरर्थक, अनिश्चित तथा अविवेकपूर्ण है, व्यक्ति सोचने से रोक नही पाता। इसके उपवर्गो के रूप में मुख्यतः मनोग्रस्तिता विचार या चिन्ता मग्नताए प्रमुखतः बाध्यता क्रियाएँ मनोग्रस्त कर्मकाण्ड तथा मिश्रित मनोग्रस्तता विचार एवं क्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है

4. रूपान्तर विकृति (रूपान्तर उन्माद) कायाप्रारूप विकृतियों का एक प्रकार है जिसमें शारीरिक कार्यों में क्षति या परिवर्तन होते है, जिनसे शारीरिक रोग का संकेत मिलता है, परन्तु वे मनोवैज्ञानिक द्वन्द्वों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति प्रतीत होते है। रूपान्तर विकृति के रोगी में पाये जाने वाले मुख्य लक्षण हैं दैहिक लक्षणों. पेशीय या शारीरिक लक्षण, संवेदी लक्षण. दृष्टि विकृति, श्रवण विकृति, संवेदन.शीलता विकृति।

5. मनोविच्छेदी विकृति ऐसी मनोवैज्ञानिक विकृतियों के लिए एक आवरण शब्द है जिनकी विशेषताएं है चेतना के सामान्य समाकलित कार्यांते , स्वप्रत्यक्षीकरण तथा संवेदी गति व्यवहार में विघटन, ये पॉच प्रकार की होती है.मनोविच्छेदी समृतिलोप, मनोविच्छेदी आत्मविस्मृ, मनोविच्छेदी पहचान विकृति, व्यक्तित्तव लोप विकृति, अन्यत्र न वर्णित मनोविच्छेदी विकृति । मनोविच्छेदी स्मृति लोप में रोगी में महत्वपूर्ण वैयक्तिक सूचनाओं, का सामान्य विस्मरण पाया जाता है, व पुनस्मरण करने में अयोग्य होता है, मनोविच्छेदी आत्मविस्मृति में वह अपने घर या निवास स्थान को अचानक छोड़कर दूर चला जाता है और वहॉ नये नाम और नये काम से अपने जिन्दगी की शुरूआत करता है। मनोविच्छेदी पहचान विकृति में दो या दो से अधिक भिन्न पहचान/तादात्मय अथवा व्यक्तित्व दशाएँ पायी जाती है।

14.10 शब्दावली

1. दुर्भीति -किसी विशिष्ट परिस्थिति या वस्तु से इतना अधिक सत्त डर जो वास्तविक खतरा के अनुपात से कहीं अधिक हो।

2. ‘मनोग्रस्तता -एक ऐसा विचार चिन्तन, जिसका स्वरूप हास्यास्पद, बेतुका तथा स्पष्टतया अर्थहीन होता है तथा रोगी इससे छुटकारा नहीं प्राप्त कर पाता है।’’

3. बाध्यता -व्यक्ति का पुनरावृत्तिक क अवांछित अतार्किक एवं असंगत व्यवहार जिसमें रोगी में अपनी इच्छा के विरू) किसी कार्य को करने की प्रबल प्रेरणा पाई जाती है।

4. स्मृति लोप - रोगी के महत्वपूर्ण वैयक्तिक सूचनाओं, जो सामान्यतया संत्रासपूर्ण अथवा बलाघातपुर्ण होते है, का सामान्य विस्मरण तथा पुनस्मरण करने में अयोग्यता।

5. मनोविच्छेदी विकृति- एक मानसिक रोग जिसमें व्यक्तित्व का सामान्य समाकलन अकस्मात तथा अस्थायी रूप में विघटित हो जाता है।

14.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.अ 2. स 3. ब 4. द

5 (अ) हाँ, (ब) हाँ, (स) हाँ, (द) नहीं

14.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. रूपान्तर विकृति के कारणों एवं उपचार की विवेचन कीजिए।
2. वियोजनात्मक प्रतिक्रियाओं के स्वरूप का विवेचन कीजिए।
3. निम्नलिखित के कारणों का विवेचन कीजिए.

(अ) स्मृतिलोप (ब) फ्यूग दशाएँ (स) मनोग्रस्ति.बाध्यता

4. निम्नलिखित के लक्षणों को समझाकर लिखिए.

(अ) चिन्ता मनःस्नायुविकृत (ब) मनोग्रस्तता.बाध्यता (स) रूपान्तर विकृति

5. मनःस्नायुविकृति पर विभेदक विशेषतायें चिन्ता के सन्दर्भ में बताइए। चिन्ता मनःस्नायुविकृत के कारण व चिकित्सा विधि का वर्णन कीजिए।

14.13. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची.

1. उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान.अरूण कुमार सिंह. मोतीलाल बनारसी दास, पटना
2. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अरूण कुमार सिंह. मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
3. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अरूण कुमार सिंह. मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
2. आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान आर एन सिंह, अंजुम कुरेशी, शुभा् भारद्वाज, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा
3. मनोविकृति विज्ञान.विनती आनन्द एवं श्रीवास्तव. मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली
4. मनोविकृति विज्ञान.अजय कुमार श्रीवास्तव.विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

इकाई-15 मनोविकृति के कारण एवं उपचार: मनोविदलता, व्यामोह एवं भावात्मक विकृति

(Causes and Treatment of Psychoses: Schizophrenia, Paranoia, Affective Disorders)

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मनोविकृति
15.4 मनोविदलता
15.4.1 अर्थ एवं स्वरूप
15.4.2 नैदानिक लक्षण
15.4.3 कारण
15.4.4 उपचार
15.5 व्यामोहिक विकार
15.5.1 अर्थ एवं स्वरूप
15.5.2 निदान
15.5.3 प्रकार
15.5.4 कारण
15.5.5 उपचार
15.6 भावात्मक विकृति
15.6.1 अर्थ तथा स्वरूप
15.6.2 भावात्मक विकृति के प्रकार
एकध्रुवीय विकृति
द्विध्रुवीय विकृति
साइक्लोथिमिक विकृति: अर्थ ,स्वरूप, लक्षण एवं कारण
15.6.3 भावात्मक विकृति का उपचार
15.7 सारांश
15.8 शब्दावली
15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

मनोविकृति एक प्रकार की असामान्यता है कि जिसका स्वरूप तीव्र एवं गम्भीर होता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है, यथार्थ से उसका सम्बन्ध टूट जाता है, उसका व्यवहार अशोभनीय एवं विचित्र प्रतीत होता है, उसमें आत्मसंयम एवं सामाजिक सन्तुलन का अभाव पाया जाता है, उसे अपने कार्य की अच्छाई-बुराई का ज्ञान नहीं रहता है, इनके व्यवहार में विभ्रम (hallucination) और व्यामोह (delusion) की अधिकता पाई जाती है तथा ऐसे रोगी चिकित्सक की बात को मानने के लिए तैयार नहीं होते हैं और आत्महत्या के लिए तत्पर रहते हैं। यह समाज के अन्य सदस्यों से उपयुक्त सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाते हैं। इसलिए इस विकृति का स्वरूप मनस्ताप (neurosis) की तुलना में अधिक गम्भीर होता है।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-

1. मनोविकृति को भली-भांति समझ सकें।
2. मनोविकृति के सामान्य लक्षणों से अवगत हो सकें।
3. मनोविकृति के प्रमुख कारणों को रेखांकित कर सकें।
4. मनोविकृति के प्रमुख प्रकारों, कारणों पर प्रकाश डाल सकें।
5. मनोविदलता, व्यामोहिक विकार व भावात्मक विकृति के प्रकारों कारणों व उपचार पर प्रकाश डाल सकें।

15.3 मनोविकृति (Psychosis)

मनोविकृति (psychosis) एक गम्भीर मानसिक विकृति है, जिसके अन्तर्गत कई मानसिक विकृतियों की गणना की जाती है, जैसे -व्यामोह विकृति (delusional disorder), मनोदशा विकृति (mood disorder), मनोविदलता (schizophrenia) आदि। इसी कारण मनोविकृति (psychosis) को मनोविकृति विकृतियाँ (psychotic disorders) कहते हैं। सरासन तथा सरासन (Sarason and Sarason2003) के अनुसार- ''मनोविकृति वह विकृति है जिसमें व्यामोह, विभ्रम, असंगति, पुनराविृŸा विचार-विचलन, विचार संगति की स्पष्ट कमी, स्पष्ट अतार्किकता तथा गम्भीर रूप से विसंगठित अथवा केटाटोनिक व्यवहार देखे जाते हैं।''

15.3.1 मनोविकृति के सामान्य लक्षण (General Symptoms of Psychosis).

1. व्यवहार सम्बन्धी लक्षण (**Behavioural symptoms**) - मनोविकृति से ग्रस्त रोगियों के व्यवहार के अध्ययन करने से पता चलता है कि उनके व्यवहार बेढ़ंगा (bizarre), विचित्र (peculiar), झुंझलाहटपूर्ण (annoying) तथा अपने एवं दूसरों के लिए भी हानि-कारक होते हैं।

2. संवेगात्मक तथा सामाजिक विकृति (**Emotional and social disturbance**)- मनोविकृति के रोगियों में संवेगात्मक विकृति तथा विकृत सामाजिक सम्बन्ध के लक्षण पाए जाते हैं। संवेगात्मक विकृति के अन्तर्गत आशंका, उदासीनता या विषाद की स्थिति (depression), असंगति (incongruity), सन्देह, चिड़चिड़ापन, आत्महत्या की प्रवृत्ति , भाव-शून्यता (apathy) तथा उल्लास (elation) के लक्षण मुख्य रूप से पाए जाते हैं। इन्हीं संवेगात्मक विकृतियों के कारण रोगी में विध्वंसकारी क्रियाएँ उत्पन्न होती हैं तथा रोगी का चरित्र आचारहीन हो जाता है। अतः इनके कारण रोगी का सामाजिक सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है जो उसके सामान्य सामाजिक जीवन को असंतुलित कर देता है और उसका समायोजन विकृत हो जाता है।

3.व्यामोह (Delusion) - रोगी में निम्नलिखित व्यामोह पाए जाते हैं -

1. **सन्दर्भ का व्यामोह (Delusion of reference)-** इस रोग से ग्रस्त रोगी को यह गलत विश्वास हो जाता है कि दूसरे लोग सदा उसी के बारे में बातें करते रहते हैं या उसके सम्बन्ध में तरह-तरह के झूठे प्रचार कर उसे बदनाम कर रहे हैं। वह सदा व्यक्तिगत महत्व के कारण बेचैन रहता है। फलतः दो या दो से अधिक व्यक्तियों को बातें करते देखकर वह समझ लेता है कि वे उसी के बारे में बातें कर रहे हैं।
2. **पीड़ा का व्यामोह (Delusion of persecution)-** इस व्यामोह से ग्रस्त रोगी सदा यह अनुभव करता है कि दूसरे लोग उसे तरह-तरह से कष्ट पहुँचाने का षड्यंत्र रच रहे हैं। रोगी अपने निकट सम्बन्धियों को भी षड्यन्त्र की योजना में सम्मिलित समझता है। वह अपने किसी निकट सम्बन्धी द्वारा भी अपमान करने या पीछा करने, तथा कष्ट पहुँचाने की कल्पना करता है और यही कल्पना उसके दृढ़ विश्वास के रूप में परिणित हो जाती है। इस प्रकार वह अपने विरूद्ध दुर्व्यवहार या सुनियोजित ढंग से साजिश करने का दोष आरोपित करता है। इस दृढ़ विश्वास के कारण वह अपने निकट सम्बन्धियों पर मुकदमा भी कर देता है।
3. **प्रभाव का व्यामोह (Delusion of influence)-** इस लक्षण से पीड़ित रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि उसका दुश्मन उसे विभिन्न प्रकार से प्रलोभन देकर फुसलाना चाहता है या उस पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। इसी तरह रोगी कभी-कभी अपने को किसी अलौकिक शक्ति से प्रभावित भी समझने लगता है। वह कहता-फिरता है कि उसमें दैवी शक्ति आ गयी है और वह जो कुछ बोलता या गलत लिखता है वह दैवी शक्ति के इशारे पर करता है। वह अपने को ईश्वर का दूत समझता है।

4.महानता का व्यामोह (Delusion of grandeur) - महानता के व्यामोह से जो रोगी ग्रस्त रहते हैं, वे समझने लगते हैं कि संसार का आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक दृष्टिकोण से पतन हो रहा है और वे ही श्रेष्ठ या महान व्यक्ति हैं, जो संसार को पतन होने से बचा सकते हैं। इस महानता के विचार को निम्नलिखित में से किसी प्रकार से व्यक्त किया जाता है:-

अ-इसके रोगियों में कुछ रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि वह महान् वैज्ञानिक या आविष्कारक है और उसके बड़े आविष्कार की योजना को किसी ने चोरी कर ली है।

ब-कुछ तो अपने को महान् धर्म प्रचारक, राजनीतिक नेता, धर्मप्रचारक, राष्ट्र निर्माता या ईश्वर का अवतार समझते हैं।

स-कुछ रोगियों को यह विश्वास हो जाता है कि कोई अपूर्व सुन्दरी या विद्वान तथा इज्जतदार पुरुष उनसे प्रेम करते हैं लेकिन दूसरे लोगों के हस्तक्षेप के कारण वे सफल नहीं हो रहे हैं।

द-कुछ रोगी अपने को बड़ा दौलतमन्द या बड़ा ऑफिसर के रूप में समझते हैं।

5.रोगात्मक व्यामोह (Hypochondriac delusions)- इस प्रकार के व्यामोह से पीड़ित रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। वह भयंकर रोग से पीड़ित है। जो लोग उसके इस रोग को झूठा बतलाते हैं उनसे वह दुश्मनी कर लेता है। रोगी को दृढ़ और स्थायी विश्वास हो जाता है कि वह टी0बी0, कैंसर आदि असाध्य रोग से ग्रसित हैं। अब वह शीघ्र मर जाएगा। कुछ रोगी यह शिकायत करते हैं कि उनका खून पानी हो गया है और पेट में वायु विकार हो गया है।

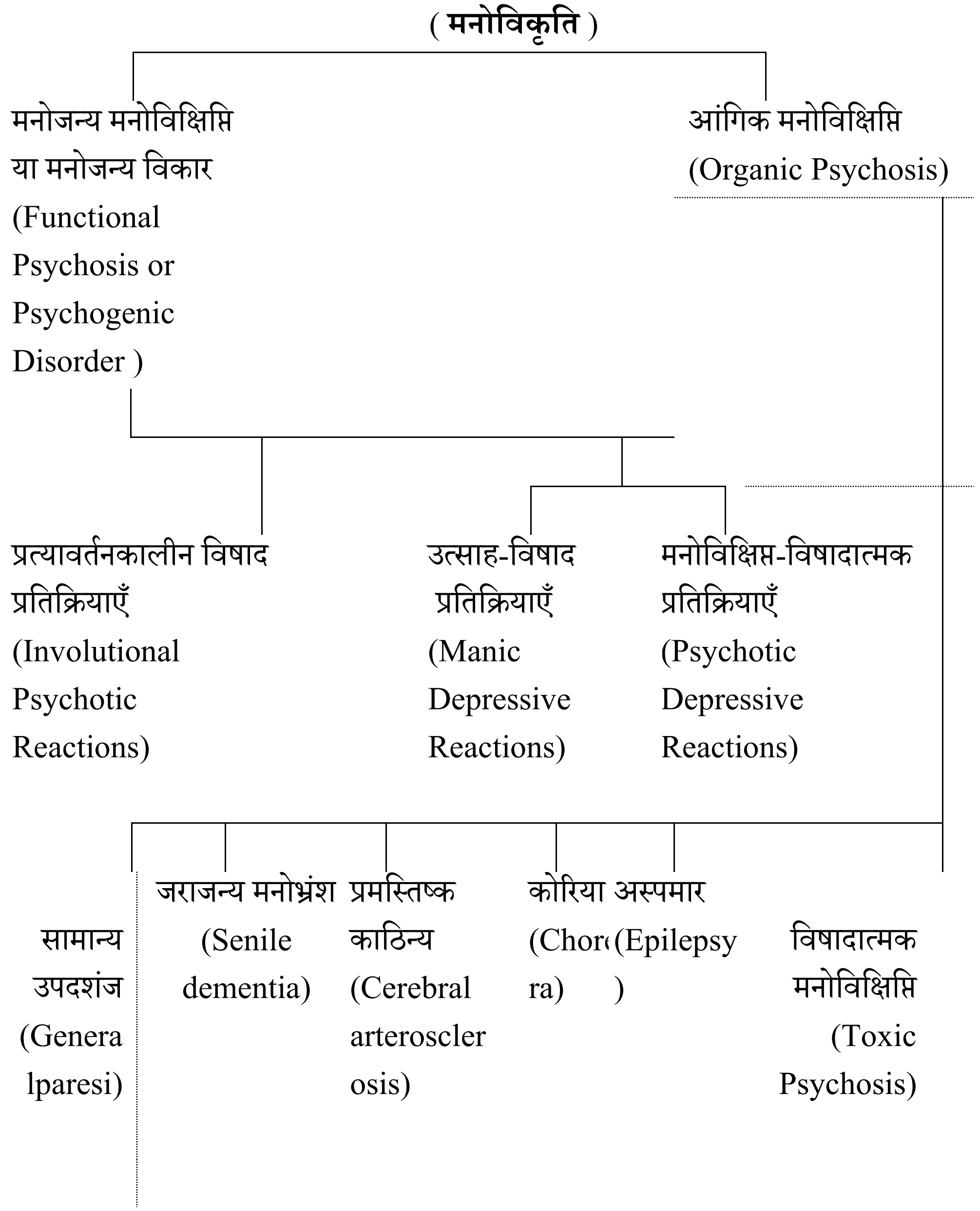

चित्र: 1 - मनोविकृति का वर्गीकरण

6.आत्मनिन्दा का व्यामोह (Delusions of self-condemnation)- इस व्यामोह का रोगी अपनी निन्दा खुद करता है। वह अपने को पापी, कुकर्मी, निर्धन, अयोग्य तथा बुद्धिहीन समझता है और अपने सम्बन्धियों से अपने को मार डालने के लिए प्रार्थना करता है। अपने जीवन को निरर्थक तथा महत्वहीन समझता है। इस प्रकार वह पाप की भावना से पीड़ित रहता है।

7.शून्यवादी व्यामोह (Nihilistic delusions)- इस प्रकार के व्यामोह से ग्रस्त रोगी अस्तित्ववाद में विश्वास नहीं रखता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि संसार में किसी चीज का अस्तित्व हैं ही नहीं। वह शून्य में डूबा रहता है। यहाँ तक कि उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान भी नहीं रहता है। उसे यह विश्वास घर कर जाता है कि उसकी मृत्यु वर्षों पहले हो चुकी है और उसकी आत्मा शून्य आकाश में गैस के रूप में घूमती रहती है।

15.3.2 मनोविकृति का वर्गीकरण (Classification of Psychoses):

Coleman (1972) का मत है कि- ''मनोविक्षिप्ति के लक्षणों का जन्म या तो मनोवैज्ञानिक बलाघातपूर्ण स्थिति या आंगिक मस्तिष्क व्याधि या इन दोनों ही स्थितियों के कारण होता है।'' सामान्यतया मनोविक्षिप्ति को इस प्रकार वर्गीकृत किया जाता है:-

15.4 मनोविदलता (Schizophrenia)

15.4.1 अर्थ एवं स्वरूप - मनोविदलता वास्तव में मनोविकृति का एक रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ है व्यक्तित्व विभाजन। इस व्यक्तित्व विभाजन के कारण रोगी में गंभीर संज्ञानात्मक, सांवेगिक तथा क्रियात्मक विकृतियॉ विकसित हो जाती है जिससे रोगी का सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है। रेबर तथा रेबर (2001) के अनुसार ''मनोविदलता अनेक मनोविकृतियों के लिये एक सामान्य लेबल है जिनकी अभिव्यक्ति संज्ञानात्मक, सांवेगिक तथा व्यवहार विकृतियों के रूप में होती है''। डेविडसन तथा नील (1996) की परिभाषा मनोविदलता के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करती है, ''मनोविदलता मनोविक्षिप्ति का एक समूह है जिसमें चिंतन, संवेग, तथा व्यवहार में अत्यधिक क्षुब्धता की विशेषता होती हैं, विकृत चिंतन जिसमें विचार तार्किक रूप से संबद्ध नहीं होते है, दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण एवं ध्यान होती है। पेशीय क्रियाओं में अनोखी क्षुब्धता होती है तथा चपटा या अनुपयुक्त भाव होती है। यह रोगी को अन्य लोगों एवं वास्तविकता से दूर करके उसे व्याहमोह तथा विभ्रम के काल्पनिक दुनिया में ले जाती है''।

15.4.2 नैदानिक लक्षण (**Diagnostic Features**): DSM-IVTR में मनोविदलता के वर्णित नैदानिक लक्षणों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है-

विधेयात्मक लक्षण (**Positive Symptoms**): विधेयात्मक लक्षणों का तात्पर्य सामान्य कार्यों में रोगी द्वारा मनोवैज्ञानिक अतिरेक (psychological excess) की अभिव्यक्ति होती है। इस वर्ग के अन्तर्गत प्रमुख रूप से व्यामोह (delusion), विघटित चिन्तन एवं सम्भाषण (disorganized thinking and speech), विभ्रम (hallucination) के लक्षणों को सम्मिलित किया जा सकता है:-

(1)व्यामोह (Delusion) - व्यामोह व्यक्ति का ऐसा झूठा विश्वास है जिसे वह प्रत्येक स्थिति में सत्य मानता है। रोगी के मस्तिष्क में यह झूठा विश्वास इस गहराई तक जम जाते हैं कि अनेकों पूर्ण तर्क दिये जाने पर भी वह इन अविश्वासों को असत्य नहीं समझता है। मनोविदलता के रोगी में दण्डात्मक (prosecutory), महानता (grandeur), तथा अतिस्वास्थ्य चिन्ता (hypochondrial) के व्यामोह अधिक पाये जाते हैं। मनोविदलता के रोगी के व्यामोह अतार्किक एवं विचित्र होते हैं।

(2)विभ्रम (Hallicuniation)- मनोविदलता के रोगियों में किसी-न-किसी प्रकार का विभ्रम अवश्यक पाया जाता है। विभ्रम एक दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण है जिसमें वातावरण में उद्दीपक के न होने पर भी संवेदनात्मक अनुभव होता है। ऐसे रोगियों में श्रवणपरक (auditory) विभ्रम अधिक पाये जाते हैं। ऐसे रोगियों को अक्सर अपने मित्रों,

सम्बन्धियों एवं ईश्वर की ध्वनियाँ सुनाई पड़ती है। दृष्टि सम्बन्धी विभ्रमों में विचित्र दृश्य देखना, ईश्वर का दर्शन करना आदि को उदाहरणस्वरूप लिया जा सकता है। इसी प्रकार रोगी में स्वाद, गन्ध एवं स्पर्श सम्बन्धी विभ्रम भी पाये जाते हैं। स्पर्श विभ्रम में रोगी जलन, विद्युत आघात का संवदेन, झुनझुनी तथा कीड़ा रेंगने की संवेदना की अनुभूति, दैहिक विभ्रम में शरीर के अन्दर परिवर्तन, स्वाद विभ्रम में रोगी किसी ऐसे गन्ध की अनुभूति करता है जो अन्य व्यक्तियों को नहीं होती है।

(3)विघटित चिन्तन एवं सम्भाषण (Disorganized Thinking and Speech)- विघटित सम्भाषण से तात्पर्य रोगी के विचारों के साहचर्य में अस्त-व्यस्तता तथा विचारों में तीव्रता से परिवर्तन पाया जाता है, जिससे रोगी की बातों का कोई अर्थ निकालने में कठिनाई होती हैं। ऐसे रोगी अनुपयुक्त प्रश्न पूछते हैं तथा अनुपयुक्त उत्तर देते हैं। इनका सम्भाषण अस्पष्ट, आवर्ती, आवश्यकता से अधिक मूर्त अथवा अमूर्त होता है। ऐसे रोगी नये-नये शब्दों का निर्माण करते हैं जिसका अर्थ वही समझता है तथा उसका कोई तार्किक आधार नहीं होता है।

(4)अनुपयुक्त भाव (Inappropriate Affect) - मनोविदलता के रोगियों में अपने भावों पर नियन्त्रण नहीं होता है। वे परिस्थिति के अनुरूप अपने संवेगों को नहीं प्रकट करते हैं। उसमें संवेगात्मक परिस्थितियों के प्रति उदासीनता पाई जाती है। वह अकारण ही किसी संवेग की अभिव्यक्ति कर सकता है।

निषेधात्मक लक्षण (Negative Symptoms)- इन लक्षणों को 'अभाव मनोविदलता' (deficit schizophrenia) भी कहते हैं। इनमें निम्नलिखित लक्षणों को सम्मिलित किया जा सकता है:-

(1)वाणी अभाव (Poverty of Speech) - ऐसे रोगियों में वाणी से सम्बन्धित अनेक प्रकार की कमियाँ पाई जाती हैं। उदाहरणार्थ-एसे रोगी किसी प्रश्न का उत्तर देने के पहले थोड़ी देर शान्त रहता है, कम-से-कम शब्दों में उत्तर देता है, किसी प्रश्न का उत्तर नहीं भी देता है, धीरे-धीरे बोलता है, बोलते-बोलते रूक जाता है तथा उसके कथनों से कोई अर्थ नहीं निकल पाता है।

(2)कुण्ठित एवं नीरस भाव (Blunted and Flat ffect)- ऐसे रोगियों में कुण्ठित एवं नीरस भाव संवेग पाये जाते हैं। सामान्य व्यक्तियों के भाँति इनमें क्रोध, प्रसन्नता, दुःख के भाव अपेक्षाकृत कम पाये जाते हैं, वाणी नीरस होती है तथा चेहरे पर सुस्त भाव बना रहता है।

(3)संकल्प शक्ति की क्षुब्धता (Distrbance in Volition)- चूँकि ऐसे रोगियों में भाव शून्यता पाई जाती है, सामान्य कार्यों में अभिरूचि का अभाव पाया जाता है, ऊर्जा-ह्रास अनुभव करते हैं तथा लोगों से कम सम्पर्क रखते हैं, इसलिए किसी कार्य को पूरा करने में अक्षम समझते हैं और संकल्पशक्ति (इच्छाशक्ति) का अभाव पाया जाता है।

(4)वातावरण के प्रति क्षुब्धता (Disturbed Relationship with External World)- ऐसे रोगी अपने आप को वातावरण से अलग समझते हैं, वे उससे अपना कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं चाहते हैं, अन्य लोगों से दूर रहते हैं, दूसरों से बात नहीं करना चाहते हैं, उनके विचार विकृत एवं अतार्किक होते हैं तथा इन्हें प्रतिदिन की सामाजिक समस्याओं और तथ्यों का ज्ञान बहुत कम होता है (Faloon et.al; Bellack et. al. 1989; Cutting & Murphy 1988; 1990)।

मनोपेशीय लक्षण (Psychomotor Symptoms): मनोविदलता के रोगियों में मनोपेशीय लक्षण भी पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ-ऐसे रोगी के व्यवहार, हाव-भाव, गति एवं दिशा में असमान्यता एवं अपूर्वता पाई जाती है। ये लक्षण आवर्ती (repetetive) और आवेगशील (impulsive) प्रतीत होते हैं। ऐसे रोगी घण्टों एक पैर पर खड़े रहते हैं और घण्टों एक हाथ ऊपर उठाये रहते हैं।

15.4.3 मनोविदलता के सामान्य कारण (General etiology of schizophrenia)-मनोविदलता के कारणों के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक एक मत नहीं हैं, परन्तु फिर भी हम मनोविदलता के विभिन्न सामान्य कारणों का नीचे वर्णन प्रस्तुत करेंगे-

(अ) जैविक कारक (Biological Factors): जैविक कारकों के अन्तर्गत मुख्यतः निम्न आते हैं-

(1)वंशानुक्रम (Heredity)- कुछ मनोवैज्ञानिक दोषित वंशानुक्रम को मनोविदलता का कारण मानते हैं। क्रेपलिन ने 1054 मनोविदलता रोगियों के परिवारों में 53: असामान्यता की घटनाएँ पायीं। कॉलमैन (Kallmann) ने 1,000 से अधिक मनोविदलता रोगियों के परिवारों का अध्ययन किया। उसका मत है कि सामान्य जनसंख्या में मनोविदलता के घटनाक्रम का प्रतिशत केवल 0.85 है। अगर माँ-बाप में से एक इस रोग से ग्रस्त है तो उनके बच्चों में मनोविदलता की घटनाएँ 68.4 प्रतिशत घटित होती है और अगर माँ-बाप दोनों ही मनोविदलता से ग्रस्त हैं तो 68.1 प्रतिशत उनके बच्चे भी इस विकृति से ग्रस्त हो सकते हैं। कोलमैन ने कुछ ऐसे जुड़वाँ बच्चों को अध्ययन के लिए चुना, जिसमें से एक बच्चा मनोविदलता से ग्रस्त था। उसने अपने इस अध्ययन के द्वारा ज्ञात किया कि 86 प्रतिशत जुड़वाँ भाइयों को भी मनोविदलता का रोग था। रोसनॉफ ने 142 जुड़वाँ बच्चों का अध्ययन करने के बाद बताया कि इस रोग का कारण वंशानुक्रम है। ह्वाइट ने मनोविदलता के रोगियों का अध्ययन किया तथा बताया कि 90 प्रतिशत इस रोग का कारण वंशानुक्रम है। स्टोडार्ट, पेस्टारे, ग्रेगरी आदि मनोवैज्ञानिकों ने भी मनोविदलता रोग का कारण वंशानुक्रम बताया।

(2)शारीरिक बनावट (Physical Constitution)- वैसे शारीरिक बनावट पर सर्वाधिक प्रभाव वंशानुक्रम का पड़ता है। अगर शारीरिक बनावट विकृत है तो इसका प्रमुख कारण व्यक्ति का दोषपूर्ण वंशानुक्रम है परन्तु बाल्यावस्था के समय पर्यावरण के अभाव के कारण भी शारीरिक बनावट पर प्रभाव पड़ता है। क्रेशमर, शे ल्डन आदि विद्वानों ने मनोविदलता को एक विशे ष प्रकार की शारीरिक बनावट वाले व्यक्तियों के साथ जोड़ने का प्रयास किया है। क्रेशमर का मत है कि जो व्यक्ति एस्थेनिक प्रकार के होते हैं, उनमें ही मनोविदलता उत्पन्न होती है। परन्तु इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों में तीव्र मतभेद हैं।

(3)केन्द्रीय स्नायु-मण्डल (Central Nervous System)- अनेक विद्वानों ने मनोविदलता रोग का कारण केन्द्रीय स्नायु-मण्डल को माना है। अनेक विद्वानों में सामान्य व मनोविदलता के रोगियों के मस्तिष्क का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा देखा कि दोनों के मस्तिष्क कोषों में कोई सार्थक अन्तर नहीं होता है। परन्तु इस परिणाम के सम्बन्ध में आज तक कोई निश्चित मत प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक इस रोग का अन्य कारण दिल का छोटा होना, नलिका-विहीन ग्रन्थियाँ आदि मानते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में अभी तक कोई स्पष्ट स्वरूप ज्ञात नहीं हो सका है।

(ब) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)-

अनेक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ ऐसे मनोवैज्ञानिक कारक होते हैं जो मनोविदलता की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। क्रेपलिन व ब्लूलर, जो कि वंशानुक्रम के महत्व के प्रतिपादक माने जाते हैं, ने भी मनोवैज्ञानिक कारक को

मनोविदलता का कारण माना है। ब्लूलर ने नैराश्य व अन्तर्द्वन्द्व को, फ्रायड ने अचेतन को, एडॉल्फ मेयर ने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को मनोविदलता का प्रमुख कारण बताया है। अध्ययनों से यह तथ्य पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाता है कि मनोविदलता रोग की उत्पत्ति में मनोवैज्ञानिक कारण महत्वपूर्ण होते हैं। प्रमुख मनोवैज्ञानिक कारण अग्रलिखित है-

(1) व्याधिजन्य पारिवारिक प्रतिरूप (Pathogenic Family Patterns)-मनोविदलता की उत्पत्ति में उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि का महत्वपूर्ण हाथ होता है। रोगी अपने परिवार से ही अनेक दोषपूर्ण अभिवृत्तियों, प्रतिक्रियाओं, दोषपूर्ण समाजीकरण आदि को सीखता है। रोगी पर परिवार के अन्तर्गत सबसे अधिक प्रभाव उसके माँ-बाप का पड़ता है। इस सम्बन्ध में अनेक अध्ययन-परिणाम इस तथ्य के साक्षी हैं कि मनोविदलता के रोगियों पर सर्वाधिक प्रभाव माँ-बाप का पड़ता है। 1960 में कॉफमैन व अन्य ने अपने एक अध्ययन में देखा कि 80 मनोविदलता के रोगियों की माँ भी अपनी समस्याओं का समाधान मनोविक्षिताओं के समान ही करती हैं। मनोविदलता के रोगियों की माँ के साथ परस्पर सम्बन्ध विकृत होते हैं जिसके फलस्वरूप यह एक चिन्तित व अपरिपक्व युवा बन जाता है। वह अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता क्योंकि वह अपने को एक स्वतंत्र व्यक्ति नहीं समझता। इन रोगियों पर माँ के प्रभाव के साथ ही साथ पिता का प्रभाव पड़ता है। वाह्ल (1956) ने 568 पुरुष मनोविदलता रोगियों के परिवारों के इतिहास के अध्ययन के आधार पर ज्ञात किया कि 50-3ङ रोगियों को माँ या बाप अथवा दोनों ने गम्भीर रूप से तिरस्कार या अति-संरक्षण प्रदान किया था। कॉफमैन व अन्य (1960), लिड्ज (1957), फ्ल्ोक (1960, 1963) आदि ने अपने अध्ययनों में पाया कि मनोविदलता के रोगियों के पिता में भी असामान्य व्यवहार के लक्षण विद्यमान थे । इस प्रकार मनोविदलता का एक कारण यह भी है कि माँ-बाप एक अच्छे पर्यावरण का निर्माण नहीं कर पाते जिससे कि इनमें ऐसी स्थितियों का जन्म हो जाता है जो अपरिपक्व, अनुपयुक्त व बाह्य जगत् का दोषपूर्ण ज्ञान आदि कराने में सहायक होती हैं। माता-पिता के प्रभाव के अतिरिक्त मनोविदलता के रोगियों के परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी अनुपयुक्त सम्बन्ध होता है। परिवार के सदस्यों के साथ उचित सम्बन्ध न होने के कारण रोगी में अनेक प्रकार के अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं जिनका समाधान करना इनके वश के बाहर होता है। इससे उनके अन्दर तीव्र चिन्ता आदि उत्पन्न हो जाती है जो व्यक्ति को इस रोग तक पहुँचाने में सहायता प्रदान करती है।

(2) पूर्व मनोघात व वंचितता (Early Psychic Trauma and Deprivation)-अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविदलता का कारण रोगी को शैशवकालीन आघात बताया है। वाह्ल ने 1956 में 568 पुरुष मनोविदलता रोगियों का अध्ययन किया जिसके आधार पर उसने बताया कि 41 रोगियों के माँ-बाप की या तो मृत्यु उनके बाल्यावस्था में हो गई थी या वे तलाक आदि कारणों से उनसे अलग हो गये थे । रोगी इस प्रकार के पारिवारिक आघातों को सहन नहीं कर पाते तथा उनके मन में ऐसे घाव उत्पन्न हो जाते हैं कि जीवन की दबावपूर्ण परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाते। बड़े होकर जीवन की यथार्थ परिस्थितियों से बचने के लिए शैशवकालीन जैसी सुरक्षित अवस्था का सहारा ले ते हैं।

(3)नैराश्य का अन्तर्द्वन्द्व (Frustation and Conflict)- वैसे तो प्रत्येक असामान्यता के पीछे नैराश्यताएँ मुख्य भूमिका निभाती हैं, परन्तु मनोविदलता के रोगियों में तो विशे ष रूप से जीवन की असफलता व वर्तमान परिस्थिति में समायोजन की असामर्थ्यता विद्यमान होती है। इस प्रकार का रोगी विभिन्न नैराश्यों व अन्तर्द्वन्द्वों के प्रति उचित प्रतिक्रिया नहीं कर पाता। आरम्भ से ही उसके व्यक्तित्व का दोषपूर्ण विकास होना शुरू हो जाता है जिसके फलस्वरूप अब उसके सम्मुख किशोरावस्था या पूर्व-प्रौढ़ावस्था की अनेक समस्याएँ आती हैं तो वह उनसे दूर

भगाने का प्रयास करता है। इस प्रकार रोगी का इस रोग से ग्रस्त होना एक सुरक्षात्मक उपाय होता है तथा नैराश्यताएँ व अन्तर्द्वन्द्व इन रोगियों के लिए तात्कालिक कारण होते हैं।

(4)प्रतिगमनात्मक स्वरूप (Regressive Pattern)- कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि मनोविदलता प्रतिगमन की चरम सीमा है। अन्य शब्दों में, मनोविदलता का मुख्य कारण मनोग्रन्थियों का दमन व लैंगिक इच्छा का प्रतिगमन है (युंग)। कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता को शैशवावस्था तक का प्रतिगमन मानते हैं, क्योंकि मनोविदलता के रोगियों में भी शैशवावस्था के समान ही इदम् से सम्बन्धित आवेगों की प्रधानता रहती है तथा रोगी का व्यवहार वास्तविकता से पूर्णतः परे हो जाता है। रोगी के संवेगात्मक व बौद्धिक स्वरुप भी शिशु की भाँति अतार्किक व अस्पष्ट होते हैं। फ्रायड के अनुसार मनोविदलता अचेतन में छिपी समलैंगिकता का परिणाम है। रोगी प्रतिगमन के माध्यम से इन अचेतन की अमान्य इच्छाओं से अहम् की रक्षा करता है। युंग ने मनोविदलता का कारण बाल्यावस्था की ओर पलायन (flight into childhood) माना है।

(5)अन्य मनोवैज्ञानिक कारक (Other Psychological factors)- कुछ मनोवैज्ञानिक मनोविदलता के अन्य कारणों पर जोर देते हैं। एडलर के मतानुसार, मनोविदलता का कारण हीनता का भाव (पदमितपवतपजल मिमसपदह) है। एडलर के अनुसार, हीनता के भाव के कारण व्यक्ति समायोजन करने में असफल होता है जिसके फलस्वरूप उनमें विभिन्न प्रकार के व्यामोह विभ्रम, भय आदि के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिक इसका कारण अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को मानते हैं। इसी प्रकार फ्रायड का मत है कि मनोलैंगिक विकास का प्रभाव मनोविदलता की उत्पत्ति पर पड़ता है।

(स)सामाजिक कारण (**Sociological Factors**)- अभी तक हमने मनोविदलता के वंशानुक्रम व मनोवैज्ञानिक कारकों पर प्रकाश डाला, परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों ने मनोविदलता का कारण सामाजिक व सांस्कृतिक प्रभावों को माना है। कुछ अध्ययनों के आधार पर ज्ञात हुआ है कि कुछ सामाजिक समूहों में अपेक्षाकृत मनोविदलता के रोगी अधिक पाये जाते हैं। हॉलिंगशेड व रेडलिक (1954) ने एक अध्ययन के आधार पर बताया कि मनोविदलता का रोग अपेक्षाकृत निम्न सामाजिक व आर्थिक स्तर के व्यक्तियों में अधिक घटित होता है। नव्य-फ्रायडियनों ने भी इस रोग का कारण सामाजिक व सांस्कृतिक माना है। कैरेन हार्नी ने मनोविदलता का कारण सामाजिक असमायोजन माना हैं।

15.4.4 मनोविदलता का उपचार (Treatment of Schizophrenia) .

सामान्य रूप से मनोविदलता के रोगियों के उपचार के सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि इसके सभी प्रकार के रोगियों का उपचार किसी एक ही चिकित्सा विधि से संभव नहीं है। रोगी के स्वरूप के अनुकूल निम्नलिखित चिकित्सा विधियों में से किसी एक अथवा एक से अधिक विधियों का उपयोग किया जा सकता हैः-

(1) जैविक उपचार (Biological Treatment)- इस उपचार के अन्तर्गत आघात चिकित्सा (shock therapy), मनोशल्यचिकित्सा (psychosurgery) तथा औषध चिकित्सा (drug therapy) का उपयोग किया जाता है। आरंभ में मनोविदलता के रोगी के उपचार के लिए आघात चिकित्सा का उपयोग बड़े पैमाने पर किया जाता था। रोगी को विद्युत आघात देकर उसके लक्षणों को दूर करने का प्रयास किया जाता था, आगे चलकर इसके साथ-साथ इन्सुलिन चिकित्सा के उपयोग पर सकेल (Sakel) नामक नैदानिक मनोवैज्ञानिक ने बल दिया। लेकिन यह चिकित्सा विधि अधिक सफल प्रमाणित नहीं हुई। मनोविकृति विरोधी औषधों (anti-psychotic drugs)

के उपयोग से मनोविदलता के रोग को लाभ होता है विशेष रूप से क्लोरप्रोमाइजिन (chlorpromizine) का उपयोग अधिक प्रभावी प्रमाणित हुआ। वर्तमान समय में अन्य औषधों जैसे-बूटाइरोफेनोनेस (butyro-phenones) तथा थीरौक्से रिथिंस (thiroxarithenes) का उपयोग भी मनोविदलता के रोगियों के उपचार में सफलतापूर्वक किया जाता है।

ब)मनश्चिकित्सा (Psychotherapy)- मनोविदालिता को रोगियों का उपचार मनश्चिकित्सा की प्रविधियों से भी किया जाता है। सामान्यताः मनोविदालिता के रोगियों का उपचार मनोविक्षिप्ति विरोधी औषधों के सेवन के बाद प्रारम्भ किया जाता है। इस रोग के उपचार में मनश्चिकित्सा के निम्नांकित प्रकारों का उपयोग किया जाता है-

(1) सूझ चिकित्सा (**Insight** therapy)- मनोविदालिता के उपचार में विभिन्न तरह के सूझ चिकित्साओं का उपयोग किया जाता है। वासिले नकी (1992) सूझ चिकित्सा में चिकित्सक रोगी के विश्वास को जीत कर तथा उससे एक घनिष्ठ संबंध विकसित करके उनके लक्षणों की गंभीरता को बहुत हद तक कम करने में सफल होते देखे गए हैं। इस सिलसिले में फ्रोम-रिकमान (1950) द्वारा किया गया चिकित्सीय योगदान विशे ष रूप से प्रशंसनीय है।

(2) सामाजिक चिकित्सा (Social therapy)- मनोविदालिता के रोगियों में खासकर चिरकालिक (chronic) रोगियों में सामाजिक कौशलों की काफी कमी पायी जाती है। मनोविक्षिप्त विरोधी दवाओं के सेवन से जब रोगी के धनात्मक लक्षण कम हो जाते हैं तो भी सामाजिक कौशलों की कमी दिखता है जिनसे उसके व्यवहार में विभिन्नता बनी रहती हैं। सामाजिक कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रम एक काफी संरचित कार्यक्रम होता है जिसमें नये एवं अधिक समायोजी अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार को सिखलाया जाता है। अन्य बातों के अलावा सामाजिक कौशल के तत्वीय पहलू जैसे आवाज प्रबलता, स्वर ,नेत्र सम्पर्क एवं बातचीत के दौरान सिर मोड़ना या घूमाना आदि से सम्बद्ध प्रशिक्षण दिये जाते हैं। आत्म देख-रेख कौशलों को व्यवहारात्मक-प्रशिक्षण विधियों से उन्नत बनाया जाता है। ऐसी विधियाँ मूलतः व्यवहार चिकित्सा के ही अंग माने गए हैं। इनके द्वारा अन्य बातों के अलावा अपने-आप को निरंतर साफ-सुथरा रखने, अपने रुपये-पैसों के खर्चों का उपयुक्त हिसाब, भोजन पकाना, सामान्य तौर-तरीके आदि को सखिलाया जाता है। इतना ही नहीं मनोविदालिता के रोगियों में संज्ञानात्मक कौशलों की भी कमी होती है। इन कमियों को दूर करने के लिए संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा (cognitive behaviour therapy) का उपयोग किया जाता है। इस चिकित्सा द्वारा रोगियों के चिरकालिक श्रव्य विभ्रम (chronic auditory hellucinations) को कम किया जाता है। इस चिकित्सा में रोगियों को यह समझाया जाता है कि ऐसे श्रव्य विभ्रम जो इन्हें शरीर के भीतर से उत्पन्न होने देता है, का कारण किसी बाह्य उद्दीपक या वस्तु के प्रति गलत ढंग से उनके द्वारा आरोपण के कारण होता है। मनोविदालिता के रोगियों में व्यवहार चिकित्सा का उपयोग कुछ वैसे विकृत संज्ञानों (disordered conginitions) को परिवर्तित करने के लिए भी किया गया है, जिससे सामाजिक समस्या समाधान क्षमता प्रभावित होता है ब्रेन्नर तथा उनके सहयोगी (1989)।

(3)पारिवारिक चिकित्सा (Family therapy)- ऐसा देखा गया है कि मनोविदालिता के रोगियों को सफल उपचार के बाद मानसिक अस्पताल से निकलकर पुनः अपने परिवार में ही जाना पड़ता है। अगर इन लोगों का व्यवहार सकरात्मक तथा प्रशंसनीय होता है, तो इससे इन रोगियों पर अधिक अनुकूल प्रभाव पड़ता है तथा उनके रोग के लक्षणों की पुर्नवापसी की समस्या उत्पन्न नहीं होती है, परन्तु कभी-कभी परिवार के सदस्यों का व्यवहार

रोगी क प्रति निन्दक होता है, जिसके परिणामस्वरूप रोग के लक्षणों में तेजी से पुनर्वापसी होने लगता है और रोगी को पुनः मानसिक अस्पताल में भर्ती करवाना आवश्यक हो जाता है। अतः मनोवैज्ञानिकों द्वारा ऐसे रोगियों के पारिवारिक चिकित्सा की आवश्यकता पर बल डाला गया है। पारिवारिक चिकित्सा का केन्द्र बिन्दु परिवार तथा स्वयं रोगी दोनों ही होता है। इस तरह की चिकित्सा में सामान्यः परिवार के सदस्यों को मनोविदालिता के बारे में पर्याप्त निर्देशन, प्रशिक्षण, व्यवहारिक राय, विशेष शिक्षा, सांवेगिक समर्थन तथा परानुभूति (empathy) आदि के बारे में बतलाया जाता है। इससे परिवार के सदस्यगण अपने-अपने प्रत्याशाओं में वास्तविकता, विचलित व्यवहार को सहन करने की क्षमता, दोष-भाव की कभी तथा संचार अंतःक्रिया के नये पैटेर्नों को लागू करने की कोशिश आदि बढ़ता है। इस प्रक्रिया को मनोशिक्षा (psychoeducation) कहा जाता है।

पारिवारिक चिकित्सा के कुछ प्रविधियों में अभिव्यक्त संवेग (expressed emotion) पर भी बल डाला गया है। लेफ्फ एवं भाघन (1985) के अनुसार अभिव्यक्त संवेग से तात्पर्य एक ऐसी प्रक्रिया से होती है, जिसके सहारे परिवार के क्षुब्ध व्यक्ति के बारे में परिवार के सदस्यों द्वारा अभिव्यक्त मनोवृत्ति में परिर्वतन किया जाता है।

(4)सामाजिक पुनर्वास (Social rehabilitation)- इसमें परिवार के सदस्य, रोगी की तथा अपनी समस्याओं के बारे में मनोसामाजिक चिकित्सक से बातचीत करते हैं। उन्हें रोगी की साथ व्यवहार करने के तरीकों की शिक्षा दी जाती है और उपचार के बारे में विस्तृत जानकारी दी जाती है। उन्हें दवाओं की आवश्यकता एवं नियमितता के बारे में समझाया जाता है। रोगी की क्षमताओं का उपयोग करने के तौर-तरीकों को बताया जाता है। सामाजिक पुनर्वास के लिए रोगी की योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उसे छोटे-छोटे कार्यों के लिए प्रशिक्षण, रोजगार चिकित्सा (occupational therapy) के रूप में दिया जाता है। इससे रोगी को ठीक होने के बाद अपनी जीविका चलाने में सहायता मिलती है। सामाजिक पुनर्वास का एक पहलू समूह चिकित्सा (group therapy) भी है। इनमें रोगियों को एक समूह में एक साथ बैठाकर उनकी समस्याओं के बारे में रोगियों से ही चर्चा कराई जाती है और उनके सम्भावित हल ढूँढ़ने का प्रयत्न किया जाता है। इसमें चिकित्सक समूह को चर्चा में एक निश्चित दिशा प्रदान करता है।

5.औषधीय उपचार (Drug Therapy)- औषधीय उपचार के लिए Rowualfia Serpentina, Chlorpromazine (Megatil, Nausilax), Fluphenazine (Anatensol Prolinate), Thiorridazine (Ridazine, Mellaril, Saliril), Trifluoperazine (Trinicalmplus, Trimicalm forte, Neocalm, Neocalm plus), Pimozide, Haloperidol (Combidol, Hexidol, Senorum, Trinorm), Haloperidol decanote, Trifulperidol, Prochlorperazine, Triflupromazine, Flupenthixol, Flupenithixol decanote, Lxapine, Clozapine, Risperidone, Olanzapine, आदि का प्रयोग चिकित्सक के निर्देशानुसार किया जा सकता है।

15.5 स्थिर व्यामोह या व्यामोही विकृति (PARANOIA OR DELUSIONAL DISORDER)

15.5.1 अर्थ एवं स्वरूप - स्थिर व्यामोह मनोविकृति का एक मुख्य प्रकार है, जिसकों स्थिर व्यामोही विकृति (paranoid disorder) तथा व्यामोही विकृति (delusional disorder) भी कहते हैं। यह एक ऐसी मानसिक रोग है जिसमें नाना प्रकार के व्यामोह (कमसनेपवदे) पाए जाते हैं, जो अपेक्षाकृत स्थायी स्वरूप के होते हैं। चैपलिन (chaplin 1975) के अनुसार- **''स्थिर-व्यामोह एक मनोविकृति है, जिसकी विशेषता है उत्पीड़न अथवा श्रेष्ठता के अत्यन्त क्रमबद्ध व्यामोह, जिनमें कोई बिगाड़ नहीं होता है।''**

रेबर तथा रेबर (Reber and Reber ,2001) ने इस मानसिक रोग के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहा है कि- **''व्यामोही विकृति एक व्यापक शब्द है, जिससे ऐसी मानसिक विकृति का बोध होता है जिसमें किसी तरह के व्यामोह का अर्थपूर्ण लक्षण होता है।''**

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हो जाता है कि स्थिर व्यामोही अथवा व्यामोही विकृति एक मनोविकृति है, जिसका मुख्य लक्षण व्यामोह है। व्यामोहिक विकार केआधुनिक प्रत्यय का तथ्य यह है कि स्थायी एवं अटल व्यामोहिक लक्षण का विकास व्यक्ति के जीवन के मध्य आयु में होता है। इसकी उपस्थिति से अन्य मानसिक क्रियाओं में कोई ह्रास नहीं होता। रोगी अक्सर अपने कार्य पर जाता है और अपना जीवन भी ठीक प्रकार से व्यतीत कर लेता है।

15.5.2 निदान (Diagnosis)- DSM-III-R में इस विकार को दो अलग-अलग विकारों में वर्गीकृत किया गया- स्थिर व्यामोह तथा स्थिर व्यामोही अवस्था। स्थिर व्यामोह में उत्पीड़न तथा महानता का व्यामोह होता है। DSM-IVमें इन दोनों मनोविकृतियों को समाप्त कर एक ही शीर्षक व्यामोही विकार (Delusional disorder) रखा गया है। DSM-IVके अनुसार व्यामोहिक विकार का निदान तब किया जाता है जब एक व्यक्ति कम से कम एक माह की अवधि का गौरवचित्र (Non-bizarre) व्यामोह प्रस्तुत करता है तथा जो अन्य किसी मानसिक रोग का विशेष लक्षण नहीं होता है। गौरवचित्र व्यामोह का अर्थ ऐसी स्थिति के व्यामोह के लिए होता है जो वास्तविक जीवन में उत्पन्न हो सके जैसे कि पीछा किया जाना, संक्रमित होना, दूर से प्यार करना आदि। DSM-IVमें पाँच प्रकार के व्यामोह बताये गये हैं- उत्पीड़नातम्क, ईष्यालु, कामोन्मादी, दैहिक तथा महानता। ICD-10 में दुराग्रही व्यामोहिक विकार (Persistent delusional disorder) को ही मुख्य व्यामोहिक विकार के रूप में परिभाषित किया गया है। इसमें व्यामोह के लक्षणों की उपस्थिति एक माह के स्थान पर कम से कम तीन माह होनी चाहिये। इसमें व्यामोह के प्रकारों का उल्लेख नहीं किया गया है।

15.5.3 व्यामोहिक विकार के प्रकार (Types of delusional disorder)

1.उत्पीड़नात्मक प्रकार (Persecoutory type)- उत्पीड़न का व्यामोह व्यामोहिक विकार का उत्कृष्ट लक्षण है। मनोचिकित्सकों को उत्पीड़न का एवं ईर्ष्या का व्यामोह सबसे अधिक देखने को मिलता है। मनोविदलता विकार के उत्पीड़न के व्यामोह के विपरीत व्यामोहिक विकार के उत्पीड़नात्मक व्यामोह कथानक का विस्तारण व्यवस्थित, स्पष्ट एवं तार्किक होता है। इसमें मनोविदलता के विपरीत अन्य कोई विकृति या व्यक्तित्व में विघटन नही मिलता है।

2.ईर्ष्यात्मक प्रकार (Jealous type)-अविश्वास (Infidelity) के व्यामोह के साथ व्यामोहिक विकार को दाम्पत्तिक स्थिर व्यामोह (conjugal paranoia) कहा जाता है। सामान्यतः यह व्यामोह पुरूषों को दुःख देता है। अगर व्यामोह जीवन साथी के विश्वासघाती होने तक सीमित है तो यह अचानक ही प्रारम्भ हो सकता है और इसका अन्त काफी कठिन होता है और संबंध विच्छेद, मृत्यु आदि के बाद ही इसके समाप्त होने की सम्भावना होती है।

3.कामोन्मादी प्रकार (Erotomanic type)- कामोन्माद के रोगी गोपनीय प्रेम का व्यामोह रखते हैं। अधिकतर यह विकार महिलाओं में होती है परन्तु पुरूष में भी इस प्रकार का व्यामोह हो सकता है। रोगी को ऐसा विश्वास होता है कि उससे अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा वाला व्यक्ति उसे प्यार करता है। व्यामोह रोगी के अस्तित्व का केन्द्र होता है तथा इसका प्रारम्भ अचानक होता है। कामोन्माद के रोगी की कुछ विशेषता होती है। वे सुन्दर महिला नही होती है, वे सामान्यतः छोटी नौकरी में, अकेले रहती है और किसी के साथ शारीरिक संबंध भी होता है। इसकी गति

चिरकालिक, बारम्बार या अल्पकालीन होती है। प्रेम के लक्ष्य से रोगी को अलग किया जाना ही एकमात्र सन्तोषजनक हस्तक्षेप है। यद्यपि पुरूष महिलाओं की अपेक्षा कम व्यथित होते है, ये अपने प्रेम के अनुसरण में अधिक आक्रोशित और उदण्ड होते है। यहाँ आक्रोश का लक्ष्य प्रेम किया जाने वाला व्यक्ति ही नही होता है बल्कि उसे शरण देने वाला व्यक्ति भी होता है, क्योंकि उसे प्रेम के बीच आने वाला समझने लगता है। कुछ घटनाओं में प्रेमी की ओर से कोई अनुक्रिया न होने पर प्रेमलक्ष्य खतरे में पड़ जाता है।

4.दैहिक प्रकार (**Somatic type**)- इस प्रकार के व्यामोहिक विकार में व्यामोह निश्चित, अतार्किक और भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किये जाते है क्योंकि रोगी पूरी तरह आश्वस्त होता है कि उसकी समस्या दैहिक है। इसके विपरीत रोगभ्रम (hypochondriasis) का रोगी यह स्वीकार करता है कि उसके रोग का डर आधारहीन है। इस प्रकार के विकार के मुख्य तीन प्रकार है- **(1) शत्रुबाधा (infestation) का व्यामोह (2) डिसमार्फोफोबिया का व्यामोह जैसे अनिष्ट, शरीर के अंगो का बड़ा होने से बदसूरती और (3) दुर्गन्ध (halitoisis) का व्यामोह**। इस प्रकार की स्थितियाँ कम होती है परन्तु इनके निदान की समस्या बनी रहती है क्योंकि ये रोगी मनोचिकित्सक के स्थान पर अक्सर काया चिकित्सक, त्वचाविशेषज्ञ, शलयचिकित्सा आदि के पास भटकते रहते है। इस प्रकार के रोगियों का रोगफलानुमान बिना चिकित्सा के काफी खराब होता है। यह महिला तथा पुरूष दोनों में बराबर से होता है। इनमें क्रोध, आक्रोश, शर्म, अवसाद आदि विशेष रूप से देखा जाता है।

5.महानता का प्रकार (**Grandiose type**)- महानता के व्यामोह के बारे में वर्षो से चर्चा की जाती रही है। इसका विवरण क्रेपलिन के स्थिर व्यामोह में मिलता है जो कि व्यामोहिक विकार के समान ही है। इसमें व्यक्ति अपने से काफी बड़े व्यक्ति को अधिक शक्तिशाली, ज्ञानी समझने लगता है। कभी-कभी तो वह बड़े लोगों की तरह व्यवहार भी करने लगता है। इसमें रोगी को यह भी गलत विश्वास हो जाता है कि उसमें कोई दिव्य शक्ति उत्पन्न हो गई है उसने कोई महत्वपूर्ण खोज कर ली है या उसका किसी राजनेता या बड़े व्यक्ति से व्यक्तिगत सम्पर्क है या उसको इस धरती पर ईश्वर ने अपना दूत बना कर भेजा है।

6.मिश्रित प्रकार (**Mixed type**)- इस वर्ग में उन रोगियों को शामिल किया जाता है जिनमें एक से अधिक व्यामोह के कथानक मिलते है।

7.अविशिष्ट (Unspecified)- इसमें हम उन रोगियों को वर्गीकृत करते है जिनमें स्पष्ट व्यामोह के कथानक ऊपर वर्णित किसी भी प्रकार के व्यामोह में नहीं मिलता है, जैसे-सन्दर्भ का व्यामोह।

15.5.4 हेतुकी (Etiology)- मनोचिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि व्यामोहिक विकार के मुख्य कारण मनोसामाजिक है यदि ये किसी चिकित्सकीय स्थिति या द्रव्य सेवन से जुड़ा न हो।

(1) विश्वास की कमी- व्यामोहिक विकार के रोगी की मातायें कठोर अनुशासन वाली, अवहेलना करने वाली होती हैं तथा पिता असम्बद्ध, परपीड़क एवं रूखे स्वभाव के होते है अथवा वे कमजोर एवं प्रभावहीन होते है। ऐसे वातारण में बच्चों को यदि अपनी कुण्ठाओं और निराशाओं को दूर करने में माता-पिता का सहायता नहीं मिलती तो वे बाहरी वातारण को शत्रुतापूर्ण मानने लगते हैं और काल्पनिक समस्याओं के प्रति अतिसंवेदनशील हो जाते है। इस प्रकार विश्वास में कमी उसके व्यवहार में समाहित हो जाती है। यह व्यक्ति अहम् रक्षा तन्त्र के प्रतिक्रिया तंत्र का उपयोग, आक्रामकता एवं निर्भरता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये करने लगता है। अस्वीकरण का उपयोग कटु यथार्थ को झुठलाने के लिए किया जाता है। नाराजगी और शत्रुभाव से उत्पन्न क्रोध की भावना को दूर करने के लिए प्रक्षेपण (projection) का उपयोग किया जाता है।

(2) अनिर्धारित लक्ष्य- कुछ बच्चों के माता-पिता उनसे उनकी क्षमता से अधिक की आशा करते हैं और जब बच्चें उनकी आशा के अनुरूप परिणाम नहीं लाते है तो उन्हें अनपेक्षित दण्ड देते है। इस प्रकार असुरक्षा की भावना से ग्रसित बच्चे स्वकल्पना (fantacies) ग्रस्त हो जाते हैं।

(3) दोषपूर्ण सीखना एवं विकार-व्यामोह उन व्यक्तियों में भी विकसित होता है जो बचपन में अधिक एकान्त प्रिय, जिद्दी, शक्की या प्रतिरोधी रहे हैं। ये बच्चे अपने हम उम्र बच्चों के साथ सौहार्द्र का संबंध बनाकर रखने में असमर्थ होते है। जिससे इनमें दूसरों के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न नहीं हो पाता है।

कुछ मनोचिक्त्सिकों एवं मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि व्यामोह के विकार में पारिवारिक पृष्ठभूमि की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। ऐसे रोगियों का परिवार सत्तावादी या दमनकारी होता है।

(4) नकली समुदाय- केमरान ने सात प्रकार की स्थितियाँ बताई है जो कि व्यामोहिक विकार के विकास में सहयोग करती हैं। परपीड़ा व्यवहार का शिकार होने का भय, सामाजिक एकाकीपन, ईर्ष्या एवं द्वेष को बढ़ाने वाली परिस्थितियाँ, आत्मविश्वास कम करने वाली परिस्थितियाँ, ऐसी स्थितियॉ जो व्यक्ति को अपनी कमियों को दूसरे में देखने को विवश करती है, ऐसी स्थितियॉ जो चिन्ता बढ़ाती है। जब ऐसी किसी भी स्थिति में कुंठा सहनशक्ति से अधिक हो जाती है तब व्यक्ति प्रत्याहारी (withdrawn) तथा चिन्तित हो जाते हैं तब वे समझते है कि कुछ गलत है। केमरान का कहना था कि धीरे-धीरे रोगी के व्यामोह इतने दृढ़ हो जाते हैं कि वह एक नकली समुदाय विकसित कर हमेशा अपने को कुछ ऐसे व्यक्तियों (वास्तविक या काल्पनिक) से घिरा पाता है जिनका उद्देश्य उसके प्रतिकूल कोई क्रिया करती होती है। इस कारण रोगी छोटी-छोटी बातों को भी काफी बड़ी बना देता है।

(5) व्यक्तित्व का प्रकार- मनोचिकित्सकों एवं मनोवैज्ञानिकों के विभिन्न अध्ययनों के परिणाम में यह उभर कर आया है कि कुछ विशेष प्रकार के व्यकितत्व के लोग व्यामोहिक विकार के लिए संवेदनशील होते है, जैसे-संदेही, ईष्यालु, महत्वाकांक्षी आदि।

(6) पराहम् प्रक्षेपण-व्यामोही महिलायें अक्सर इस भ्रम से पीड़ित होती हैं, जिसमें उन्हें लगता है कि उन पर वेश्या होने का आरोप लगाया जा रहा है। बचपन में ये माता के प्यार की चाह में पिता की ओर उन्मुख हो जाती है और कौटुम्बिक व्यभिचार की भावना (incestual feeling) उत्पन्न हो जाती है जो कि बाद में व्यस्क होने पर सामान्य रति क्रिया को उसी भावना के अनुरूप सोचने पर विवश करती है। यही भावना बचपन की इच्छाओं की रक्षा के लिए पराहम् प्रक्षेपण रक्षातन्त्र का प्रयोग कर व्यामोह को जन्म देती है।

15.5.5 व्यामोहिक विकार के उपचार (Treatment of Paranoia)

स्थिर व्यामोह की प्रारंभिक अवस्था में रोगियों की चिकित्सा करना आसान होता है। ऐसी अवस्था में इन्हें वैयक्तिक मनोचिकित्सा (individual psychotherapy) तथा समूह मनोचिकित्सा देकर आसानी से चंगा किया जा सकता है। इस प्रारंभिक अवस्था में व्यवहार चिकित्सा देकर रोगियों को उनके लक्षणों से आसानी से मुक्त कराया जा सकता है। जैसे, विरुचि अनुबंधन (aversive conditioning) द्वारा कुसमायोजी व्यवहार को पुनर्बलित करने वाले कारकों को दूर करके तथा उत्तम समायोजी पैटर्न को अपनाकर स्थिर व्यामोही विश्वास को दूर किया जा सकता है।

परन्तु यदि स्थिर-व्यामोह की अवस्था बहुत आगे बढ़ चुकी होती है यानी रोग पुराना हो चुका होता है, तो वैसी अवस्था में इसके उपचार में थोड़ी कठिनाई आती है रोग पुराना हो जाने पर रोगी के साथ अर्थपूर्ण ढंग से कुछ कहना या सुझाव देना चिकित्सक के लिए संभव नही हो पाता है। फलतः उन्हें मनोचिकित्सा देकर चंगा करना संभव नहीं हो पाता है। इस विकराल अवस्था में ऐसे रोगियों को मानसिक आरोग्यशाला (mental hospital) में भर्ती कराकर

चिकित्सा कराना अनिवार्य हो जाता है जहॉ उन्हें मेडिकल चिकित्सा देकर उन्हें चंगा करने का प्रयास किया जाता है।

15.6 भावात्मक विकृति (Affective disorder)

मनोदशा विकृति का संबंध भावात्मक मानसिक प्रक्रिया (affective mental process)से है। इसी आधार पर मनोदशा विकृति को भावात्मक विकृति भी कहा जाता है। इस विकृति की स्थिति में कभी अत्यधिक विषाद और कभी अत्यधिक उत्साह (elation) घटित होता है।

रेबर तथा रेबर (Reber and reber 2001) ने मनोदशा विकृति को परिभाषित करते हुए कहा है कि- ''मनोदशा विकृतियों का तात्पर्य विकृतियों के उस वर्ग से है, जिसमें मनोदशा उपद्रव अथवा संवेगात्मक भाव की विशेषता, इस सीमा तक पायी जाती है जहॉ अत्यधिक एवं अनुपयुक्त विषाद या उत्साह घटित होता है।'' इस परिभाषा के विश्लेषण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं:-

(1)मनोदशा विकृति अथवा भावात्मक विकृति को मनोविकृतियों का एक वर्ग माना जाता है। कारण, इसमें कई तरह की विकृतियॉ पायी जाती है। जैसे-अत्यधिक उत्साह, अत्यधिक विषाद इत्यादि।

(2) इस मानसिक विकृति का संबंध भावात्मक मानसिक प्रक्रिया से है। इसलिए, इसे भावात्मक विकृति कहा जाता है।

(3) इस मानसिक विकृति में कभी अत्यधिक विषाद (depression) का लक्षण देखा जाता है और कभी अत्यधिक उत्साह का लक्षण। इसी आधार पर पहले इस विकृति को उत्साह-विषाद विकृति कहा जाता था।

(4) इस विकृति में घटित विषाद या उत्साह अधिक तीव्र होने के साथ-साथ अनुपयुक्त होता है।

15.6.2 भावात्मक विकृति के प्रकार -

मनोदशा विकृति अथवा भावात्मक विकृति के निम्नलिखित प्रकार हैः-

(1) एकध्रुवीय विकृति या विषादी घटना (Unipolar Disorder or Depressive Episode)

(2) द्विध्रुवीय विकृति (bipolar disorder) /उत्साह विषाद विकृति (Manic Depressive Disorder

(3) डाइस्थाइमिक विकृति (Dysthymic Disorder)

(4) साइक्लोथाइमिक विकृति (Cyclothmic Disorder)

1. एकध्रुवीय विकृति या विषादी घटना

अर्थ एवं स्वरूप -

जिस मनोविकृति को पहले विषाद (depression) अथवा विषादी विकृति ; (Depressive Disorder) कहा जाता था, उसे अब एकध्रुवीय विकृति कहा जाता है। कभी-कभी एक ध्रुवीय विकृति को मुख्य विषादी घटना (major depressive episode) भी कहते हैं। अतः विषाद, विषाद विकृति, मुख्य विषादी घटना तथा एकध्रुवीय विकृति समान अर्थ वाले शब्द है।

रेबर तथा रेबर ने एकध्रुवीय विकृति की व्याख्या करते हुए कहा है कि इस विकृति में केवल विषादी घटनाएँ घटित होती है। इसमें उत्साह या उन्माद (mania) नहीं पाया जाता है। यह लक्षण द्विध्रुवीय विकृति में पाया जाता है।

लक्षण -विषाद विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति के लक्षणों को निम्नलिखित प्रकारों में विभाजित किया जा सकता हैः-

1. मनोदशा लक्षण (Mood symptoms). इस मानसिक रोग का मुख्य लक्षण मनोदशा से संबंधित है। रोगी हमेशा खिन्न, उदास तथा निराश रहा करता है। वह अपने आप को उपेक्षित महसूस करता है। वह अपने जीवन में आशा तथा उल्लास नही देखता है। निराशा के कारण आत्महत्या की प्रवृत्ति से वह पीड़ित रहता है।

2.संज्ञानात्मक लक्षण (**Cognitive symptoms**). इस मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्ति में कई तरह के संज्ञानात्मक लक्षण पाए जाते है। रोगी प्रायः निराशावादी होता है, नकरात्मक प्रवृत्ति (negative tendency)अधिक पायी जाती है, वह अपनी समस्याओं का आकलन बढ़ा-चढ़ा करता है, रोगी की स्वधारणा (self-concept) कमजोर होती है।

(3) दैहिक लक्षण (Somatic symptoms). एकध्रुवीय विकृति अथवा विषाद विकृति के रोगी में कई तरह के दैहिक लक्षण देखे जाते है। ऐसे लक्षणों में बाधित निद्राए बाधित भोजन प्रतिरूप (disturbed eating patterns), यौन प्रणोदन (sex drive) की कमी तथा शारीरिक रोग अधिक देखे जाते है।

(4)**नैदानिक मापदण्ड** (**Clinical criteria**)- DSM-IV;1994 में एक ध्रुवीय विकृति (unipolar disorder) के कई नैदानिक मापदण्डों का उल्लेख किया गया है, जैसे-दो या अधिक प्रधान विषादी घटनाएँए उत्साह या उन्माद का अभाव तथा बाधित लक्षण प्रतिरूप। उपर्युक्त लक्षणों के आलोक में विषादी विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति की पहचान की जा सकती है।

कारण (Causes)- एकध्रुवीय विकृति अथवा विषादी विकृति के निम्नलिखित कारण है-

1.मनोगतिक कारक (**Psychodynamic factors-**) - इस संबंध में फ्रायड (Freud) ने प्रारम्भिक क्षति को विषाद का कारण माना। उनके अनुसार मुखावस्था स्थायीकरण (Oral fixation) से उत्पन्न अचेतन द्वन्द्वों (unconscious conflicts) के प्रति प्रतिगमन मनोरचना (regression mechanism) के रूप में व्यक्ति विषाद से पीड़ित हो जाता है। इसी तरह मौखिक अवस्था में अपने प्रियजन की क्षति के प्रति आत्मसात (introjections) भी नकारात्मक मनोवृत्ति, आत्म-दोष तथा प्रत्याहार के रूप में विषाद को जन्म देता है।

2.संज्ञानात्क कारक (**Cognitive factors**)- संज्ञानात्मक दृष्टिकोण के अनुसार विषाद के विकास पर संज्ञानात्मक कारकों का प्रभाव दो तरह से पड़ता है- (अ) नकारात्मक संज्ञानात्मक प्रवृति तथा सूचना संसाधन तथा (ब) अर्जित निस्सहायता। बेक (Beck 1976) के अनुसार नकारात्मक संज्ञानात्मक प्रवृति की स्थिति में व्यक्ति विषाद विकृति का शिकार बन जाता है। विषादी तन्त्र के विकसित हो जाने पर विषादी सूचना का प्रत्यावाहन व्यक्ति अधिक करता है। स्लिगमैन (Seligman) के अनुसार अर्जित निस्सहायता (learned helplessness) भी एक संज्ञानात्मक कारक के रूप में विषादी विकृति को प्रोत्साहित करती है।

3.जैविक कारक (**Biological Factors**)- जैविक कारकों में जननिक कारक (genetic factor)का हाथ अधिक होता है परिवार के अध्ययनों तथा जुड़वाँ बच्चों के अध्ययनों से पता चलता है कि यह रोग बहुत हद तक वंशागत होता है।

4.सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक (**Social and Cultural Factors**)- विषादी विकृति या एकध्रुवीय विकृति के विकास पर कई तरह के अवक्षेपी कारकों (precipitatory factors) का प्रभाव पड़ता है, जिनमें दोषपूर्ण

प्राथमिक समाजीकरण (faulty primary socialization), दोषपूर्ण अधिगम प्रतिरूप (faulty learning patterns),दोषपूर्ण सांस्कृतिक मानक (faulty cultural norms) आदि मुख्य है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि विषादी विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति के विकास में कई तरह के पूर्वप्रवृत्तिक कारकों तथा अवक्षेपी कारकों का हाथ होता है।

द्विध्रुवीय विकुति (Bipolar disorder)

अर्थ तथा लक्षण - उत्साह-विषाद (manic depression) अर्थात द्विध्रुवीय विकुति (bipolar disorder) वास्तव में मनोदशा विकृति का एक महत्वपूर्ण प्रकार है। यह द्विविमात्मक विकृति (two dimensional disorder) है। इस विकृति की एक विमा उत्साह (mania)है और दूसरी विमा विषाद (depression) है। रोगी में कभी उत्साह विमा और कभी विषाद विमा सक्रिय दीख पड़ती है। उत्साह प्रधान होता है तो विषाद गौण हो जाता है ओर जब विषाद प्रधान होता है तो उत्साह गौण हो जाता है।

कारण विज्ञान (Etiology)-

द्विध्रुवीय विकृति के लिए कई कारकों को उत्तरदायी ठहराया गया है जिनमें तंत्रिका प्रेषक (neurotransmitter), सोडियम आयन क्रिया (sodium ion activity), जननिक कारक एवं बलाघात (stress) को लिया जा सकता है।

1.Post et.al. (1980), Telner et.al (1986) के अनुसार उन्माद-विषाद प्रसंगों की अनुभूति तांत्रिका प्रेषकों द्वारा प्रभावित होती है। जैसे-जैसे (Norepinephrine) की मात्रा में वृद्धि होती है, उन्मादी अनुभूतियों में वैसे-वैसे वृद्धि पाई जाती है लेकिन छम् की मात्रा में जैसे-जैसे ह्यस पाया जाता है, वैसे-वैसे अवसाद की मात्रा बढ़ती जाती है। Bunney & Garlan(1984) का मत है कि Lithium नामक औषधि भी Norepinephrine की मात्रा को कम करके उन्मादपरक लक्षणों को कम करते है।

Price (1990), Bunney & Garland (1984) ने यह परिणाम प्राप्त किया है कि Serotonin की आपूर्ति कम होने से ही उन्माद की अवस्था पाई जाती है जबकि कुछ अध्ययन यह प्रदर्शित करते है कि Serotonin की मात्रा अधिक होने से उन्माद की मात्रा अधिक हो जाती है जैसे कि Norepinephrine के संदर्भ में प्राप्त किया गया है।

इस विरोधी परिणामों के परिणामस्वरूप ही Prange et.al. (1974) ने मनोदशा विकृति के संबंध में एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे अनुमतिबोधक सिद्धान्त (permissive theory) की संज्ञा दी जाती है। यह सिद्धान्त यह प्रस्तावित करता है कि मनोदशा विकृति का प्रारंभ Serotonin स्तर के निम्न होने के साथ ही यदि Norepinephrine का स्तर भी निम्न हो तो रोगी में अवसाद के लक्षण पाये जाते है। यह परिणाम एक ध्रुवीय अवसाद (unipolar depression) के तांत्रिका प्रेषक सिद्धान्त (Neurotransmitter theory) की पुष्टि करता है। ठीक इसके विपरीत, यदि Serotonin का स्तर निम्न है और बाद में Norepinephrine का स्तर उच्च हो जाता है, तो रोगी में उन्माद के लक्षण पाये जायेगें। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि Serotonin और Norepinephrine की अन्तक्रिया द्विध्रुवीय विकृति (bipolar disorder) को जन्म देती है परन्तु इस संदर्भ में अनुसंधानकर्ताओं में मतैक्य नही है। परन्तु यह चित्र अवश्य ही स्पष्ट है कि इन दोनों तांत्रिका प्रेषकों की असामान्यता रोगी की अवसादपरक असामान्यता का परिचायक है।

(2)द्वितीय कारक सोडियम आयन क्रिया के संदर्भ में Meltzer 1991, ने यह परिणाम प्राप्त किया है कि सम्पूर्ण मस्तिष्क के तांत्रिक झिल्लियों में सोडियम आयन्स के अनुपयुक्त एवं दोषपूर्ण संचार के कारण उन्माद भी पाया जाता है और अवसाद भी। इस संदर्भ में अनुसंधानकर्ताओं के दो मत है। कुछ का मत है कि मस्तिष्क के तांत्रिक झिल्लियों में सोडियम आयन का संचार उपयुक्त ढंग से होना आवश्यक है। जब इन आयनों का संचार बंग से होता है तो किसी तांत्रिका (neuron)में न तो आवश्यकता से अधिक उत्तेजना (stimulation) दिखाएगा और न आवश्यकता से अधिक प्रतिरोध (resistance) जबकि कुछ अनुसंधानकर्ताओं की धारणा उसके विपरीत है। इनका मत है कि सोडियम आयन का संचरण जब ठीक ढंग से नही होता है तो न्यूरोन या तो बहुत आसानी से उत्तेजित होगें या बहुत कठिनता से। जब न्यूरोन बहुत आसानी से उत्तेजित होगें, तो रोगी में उन्माद के लक्षण पाये जाएँगे। इसी प्रकार जब न्यूरोन कठिनता से उत्तेजित होगें, तो रोगी में अवसाद के लक्षण पाये जायेगे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि तांत्रिका की झिल्लियों (membrane) में सोडियम आयन के दोषपूर्ण संचरण से व्यक्ति के मनोदशा में परिवर्तन पाया जाता है।

Kato et.al., 1991 तथा Meltze 1991 के अध्ययन यह परिणाम प्रदर्शित करते है कि जब मस्तिष्क के तांत्रिकाओं के झिल्ली के प्रोटीन प्रकार्यो (protein function) में सामान्यता (normality) पाई जाती है, तो झिल्ली के आगे पीछे सोडियम आयन का संचरण अधिक अच्छी तरह होता है। और मनोदशा में विकृति के कोई लक्षण नही पाये जाते है। इसी प्रकार कुछ अध्ययन यह भी प्रदर्शित करते है कि तांत्रिकाओं के झिल्ली के दोषपूर्ण होने पर सोडियम आयन का संचरण ठीक से नही हो पाता है।

(3)द्विध्रुवीय विकृति के कारण के रूप में जननिक कारक को लिया जा सकता है जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि द्विध्रुवीयविकृति का कारण आनुवांशिकता है क्योंकि Nurberger & Gershon ,1992, American Psychiatric Association 1994 के अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है कि नजदीकी सम्बन्धियों में द्विध्रुवीय विकृति के पाये जाने पर 25% तक इस रोग के पाये जाने की संभावना पाई जाती है (Fischer)1980। Bertelsen et.al.;1974 ने अपने अध्ययन में समरूप यमज (identical twins) में द्विध्रुवीय के पाये जाने की संभावना 70% तथा fraternal twins में 25% प्राप्त की।

(4)द्विध्रुवीय विकृति के लिए उत्तरदायी चतुर्थ कारक बलाघात (stress) है। व्यक्ति के जीवन में पाया जाने वाला तनाव और बलाघात उनमें उन्माद के लक्षणों को उत्पन्न कर ता है। अध्ययनों में यह परिणाम भी प्राप्त किया गया है कि जिन द्विध्रुवीय रोगियों के उपचार के लिए लिथियम का प्रयोग किया गया था, उन रोगियों के उन्माद में उस समय वृद्धि प्राप्त की गई जब आंधी तूफान से हुए तबाही के कारण उनमें तनाव पाया गया (Anonson & Shuklas 1987)| Molz;1993 ने यह परिणाम प्राप्त किया है कि अवसादी या उन्मादी व्यक्तियों के साथ रहने पर दूसरे व्यक्ति में 40% इन रोगों के पाये जाने की संभावना पाई जाती है।

साइक्लोथिमिक विकृति (Cyclothymic Disorder)

अर्थ एवं स्वरूप - DSM-IV में साइक्लोथायमिक विकृति की परिभाषा, ''चिरकालिक अस्थिर क्षुब्धता'' (chronic) fluctuating disturbance) के रूप में की गई है। जिसमें अवउन्माद तथा अवसाद की अवस्थाएँ पाई जाती है। लक्षण के दृष्टिकोण से साइक्लोथायमिक विकृति द्धिध्रुवीय विकृति (Bipolar II disorder) का मृदुल रूप (mild form) है जिसमें अवउन्माद (hypomania) तथा मृदुल अवसाद (mild depression) के

लक्षण पाये जाते है। यह द्विध्रुवीय विकृति से भिन्न है क्योंकि इसमें प्रमुख अवसाद (MD) तथा अव उन्माद प्रसंग के लक्षण पाए जाते है। इस विकृति का यह एक प्रमुख लक्षण है कि यह विकृति कम से कम दो वर्षो के लिए अवश्य पाया जाता है। इस विकृति में अवसाद और अवउन्माद के लक्षण अवश्य पाए जाते है, परन्तु वह उतने गम्भीर नही होते है जितने कि अवसाद और उन्माद के नैदानिक लक्षण DSM-IV में वर्णित किए गये है।

Emil Kraeplin & Kurt Schneider ने अपने निरीक्षणों के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त किया है कि 1/3 से 2/3 मनोदशा विकृति के रोगियों में व्यक्तित्व विकृति पाई जाती है। Kraepelin ने चार प्रकार के व्यक्तित्व विकृतियों-अवसादपरकए उन्मादी, चिड़चिड़ा एवं सायक्लोथायमिक का वर्णन किया है। मनश्चिकित्सा के रोगियों में 3% से 10% रोगी इस रोग से पीड़ित होते है। परन्तु सामान्य जनसंख्या में इनका प्रतिशत केवल 1% होता है। डायस्थियमिक विकृति की भाँति यह विकृति भी सीमावर्ती व्यक्तित्व विकृति (borderline personality disorder) के साथ घटित होता है। इस विकृति के महिलाओं और पुरूषों में पाए जाने का अनुपात 3:2 का होता है। यह विकृति 50% से 75% उन लोगों में पाया जाता है जिनके आयु का प्रसार 15 से 25 वर्ष होता है।

नैदानिक लक्षण-. साइक्लोथिमिक विकृति के निम्नलिखित नैदानिक लक्षण हैः-

(1) यह एक चिरकालिक अस्थाई मनोदशा क्षुब्धता है जिसमें भिन्न-भिन्न अवधियों के लिए अवउन्मादी एवं अवसादी लक्षण पाये जाते है।

(2) अवउन्मादी लक्षणों की संख्या अनेक तीव्र एवं व्यापक होती है।

(3) कम से कम दो सालों तक अनेक अवधियों में अवउन्मादी तथा अवसादी लक्षण पाये जाते है।

(4) दो साल की अवधि में दो महीनों से कम के लिए कोई लक्षण नहीं पाया जाता है।

(5) किसी प्रमुख अवसादपरक प्रसंग का अनुभव हुआ है।

(6) क्षुब्धता के प्रथम दो वर्षो में प्रमुख अवसाद प्रसंग, उन्माद प्रसंग अथवा मिश्रित प्रसंग के लक्षण नही पाये जाते है।

(7) यह लक्षण पदार्थो के दैहिक प्रभावों अथवा सामान्य चिकित्सकीय दशाओं के कारण नहीं उत्पन्न होते है।

(8) इस विकृति के लक्षण नैदानिक रूप रोगी में महत्वपूर्ण व्यथा (distress) उत्पन्न करते है और उसके सामाजिक, व्यवसायिक तथा प्रकार्यता के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों को दुर्बल बनाते है।

कारण विज्ञान -

साइक्लोथायमिक विकृति के पाये जाने के दो प्रमुख कारक-जैविक और मनोसामाजिक है। इस विकृति से संबंधित जैविक अध्ययन इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि मनोदशा विकृति जननिक होती है क्योंकि इस विकृति से ग्रस्त 30% रोगियों के परिवार में द्विध्रुवीय प्रथम विकृति (bipolar I disorder) के धनात्मक पारिवारिक इतिहास (pedigress of family) यह संकेत करते है कि द्विध्रुवीय प्रथम विकृति के लक्षणों वाले परिवारों में साइक्लोथायमिक विकृति के लक्षण पाये जाते है।

इस विकृति के संदर्भ में जहाँ तक मनोसामाजिक कारकों का प्रश्न है, मनोगत्यात्मक अध्ययन इस कारक पर प्रकाश डालते है कि साक्लोथायमिक विकृति का कारण शैशवावस्था के विकास के समय आघातों का पाया जाना है। फ्रायड ने यह अभिकल्पित किया है कि साइक्लोथायमिक दशा कठोर एवं दण्डात्मक पराअहम् पर विजय प्राप्त करने का अहम् का एक प्रयास है। अवउन्माद की मनोगत्यात्मक व्याख्या आत्म-आलोचना के अभाव एवं अवरोधों की अनुपस्थिति के रूप में की जा सकती है जब अवसादी व्यक्ति कठोर पराअहम् (harsh superego)

के बोझ से अपने को दूर करता है। अवउन्माद में अस्वीकरण मनोरचना का प्रयोग होता है जिसके द्वारा रोगी वाह्य समस्याओं एवं अवसाद के आन्तरिक भावों के परिहार का प्रयास करता है। साक्लोथायमिक विकृति के रोगी को अवउन्माद लक्षणों द्वारा विशेषीकृत किया जाता है।

मनोविश्लेषणात्मक अनुसंधान यह प्रदर्शित करते है कि ऐसे रोगी स्वयं में निहित अवसादरपरक विषय-वस्तुओं (themes) से बचाव करते है। अवउन्माद के उत्तेजना अक्सर महत्वपूर्ण अन्तर्वैयक्तिक हानियों से प्राप्त होता है। अवउन्माद का संबंध अचेतन स्वैर कल्पना (fantasy) से हो जाता है और वह खोए वस्तु को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करता है।

15.6.3 भावात्मक विकृति का उपचार-

इस तरह की विकृति का उपचार निम्नांकित दो तरह की प्रविधियों द्वारा अधिक उत्तम ढंग से किया जाता है-

1.लिथियम चिकित्सा (Lithium Therapy)- लिथियम चिकित्सा में चिकित्सक द्विध्रुवीय विकृति के रोगी को उचित मात्रा में लिथियम नामक औषध लेने की सलाह देते हैं। लिथियम एक ऐसा औषध है जो उन मस्तिष्क न्यूरोन्स के संधिस्थली में परिवर्तन ला देता है जो नोरइपाइनफ्राइन तथा सीरोटोनोनीन जैसे न्यूरोट्रांसमीटर को स्राव करते हैं। लिथियम द्वारा द्विध्रुवीय विकृति के उन्मादी अवस्था तथा विषादी अवस्था दोनों में ही सुधार होते पाए गए हैं और इन दोनों के पक्ष में पर्याप्त प्रयोगशाला सबूत होते हैं।

2.योजन मनश्चिकित्सा (Additive Psycho Therapy)- कुछ चिकित्सकों का मत है कि द्विध्रुवीय विकृति की चिकित्सा में सिर्फ लिथियम चिकित्सा बहुत प्रभावकारी नहीं होता है। प्रिन तथा उनके सहयोगियों का मत है कि द्विध्रुवीय विकृति का करीब 30 से 40 प्रतिशत रोगी लिथियम के प्रति अनुक्रियाशील नहीं होते हैं या उसके सेवन की स्थिति में भी रोग के लक्षणों का पुर्नवापसी हो जाता है। कुछ ऐसे भी सबूत उपलब्ध है जिसमें यह कहा गया है कि लिथियम का उपयोग करने वाले करीब 50 प्रतिशत ऐसे होते हैं जो उचित मात्रा में लिथियम का सेवन नहीं करते, कुछ बीच में ही छोड़ देते है तथा कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें चिकित्सकों द्वारा ही गलत मात्रा में खाने की सलाह दी जाती है। इन समस्याओं के आलोक में बहुत सारे चिकित्सक मनश्चिकित्सा को लिथियम उपचार के एक योजक के रूप में उपयोग करने की सलाह दिया है। इस तरह के मनश्चिकित्सा को योजन मनश्चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है।

3.मनोचिकित्सा (Psychotherapy)- विषादी विकृति अथवा एकध्रुवीय विकृति के रोगी के उपचार के लिए मनोगतिकी ,चिकित्सा (psychodynamic therapy),

व्यवहार चिकित्सा (behaviour therapy), संज्ञानात्मक चिकित्सा (cognitive therapy) ,तथा शारीरिक चिकित्सा (physical therapy) यथा औषध चिकित्सा (drug therapy), तथा विद्युत आक्षेपीय चिकित्सा (electroconvulsive therapy) का उपयोग आवश्यकता के अनुसार किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1.मनोविकृति व्यवहार में विभ्रम और .... की अधिकता पाई जाती है ।

2.मनोविदलता के रोगी में विघटित .... के लक्षण पाये जाती है ।

3.द्विध्रुवीय विकृति की एक विमा उत्साह है और दूसरी विमा .... है ।

4.एकध्रुवीय विकृति में केवल .... घटनाएँ घटित होती है।

5.व्यामोही विकृति एक ऐसा मानसिक रोग है जिसमें नाना प्रकार के ....पाए जाते हैं।

6.सामाजिक पुनर्वास के लिए मनोविदलता के रोगी की योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उसे छोटे-छोटे कार्यों के लिए प्रशिक्षण, ...के रूप में दिया जाता है।

7.मनोदशा विकृति का संबंध ....मानसिक प्रक्रिया से होता है।

15.7 सारांश

1.मनोविकृति वह विकृति है जिसमें व्यामोह, विभ्रम, असंगति, पुनरावृत्ति विचार-विचलन, विचार संगति की स्पष्ट कमी, स्पष्ट अतार्किकता तथा गम्भीर रूप से विसंगठित अथवा केटाटोनिक व्यवहार देखे जाते हैं।

2.मनोविदलता विकृत चिंतन है जिसमें विचार तार्किक रूप से संबद्ध नहीं होते है, दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण एवं ध्यान होती है। पेशीय क्रियाओं में अनोखी क्षुब्धता होती है तथा चपटा या अनुपयुक्त भाव होती है। यह रोगी को अन्य लोगों एवं वास्तविकता से दूर करके उसे व्याहमोह तथा विभ्रम के काल्पनिक दुनिया में ले जाती है।

3.व्यामोही विकृति एक मनोविकृति है, जिसका मुख्य लक्षण व्यामोह है। इसकी उपस्थिति से अन्य मानसिक क्रियाओं में कोई ह्रास नहीं होता। रोगी अक्सर अपने कार्य पर जाता है और अपना जीवन भी ठीक प्रकार से व्यतीत कर लेता है।

4.भावात्मक विकृति की स्थिति में कभी अत्यधिक विषाद और कभी अत्यधिक उत्साह घटित होते है।

15.8 शब्दावली

1.व्यामोहः व्यक्ति का ऐसा झूठा विश्वास जिसे वह प्रत्येक स्थिति में सत्य मानता है।

2.विभ्रमः व्यक्ति का एक ऐसा दोषपूर्ण प्रत्यक्षीकरण जिसमें वातावरण में उद्दीपक के न होने पर भी वह उसका अनुभव करता है।

3.विषादः प्रसन्नता का अभाव, अवसाद, भूख व भार में गिरावट, उर्जा ह्रास, क्रियाशीलता में परिर्वतन की अवस्था।

4.मनोविकृतिः मनोविकृति से ग्रस्त रोगियों के व्यवहार के अध्ययन करने से पता चलता है कि उनके बेढ़ंगा व्यवहार,संवेगात्मक विकृति, स्मृति दोषपूर्ण एवं वास्तविकता से सम्बन्ध का विच्छेद की अवस्था।

15.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.व्यामोह	2. चिन्तन एवं सम्भाषण	3. विषाद	4. विषादी
5. व्यामोह	6. रोजगार चिकित्सा	7. भावात्मक	

15.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

2.आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान आर एन सिंह, अंजुम कुरेशी, शुभ्र भारद्वाज, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा

3.मनोविकृति विज्ञान-विनती आनन्द एवं श्रीवास्तव- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

4.मनोविकृति विज्ञान-अजय कुमार श्रीवास्तव-विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.मनोविकृति के लक्षणों को बताइए। मनोविकृति के कारणों की चर्चा कीजिए।

2.मनोविकृति के कारणों की चर्चा करते हुए प्रमुख चिकित्सा विधि का वर्णन कीजिए।

3.निम्नलिखित के प्रकारों की चर्चा कीजिए।

(अ) मनोविदलता (ब) भावात्मक विकृति (स) व्यामोहिक विकार

4.भावात्मक विकृति के स्थिर व्यामोह के कारणों व चिकित्सा विधि का वर्णन कीजिए।

5. निम्नलिखित के लक्षणों को समझाकर लिखिए-

(अ) द्विध्रुवीय विकुति (ब) व्यामोहिक विकार (स) एकध्रुवीय विकृति

इकाई 16. चिकित्सा के समकालीन दृष्टिकोण:- व्यवहारवादी, मनोविश्लेषण एवं मानवतावादी (Contemporary Approaches of Therapy:- Behavioristic, Psychoanalytic and Humanistic)

इकाई संरचना

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मनोचिकित्सा क्या है?
16.3.1 मनचिकित्सा के प्रकार
16.4 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा
16.4.1 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के लक्ष्य
16.4.2 फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा
16.4.3 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के प्रमुख चरण
16.4.3.1 स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था
16.4.3.2 प्रतिरोध की अवस्था
16.4.3.3 स्वप्न- विश्लेषण की अवस्था
16.4.3.4 स्थानान्तरण की अवस्था
16.4.3.5 समापन की अवस्था
16.4.4 फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्मक विधि का मूल्यांकन
16.5 व्यवहार चिकित्सा
16.5.1 व्यवहार चिकित्सा के प्रमुख नियम
16.5.2 व्यवहार चिकित्सा की प्रविधियाँ
16.5.2.1. विलोप
16.5.2.2. व्यवस्थित सुविग्राहीकरण
16.5.2.3. अपवर्ती उपचार
16.5.2.4. मुद्रा मितव्ययिता
16.5.2.5. प्रतिमान
16.5.2.6. बायोफीडबैक चिकित्सा
16.5.3 व्यवहार चिकित्सा का मूल्यांकन
16.6 मानवतावादी चिकित्सा
16.6.1 क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा
16.6.2 क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा की पूर्वकल्पनाएँ
16.6.3 क्लायंट-क्रेन्द्रित चिकित्सा का उद्देश्य

16.6.4 क्लायंट-क्रेन्द्रित चकित्सक के गुण
16.6.4.1. बिना शर्त के धनात्मक सम्मान
16.6.4.2. परानुभूति
16.6.4.3. संगतता
16.6.5 क्लायंट में परिवर्तन की विमाए
16.6.6 क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा का मूल्यांकन
16.7 सारांश
16.8 शब्दावली
16.9 अभ्यास प्रश्न
16.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

सामान्यतः किसी अस्वस्थ व्यक्ति को औषध, शल्य आदि प्रविधियों से पुनः स्वस्थ बनाने की प्रक्रिया को उपचार या चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है। मानसिक रूप से अस्वस्थ एवं सांवेगिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करना मनोचिकित्सा कहलाता है। इसे नैदानिक हस्तक्षेप भी कहा जाता है क्योंकि इसमें नैदानिक मनोवैज्ञानिक अपने व्यवसायी या पेशेवर क्षमता का उपयोग करते हुए मानसिक रूप से या सांवेगिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने की कोशिश करता है।

16.2 उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप-
- मनोचिकित्सा को भली-भांति समझ सकें।
- मनोचिकित्सा के लिये समकालीन दृष्टिकोण से अवगत हो सकें।
- मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के प्रमुख उद्देश्यों, चरण तथा गुण-दोषों को रेखांकित कर सकें।
- व्यवहार चिकित्सा के प्रमुख उद्देश्यों, नियम व प्रविधियों को समझ सकें।
- मानवतावादी चिकित्सा के प्रमुख उद्देश्यों, नियम व प्रविधियों से अवगत हो सकें।

16.3 मनोचिकित्सा (Psychotherapy)-

मानसिक रूप से अस्वस्थ एवं विक्षुब्ध व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक विधियों से उपचार करना मनोचिकित्सा कहा जाता है । इसे नैदानिक हस्तक्षेप भी कहा जाता है। यह एक सुनियोजित क्रिया है जिसका उद्देश्य मानसिक रूप से विक्षुब्ध व्यक्ति के व्यवहार में ऐसे परिवर्तन लाना है जो उसकी ज़िन्दगी को भीतर से अधिक प्रसन्न व संरचनात्मक या दोनों ही बनाता है। मनोचिकित्सा में तीन मौलिक तथ्यों पर प्रकाश डाला जाता है- सहभागी यानी रोगी तथा मनोचिकित्सक, चिकित्सकीय संबंध, तथा मनोचिकित्सा की प्रविधि। अतः मनोचिकित्सा एक जटिल प्रक्रिया है

जिसमें रोगी तथा चिकित्सक एक साथ अन्तःक्रिया करके एक ऐसे उत्तम चिकित्सकीय संबंध का निर्माण करते हैं कि रोगी की सांवेगिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उत्तम निदान हो सके।

16.3.1 मनोचिकित्सा के प्रकार (Types of Psychotherapy)-

मनोचिकित्सा के भी कई प्रकार बतलाये गये हैं। मनोचिकित्सा के पाँच प्रमुख समकालीन दृष्टिकोण निम्न हैं-

1. मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा
2. व्यवहार चिकित्सा
3. संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा
4. मानवतावादी-अनुभवजन्य चिकित्सा
5. सामूहिक चिकित्सा

स्पष्ट हुआ कि मनोचिकित्सा के मुख्य पाँच प्रकार है और इन पाँचों प्रकार के कई उपप्रकार भी हैं। इनमें से कुछ व्यक्ति विशेष पर बल डालते हैं, कुछ व्यक्तियों के समूह पर बल डालते हैं तथा कुछ एक ही परिवार के सदस्यों पर बल डालते हैं। नोरक्रॉस, प्रोचास्का गालाघ्र ने एक सर्वे किया जिसमें उन्होंने मनोचिकित्सा के विभिन्न प्रारूपों के प्रति करीब 579 नैदानिक मनोवैज्ञानिकों की अपनी उन्मुखता का विश्लेषण किया जिसे चित्र में दिखलाया गया है।

चित्र :1 मनोचिकित्सा के विभिन्न प्रकारों के प्रति मनोवैज्ञानिकों की अपनी उन्मुखता:

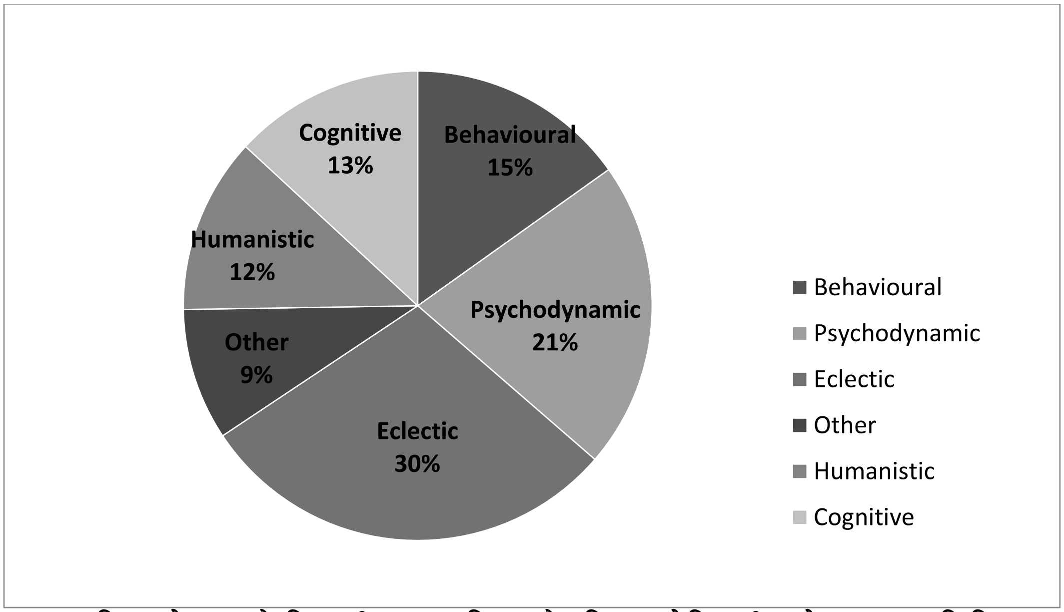

चित्र से स्पष्ट है कि करीब 21 प्रतिशत नैदानिक मनोविज्ञानी मनोगत्यात्मक चिकित्सा, 16 प्रतिशत मनोविज्ञानी व्यवहार चिकित्सा, 13 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक संज्ञानात्मक व्यवहार चिकित्सा, 12 प्रतिशत मानवतावदी-अनुभावात्मक चिकित्सा, 9 प्रतिशत अन्य चिकित्सा तथा 29 प्रतिशत मनोवैज्ञानिक ग्रहणशील उपागम अर्थात् कई चिकित्सीय पद्धति को एक साथ मिलाकर एक नया दृष्टिकोण अपनाते हुए रोगियों का उपचार करते हैं।

16.4 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Psychoanalytic Therapy)

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा मनश्चिकित्सा का सबसे लोकप्रिय एवं पुराना प्रारूप है जिससे आप परिचित भी होंगे। मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा से तात्पर्य एक ऐसे मनोवैज्ञानिक उपचार दृष्टिकोण से होता है जिसमें व्यक्ति या रोगी के व्यक्तित्व गतिकी पर मनोविश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य में बल डाला जाता है। इसे मनोविश्लेष-उन्मुखी चिकित्सा या मनोगत्यात्मक चिकित्सा (Psychodynamic therapy) भी कहा जाता है।

इस चिकित्सा विधि का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) द्वारा किया गया। मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा एक ऐसी गहन एवं दीर्घकालीन प्रविधि है जिसमें दमित स्मृतियों, चिन्तनों, डर, आशंकाओं एवं मानसिक संघर्षों जो संभवतः आरंभिक मनोलैंगिक विकास (Psychosexual development) में उत्पन्न समस्याओं के कारण पैदा होते हैं, का पता लगाया जाता है तथा व्यक्ति को वास्तविकता के संदर्भ में व्यवहार करने में मदद करता है। इस प्रविधि में ऐसा समझा जाता है कि इन दमित इच्छाओं एवं मानसिक संघर्षों में जब रोगी को सूझ उत्पन्न हो जाती है, तो रोगी स्वयं ही उनके दमन एवं अन्य सम्बंधित रक्षात्मक प्रक्रमों पर अपनी ऊर्जा बर्बाद नहीं करता है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति अपने व्यक्तित्व गतिकी को विभिन्न चिन्ताओं एवं आशंकाओं से उत्पन्न समस्याओं को चेतन स्तर पर ही सुलझाने की कोशिश करते हैं। इससे उनमें उत्तम व्यक्तित्व संगठन उत्पन्न होता है तथा उनके जीवन शैली में सुधार आता है।

16.4.1 मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के लक्ष्य (Aims of Psychoanalytic Therapy)-

मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा का मौलिक लक्ष्य रोगी को अपने आपको उत्तम ढंग से समझने में मदद करना होता है ताकि वह पहले से अधिक समायोजी ढंग से सोच सके तथा व्यवहार कर सके। इस चिकित्सा में पूर्वकल्पना (assumption) यह होती है कि जब रोगी यह देख पाता है कि कुसमायोगी ढंग से व्यवहार करने का वास्तविक कारण क्या है (जो प्रायः अचेतन में होते हैं) वे कारण बहुत ठोस एवं वैध नहीं है, तो वे अपने आप कुसमायोजी ढंग से व्यवहार करना बंद कर देते हैं। इस तरह से रोगी का लक्षण अपने आप दूर हो जाता है। उक्त मनोविश्लेषणात्मक परिस्थिति की व्याख्या से तब यह स्पष्ट होता है कि मनोविश्लेषणात्मक उपचार के निम्नांकित तीन मुख्य उद्देश्य हैं-

(1) रोगी के समस्यात्मक व्यवहार के कारणों में बौद्धिक एवं सांवेगिक सूझ विकसित करना। इस तरह की सूझ रोगी में एक-दो मनोविश्लेषणात्मक सत्रों में न विकसित होकर कई सत्रों से गुज़रने के बाद विकसित होती है।

(2) रोगी में सूझ विकसित होने के बाद उस सूझ के आशय के बारे में पता लगाना होता है।

(3) धीरे-धीरे रोगी के उपाहं तथा पराहं (Id and super ego) की क्रियाओं पर अहं (ego) के नियंत्रण को बढ़ाना होता है।

16.4.2 फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा (Freudian Psychoanalytic Therapy)-

मनश्चिकित्सा के इतिहास में फ्रायड पहले ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने मानसिक विकृतियों (psychological disorders) से ग्रसित लोगों के उपचार में मनोवैज्ञानिक विधियों का वैज्ञानकि प्रयोग किया। इनके द्वारा प्रतिपादित विधि को मनोवैश्लेषिक चिकित्सा (Psychoanalytic Therapy) या मनोगतिकी चिकित्सा (Psychodynamic Therapy) की संज्ञा दी गयी है।

फ्रायड द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा में व्यक्ति के दमित इच्छाओं, चिन्तन, संघर्ष एवं डर आदि पर मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकाश डाला जाता है। ऐसे संघर्ष, इच्छाओं, डर आदि को अचेतन (unconscious) से बाहर निकालकर उसमें पर्याप्त सूझ विकसित करने की कोशिश की जाती है ताकि उससे उत्पन्न होने वाले संवेगात्मक एवं समायोजन संबंधी कठिनाइयों को रोगी ठीक ढंग से सुलझा सके। इस प्रविधि में चिकित्सक को मनोविश्लेषक या संक्षेप में विश्लेषक (psychoanalyist) भी कहा जाता है तथा इस विधि को निर्देशात्मक चिकित्सा (Directive Therapy) भी कहा जाता है।

16.4.3 मनोवैश्लेषिक चिकित्सा के प्रमुख चरण (Steps in Psychoanalytic Therapy) - फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोवैश्लेषिक चिकित्सा पर यदि आप ध्यान दें तो पायेंगे कि वह चिकित्सा कुछ खास-खास चरणों में सम्पन्न किया जाता है। इनमें प्रमुख चरण निम्नांकित हैं-

(1) स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था
(2) प्रतिरोध की अवस्था
(3) स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था
(4) स्थानान्तरण की अवस्था
(5) समापन की अवस्था

इन अवस्थाओं का वर्णन निम्नांकित है-

(1) स्वतंत्र साहचर्य की अवस्था (Stage of free association)-फ्रायड की चिकित्सा प्रणाली की सबसे पहली अवस्था स्वतंत्रा साहचर्य की होती है। रोगी को एक मन्द-प्रकाश कक्ष में एक आरामदेह एवं गद्दीदार कोच पर ले टा दिया जाता है तथा चिकित्सक रोगी की दृष्टि से ओझल होकर अर्थात् पीछे बैठ जाता है। चिकित्सक रोगी से कुछ देर तक सामान्य ढंग से बातचीत कर एक सौहार्द्रपूर्ण वातावरण स्थापित कर ले ता है और रोगी से यह अनुरोध करता है कि उसके मन में जो कुछ भी आता जाए, उसे वह बिना किसी संकोच के कहता जाए, चाहे वे विचार सार्थक हो या निरर्थक हों, नैतिक हो या अनैतिक हो। रोगी की बातों को चिकित्सक ध्यानपूर्वक सूनता है और यदि कहीं उसे हिचकिचाहट आदि होती है तो चिकित्सक या विश्ले षक उसकी मदद करते हैं। इस प्रविधि को स्वतंत्रा साहचर्य की विधि कहा जाता है जिसका उद्देश्य रोगी के अचेतन में छिपे अनुभवों, मनोलैंगिक इच्छाओं एवं मानसिक संघर्षों को कुरेदकर अचेतन स्तर पर लाना होता है।

(2) प्रतिरोध की अवस्था (Stage of resistance)- प्रतिरोध की अवस्था स्वतंत्रा साहचर्य की अवस्था के बाद उत्पन्न होती है। रोगी जब अपने मन में आने वाले किसी भी तरह के विचारों को बोलकर विश्ले षक को सुनाता है तो इसी प्रक्रिया में एक ऐसी अवस्था आ जाती है जहॉ वह अपने मन के विचारों को व्यक्त नहीं करना चाहता है और वह या तो अचानक चुप हो जाता है या कुछ बनावटी बात जान-बूझकर करने लगता है। इस अवस्था को प्रतिरोध की अवस्था कहा जाता है। प्रतिरोध की अवस्था तब उत्पन्न होती है जब रोगी के मन में शर्मनाक एवं चिन्ता उत्पन्न करने वाली बात आ जाती है जिसे वह विश्ले षक को नहीं बतलाना चाहता है। फलस्वरूप वह चुप हो जाता है या उसकी जगह पर दूसरी बनावटी बातें करने लगता है। विश्ले षक या चिकित्सक इस प्रतिरोध की अवस्था को खतम करने का प्रयास करता है ताकि चिकित्सा में प्रगति हो सके। प्रतिरोध को खत्म करने के लिए वह सुझाव, सम्मोहन, लिखकर विचार व्यक्त करने, पेन्टिंग, चित्रांकन आदि का सहारा ले ते हैं। वह रोगी से घनिष्ठ

संवेगात्मक संबंध स्थापित कर उसका विश्वासपात्रा बनता है ताकि प्रतिरोध की इच्छाओं की अभिव्यक्ति आसानी से हो सके। प्रतिरोध समाप्त करना चिकित्सा या विश्ले षक के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य होता है जिसे काफी सावधानीपूर्वक करना होता है।

(3) स्वप्न-विश्लेषण की अवस्था (Stage of dream analysis)- रोगी के अचेतन में दमित प्रेरणाओं, बाल्यावस्था की मनोलैंगिक इच्छाएँ एवं मानसिक संघर्षो को कुरेदकर चेतन-स्तर पर लाने के लिए विश्लेषक रोगी के स्वप्न का अध्ययन एवं उसका विश्लेषण करता है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न में व्यक्ति अचेतन की दमित इच्छाओं की पूर्ति करता है। अतः रोगियों के स्वप्नों का विश्ले षण्य करके चिकित्सक उसके अचेतन के संघर्षों एवं चिन्ताओं के बारे में जान पाते हैं। रोगी के स्वप्नों के अव्यक्त विषयों के अर्थ को विश्लेषक उन्हें समझाता है जिसमें रोगी को अपने मानसिक संघर्ष एवं संवेगात्मक कठिनाई के वास्तविक कारण को समझने में मदद मिलती है।

(4) स्थानान्तरण की अवस्था (Stage of transference)- चिकित्सीय सत्र के दौरान जैसे-जैसे रोगी एवं चिकित्सक के बीच अन्तःक्रिया होती जाती है, दोनों के बीच नये जटिल एवं सांवेगिक संबंध भी उभरकर सामने आ जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि रोगी अक्सर अपने गत जिन्दगी में जैसी मनोवृत्ति शिक्षक, माता या पिता या दोनों के प्रति बनाए रखा था, वैसी ही मनोवृत्ति वह चिकित्सक के प्रति विकसित कर ले ता है। इसे ही स्थानान्तरण (transference) की संज्ञा दी जाती है। स्थानान्तरण विकसित होने से रोगी शांत मन से एवं पूर्ण विश्वास के साथ अपने विचारों की अभिव्यक्ति करता है। उसे यह विश्वास हो जाता है कि चिकित्सक एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके समक्ष वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओं एवं मानसिक द्वन्द्वों के बारे में खुलकर अभिव्यक्ति कर सकता है। इस तरह से रोगी विश्ले षक को ही अपनी घृणा अथवा प्रेम दोनों का ही पात्र मान बैठता है और अचेतन में संचित संवेगात्मक एवं भावात्मक प्रवाहों का उसकी ओर प्रदर्शन करने लगता है।

स्थानान्तरण के तीन प्रकार होते हैं-

(1) धनात्मक स्थानान्तरण (positive transference) - इसमें रोगी विश्ले षक के प्रति अपने स्नेह एवं प्रेम की प्रतिक्रियाओं को दिखलाता है।

(2) ऋणात्मक स्थानान्तरण (negative transference) - इसमें रोगी विश्ले षक के प्रति अपनी घृणा एवं संवेगात्मक विलगाव की प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करता है।

(3) प्रति स्थानान्तरण (counter transference) - इसमें विश्लेषक ही रोगी के प्रति स्नेह, प्रेम एवं संवेगात्मक लगाव दिखाता है।

जहॉं तक धनात्मक स्थानान्तरण का प्रश्न है, इससे चिकित्सा का वातावरण पहले से और भी अधिक सौहार्द्रपूर्ण बन जाता है और रोगी को सुरक्षित अनुभव कराता है तथा वह अचेतन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति खुलकर करता है। ऋणात्मक स्थानान्तरण में चिकित्सक रोगी की घृणा एवं आक्रामक व्यवहारों का केन्द्र होता है। अतः यहाँ उन्हें काफी सूझ-बूझ से काम ले ना पड़ता है तथा वह रोगी का विश्वासपात्रा बनकर उसके घृणा भावों को स्पष्ट करता है ताकि चिकित्सा में प्रगति आगे की ओर बनी रहे। प्रतिस्थानान्तरण की स्थिति से विश्लेषक की अक्षमता का पता चलता है और ऐसे विश्ले षक के बारे में फ्रायड ने कहा है कि उन्हें पहले अपना मनोविश्लेषण करवा ले ना चाहिए। ऐसे विश्लेषक या चिकित्सक को आदर्श नहीं माना जाता है। चाहे धनात्मक स्थानान्तरण हो या ऋणात्मक स्थानान्तरण हो, चिकित्सक अपने आप को निर्लिप्त रखते हुए चिकित्सा को आगे बढ़ाता है जो स्पष्टतः एक कठिन कार्य है।

(5) समापन की अवस्था (Stage of termination)- चिकित्सा के अन्त में विश्लेषक के सफल प्रयास के फलस्वरूप रोगी को अपने संवेगात्मक कठिनाई एवं मानसिक संघर्षों के अचेतन कारणों का एहसास होता है जिससे रोगी में अन्तर्दृष्टि या सूझ का विकास होता है। रोगी में सूझ का विकास हो जाने से उसके आत्म-प्रत्यक्षण तथा सामाजिक प्रत्यक्षण में परिवर्तन आ जाता है। इससे रोगी की मनोवृत्ति, विश्वास एवं मूल्यों में धनात्मक परिवर्तन आता है तथा वह अपने व्यक्तिगत प्रेरणाओं को सही संदर्भ में समझने लगता है। रोगी में सूझ का विकास हो जाने से चिकित्सक रोगी से धीरे-धीरे संबंध-विच्छेद करने का प्रयास करता है। यहाँ चिकित्सक को महत्वपूर्ण सावधानी बरतनी पड़ती है वह यह कि संबंध-विच्छेद अचानक न किया जाय क्योंकि ऐसा करने से कभी-कभी रोगी में नये लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

16.4.4 फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्मक विधि का मूल्यांकन(Evaluation of Freudian Psychoanalytic Therapy)- फ्रायडियन मनोविश्लेषणात्मक विधि के कुछ गुण एवं अवगुण हैं। इसके प्रमुख गुण निम्नांकित हैं-

(1) मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा द्वारा चिकित्सा चूँकि अचेतन में दमित इच्छाओं, संघर्षों एवं उलझनों को सुलझा कर किया जाता है, अतः इससे जो उपचार होता है, वह अधिक स्थायी होता है और रोगी में पुनः उसी रोग के लक्षण उपचार के बाद कभी दोबारा नहीं दीख पड़ते हैं। चूँकि इस विधि में अचेतन की गहराइयों में जाकर उसे कुरेदा जाता है तथा संवेगात्मक कठिनाइयों एवं मानसिक उलझनों के कारण का पता लगाया जाता है, इसलिए इसे गहरी चिकित्सा (depth therapy) भी कहा जाता है।

(2) मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा के विधि को एक महत्वपूर्ण विधि इसलिए भी माना जाता है क्योंकि इस विधि द्वारा मानसिक रोग के कारण का पहले पता लगा लिया जाता है और बाद में उसका उपचार उसी आलोक में किया जाता है। फलस्वरूप यह विधि चिकित्सा की अन्य विधियों से उत्तम मानी जाती है जिनमें मूलतः लक्षणात्मक उपचार पर ही अधिक बल डाला जाता है।

(3) यह प्रविधि हिस्ट्रीया, स्नायुविकृत विषाद, अन्तर्मुखी तथा कम अभिप्रेरित रोगियों के लिए सबसे अधिक प्रभावकारी माना गया है।

इन गुणों के बावजूद इस विधि के कुछ अवगुण हैं जो निम्नांकित हैं-

(1) इस विधि द्वारा उपचार में काफी समय लगता है। सामान्यतः इस विधि द्वारा उपचार में एक रोगी को प्रति हफ्ता तीन से पाँच बार तक लगातार कई महीनों तक और यहाँ तक कि कभी-कभी वर्षों तक विश्ले षक के पास आना पड़ता है। समय अधिक लगने के कारण चिकित्सा की यह विधि व्यावहारिक नहीं रह जाती है। रोगी चिकित्सा से उबने लगता है और उसकी कठिनाइयाँ घटने के बजाय बढ़ने लगती है।

(2) इस उपचार विधि में समय अधिक लगने से विश्लेषक अधिक रोगियों का उपचार चाह कर भी नहीं कर पाता है।

(3) चिकित्सा की यह विधि खर्चीली भी काफी अधिक है। प्रत्येक सत्र जिसकी संख्या प्रति हफ्ता पाँच तक की होती है, रोगी को अलग-अलग फीस देना पड़ता है। अतः इस विधि द्वारा सिर्फ धनी वर्ग के रोगी ही लाभान्वित हो पाते हैं।

(4) चिकित्सा की इस विधि का उपयोग काफी छोटे बालकों या काफी बूढ़े लोगों पर सफलतापूर्वक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इन दोनों श्रेणियों के लोग चिकित्सा के दौरान उतना सहयोग नहीं कर पाते हैं जिनती जरूरत पड़ती

है। इतनी ही नहीं, इन दोनों तरह के व्यक्तियों में चिकित्सक को सूझ उत्पन्न करना एक टेढ़ी खीर के समान होता है। जब सूझ ठीक ढंग से उत्पन्न नहीं हो पाती है, तो रोगी की समस्या का समाधान भी ठीक ढंग से नहीं हो पाता है।

(5) मनोवैश्लेषिक चिकित्सा विधि का एक दोष यह भी बतलाया गया है कि इसके लिए विश्लेषक को कुशल एवं प्रशिक्षित होना अनिवार्य है। सभी तरह के चिकित्सक इस विधि का संचालन सही-सही ढंग से नहीं कर पाते हैं। परिणामतः यह विधि लोकप्रिय नहीं हो पायी है।

(6) इस तरह की चिकित्सा से वही रोगी अधिक लाभान्वित होते हैं जिनकी शिक्षा की स्तर अधिक होती है। कम शिक्षित रोगी चूँकि चिकित्सा सत्र के दौरान उत्तम शाब्दिक अन्तःक्रिया करने में असमर्थ होते हैं, अतः वे उसमें लाभान्वित नहीं हो पाते हैं।

इन परिसीमाओं के बावजूद यह विधि चिकित्सा की एक महत्वपूर्ण विधि है। कुछ संशोधनों के साथ आज भी इस विधि का उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा शोधों एवं चिकित्सा में की जा रही है। यह चिकित्सा विशेषकर उन रोगियों के लिये आज भी काफी लाभप्रद है जो अपना आत्म-मूल्यांकन या अपनी आस्थाओं में गहन रूप से सूझ विकसित करना चाहते हैं।

16.5 व्यवहारवादी चिकित्सा (Behaviour therapy)-

व्यवहार चिकित्सा एक ऐसा पद है जो नैदानिक मनोविज्ञान में काफी लोकप्रिय है। लिण्डस्ले , स्कीनर तथा सोलोमोन द्वारा एक शोध पत्र जिसे 1953 में प्रकाशित किया गया था, ‘व्यवहार चिकित्सा’ के पद का उपयोग सबसे पहले किया गया था।

व्यवहार चिकित्सा के बदले में कभी-कभी व्यवहार परिमार्जन (Behaviour modification) पद का भी उपयोग किया जाता है। व्यवहार चिकित्सा मनश्चिकत्सा की एक ऐसी प्रविधि है जिसमें मानसिक रोगों का उपचार कुछ ऐसी विधियों से किया जाता है जिसमें आधा अनुबंधन (conditioning) के क्षेत्र में विशेष कर पैवलव तथा स्कीनर द्वारा तथा संज्ञानात्मक सीखना के क्षेत्र में किये गये प्रमुख सिद्धांत एवं नियम होते हैं। ओल्प (Wolpe) जो व्यवहार चिकित्सा के जाने-माने समर्थक हैं, ने व्यवहार चिकित्सा को इस प्रकार परिभाषित किया है, ‘व्यवहार चिकित्सा अपनुकूलित (maladaptive) व्यवहार को परिवर्तित करने के ख्याल से प्रयोगात्मक रूप से स्थापित अधिगम या सीखने के नियमों का उपयोग है। इसके अन्तर्गत अपअनुकूलित आदतों को कमजोर किया जाता है तथा उनका त्याग किया जाता है, अनुकूलित (adaptive) आदतों की शुरूआत की जाती है तथा मजबूत किया जाता है।’

16.5.1 व्यवहार चिकित्सा के प्रमुख नियम (Principles of Behaviour therapy)-

व्यवहार चिकित्सा में अपअनुकूलित व्यवहार को परिवर्तित कर उसकी जगह पर अनुकूलित व्यवहार सीखलाने का प्रयत्न किया जाता है। इस क्षेत्र के प्रमुख नैदानिक मनोवैज्ञानिकों जैसे फारकास (1980), रॉस (1985), काजडिन (1978) आदि द्वारा किये गये शोधों के आधार पर व्यवहार चिकित्सा के कुछ प्रमुख नियमों का प्रतिपादन किया गया है जो इस प्रकार है-

(1) सामान्य व्यवहार तथा असामान्य व्यवहार में निरंतरता होती है जो यह बतलाता है कि अधिगम या सीखने के जो मौलिक नियम हैं, वे दोनों तरह के व्यवहार पर लागू होते हैं। दूसरे शब्दों में, तब यह कहा जा सकता है कि

व्यक्ति अपअनुकूलित व्यवहार को उन्हीं मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के माध्यम से सीखता है जिनके माध्यम से वह अनुकूलित व्यवहार को सीखता है।

(2) व्यवहार चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति द्वारा स्पष्ट रूप से किये गये अपअनुकूलित व्यवहार को परिमार्जित करना होता है। ऐसे व्यवहार से संबंधित संज्ञान एवं संवेगों पर भी प्रत्यक्ष रूप से ध्यान दिया जाता है।

(3) व्यवहार चिकित्सा की जितनी भी प्रविधियाँ हैं, वे प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के सैद्धान्तिक मूल तथा आनुभविक तथ्यों (experiential facts) पर आधृत है। प्रारंभ के दिनों में व्यवहार चिकित्सा मुख्यतः सीखने के सिद्धांतों के तथ्यों पर आधृत था परंतु आजकल इसका अनुभविक आधार उससे कहीं अधिक विस्तृत है।

(4) व्यवहार चिकित्सा में रोगी के वर्तमान समस्याओं (present problems) न कि उसके बाल्यावस्था की अनुभूतियों (childhood experiences)या ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर बल डाला जाता है।

(5) व्यवहार चिकित्सा में उपचार के प्रयोगात्मक मूल्यांकन (experimental evaluation) के प्रति वचनबद्धता होती है। इसमें सिर्फ उन्हीं प्रविधियों को सम्मिलित किया जाता है जिनका विभिन्न तरह के प्रयोगात्मक समूह डिजाइन द्वारा वैज्ञानिक रूप से जाँच कर किया गया हो।

(6) व्यवहार चिकित्सा में चिकित्सक यद्यपि वैज्ञानिक रूप से जाँचकर लिये गये प्रविधियों को ही अपनाता है फिर भी वह अपनी सेवा प्रदान करने में नैतिक नियमों एवं दुरूस्त नैदानिक सिद्धान्तों के अनुरूप निर्णय ले ने के लिए बाध्य होता है। व्यवहार चिकित्सा में समस्या आधृत प्रविधियों (problem based techniques) पर अधिक बल डाला जाता है।

उक्त नियमों को ध्यान में रखते हुए एक व्यवहार चिकित्सक चिकित्सा की प्रक्रिया को संपन्न करते हैं और वे अपने रोगियों के कल्याण के लिए कार्यरत रहते हैं।

16.5.2. व्यवहार चिकित्सा की प्रविधियाँ (Techniques of Behaviour therapy)-

16.5.2.1. विलोप (Extinction)-किसी भी सीखे हुए व्यवहार का प्रबलन अगर बन्द हो जाय तो वह व्यवहार धीर-धीरे कुछ समयोपरान्त समाप्त हो जाता है। इस तथ्य के आधार पर अगर किसी प्रतिकूल व्यवहार को मिलने वाले प्रबलन (Reinforcement) को समाप्त कर दिया जाय अथवा रोक दिया जाये तो वह प्रतिकूल (Maladaptive) व्यवहार स्वतः ही समाप्त हो जायेगा। यह ऐसी स्थिति में होता है जहॉ पर किसी प्रतिकूल व्यवहार को दूसरे लोग अज्ञानतावश प्रबल (Reinforce) करते है। विलोप के सिद्धान्त पर आधारित दो विधियॉ है- अन्तःस्फोटात्मक (implosive),उपचार तथा आप्लावन (Flooding),दोनों ही चिन्ता बढ़ाने वाले उद्दीपनों से बचने के लिए प्रतिबद्धता को समाप्त करने पर बल देते है। दोनो ही विधियॉ समान है, सिवाय इसके कि अन्तःस्फोट ;में रोगी को दुश्चिंता बढ़ाने वाले उद्दीपनों की कल्पना करनी होती है जबकि आप्लावन में रोगी को वास्तविक जीवन में चिन्ता बढ़ाने वाली स्थिति से बार-बार गुजरना होता है।

अन्तःस्फोट में रोगी से कहा जाता है कि अपनी दुश्चिन्ता से सम्बन्धित अपवर्ती (Aversive) दृश्यों की कल्पना करे। यह काफी कुछ मनोगतिकीय पद्धति की याद दिलाता है क्योंकि यह अक्सर पिछले आघात (Trauma) और दुश्चिन्ता की आन्तरिक धारणाओं पर कार्य करता है। एक सुरक्षित परिवेश में बार-बार की अनावृत्ति (Exposure) से दुश्चिन्ता बढ़ाने वाले उद्दीपन अपनी शक्ति खो देते हैं उदाहरण के लिए एक व्यक्ति जिसे कि ऊंचाई से भय लगता था और वह अपनी छत पर भी जाने से घबड़ाता था, उस व्यक्ति को यह निर्देश दिया गया कि कल्पना करे कि वह दसवी मंजिल की छत पर टहल रहा है और नीचे आने-जाने वालों को देख रहा है। शुरू में रोगी में

काफी अधिक चिन्ता बढ़ी लेकिन जब बार-बार यही क्रिया की गई, तो धीरे-धीरे उसकी चिन्ता में कमी आने लगी ओर वह व्यक्ति बिना कोई दुश्चिन्ता अनुभव किये ही अपने घर की छत पर भी जाने लगा।

ऐसे व्यक्ति जिन्हें कल्पना (imagination) करने में अक्षम रहते है उनको जीवन की वास्तविक स्थिति में ले जाया जाता है। जैसे उपरोक्त उदाहरण में रोगी को कल्पना कराने के स्थान पर वास्तव में दस मंजिली इमारत की छत पर ले जाया जाय और वहाँ कुछ देर रूक कर यह विश्वास करा दिया जाय कि वह छत पर आने मात्र से ही नीचे गिर नहीं जायगा।

इन दोनों विधियों के स्पष्ट प्रभाव एवं कुशलता के बाद भी रोगी इन विधियों को चिकित्सा के रूप में अस्वीकार कर देते है क्योंकि चिकित्सा के दौरान उनको मनोवैज्ञानिक तकलीफ काफ़ी होती है। इसके अतिरिक्त ये विधियाॅ उन रोगियों में भी वर्जित होती है जिनको दिल की बीमारी होती है और चिन्ता करना उनके हित में नहीँ होता है।

16.5.2.2 व्यवस्थित सुविग्राहीकरण (Systematic Desensitization)- यह व्यवहार चिकित्सा की एक प्रमुख विधि हैं यह व्यवहार के सामान्य सिद्धान्त पर आधारित है जिसमें एक व्यक्ति किसी स्थिति अथवा वस्तुजन्य प्रतिकूल दुश्चिन्ताओं (Maladaptive anxiety) से मुक्ति पा सकता हैं सर्वप्रथम जोसेफ वोल्पे (Joseph Wolpe 1950) ने इस विधि को प्रतिपादित किया।

किसी प्रतिकूल दुश्चिन्ता से ग्रस्त रोगी की व्यवस्थित सुविग्राहीकरण विधि से चिकित्सा करने में चिकित्सक मनोशारीरिक (Psycho-physiological) स्थिति उत्पन्न करने के लिए गहन शिथिलीकरण (Psycho-physiological) का प्रयोग करता है जो दुश्चिन्ता की प्रति-प्रतिबद्धिता (Counter-Conditioning)करती है। इसमें वास्तविक स्थिति जो डर पैदा करती है के प्रयोग के स्थान पर रोगी तथा चिकित्सक दुश्चिन्ता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों की एक सूची तैयार करते है। सूची में इन परिस्थितियों को प्रबलता के आधार पर क्रमबद्ध करते हैं अन्त में शिथिलीकरण स्थिति और दुश्चिन्ता उत्पन्न करने वाले सूची अथवा दुश्यों को चिकित्सा में व्यवस्थित रूप से जोड़ते है। इस प्रकार व्यवस्थित सुविग्राहीकण के तीन मुख्य पद है- शिथिलीकरण का प्रशिक्षण, पदानुक्रम का निर्माण तथा दोनों पदो को जोड़ना।

अ. शिथिलीकरण का प्रशिक्षण (Relaxation Training)- सर्वप्रथम इसका प्रतिपादन जैकोबसन ने किया। इसकी अधिकांश प्रक्रियायें प्रगतिशील पेशीय शिथिलीकरण (progressive muscular relaxation) विधि पर आधारित है। इसमें रोगी को अपने शरीर के मुख्य पेशीय समूहों को एक स्थायी और व्यवस्थित क्रम में खींचना तथा शिथिल करना होता है। सामान्यतः यह शरीर में पैर के अँगूठे से प्रारम्भ होकर सिर पर समाप्त होता है।

ब. पदानुक्रम का निर्माण (Hierarchy construction)- इस पद में चिकित्सक उन सभी घटना स्थितियों को निर्धारित करते है जो रोगी में दुश्चिन्ता का प्रादुर्भाव करते हैं। उदाहरण के लिए एक बहुत से लक्षण वाले दुर्भीति के रोगी ऊं चे स्थानों, बन्द स्थानों और सामाजिक आलोचना के पात्र होने से संबंधित प्रतिकूल दुश्चिन्ता के बारे में बताते है। प्रत्येक प्रकरण के लिए 10 से 12 दृश्यों के पदानुक्रम या सूची विकसित की जाती है और उन्हें दुश्चिन्ता के बढ़ते क्रम में व्यस्थित किया जाता है।

स. वास्तविक सुविग्राहीकरण (Proper Desensitization)- दुश्चिन्ता से जुड़े प्रत्येक प्रकरण के व्युनुकूलन (Deconditioning) करने के लिए रोगी को गहन शिथिल अवस्था में प्रत्येक पदानुक्रम दृश्यों की कल्पना करायी जाती है। व्युनुकूलन व्यवस्थित ढंग से की जाती है जो अत्यन्त कम प्रतिक्रिया की दर से बढ़ते है। सामान्यतः रोगी को दूसरे दृश्य की ओर ले जाने से पहले यह निश्चित कर लेना होता है कि उसे पहले दिये गये दृश्य की ओर ले जाने

से पहले यह निश्चित कर लेना होता है कि उसे पहले दिये गये दृश्य से दुश्चिन्ता कम हो गई है अथवा नही। दुश्चिन्ता के अतिन्यून सतह तक पहुॅचने से पहले प्रत्येक दृश्य की कई बार पुनरावृत्ति करनी होती है। आशा यह की जाती है कि जब रोगी अत्यधिक दुश्चिन्ता उत्पन्न करने वाले पदानुक्रम दृश्य पर पहूँचता है तब वास्तविक जीवन में उस दृश्य के समतुल्य से बहुत थोड़ी दृश्चिन्ता का अनुभव करेगा। सामान्यतः सुविग्राहीकरण सत्र की अवधि लगभग आधे घंटे की तथा सप्ताह में दो से तीन बार होती है।

16.5.2.3 अपवर्ती उपचार (Aversion Therapy)-

अपवर्ती उपचार विधि में अवांछित व्यवहार को सुधारने में दण्ड विधि का प्रयोग किया जाता है। सर्वप्रथम कैनटोरोविच (Kantorovich) ने 1930 में अपवर्ती उपचार पद्धति का प्रयोग किया। उन्होने मद्यपान करने वालों को मद्य को देखने, सूंघने तथा स्वाद को विद्युत आघात के साथ जोड़ा। तब से अब तक अपवर्ती उपचार पद्धति का प्रयोग कई प्रकार के प्रतिकूल व्यवहारों को सुधारने में किया गया है, जैसे-सिगरेट पीने, मदिरा पान, अधिक खाने, नशा तथा जुआ खेलने की आदत आदि। दण्ड के रूप में चाहे ऐच्छिक प्रबलकों को हटा दिया जाय या अपवर्ती उद्दीपन का प्रयोग किया जाय, मूल धारणा उन उद्दीपन के प्रलोभन मूल्यों को कम करना होता है जो अवांछित व्यवहार को उत्पन्न करते हैं। उपचार में पूर्ण विधि के रूप में दण्ड का प्रयोग यदा-कदा ही किया जाता है।

अपवर्ती उपचार मुख्यतः एक विधि है जो प्रतिकूल अनुकिक्रयाओं को कुछ समय तक रोक देती है। इस बाधा के साथ नये व्यवहार से स्थानापन करने का या जीवन शैली में परिवर्तन का एक अवसर उपलब्ध होता है। इस प्रकार अपवर्ती चिकित्सा प्रणाली में अवांछित व्यवहार को समाप्त करने का प्रयास तो होता है परन्तु उसके स्थान पर किसी वांछित व्यवहार उत्पन्न करने का प्रबन्ध नहीं होता जिसके कारण इस चिकित्सा का प्रभाव स्थायी नहीं होता है और अवांछित व्यवहार के सुरक्षित परिस्थिति में पुनः प्रारम्भ होने की पूरी सम्भावना होती है। दूसरी ओर, यह चिकित्सा उन रोगियों में अधिक सफल होती है जो स्वयं इसके लिए तैयार होते हैं क्योंकि उनमें अवांछित व्यवहार को छोड़ने की प्रेरणा प्रबल होती है।

16.5.2.4. मुद्रा मितव्ययिता (Token Economy) –

स्वीकृति एवं अन्य अमूर्त प्रबलक (Intangible reinforcers)व्यवहार चिकित्सा कार्यक्रम में अप्रभावी हो सकते है, विशेषत गहन प्रतिकूल व्यवहार के संबन्ध में। ऐसी स्थिति में उचित व्यवहारों को भौतिक प्रबलकों के द्वारा प्रोत्साहित किया जा सकता है, जो कि मुद्रा के रूप में होता है। इन मुद्राओं का प्रयोग इच्छित वस्तु अथवा सुविधा प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है। मुद्रा मितव्ययिता का प्रयोग अनुकूल व्यवहार उत्पन्न करने के लिए किया जाता है जिसका विस्तार प्रारम्भिक अनुक्रिया (Response)से दैनिक क्रिया तक होता है। उचित व्यवहार के लिए के लिए प्रबलकों के रूप में मुद्रा मितव्ययिता के प्रयोग के कई लाभ है-

1. कितनी मुद्रा अर्जित की गई यह इस बात पर निर्भर करता है कि कितने इच्छित व्यवहार का प्रदर्शन किया गया ।
2. ये मुद्रायें बाजार की मुद्राओं के समान कार्य करती है क्योंकि रोगी उससे अपनी इच्छित वस्तु चिकित्सक के माध्यम से प्राप्त कर सकते है।
3. उचित व्यवहार और प्रबलन के मध्य के विलम्ब को ये मुद्रायें कम कर सकती है।
4. अर्जित की गई मुद्रा राशि का उसे किस प्रकार व्यय करना है यह सब रोगी पर निर्भर करता है तथा,

5. मुद्रायें संस्था के वातावरण और मॉग तथा व्यय की दूरी को कम करता है जो कि बाह्य संसार का मुकाबला करता है।

16.5.2.5. प्रतिमान (Modeling)-

दूसरे के व्यवहार एवं उनके प्रतिफल को देखकर अनुकरण के द्वारा बहुत कुछ सीखा जा सकता है। जैसे कि एक बच्चा अपने माता-पिता की भयभीत मुखाकृति तथा बचने के व्यवहार को देखकर भय के बारे में सीखता है। प्रतिमान में भी रोगी की सहायता के लिए समान सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में इस विधि का विकास बच्चों के प्रतिकूल भय को समाप्त करने के लिए किया गया था। अगर एक बच्चा कुत्ते से डरता है तो उसके इस डर को समाप्त करने के लिए उस बच्चे के लिए उस बच्चे के समान ही एक बच्चे का प्रतिमान स्थापित करते है जो कि कुत्ते के साथ खेलता है छूता है। इसको देखकर दुर्भीति से ग्रस्त बच्चा भी उसी प्रकार के व्यवहार करने को धीरे-धीरे प्रोत्साहित होता है और उसका भय समाप्त हो जाता है।

16.5.2.6. बायोफीडबैक चिकित्सा (Biofeedback Treatment)-

कई वर्षों तक यह माना जाता था कि शारीरिक क्रियाओं जैसे हृदय गति रक्तचाप आदि का स्वैच्छिक नियन्त्रण सम्भव नहीं है। 1960 के प्रारम्भ में इस विचारधारा में परिवर्तन आया। अन्वेषकों ने एक विद्युत यन्त्र विकसित किया जो शारीरिक अनुक्रियाओं को माप सकता था तथा अधिगम की विधियों द्वारा अनैच्छिक समझी जाने वाली क्रियाओं में सुधार लोने में सक्षम रहा।

असामान्य व्यवहार के विकास में स्वतंत्र स्नायु संस्थान के महत्व को काफी पहले ही जान लिया गया था तथा इस क्षेत्र में अनुकूल व्यवहार लाने के लिए रोगी के अन्तर्वातावरण में सुधार लाने का प्रयास स्वतंत्र अनुकूलन से किया गया। उस चिकित्सा पद्धति को जिसमें कि व्यक्ति को अपनी शारीरिक क्रियाओं को प्रभावित अथवा नियंत्रित करना सिखाया जाता है, बायोफीडबैक चिकित्सा कहलाती है। बायोफीडबैक चिकित्सा की क्रिया में कई विशिष्ट पद है-

1. शारीरिक अनुक्रियायें जो सुधारी जानी है ,
2. सूचनाओं को देखने या सुनने के संकेत को बदलना तथा,
3. रोगी को यह बताना कि ऐच्छिक परिर्वतन आ रहा है।

इससे रोगी अपने संवेगों को सूचना संकेतों की बारम्बारता में स्वयं नियन्त्रण के द्वारा कमी लाकर कम करने का और अधिक प्रयास करता है। बायोफीडबैक दुश्चिन्ता के शारीरिक घटकों में सुधार लाता है।

16.5.3 व्यवहार चिकित्सा का मूल्यांकन (Evaluation of behaviour therapy)-

हम लोग यह देख चुके हैं कि व्यवहार चिकित्सा की कई विधियॉं हैं और प्रत्येक विधि की कुछ लाभ एवं परिसीमाएं हैं। नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने व्यवहार चिकित्सा का एक समग्र मूल्यांकन किया है तथा इसके गुण एवं दोषों का वर्णन किया है। इसके गुण या प्रमुख लाभ निम्नांकित हैं-

1.व्यवहार चिकित्सा एक संक्षिप्त एवं यथार्थ विधि है। मार्क्स (Marks, 1982)के अनुसार चूंकि इस चिकित्सा विधि में लक्ष्य व्यवहार जिसका उपचार करना है तथा जिस प्रविधि का उपयोग करना है, उसे भी तय कर लिया जाता है, अतः इस विधि के परिणाम अधिक निर्भर योग्य होते हैं एवं इसके परिणाम को एक वैज्ञानिक प्रारूप में रिपोर्ट किया जा सकता है, विचार-विमर्श किया जा सकता है तथा यथार्थपूर्ण ढ़ग से मूल्यांकन किया जा सकता है।

2.काजडिन एवं विलसन(Kazdin Wilson, 1978) के अनुसार व्यवहार चिकित्सा चूंकि सीखने के नियमों पर स्पष्टतः आधारित होता है, अतः कम दक्ष चिकित्सक भी इस विधि का उपयोग सफलतापूर्वक कर पाते है।

3.व्यवहार चिकित्सा का तीसरा लाभ यह है कि इसके द्वारा उपचार करने में अन्य विधियों की तुलना में कम समय एवं खर्च लगता है। इसे आसानी से समपेशेवरों (paraprofessional) तथा अपेशेवरों (non-professionals)दोनों को उसमें प्रशिक्षित किया जा सकता है। अतः व्यवहार चिकित्सा की विधि अधिक व्यवहारिक एवं लोकप्रिय है।

4.व्यवहार चिकित्सा ने लक्षण प्रतिस्थापन (symptom substitution)के संप्रत्यय को निरर्थक साबित करते हुए यह दिखलाया है कि मानसिक रोगों को सिर्फ मेडिकल मॉडल के दृष्टिकोण से देखना अनुचित है तथा इसका मनोगतिकी विकल्प (psychodynamic alternative) भी उपलब्ध है।

इन लाभों के बावजूद व्यवहार चिकित्सा के कुछ अलाभ या परिसीमाएं (limitations) हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं-

1.व्यवहार चिकित्सा सभी तरह की मानसिक विकृतियों के उपचार के लिए लाभप्रद नहीं बतलाया गया है। जैसे- मनोविदालिता के रोगी, आत्म-विमोही बच्चे;तथा गंभीर रूप से विषादी रोगी आदि के उपचार में यह विधि बहुत अधिक लाभप्रद साबित नहीं होता है।

2.व्यवहार चिकित्सा को कुछ नैदानिक मनोवैज्ञानिकों ने सतही कहा है। चूंकि व्यवहार चिकित्सा में रोगी के गत अनुभूतियों को महत्व नहीं दिया जाता है, रोगी के सूझ विकसित करना इसका मुख्य लक्ष्य नहीं होता है, तथा इसका संबंध किसी स्पष्ट सैद्धान्तिक समस्याओं से नहीं होता है।

3.कुछ आलोचकों का मत है कि व्यवहार चिकित्सा द्वारा रोगी के लक्षण स्थायी तौर पर दूर नहीं होते हैं बल्कि उससे मात्र लक्षण प्रतिस्थापन होता है।

4.कुछ नैदानिक मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यवहार चिकित्सा में रोगी को वैयक्तिक स्वतंत्रता पर एक तरह से अंकुश लग जाता है।

5.ग्रासवर्ग (Grossberg, 1997) ने यह कहा है कि व्यवहार चिकित्सा उन समस्याओं जिनकी प्रकृति अस्पष्ट होती है तथा उनका स्वरूप अस्तित्ववादी (existential) होता है, का उपचार करने में अधिक सफल नहीं हुआ है। इन परिभाषाओं या अलाभों के बावजूद व्यवहार चिकित्सा की उपयोगिता आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों के बीच काफी अधिक है। खासकर असंवेदीकरण, मॉडलिग, बायोफिडबैक प्रविधियों की लोकप्रियता तुलनात्मक रूप से काफ़ी अधिक है।

16.6 मानवतावादी चिकित्सा (Humanistic Therapy)-

मानवतावादी चिकित्सा एक सूझ-केन्द्रित (insight-focused) चिकित्सा है जो इस बात की पूर्वकल्पना करता है कि किसी भी असामान्य व्यवहार का उपचार व्यक्ति की आवश्यकता तथा प्रेरणा (motivation) के स्तर में वृद्धि करके की जा सकती है। इस उपागम या मॉडल में मानव व्यवहार का आधार चेतन अनुभूति (conscious experience) बतलाया गया है। इस चिकित्सा पद्धति में व्यक्ति को सर्जनात्मक तथा उत्तरोत्तर आगे बढ़ने वाला प्राणी माना जाता है जो अन्य बातें समान रहने पर, अपने भीतर छिपे अन्तःशक्ति का अनुभव करके अपने व्यवहार का चेतन रूप से मार्गनिर्देशन भी करते रहता है। जब उसके इस समझ में गड़बड़ी उत्पन्न होती है या उसके अस्तित्व पर प्रतिबंध लगता है, तो व्यक्ति में असामान्य व्यवहार की उत्पत्ति होती है।

16.6.1 क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा (Client –Centered Therapy)-इस चिकित्सा का प्रतिपादन कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) द्वारा 1940 के दशक में किया गया। इसे अन्य नामों जैसे व्यक्ति केन्द्रित चिकित्सा (person-centered therapy) या अनिदेशित चिकित्सा (non-directive therapy)भी कहा जाता है।

रोजर्स ने अपनी चिकित्सा विधि में रोगी के लिए क्लायंट (client) तथा चिकित्सक (Therapist) के लिए सलाहकार (councelor) शब्द का प्रयोग किया है। रोजर्स ने फ्रायड के इन दोनों विचारों को अस्वीकृत कर दिया हैं - पहला अविवेकी मूलप्रवृत्ति (irrational instinct) से व्यक्ति का व्यवहार प्रभावित होता है तथा दूसरा चिकित्सीय प्रक्रिया में चिकित्सक को एक निदेशक, व्याख्याता तथा जाँचकर्त्ता के रूप में कार्य करना होता है। रोजर्स का मत है कि चिकित्सा एक प्रक्रिया होती है न कि विभिन्न प्रविधियों का एक सेट। इनका मत है कि चिकित्सक क्लांयट की समस्या का सामाधान मात्रा उन्हें कुछ कहकर या कुछ पढ़ाकर नहीं कर सकते है। रोजर्स के अनुसार की वास्तविक प्रक्रिया "अगर..... तब"(if….then) प्रतिज्ञप्ति से प्रारंभ होता है। इसका मतलब यह हुआ कि यहाँ मान्यता यह होती है कि अगर चिकित्सक द्वारा सही परिस्थिति उत्पन्न की जाती है, तब क्लायंट में अपने आप परिवर्तन आयेगा और उसमें वर्द्धन होगा।

16.6.2 क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा की पूर्वकल्पनाएँ (Assumptions of Client–Centered Therapy)- रोजर्स (Rogers,1961) ने मानव प्रकृति तथा उन तरीकों जिनके सहारे उसे समझा जा सकता है, के बारे में निम्नांकित पूर्वकल्पनाएँ किया है-

1.व्यक्ति को उनके अपने प्रत्यक्षण तथा भाव के आधार पर ही सही ढंग से जाना जा सकता है।

2.स्वस्थ्य लोग अपने व्यवहार से पूर्णतः अवगत होते हैं।

3.स्वस्थ्य लोग जन्मजात रूप से उत्तम एवं प्रभावी होते हैं। वे तभी क्षुब्ध एवं अप्रभावी हो जाते हैं जब उन्हें दोषपूर्ण सीखने की अनुभूति होती है।

4.स्वस्थ लोभ उद्देश्यपूर्ण (purposive) तथा लक्ष्य निर्देशित (goal directed) होते हैं। वे पर्यावरण के उद्दीपकों के प्रभावों के प्रति निष्क्रिय रूप से अनुक्रिया नहीं करते है बल्कि वे लोग आत्म-निदेशित होते है।

5.चिकित्सक को क्लायंट के लिये घटनाओं में जोड़-तोड़ करके उसे अनुरूप नहीं बनाना चाहिए बल्कि उसे वैसी अवस्था उत्पन्न करनी चाहिए कि क्लायंट स्वतंत्रा होकर कोई निर्णय अपने आप ले सकें ।

16.6.3 क्लायंट-क्रेन्द्रित चिकित्सा का उद्देश्य (Aims of Client –Centered Therapy)-

चिकित्सक उक्त पूर्वकल्पनाओं के आलोक में चिकित्सक चिकित्सीय प्रक्रिया को संचालित करता है। क्लायंट-क्रेन्द्रित चिकित्सा का उद्देश्य क्लायंट में ऐसी नयी अनुभूति पैदा करना होता है जिससे वर्द्धन प्रक्रिया का पुनर्चलन (restart) हो सके। इसके लिए चिकित्सक को इस प्रकार व्यवहार करना पड़ता है।

1.चिकित्सा प्रक्रिया में चिकित्सक क्लायंट की व्यक्त इच्छाओं एवं भावनाओं के प्रति इस ढंग से अनुक्रिया करता है जो योग्य एवं उत्कर्ष (worth) अवस्थाओं की उत्पत्ति में बाधक नहीं होता है।

2.चिकित्सा प्रक्रिया में चिकित्सक क्लायंट को जैसा वह वर्तमान में है, पूर्णतः स्वीकार करता है।

3.चिकित्सा प्रक्रिया में चिकित्सक क्लायंट को एक व्यक्ति के यप में स्वीकार कर कार्य करता है।

(Qualities of Client –Centered Therapist)-उक्त तथ्यों के अनु६प इस चिकित्सा में एक ऐसी अन्तवैयक्तिक संबंध (interpersonal worth)को उत्पन्न किया जाता है जिसका उपयोग व्यक्तिगत वर्द्धन

(personal growth) के लिये क्लायंट आगे करता है। राजर्स के अनुसार इस तरह का वर्द्धन उत्पन्न करने वाला संबंध की उत्पत्ति के लिए चकित्सक में निम्नांकित तीन गुणों का होना अनिवार्य है-

1.बिना शर्त के धनात्मक सम्मान (Unconditional positive regard)

2.परानुभूति (Empathy)

3.संगतता (Congruence)

इन तीनों का वर्णन इस प्रकार है-

1. शर्त्तहीन धनात्मक सम्मान (Unconditional positive regard)- रोजर्स की चिकित्सा पद्धति में चिकित्सक द्वारा शर्त्तरहित धनात्मक सम्मान दिखलाया जाना चिकित्सा की सफलता के लिये अतिआवश्यक माना जाता है। इस तरह की मनोवृत्ति से निम्नांकित तीन तरह के संकेत मिलते है –

a) चिकित्सक क्लायंट पर एक व्यक्ति के रूप में विशेष ध्यान देते हैं (The therapist cares about the client as aperson)- चिकित्सक क्लायंट पर एक व्यक्ति के रूप में विशेष ध्यान देते है और इस कार्य को वे कई तरह से संपन्न करते हैं जिनमें सबसे उत्तम ढंग अस्वत्वात्मक रूप से ध्यान देना (nonpossessive caring) है जिसमें वास्तविक धनात्मक भाव की अभिव्यक्ति होती है।

b) चिकित्सक क्लायंट को स्वीकार करते हैं (The therapist accepts the client)- चिकित्सक के शर्त्तरहित धनात्मक सम्मान (Unconditional positive regard) में शर्त्तरहित (unconditional) शब्द इस ओर इशारा करता है कि चिकित्सक क्लायंट को बिना किसी अपना फैसला या निर्णय के ही उसे स्वीकार (accept) करता है। क्लायंट को स्वीकार करने का अपने आप में यह अर्थ होता है कि चिकित्सा अपनी भूमिका से संबंधित बहुत से कार्यो को नहीं करता है। इसमें अत्य बातों के अलावा प्रमुख यह है कि वह क्लायंट की भावों (feeling) को अपनी ओर से व्याख्या करने से दूर रहता है।

2. चिकित्सक क्लायंट के परिवर्तन की क्षमता में विश्वास रखता है (Therapist trust the client's ability to change)- शर्त्तहीन धनात्मक का 'धनात्मक' (positive)शब्द इस ओर इशारा करता है कि चिकित्सक क्लायंट के समस्या समाधान एवं वर्धन की अन्तःशक्ति (potential)में विश्वास रखता है। रोजर्स का मत है कि यदि क्लायंट यह समझता है कि चिकित्सक को उसकी अन्तःशक्ति (potential) में विश्वास नहीं है, तो क्लायंट में आत्म-निर्भरता का विकास नहीं होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। दूसरे तरफ यदि क्लायंट यह समझता है कि उसकी उसकी अन्तःशक्ति में चिकित्सक को विश्वास है, तो इससे उसमें आत्म-निर्भर होने का गुण विकसित होता है। इसके लिये चिकित्सक को किसी प्रकार की राय क्लायंट को नहीं देनी चाहिए। किसी प्रकार की जवाबदेही नहीं लेनी चाहिए तथा क्लायंट के लिये किसी प्रकार निर्णय अपनी ओर से नहीं लेना चाहिए।

2. परानुभूति **(Empathy)** - रोजर्स के अनुसार परानुभूति से तात्पर्य इस बात से होता है कि चिकित्सक क्लायंट के भावों को समझे और वह पर्यावरण को अपनी नज़र से न देखकर क्लायंट की नज़र से देखें। जब क्लायंट यह समझता है कि चिकित्सक ठीक वैसा ही प्रत्यक्षण कर रहा है जैसा कि वह करता है तो इससे चिकित्सीय संबंध मजबूत हो जाते हैं। इसे रोजर्स ने परानुभूतिक समझ (empathic understanding) की संज्ञा दिया है।

क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में चिकित्सक के सिर्फ परानुभूतिक मनोवृत्ति (empathic attitude) ही नहीं दिखानी चाहिए बल्कि उन्हें इस तरह की मनोवृत्ति को क्लायंट से संचारित (communicate) भी करनी चाहिए। इसे चिकित्सक क्लायंट की बातों को सक्रिय होकर सुनकर निभाता है। परानुभूतिक मनोवृति को संरचित करने में परावर्तन (reflection)की भूमिका पर रोजर्स ने अधिक बल डाला है। परावर्तन में चिकित्सक क्लायंट के विचारों एवं व्यक्तव्यों को मात्रा दोहराता नहीं है बल्कि इसमें वह क्लायंट के भावों को और अधिक स्वच्छ, स्पष्ट बना कर उन्हें स्वीकार करता है। इस तरह से परावर्तन द्वारा दो तरह के उद्देश्यों की पूर्त्ति होती है। पहला, इसके माध्यम से चिकित्सक अपने सांवेगिक समझ की इच्छा को संचारित करते हैं तथा दूसरा इसके माध्यम से क्लायंट को चिकित्सक अपने भावों के प्रति ठीक ढंग से अवगत करा पाते है।

राजर्स का मत है कि चिकित्सीय सत्र में परानुभूति की मनोवृत्ति बहुत धीरे-धीरे न कि एक-दो सत्र में ही उत्पन्न हो जाता है। चिकित्सक द्वारा उपयोग किये गये परावर्तन को देखकर क्लायंट धीरे-धीरे यह समझने लगता है कि चिकित्सक उन्हें उनकी भावों को स्वीकार कर रहा है।

3. संगतता (Congruence) - संगतता या जिसे यर्थारता (genuine) भी कहा जाता है, से तात्पर्य इस बात से होता है कि चिकित्सक को क्लायंट के साथ एक यथार्थ एवं वास्तविक संबंध विकसित करना चाहिए और वह जितना ही अधिक ऐसा संबंध विकसित करने में समर्थ होगा, वह उतना ही सफल होगा। इसके लिय यह आवश्यक है कि चिकित्सक के भाव तथा क्रियाएँ एक-दूसरे के साथ संगत हो। यह सही है कि किसी भी चिकित्सक के लिए संगतता को प्राप्त करना एक कठिन कार्य है, फिर भी एक चिकित्सक को सफल होने के लिए अपने भावों एवं व्यवहारों में संगतता दिखाना अनिवार्य है क्योंकि ऐसा होने से वह एक वास्तविक मानवीय संबंध को कायम कर पाता है।

16.6.5 क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंट में परिवर्तन की विमाएँ-

जैसा कि उपर्युक्त सम्पूर्ण व्याख्या से यह स्पष्ट है कि क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा एक “अगर....तब“ (if…then) पूर्वकल्पना की ओर इशारा करता है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर चिकित्सक द्वारा सही एवं ठीक हालात या अवस्था उत्पन्न किया जाता है, तब क्लायंट में परिवर्तन होगा। अब प्रश्न उठता है कि रोजर्स के इस चिकित्सा पद्धति में वे कौन-कौन सी विमाएँ (dimensions) हैं जिसमें क्लायंट में परिवर्तन चिकित्सा के दौरान होते है ? रोजर्स (Rogers, 1961) ने ऐसी छह विमाओं का वर्णन किया है जो इस प्रकार है-

1. चिकित्सा में क्लायंट अपनी उन भावों के निकट सम्पर्क में आता है जिसे वह पहले अपनी अभिज्ञान (awarness) से दूर रखता था। इसके अतिरिक्त क्लायंट अपनी वर्तमान अनुभूतियों पर ध्यान अधिक केन्द्रित करता है। इससे क्लायंट में आत्म-अभिज्ञान में काफी वृद्धि होती है।

2.आत्म-स्वीकरण में वृद्धि (Increased self-acceptance)- रोजर्स द्वारा प्रतिपादित इस चिकित्सा के दौरान धीरे-धीरे क्लायंट आत्म-आलोचना (self-criticism) करता पाया जाता है तथा वह अपने आलोचना आप को अधिक स्वीकार करते हुए देख जाता है। अब वह अपने भावों एवं व्यवहारों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना अधिक शुरू कर देता है तथा अन्य लोगों तथा परिस्थिति पर दोष मढ़ना धीरे-धीरे कम कर देता है।

3. अन्तर्वैयक्तिक आराम में वृद्धि (Increased interpersonal comfort) - रोजर्स द्वारा प्रतिपादित चिकित्सा में जैसे-जैसे चिकित्सकीय सत्र में वृद्धि होते जाती है, क्लायंट अपने विभिन्न तरह के संबंधों में अधिक-से-अधिक आराम या सुख-चैन का अनुभव करता है। क्लायंट सुरक्षात्मक अन्तवैयक्तिक उपागमों (defensive

interpersonal approaches) का त्याग कर देता है और जैसा वह है, उसके बारे में अन्य लोगों को बताकर काफ़ी खुशी होती है।

4. आत्म-आस्था में वृद्धि (Increase in self-reliance)- जैसे-जैसे चिकित्सा सत्र आगे बढ़ता है, क्लायंट दूसरों पर कम निर्भर रहने लगता है तथा उसे अपनी क्षमताओं पर अधिक-से-अधिक भरोसा हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि क्लायंट विभिन्न सामाजिक परिस्थिति जैसे- शादी, पार्टी, भाषण, आदि की परिस्थिति में बिलकुल ही डरता नहीं है क्योंकि वह यही समझता है कि जो वह सोचता है, वह उतना ही महत्वपूर्ण है जितना दूसरे लोग सोचते है।

5. क्लायंट के स्पष्ट व्यवहारों में परिवर्तन (Changes in overt behavior of the client)- क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंट के स्पष्ट व्यवहारों (overt behavior) में काफ़ी परिवर्तन आ जाते है। उसका व्यवहार पहले से अधिक परिपक्व हो जाता है तथा आत्मन् (self) वस्तुनिष्ठ विचार एवं वास्तविकता पर आधृत हो जाता है तथा उसके व्यवहार में मनोवैज्ञानिक तनाव की स्पष्ट कमी देखी जाती है।

क्लायंट में उक्त तरह के परिवर्तन अचानक न होकर चिकित्सीय सत्र के दौरान धीरे-धीरे होता पाया जाता है।

16.6.6 क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा का मूल्यांकन (Evaluation of Client-centred therapy)

इस तरह की चिकित्सा के कुछ लाभ(advantages) तथा अलाभ (disadvantages) है। इसके प्रमुख लाभ निम्नांकित है -

1.साधारण कुसमायोजित व्यवहार के लिए क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा को अधिकतर नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा एक उत्तम प्रविधि माना गया है क्योंकि यह विधि एक सरल विधि है और क्लायंट के व्यक्तिगत पहल से ही चिकित्सा का अधिकतर कार्य सम्पन्न हो जाता है।

2.क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा मनोगतिकी के किसी विशिष्ट सिद्धान्त के समर्थन पर निर्भर नहीं करता है। अतः नैदानिक मनोवैज्ञानिकों इसका इसी प्रयोग अधिक किया जाता है और इस कारण इसकी लोकप्रियता बनी हुई है।

3.रोजर्स तथा उनके सहयोगियों ने चिकित्सा की प्रक्रिया तथा परिणाम को पहली बार वस्तुनिष्ठ बनाने पर इतना ज़ोर दिया और इन्होंने ही प्रथम बार चिकित्सकीय सत्र का टेप रेकार्डिंग करने पर बल डाला ताकि अन्य शोधकर्त्ताओं द्वारा भी उसका बाद में विश्लेषण कर प्रक्रिया एवं परिणाम की जाँच किया जा सके।

इन लाभों के बावजूद क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा की कुछ अलाभ भी हैं जो इस प्रकार है -

1.क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा गंभीर मानसिक रोगों के लिए उपयुक्त नहीं होता है। चूँकि ऐसे रोगी गंभीर रूप से विक्षिप्त होते है, अतः उनमें व्यक्तिगत पहल का अभाव होता है तथा आत्म-सिद्धि (self-actualisation) के अभिप्रेरणा की बहुत कमी पायी जाती है। इसका प्रभाव यह होता है कि वे इस तरह के चिकित्सा का लाभ नहीं उठा पाते है।

2.कुछ नैदानिक मनोवैज्ञानिक का मत है कि क्लायंट चिकित्सा क्लायंट की समस्याओं की गहराई में न पहुंचकर मात्रा सतह पर ही रह जाती है और क्लायंट के रोग के लक्षण को फिर से लौट आने की संभावना तीव्र हो जाती है।

3.रोजर्स ने यह पूर्वकल्पना किया है कि व्यक्ति का व्यवहार हमेशा एक विशेष अभिप्रेरणा जिसे आत्म-सिद्धि की आवश्यकता कहा जाता है, से निदेशित होती है। अब प्रश्न यह उठता है कि जब व्यक्ति का व्यवहार हमेशा इसी आत्म-सिद्धि की अभिप्रेरणा से निर्धारित होता है तो वह दोषपूर्ण विचार (faulty ideas) को किस तरह से सीख

लेता है? इतना ही नहीं, ऐसे दोषपूर्ण विचार किन परिस्थितियों में सीखे जाते है तथा इस तरह के दोषपूर्ण सीखने से उसके किस तरह की आवश्यता तथा अभिप्रेरणा की तुष्टि होती है ? इन प्रश्नों का उत्तर क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में नहीं मिलता है।

4.आधुनिक नैदानिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा का उपयोग ठीक उस रूप में नहीं किया जाता है जिस रूप में रोजर्स द्वारा उसे प्रारंभ में प्रतिपादित किया गया था। वे इसमें अन्य सरल मार्गो को अपनाकर इसका उपयोग करते पाये गये है।

5.व्यिूटलर तथा उनके सहयोगियों (Beutler et al., 1986) तथा लैमबर्ट तथा उनके सहयोगियों (Lambert etal., 1986) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार यह बतलाया है कि रोजर्स की यह पूर्वकल्पना सही नहीं है कि इस तरह की चिकित्सा का धनात्मक परिणाम (positive outcome) चिकित्सक के परानुभूति (empathy), यथार्थता (genuineness) तथा सौहार्द्रता (warmth)से संबंधित होता है या उसपर आधारित होता है।

इन कमियों के बावजूद क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा का उपयोग आजकल नैदानिक मनोवैज्ञानिकों एवं मनोविश्लेषकों द्वारा काफ़ी किया जाता है क्योंकि इसकी विधि सरल एवं सुगम है।

16.7 सारांश

1.मनोचिकित्सा एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें रोगी तथा चिकित्सक एक साथ अन्तःक्रिया करके एक ऐसा उत्तम चिकित्सकीय संबंध का निमार्ण करते है कि रोगी की सांवेगिक व मनोवैज्ञानिक समस्याओं का उत्तम निदान हो पाता है।

2.व्यवहार चिकित्सा मनश्चिकत्सा की एक ऐसी प्रविधि है जिसमें मानसिक रोगों का उपचार कुछ ऐसी विधियों से किया जाता है जिसका आधा अनुबंधन के क्षेत्र में विशेष कर पैवलव तथा स्कीनर द्वारा तथा संज्ञानात्मक सीखना के क्षेत्र में किये गये प्रमुख सिद्धांत एवं नियम होते हैं। व्यवहार चिकित्सा में अपअनुकूलित व्यवहार को परिवर्तित कर उसकी जगह पर अनुकूलित व्यवहार सीखलाने का प्रयत्न किया जाता है।

3.क्लायंट-क्रेन्द्रित चिकित्सा का उद्देश्य क्लायंट में ऐसी नयी अनुभूति पैदा करना होता है जिससे वर्द्धन प्रक्रिया का पुनर्चलन हो सके। चिकित्सक क्लांयट की समस्या का सामाधान मात्रा उन्हें कुछ कहकर या कुछ पढ़ाकर नहीं कर सकते है। राजर्स के अनुसार इस तरह का वर्द्धन उत्पन्न करने वाला संबंध की उत्पत्ति के लिए चकित्सक में निम्नांकित तीन गुणों का होना अनिवार्य है- बिना शर्त के धनात्मक सम्मान ,परानुभूति, संगतता। क्लायंट केन्द्रित चिकित्सा में क्लायंट के स्पष्ट व्यवहारों में काफी परिवर्तन आ जाते है। उसका व्यवहार तथा आत्मन् पहले से अधिक परिपक्व, वस्तुनिष्ठ विचार एवं वास्तविकता पर आधृत हो जाता है

16.8. शब्दावली

प्रतिरोध- अपने मन में आने वाले किसी बात या विचारों को विश्लेषक के सामने व्यक्त नहीं करना।

मनोगत्यात्मक चिकित्सा - उपचार का दृष्टिकोण जिसमें व्यक्ति या रोगी के व्यक्तित्व गतिकी पर मनोविश्लेषणात्मक परिप्रेक्ष्य में बल डाला जाता है।

व्यवहार परिमार्जन - अधिगम के नियमों पर आधारित विधि जिसमें अपअनुकूलित आदतों को कमजोर करउनका त्याग किया जाता है, अनुकूलित आदतों की शुरूआत की जाती है तथा मजबूत किया जाता है।

व्यवस्थित सुविग्राहीकरण - इसमें वास्तविक स्थिति जो डर पैदा करती है से सम्बन्धित परिस्थितियों को प्रबलता के आधार पर क्रमबद्ध करते हुए एक सूची तैयार करते है। सूची में इन परिस्थितियों है अन्त में गहन शिथिलीकरण स्थिति और दुश्चिन्ता उत्पन्न करने वाले सूची अथवा दुश्यों को चिकित्सा में व्यवस्थित रूप से जोड़ते है।

स्वतंत्र साहचर्य - ऐसी विधि जिसका उद्देश्य रोगी के मन में जो कुछ भी आता जाए, उसे वह बिना किसी संकोच के कहता जाए,जिससे उसके अचेतन में छिपे अनुभवों, मनोलैंगिक इच्छाओं एवं मानसिक संघर्षों को कुरेदकर अचेतन स्तर पर लाया जा सके।

16.9. अभ्यास प्रश्न -

निम्नलिखित कथनों के उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में दीजिए -

1.मनोचकित्सा का अर्थ शारीरिक रोगों का उपचार करना है। हाँ/नहीं

2.मनोचकित्सा का मुख्य लक्ष्य रोगी को सामान्य व्यक्ति बनाना है। हाँ/नहीं

3.अनिदेशात्मक चिकित्सा को रोगी केन्द्रित चिकित्सा भी कहते है। हाँ/नहीं

4.मुक्त साहचर्य का तात्पर्य मन में आने वाले भावों को बिना झिझक प्रस्तुत करना है। हाँ/नहीं

5. किस चिकित्सा को अनिदेशित चिकित्सा भी कहा जाता है?

6. किस चिकित्सा द्वारा अचेतन में दमित इच्छाओं, संघर्षों एवं उलझनों को सुलझा कर चिकित्सा किया जाता है?

उत्तर-

1. नहीं 2. हाँ 3. हाँ 4. हाँ

5. व्यक्ति केन्द्रित चिकित्सा 6. मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा

16.10. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

1.उच्चतर नैदानिक मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, पटना

2.आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान अरूण कुमार सिंह- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

3.मनोविकृति विज्ञान-विनती आनन्द एवं श्रीवास्तव- मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली

4.मनोविकृति विज्ञान-अजय कुमार श्रीवास्तव-विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, दिल्ली

16.11. निबन्धात्मक प्रश्न

1. मनश्चिकित्सा से आप क्या समझते है? इसके प्रमुख लक्ष्यों का वर्णन करें।

2.फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोवैश्लेषिक चिकित्सा में निहित प्रमुख कदमों पर प्रकाश डालें। इसके गुण एवं दोषों का भी वर्णन करें।

3. व्यवहार चिकित्सा क्या है? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

4.निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें:

(अ) निश्चयात्मकता चिकितसा (ब) मुद्रा मितव्ययिता

(स) बायोफीडबैक प्रविधि (द) मॉडलिंग

5. क्लायंट-केन्द्रित चिकित्सा क्या है? इसका मूल्यांकन करते हुए इसमें निहित कदमों पर प्रकाश डालें।